पर्व

भैरप्पा

विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान योजना के अंतर्गत प्रकाशित महाभारत पर आधारित कन्नड़ का महान उपन्यास

पर्व

एस० एल० भैरप्पा
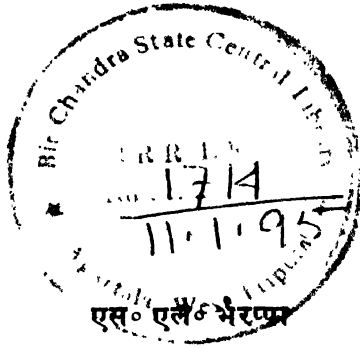
अनुवादक

बी० आर० नारायण

अनुवादक : बी० आर० नारायण
पुनरीक्षक : लक्ष्मण चतुर्वेदी

प्रकाशक	:	शब्दकार 159, गुरु अंगद नगर (वेस्ट) दिल्ली-110092
मूल्य	:	एक सौ साठ रुपये (160.00)
प्रथम संस्करण	:	अक्तूबर, 1959
द्वितीय संस्करण	:	अगस्त, 1960
मुद्रक	:	शान प्रिंटर्स शाहदरा, दिल्ली-110032
आवरण	:	चेतनदास
आवरण-मुद्रक	:	परमहंस प्रेस, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-110028
पुस्तक-बन्ध	:	खुराना बुक बाइंडिंग हाउस, दिल्ली-110006

निवेदन

लगभग बीस वर्ष पूर्व महाभारत की कथा की वास्तविकता के बारे में मेरी कल्पना ने सन् 1966 में चिक्कमगलूर के डॉ० नारायणप्पा के साथ चर्चा करते समय एक अस्पष्ट रूप धारण किया। इसे एक उपन्यास का रूप देने के लिए उन्होने कई बार आग्रह किया। अगले वर्ष अश्वयुज कार्तिक में हिमालय के गढ़वाल क्षेत्र में घूमते हुए बहुपति-प्रथा वाले एक छोटे से गाँव में ठहरने का अवसर मिला। 'यह प्रथा द्रौपदी के काल से चली आ रही है', कहने वाले लोगो की वहाँ के दो ताल्लुकों में बहुतायत है। बद्री और ज्योतिर्मठ के बीच वाले भाग में स्थित पांडुकेश्वर में भ्रमण करते समय वहाँ के इतिहास के बारे में जानने पर महाभारत के कई पात्रों के बारे में मेरी कल्पना उभरने लगी। सन् 1971 से इस बारे में गंभीरता से संशोधन में लग गया। 'व्यास-भारत' को मूल रूप में आदि से अंत तक पढ़ने के बाद वैदिक संस्कृति की अंतिम अवधि के आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि पहलुओं पर गहराई से अध्ययन में जुट गया। लगभग पाँच वर्ष के इस अध्ययन के बाद 1974 में मैंने हिमालय पर्वत के उन प्रदेशों की यात्रा की जहाँ महाभारत की घटनाएँ घटित हुई थीं। उसके बाद 1975 मे द्वारका, अरावलि पर्वत-श्रेणी, विराट नगर, मथुरा, दिल्ली, कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर, बरनावा, चक्रनगर, राजगीर आदि स्थानों पर जाकर अध्ययन किया। इस यात्रा के लिए पूर्व-सूचनाएँ तथा आवश्यक सूचनाएँ मैसूर के केन्द्र शासन के इलाका विशेषज्ञ डॉ० रमेश ने प्रदान की। मैसूर विश्वविद्यालय की पुस्तकालयाध्यक्षा श्रीमती लीला (ए० आर० कृष्णशास्त्री की पोती) ने मेरे अनुसधान के लिए उपयोगी पुस्तकें और लेख खोजकर देने में बहुत सहायता दी। मेरे इस अध्ययन मे शुरू से आखिर तक श्री बाल सुब्रह्मण्य ने सम्बन्धित विषयो के बारे में चर्चा करके मेरे विचारो को एक सही रूप लेने में सहायता दी। एक स्तर पर ऐसी सहायता श्री पा० वेय० आचार्य से भी मिली। यात्रा के दौरान स्थानीय ऐतिहासिक महत्त्व के विशेषज्ञ द्वारका के डॉ० जे० जे० ठाकर, विराटनगर के आचार्य देवेन्द्र शर्मा, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के डॉ० एच० ए० फड़के ने भी मेरे साथ घूमकर मुझे वे स्थान दिखाये और विवरण जुटाये। दिल्ली के राष्ट्रीय विज्ञान इतिहास संस्थान के

प्रधान सम्पादक डॉ० बी० वी० सुब्बारायप्पा से भी मुझे कई उपयोगी सामग्रियाँ प्राप्त हुईं।

12 अक्टूबर, 1975 से 27 दिसम्बर, 1976 तक एक वर्ष दो मास की अवधि में मैंने यह उपन्यास लिख डाला। मैसूर के रामकृष्ण आश्रम कॉलेज के एक कमरे में शुरू के कुछ भाग लिखे। बाद में एम० एस० के० प्रभुशंकर और एन० बाल सुब्रह्मण्य ने पांडुलिपि पढ़ी। इन मित्रों के पढ़कर चर्चा करने से मुझे उपन्यास को समीक्षात्मक दृष्टि से देखने में सहायता मिली। जब मैं शीर्षक के विषय में ऊहापोह में था तब डॉ० ह० मा० नायक ने इसका शीर्षक 'पर्व' सुझाया और उन्होंने मुद्रण की देख-रेख का कार्य-भार भी अपने कंधों पर लिया। मैं इन सब मित्रों का कृतज्ञ हूँ।

इस तैयारी और रचना-प्रक्रिया की दीर्घावधि में मेरी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सहायता करने वाले कई हितैषी हैं। इस उपन्यास के लेखन की तैयारी से लेकर लिखने, सुधारने और अनेक स्तरों पर मेरे मन में जो विचार उठे और उन्होंने जो एक रूप लिया; मेरी तैयारियाँ, यात्राएँ और लेखन इन सबके बारे में मैंने एक लेख लिखा है। इस उपन्यास के पाठकों पर उस पच्चीस-तीस पृष्ठ के लेख को लादना ठीक नहीं। इस कारण उसे अलग ही 'मैं क्यों लिखता हूँ' शीर्षक एक संग्रह में एक लेख के रूप में दिया है। उसके कुछ अंश यहाँ देना उचित लगता है।

डॉ० ठाकर ने कृष्ण की जिस द्वारका का वर्णन किया उसे सही या ग़लत कहने को पर्याप्त ऐतिहासिक आधार मेरे पास नहीं थे। वह मेरा उद्देश्य भी नहीं था। लोथल, हरप्पा, मोहनजोदड़ो आदि संस्कृतियों के उत्खनन सम्बन्धी मैंने जो विवरण पढ़े थे उनके आधार पर कृष्ण का द्वारका जाना असंभव नहीं। इससे भी अधिक उस प्रदेश में भ्रमण करते समय, उस समुद्र किनारे के 'लाइट हाउस' पर चढ़कर चारों ओर नज़र दौड़ाते समय मेरा मन एकदम सन् 1975 से हटकर पता नहीं किस काल में जा पहुँचा। उस समय के गाँव, समुद्र, जन-जीवन और आस-पास के भौगोलिक समस्त विवरण मेरे अनुभवों में जा मिले। समकालीन कथा-वस्तु पर लिखते समय लेखक को विवरणों के लिए भटकना नहीं पड़ता। उसके अनजाने में ही उसके अनुभव जिन वस्तुओं को ग्रहण करते हैं, लिखते समय वे सब सही रूप में व्यक्त होती चली जाती हैं। ऐतिहासिक विवरण उसके अनुभव में न आकर अनुसंधानात्मक बुद्धि के द्वारा व्यक्त होने के कारण लेखन प्रवाह में घुलकर मिल नहीं पाते। परन्तु तब द्वारका मेरे लिए एक अनुभव की वस्तु बन गयी…मैं यादवों की द्वारका में प्रवेश कर चुका था। जहाँ चाहे वहाँ जाने की शक्ति आ गयी थी मुझमें; और रास्ते का बोध भी होता जा रहा था।

जयपुर ज़िले के विराट नगर के पास 'छोटा कुरुक्षेत्र' अथवा गोग्रहण युद्ध होने के स्थान पर भीम के नाम पर प्रसिद्ध एक गुहा है…नवदम्पति आज भी उस

'भीम की गुहा' में जाकर पूजा करते हैं। जब मैं वहाँ गया था तब भी एक जोड़ा आया था। मैंने उस वर से उसकी पूजा का उद्देश्य पूछा। उसने कहा, 'मेरी पत्नी पर यदि कोई बुरी नज़र डाले तो उसे जान से मार डालने की शक्ति भीमसेन प्रदान करते हैं।' यहाँ तो महाभारत की कथा के साथ लोगों का विश्वास भी जुड़ गया है। कीचक को मारने की घटना सच न भी हो पर जनमानस में छायी बात ग़लत नहीं। यहाँ साहित्यकार के लिए किस सत्य की आवश्यकता है ! 'पत्नी को छेड़ने वाले को जान से मार डालना चाहिए' क्या यह प्रवृत्ति हम सब में नहीं है ? पाश्चात्य पतियों में नहीं ? यह सार्वकालिक और सार्वत्रिक पुरुष-भाव अथवा पुरुष का अहंकार, पुरुष की स्वामित्व-भावना क्या साहित्य का सत्य नहीं ?

अठारह अक्षौहिणी माने कितनी ? कहीं भी निश्चित संख्या की सूचना नहीं मिलती। संख्याओं के चक्कर में न पड़कर महाभारत के युद्ध में भाग लेने वाली सेना की संख्या की मैंने युद्धक्षेत्र के विस्तार के आधार पर कल्पना की। उस समय इतनी बड़ी संख्या में सेना एकत्रित हुई जितनी आर्यों ने पहले कभी नहीं देखी थी। उसमें समस्त आर्यावर्त के राजाओं के भाग लेने का कारण भी क्या था ? पारम्परिक महाभारत तो उस युद्ध को धर्मयुद्ध कहता है। परन्तु धर्म के (पांडवों के) विरोध में ही संख्या अधिक थी न ? अपनी खुजली मिटाने के लिए युद्ध कर लें। हमें उससे क्या लेना-देना—सोचकर काफ़ी लोगों को तटस्थ रहना चाहिए था न ? आर्य राजाओं का स्वभाव ऐसा नहीं था। जुआ, युद्ध और स्वयंवर का नाम सुनते ही दौड़कर जाने वाली जाति थी वह। डॉ० फड़के के साथ रिक्शा में बैठकर कुरुक्षेत्र के प्रदेश में सड़कों पर घूमते समय यह विचार मेरे मन में उठा। तब मुझे एक बात सूझी कि समस्त आर्य जाति के समान ही उनके सम्पर्क में आने वाली आर्येतर जातियों के जीवन और स्वभाव सूचित करने वाला होगा यह युद्ध। यह बात मेरे लेखन में आनी चाहिए।

12 अक्टूबर, 1975 में मैंने लिखना आरंभ किया। पहले दिन एक पृष्ठ लिखना भी मुश्किल हो गया। दूसरे दिन तीन पृष्ठ लिखे। आठ-दस पृष्ठ लिख लेने के बाद प्रवाह चल निकला। साहित्य-सृजन में प्रत्यक्ष और परोक्ष कहकर विभाजन करना ही ग़लत है। जो कुछ मैं लिखता हूँ वह प्रत्यक्ष ही होता है। एक-दो विवरणों में या शब्दों में न्यूनता हो सकती है। परन्तु मूल तत्त्व मेरे अनुभव से फूटकर निकले हैं। इस कारण 'वह समय और यह समय' में कोई भेद नही होता, मेरे मन में यह भाव दृढ़ हो गया।

मैं महाभारत के पात्रों की कथा नहीं लिख रहा हूँ। मानव के अनुभवों के विविध आयाम, रूप, मानव के संबंधों के रूप और विवेचन लिख रहा हूँ, यह प्रज्ञा अंत तक मेरे मन में बनी रही। प्रत्येक नये पात्र और सन्निवेश लिखते समय उनके नये-नये आयाम सूझने लगते।

इसके लिखने की तैयारी के विविध स्तरों पर जो बातें मेरी कल्पना में आयी थीं वह उपन्यास के रूप में अभिव्यक्त होते समय बिलकुल दूसरे ही रूप में सामने आयीं···'पर्व' लिखने के अनुभवों ने मेरे भीतर नये भाव पैदा किए, मुझे एक नया जीवन दिया। परम्परा ही हमारे अनेक विश्वासों का मूल है। इन सबको त्यागकर जीवन के अंत की—मृत्यु की दृष्टि से जीवन को देखा जाय तो नया ज्ञान जन्म लेता है। यह भाव भी मन में विकसित हुआ। अभी भला मेरी आयु क्या है? शेष बची आयु का अंदाज़ क्या है? इतने में दिखने वाले क्या कोई अर्थ हैं? इस सृजन में यह तीन तारों वाली श्रुति मेरे मन को सदा झंकृत करने लगी।

—एस० एल० भैरप्पा

अपने हिन्दी पाठकों से

जब यह उपन्यास कन्नड़ में प्रकाशित हुआ तो मैंने आमुख में इसकी रचना की पृष्ठभूमि का विवरण प्रस्तुत किया था। हिन्दी के पाठकों के लिए भी उसे संगत मानकर 'पर्व' के हिन्दी सांस्करण में भी उसका हिन्दी रूपान्तरण दिया जा रहा है। 'पर्व की रचना' शीर्षक से लगभग 32 पृष्ठों का एक निबन्ध भी कन्नड़ में अलग से प्रकाशित किया था। इस निबन्ध में इस उपन्यास की पृष्ठभूमि, इससे सम्बन्धित मेरे अनुसंधान और लेखन-क्रम आदि का विवरण दिया है। कन्नड़ पाठकों तथा समालोचकों से इस निबन्ध को काफ़ी प्रशंसा मिली है। यदि भविष्य में उसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो जायेगा तो मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी पाठकों तथा समालोचक महानुभावों के लिए वह उपयोगी सिद्ध होगा।

भारत एक बहुत बड़ा देश है जिसमें अनेक भाषाएँ हैं, प्रादेशिक विशेषताएँ हैं, परन्तु इसकी संस्कृति मूलतः अभिन्न है; विश्वास और आचार-विचार भी एक-से हैं। भले ही हम विभिन्न भारतीय भाषाओं में साहित्य-रचना क्यों न करें, फिर भी मूलत: हम सब भारतीय लेखक ही हैं। ऐसे प्रदेश में जहाँ एक ही भाषा बोली जाती है, बहुत ही सीमित क्षेत्र में साहित्य-रचना की क्रिया एवं वातावरण का सर्जन करना पड़ता है। सीमित क्षेत्र में अपनी जड़ें मज़बूत करके ही साहित्यिक रचना विश्वतोमुखी अर्थ का प्रसार कर पाती है। यद्यपि मेरी रचनाओं का क्रिया-क्षेत्र कर्नाटक तक ही सीमित रह गया है; फिर भी उनमें जो धारणाएँ और अंतर्द्वन्द्व व्यक्त हुए हैं, वे मूलतः भारतीय ही हैं। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-भाषी पाठकगण बिना किसी कठिनाई के इनको स्वीकार कर सकेंगे। इधर 'पर्व' के सम्बन्ध में तो बात ही कुछ और है। उत्तर भारत ही महाभारत की क्रियाओं का घटनास्थल है। महाभारत और उसके कितने ही प्रसंग प्राचीन कन्नड़ साहित्य के बहुत बड़े भाग के आधार बने हैं। इसलिए भौगोलिकता को भुलाकर इस कथा का भारत के हर प्रान्त से सम्बन्ध बना रहता है।

जिस दिन कन्नड़ में 'पर्व' का प्रकाशन हुआ, उस दिन से पाठकों, आलोचकों, धार्मिक नेताओं, समाजशास्त्रियों तथा चिन्तनशील व्यक्तियों में काफ़ी वाद-विवाद

पैदा कर दिया है। अब भी इसके बारे में संवाद जारी है। इस अवसर पर हिन्दी पाठकों की सेवा में मेरा एक निवेदन है कि यह एक साहित्यिक कृति है; मानवीय अनुभव है। उन अनुभवो के विवेचन को ही मूल-द्रव्य मानकर जीवन के अर्थों को खोजने निकला है, यह उपन्यास। यही मानकर इस उपन्यास को पढ़ने का अनुरोध है।

आलोचकों ने तो विभिन्न दृष्टियों से इस उपन्यास की समीक्षा की है, किंतु साहित्यिक दृष्टि से वह आनुषंगिक मात्र लगते हैं।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे उपन्यासों का हिन्दी पाठकों ने जिस प्रकार स्वागत किया है, उसी प्रकार इसे भी स्नेहपूर्वक स्वीकार करेंगे। मेरी रचनाओ को हिन्दी-पाठको तक पहुँचाने का श्रेय मैं 'शब्दकार' के श्री जवाहर चौधरी. तथा इनके अनुवादक डॉ० वी० बी० पुत्रन तथा श्री बी० आर० नारायण को देता हूँ। इन मित्रों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

1007, कुवेंपुनगर
मैसूर-570023

एस. एल. भैरप्प।

इरावती और चन्द्रभागा नदियो के बीच के प्रदेश के लोगों को मद्र कहते थे। उनके राजा का नाम शल्य था। वह अब बूढ़ा हो चला था। उसने अपनी पोती को पास बैठाकर पूछा :

"बता सकती है, मैं कितने बरस का हूँ ?"

"दादा जी, आप से बड़ा कोई है ही नहीं।"—उस बीस वर्ष की नवयुवती ने उत्तर दिया।

"फिर भी चलने में कमर कसकती नही, पीठ झुकी नहीं। जानती है, क्यों ?"

"आप बहुत बलिष्ठ हैं।"—लड़की गर्व से मुसकरायी।

"यह बात नहीं। हम पुराने ज़माने के हैं।"—वृद्ध शल्य ने ठहाका लगाया। हँसी से घनी दाढ़ी लहराने लगी।

"इसका कोई हिसाब है ? मेरे जितनी उमर वाले सभी लोग ऐसे हैं।"

"आप जितनी उमर वाला हमारे महल में कोई है ही नहीं।

"दूसरे राज्यों के महलों में हैं। महलों के बाहर साधारण लोगों में हैं। पुराने ज़माने के लोग बलिष्ठ होते हैं।"

"ऐसा क्यों ?"

"उनके जीवन का ढंग ही ऐसा है। तुम लोगों जैसा नहीं। देशाचार, कुलाचार छोड़कर दूसरों की नकल करने चले हैं।"···पोती ने बीच ही में टोका, "दादा जी, आप इतनी जल्दी भूल गये, आप में और मुझ में समझौता हो चुका है कि हम इस बारे में बात नहीं करेंगे।"

"ठीक है। तुझ से नाहक क्यों बात करूँ। तेरे पिता को आने दे। सुना है वह जुआ खेलने गया है। उसी से बात करूँगा। मालूम नहीं कब लौटेगा। सौ बार मना कर चुका हूँ। पीठ पर दो चाबुक जमा कर बात करूँगा।" क्षण भर पहले खिल-खिला कर हँसने वाला दादा यकायक गम्भीर हो गया। "अब तक तेरा ब्याह होकर तुझे एक-दो बेटों की माँ होना चाहिए था। तेरे लिए तो बाप की बात ही ठीक है। इसीलिए अब तक कुवाँरी घूम रही है। यह कोई अच्छी बात है ?"

इसका जवाब देने पर दादा क्रोध में आ जाएँगे, यह बात हिरण्यवती जानती है। पीठ पर एक धौल भी जमा सकते हैं। धप् से चौड़ी हथेली पीठ पर पड़ सकती है। लेकिन बापू की बात ही मन को ठीक लगती है। दादा समझते हैं कि बापू जुआ खेलने गये हैं। सच्ची बात तो मुझे पता है। माँ ने कल रात चुपके से बताया था। काश, जिस काम पर वे गये हैं वह पूरा हो जाये। आज संध्या को होम के समय अग्नि देव को दो हव्य अधिक डालूंगी।"

"पचास गाड़ी ताँबा, पीतल, जेवर, कपड़े मिल सकते थे। तू इतनी सुन्दर लड़की है"—दादा ने मानो यह बात अपने आप से कही। लड़की का चेहरा तम-तमा आया। सुन्दर तो हूँ। हमारे देश की स्त्रियाँ सुन्दर ही होती हैं। प्रतिपदा के चन्द्रमा जैसा गोल मुँह। घिसकर चमकाये गये लोह-दर्पण में देखी हुई अपनी मुखाकृति उसे याद हो आयी। पर क्या लड़कियों को बेचा जा सकता है? इसी-लिए कुरू, पांचाल, शूरसेन, चेदि, काशी, विराट तथा ईशान्य दिशा के अन्य लोग भी हमें नीचा मानते हैं। बापू ठीक कहते हैं। लड़की वाले को पूर्व देश और दक्षिण देश के लोगों की भाँति स्वयंवर रचाकर जीतने वाले को गाड़ियाँ-भर दहेज देकर अपनी बेटी की शादी करनी चाहिए। आगे चलकर पति के घर में लड़की का सम्मान होता है और कुल का आदर भी। यह भी अच्छी पद्धति है कि कोई क्षत्रिय राजकुमार आये और कन्या को मोहित करके अपने रथ पर बिठाकर भगा ले जाय। हिचकोले खाता रथ, घोड़ों की टापों की आवाज़ें, धूल, और पीछा करने वालों के हाथ न आना या पीछा करने वाले पिता अथवा दादा को परास्त कर देना। क्या दादा में इस तरह पीछा करने की शक्ति है? चलते समय कमर लचकती नहीं, पीठ झुकती नहीं।

"दादा जी, आप कितने साल के हैं?"

"हाँ, तू बड़ी होशियार है। बात बदलने के लिए फिर वही प्रश्न पूछ रही है।"

"वह बात नही। आपने कभी ठीक-ठीक यह नही बताया कि आप इतने बरस के हैं।"

"आज बताता हूँ, सुन; चौरासी का हूँ।'

"आपने यह हिसाब कैसे रखा है?"

"कैसे!" शीशम के तख्तों से बनी छत की ओर देखते हुए शल्य बोला। "मैं भीष्म से छत्तीस वर्ष छोटा हूँ। कहते हैं अब वह एक सौ बीस का है, तो मैं कितने का हुआ? उँगलियों पर गिन के देख।"

लाल-लाल लम्बी उँगलियों को स्पष्ट रेखाओं वाली हथेली पर मोड़-मोड़कर वह गिनने लगी। उत्तर मिलने से पूर्व ही उसके मन में प्रश्न उठा। उसने पूछा, "भीष्म एक सौ बीस के हैं। यह आपको कैसे पता है?" गर्दन उठाकर देखने पर दादा के चेहरे पर क्रोध की झलक दिखायी पड़ी। अपनी बात आगे बढ़ाते हुए वह

बोली, "मैंने इसलिए पूछा क्योंकि भीष्म कभी हमारे नगर नहीं आये, हमारे देश नहीं आये और आप भी कभी वहाँ नहीं गये।"

वृद्ध शल्य और भी गम्भीर हो गया। शुभ्र, पर हल्की झुर्रियाँ भरे चेहरे को भाँप कर लड़की ने आगे प्रश्न नहीं किया। एक सौ बीस में से छत्तीस कम होने से कितने बचेंगे। यह हिसाब अब उसे आ गया। उसे लगा उसका दादा कितना बड़ा है। पर दादा से भी वे कितने बड़े। छत्तीस वर्ष ! भीष्म कितने बड़े होंगे ? अनायास वह बोली, "दादा जी, ग़ुस्सा मत होना। मुझे पता है, एक बार हमारी बुआ-दादी को अपने भतीजे के लिए माँगने भीष्म ही हमारे घर आये थे। तब मैं तो पैदा नहीं हुई थी। बापू पैदा हो चुके थे।"

दादा अब भी बोला नहीं। उसका कारण लड़की की समझ में न आया। दादा उठकर दरवाज़े से बाहर चले। गर्मी के मारे बाग के पौधे भी मुरझा गये थे। शाकल पट्टण में ही नहीं, समस्त मद्र प्रदेश में पानी का अभाव न था। पर जलती गर्मी में बाग के पौधों को सींचने लायक पानी कहाँ से लायें। बाग की बहार, पेड़ भी सूख चुके थे। वर्षा आने में पता नहीं कितने महीने हैं। संध्या हो चुकी थी। सूर्य ओझल हो जाने पर भी छोटी-मोटी चट्टानें अभी गर्म थीं। राजा को धरती पर बैठना नहीं चाहिए। सेवक पीछे-पीछे आ रहा था। आसन बिछ जाने पर वृद्ध शल्य राज ने सेवक को दूर जाने का संकेत किया। वह अकेला बैठ गया। हवा न होने से पतंगे भी स्तब्ध थे। गले, गर्दन और माथे पर पसीने की चिपचिपाहट थी। इसी महीने में वर्षा होनी चाहिए। जो पार्जन्य :

> महांत कोशं उद चा निषिंच
> स्यंदतां कुल्याविषितां पुरस्तात्।
> घृतेन द्यावापृथवी व्यन्धि
> सुप्रपाणं भवंत्यध्न्याभ्य: ।।

तभी पटापट बूंदें पड़ने लगीं। उस पहली बौछार में सिर, पीठ, कंधे, बाँहें भिगोकर शरीर पर गर्मी से निकली घमोरियों के बैठ जाने तक शल्यराज भीगता रहा। ओम् शांति:, शांति:, शांति:। वह सोचने लगा—वह आया। उसे मेरी छोटी बहन को लेकर गये एक संवत्सर पूरा हो चुका। बाद में वह दुबारा कभी नहीं आया, रिश्तेदारी निभाने को भी नहीं। अपनी सुदृढ़ सेना को नगर के बाहर ही रोककर दर्पपूर्ण मुख मुद्रा से, विश्वास प्रदान करने वाले भाव से महल में आकर वह अपने भाई विचित्रवीर्य के पुत्र के लिए लड़की माँग कर ले जाने के बाद से नहीं आया। मैंने पूछा था, "भीष्म, कुरू-कुल में अपनी बहन देना मैं सौभाग्य मानता हूँ। पर सुना है कुन्तिभोज की पोषिता पुत्री, शूरराज की बेटी के साथ तुम्हारे भतीजे पांडु का विवाह हो चुका है। बड़ी पत्नी के रहते मेरी बहन को कौन-सा सुख मिल पायेगा।' वह लम्बा-चौड़ा व्यक्ति था। उस चौड़े मुख पर कितनी

दृढ़ता थी, उतना ही दृढ़ उसका स्वर था। उसने कहा था, 'मद्रराज, विवाह हुए तीन वर्ष बीत जाने पर भी गर्भवती न होने वाली को बड़ी पत्नी का पद कैसे मिल सकता है ? शुद्ध आर्य परिवार में पत्नी का स्थान उससे उत्पन्न पुत्रों की संख्या पर निर्भर रहता है। तुम्हारे देश की लड़कियों में दस पुत्रों की माता बनने योग्य गर्भ-शक्ति रहती है। रूप का कहना ही क्या है।' तब मुझे गर्व महसूस हुआ। अब तो उसका रूप भी याद नहीं रहा। एक संवत्सर घूम गया। वह सुन्दर थी। मद्र राज्य की हर स्त्री सुंदरी होती है। अपने सूती वस्त्र से शल्यराज ने छाती का पसीना पोंछा। "भीष्म, आप हमारे देश की पद्धति जानते हैं।" "ओह ! मुझे मालूम है कि हमारे कुरुप्रदेश से पश्चिम की ओर जाने पर बिना शुल्क कोई बेटी नहीं देता। तो कन्या के सौंदर्य के अनुसार शुल्क का मूल्य निश्चय करना है क्या ? बीस गाड़ियाँ भरकर लाया हूँ। ताँबे के बर्तन, रुई, रेशम, ऊनी वस्त्र और थाली-भर मुद्राएँ हैं। कुरुओं की मुद्राओं का महत्त्व समझते हो ! शुद्ध स्वर्ण है, तुम्हारे पश्चिमी प्रदेशों की भाँति नहीं।" कुरुओं के पास कितना ऐश्वर्य है? जितना ऐश्वर्य हस्तिनापुर में है, और कहीं नहीं। ऐसे कुटुम्ब में विवाह तो हो गया। बाद में एक बार भी भीष्म यहाँ नहीं आया। मुझे अपनी बराबरी का दर्जा नहीं दिया। कन्या ले गया। बुलाने पर एक बार भी बहन मायके नहीं आयी। ऐसे पति के साथ बाँध देने के ग़ुस्से से। समृद्ध वीर्यवान पति न हो तो हमारे मद्र देश की कौन-सी स्त्री गुस्सा नहीं करेगी ! घनघोर वर्षा होनी चाहिए। गर्मी का शमन होना ही चाहिए। शांतिः, शांतिः, शांतिः।

इतने में सुन्दर सेविकाएँ बड़े-बड़े मिट्टी के घड़ों में पानी लेकर वहाँ आयी। उद्यान की धरती पर अच्छी तरह छिड़काव किया। धरती पानी को एकदम सोख गयी। वे फिर पानी लायीं और छिड़काव किया। वे फिर से लायीं और फिर से छिड़का। राजा ने पुकारकर कहा, "लड़कियो! खूब छिड़काव करो।" मुख्य सेविका ने कहा, "धरती पर कीचड़ हो जाएगा।" "होने दो। धरती अच्छी तरह भीगने दो।" वह यह कह ही रहा था कि उन्होंने दायाँ हाथ घड़े के मुँह पर आड़ा लगा कर खूब छिड़काव किया। गर्मी कम हुई। उन सब के जाने के बाद राजा का मन कुरू-कुल की सम्पत्ति की कल्पना में खो गया। कितने हाथी, गाय, रथ, घोड़े, बर्तन ? मिट्टी के बर्तन तो वहाँ होते ही नहीं। ताँबे के ही होते हैं। सोना तो वहाँ इतना है कि कहीं और नज़र ही नहीं आता है। पीढ़ियों से इकट्ठा किया गया होगा। भीष्म, शांतनु—उँगलियों पर गिनते हुए उसने अपनी स्मृति को कुरेद-कुरेद कर बाहर निकालना शुरू किया। हाँ, त्रुष्टिसेन, प्रताप, दिलीप, भीमसेन, ऋक्ष, देवातिथि, अक्रोधन, अक्रोधन—स्मृति के गड्ढे में पत्थर आड़ा खड़ा हो गया। और भी बहुत-सी पीढ़ियाँ···कुरु देश से एक सूत भी आया था न ? उसके कहने के अनुसार हस्तिनापुर की स्थापना करने वाला हस्तिन उन भीष्म से चालीस

पीढ़ी पहले हुआ था। उस नगर में कितनी सम्पत्ति एकत्र हुई होगी ! हमें भी अच्छे सूतों को खोजकर मद्रों का यशोगान करना चाहिए।

धरती पर पानी छिड़के जाने के बाद की ठंडक से हवा में भीं-भीं करते काटने वाले कीट कम हो गये थे। शल्य जम्हाई लेते हुए अपने दोनों हाथ उठाकर अँगड़ाई ले रहा था कि तभी उसकी पोती आयी और बोली, "दादा, बापू जी आये हैं।" दादा ने कहा, "यहाँ भेज दे।"

थोड़ी देर बाद बेटा रुक्मरथ आया। पचास के आस-पास का होने पर भी जवान लगता था। कंधे के उत्तरीय को ठीक करके उसने पिता के सामने झुककर धरती छूकर नमस्कार किया। पिता ने मस्तक चूमा। उसके बाद वह दो कदम पीछे हट कर बैठ गया। "तुम्हें गये एक पखवाड़ा हो गया न, रुक्मरथ ?"

"जी, पिता जी।"

"कितने पाये, और क्या खोया ?"

"मैं वैसे खोने वाला जुआरी नहीं, ज्यादा मिला भी नहीं। मैं तो इसी बहाने से गया था।"

"नहीं तो कौन-सा राज-काज था ?"

"यदि मैं बताऊँ तो कुलपद्धति नष्ट हो जायेगी।"

"बेटी के स्वयंवर के प्रयत्न की बात है न ?"

"तेरे पिता को सब पता रहता है।"

"ठीक है, अब हमें भी पर्याप्त सुविधा है। स्वयंवर रचाकर दहेज देकर भेजेंगे। पर देखो, जल्दी निबट जाना चाहिए। लड़की ऋतुमती होकर अब तक पचास बार बाहर बैठी होगी। ऋतुचक्र के समय वीर्य मिलकर गर्भ न ठहरे और वह नष्ट हो जाय तो कितना पाप माना जाता है ! इस पचास बार के नष्ट के लिए मुझे, तुम्हें, तुम्हारे दादा को शायद नर्क भुगतना होगा।"

"पिताजी, आपकी बात सच है। पर स्वयंवर रचाने के लिए सम्पत्ति चाहिए। देश-देशांतरों से राजाओं और राजकुमारों को बुलाना चाहिए। उनका आतिथ्य, दहेज — इन सबमें कम खर्च होगा क्या ? यह सब जुटाने में इतने दिन लग गये। हम कोई कुरू, पांचाल या काशी अथवा मगध के तो हैं नहीं कि जब जी चाहा, भंडार लुटा दिया।"

"जब उन जैसा ऐश्वर्य नहीं है तो उनकी पद्धति हम क्यों अपनायें ? हम कन्या-शुल्क लेंगे। सम्पत्ति भी आएगी और लड़की के ऋतुनष्ट का पाप भी नहीं लगेगा। कानीन-शिशु को अपमान समझकर तुमने लड़की को बड़े नियन्त्रण में रख रखा है। यह सब कैसा अविवेक ?"

पुत्र ने उत्तर न दिया। उसके पास कोई उत्तर था भी नहीं। इसे भाँप कर बाप ने उसकी रग को और ज़ोर से पकड़ा। "ऋतुनष्ट हो जाय तो महापाप है,

यही मूल धर्म है। उसके उल्लंघन करने वाले किसी भी काम को मैं सहन नहीं कर सकता।"

"पिता जी, आपने मद्र देश से बाहर जाकर कहीं कुछ देखा नहीं। हमारे मद्र देश की स्त्रियों का सौन्दर्य सब जगह प्रसिद्ध है। पर यहाँ रति-स्वातंत्र्य है, उस पर कोई नियन्त्रण नहीं। यह बात भी सब जगह फैली है। पूर्वी देशों में जाकर किसी भी तरुण से कहें कि मेरा देश मद्र है तो वह मार्मिक व्यंग्य से कहता है, 'अच्छा! तो मित्र, मुझे भी अपने देश ले चलो। मुझे भी स्वर्ग-सुख भोगने की इच्छा है।' मेरे विचार से इस सब पर रोकथाम लगानी चाहिए।"

"यह हमारा देशाचार है। उसे ग़लत नहीं कहना चाहिए।" पिता ने ज़ोर से कुछ धमकाते हुए कहा, पर उनके स्वर में क्रोध न था। पुत्र ने उत्तर न दिया। दो साल से वह जानता था कि अब पिता का विरोध पहले जैसा नहीं रहा। चाहे स्वयंवर ही हो पर जल्दी हो जाना चाहिए। पोती जब-जब भी 'बाहर' होती है, पिता जी यह सोच कर दुखी होते हैं कि एक और जन्म का नरकवास बढ़ गया, ग़ुस्सा करते हैं, भयभीत होते हैं। स्वयं उसे भी वह डर है। पर यह सोचकर कि स्वयंवर न रचा कर कन्या शुल्क लेकर वैसे ही, बिना धूमधाम के यूं ही बेटी को भेज दें तो हमारे कुल का नाम कैसे बढ़ेगा?"

"ठीक है। तुमने कहा न जुआ खेलने के बहाने स्वयंवर का प्रबंध करने गये थे। उसका क्या बना, बताओ?"

"तत्काल स्वयंवर करा सकने की स्थिति नहीं है।"

"मैंने कहा नहीं, कुलाचार छोड़कर चलने से सैकड़ों विघ्न पैदा होते हैं। स्थिति नहीं का क्या अर्थ?" पिता का स्वर फिर से तीखा हो उठा। इस समय स्वर में क्रोध का भी पुट था।

पुत्र ने शांति से कहा, "मैं रथ, घोड़े और पचास धनुर्धारियों सहित त्रिगर्त देश गया था। वहाँ का राजा सुशर्मा पहले से ही मेरा मित्र है। उसने कहा, स्वयं-वर करना ही ठीक है। केवल हमारे इन पश्चिम देशों के राजा भर आये तो विशेष सम्मानजनक नहीं होगा। कुरू, पांचाल, काशी, मगध, चेदि, और उधर विदर्भ और अब यादवों की द्वारिका। इसी प्रकार इन्द्र, अग्नि, यम, वायव्य दिशा के लोगों को भी आना चाहिए। कुरू पांचाल के ब्राह्मण और ऋत्विक भी एकत्रित होने चाहिएँ। तब जाकर स्वयंवर का बड़प्पन बढ़ेगा। तुम प्रबन्ध करो। शान से अतिथि सत्कार के लिए मैं सब सामान सरंजाम भेजूंगा। पर इस समय पूर्व देशों का कोई भी राजा स्वयंवर में आने की स्थिति में नहीं।"

"क्यों? क्या हो गया?" बूढ़े राजा ने पूछा।

"हस्तिनापुर का पुराना झगड़ा है न, धृतराष्ट्र और पांडु के बेटों में। पांडु के बेटों ने बारह वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर लिया है। दोनों में युद्ध—" तब

पिता ने बीच में रोककर पूछा :

"तो उन्होंने अज्ञातवास कहाँ बिताया ?"

"वहीं, पास ही विराट नगर में।"

"यह बात झूठ नहीं कि चोर सदा दरवाज़े के पीछे ही छिपा रहता है।"

"दुर्योधन ने सोचा कि वे कहीं दूर छिपे होंगे। अपनी ससुराल द्रुपद के राज्य में होंगे या अपने मित्र कृष्ण के यहाँ द्वारिका में होंगे। इसलिए उसने अपने गुप्त-चर वहाँ भेजे थे। इधर हिमालय की ओर भी खोज की थी। अब उनके तेरह वर्ष बीत गये। उन्होंने कहला भेजा है कि हमारा राज्य हमें वापस कर दो। इसने न देने का दो-टूक जवाब दे दिया है।"

"भूमि और स्त्री एक बार हाथ में आ जाने के बाद कौन छोड़ता है।" बूढ़ा पोपले मुँह से फिस्स से हँस पड़ा।

"केवल हाथ में ही आने की बात नहीं। दुर्योधन ने एक और मूल प्रश्न छेड़ा है। उसका कहना है कि वही अकेला कुरुवंश में पैदा हुआ है। अपने पिता धृतराष्ट्र के बीज से ही पैदा हुआ है। उसके तेरह भाई और बहिन हैं। वे पाँचों अपने पिता के बीज से पैदा नहीं हुए। पांडु की पत्नियाँ अन्य पुरुषों से गर्भवती हुईं और वे पैदा हुए। इस कारण वे कुरुवंश के हैं ही नही। पहले उन्हें खांडवप्रस्थ देना ही ग़लत हुआ। वह गलती उसने जुए से ठीक की। अब उसे दुबारा बिगाड़ने को आगे न आइए। यह बात उसने बड़े-बूढ़ो से कह दी है।"

"उसने क्या कहा ?"—पिता कुछ क्रुद्ध स्वर में बोला, उसे बात पूरी समझ में नहीं आयी।

"उसने कहा है वे पाँचों अपने पिता के बीज से पैदा नहीं हुए। उनकी माताएँ किसी-किसी से गर्भवती हुईं और वे पैदा हुए। इसलिए वे कुरुवंश के हैं ही नहीं। उनका कौरव राज्य में कोई अधिकार नहीं।"

वृद्ध का मस्तिष्क एक क्षण के लिए झन्ना गया। भीतर एकदम गहरा अंधकार-सा छा गया। बाहर हल्की चाँदनी फैली थी। आज कौन-सी तिथि है ? शुक्ल पंचमी। धीरे से आँखो में छाए अँधेरे से सँभलकर अपना मुँह पोंछते हुए बोला, "उन्होंने हर किसी के पास जाकर व्यभिचार से उन्हें पैदा नहीं किया। शास्त्रसम्मत नियोग से उन्होंने पांडु के बच्चों को जन्म दिया। वंशवृद्धि के लिए पांडु ने ही पत्नियों को नियोग की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा पर ही उन्होंने उसके नाम पर गर्भ धारण किये। यह धोखेबाज़ है। राज्य लौटाने के दुख के कारण यह सब अधर्म की बातें कर रहा है। हमारी सेना भेजो। पांडवों की ओर से उसका वध करके हम धर्म की स्थापना करेंगे।"

"पिताजी, इन दिनों आप चीख़कर क्यों बोलते हैं ?"

"कोई धर्म को अधर्म कहे और अधर्म को धर्म, तो क्या क्रोध नहीं

आएगा ?" पुत्र को तत्क्षण कोई जवाब नहीं सूझा। पिता के होंठ क्रोध से काँप रहे थे। भावावेश में दुर्योधन को सामने बैठा समझ कर उसने हाथ उठाया ही था कि संज्ञा लौटते ही बीच में रुक गया। एक बार ठंडी हवा का झोंका आने से उसे अनुभव हुआ कि उसकी गर्दन और पीठ पसीने से चिपचिपा रही है।

वस्त्र से रगड़कर पोंछते हुए उसे अनायास याद आया—"दुर्योधन का बाप धृतराष्ट्र और पांडवों का बाप पांडु, दोनों ही नियोग से पैदा हुए थे। वह भी बाप के मरने के बाद उसकी अनुमति के बिना। केवल उसका नाम लेकर पत्नियों ने बीज स्वीकार किया था। तो कहा जा सकता है कि दुर्योधन भी कुरुवंश का नहीं, क्या कहना चाहते हैं ?"

तभी बेटे ने प्रश्न किया : "केवल श्रद्धा से ही क्या एक के बीज से जन्मा बेटा दूसरे का बेटा हो जाना संभव है ?"

दोनों की बातें एक-दूसरे से टकराकर रह गईं। एक के प्रश्न को दूसरे की बुद्धि ने ग्रहण ही नहीं किया। दोनों में से किसी ने उत्तर नहीं दिया। दोनों थोड़ी देर तक मौन रहे। महल के भीतर अरंड के तेल का दीया चुपचाप जल रहा था। रुक्मरथ को एक के बाद एक तीन जम्हाइयाँ आईं। पिता ने कहा : "यात्रा से थक गये हो, अब जाओ।" बेटा उठकर पिता के महल से होता हुआ अपने महल में आया।

दूध में पका अन्न खाने के बाद बाहर आँगन की ठंडी धरती पर लगाये तख्त पर चटाई पर बिछे रूई के गद्देदार बिस्तर पर शल्यराज जाकर सो गया। उसकी पत्नी मर चुकी थी। सुन्दर सेविकाएँ होने पर भी वर्षों से उनसे उसका संपर्क न था। वह उनका स्पर्श भी न करता था। विस्तृत नीले स्वच्छ आकाश में बिखरे जगमगाते तारों को निहारते-निहारते राजा को भीष्म की याद आई—पूर्व, पश्चिम, दक्षिणोत्तर में उसके समान कोई और धर्मज्ञ नहीं। उसी ने अगुवा बनकर अपने स्वर्गवासी भाई की पत्नियों का नियोग कराकर वंश बढ़ाया। पांडु के पुत्रों को बिना एक शब्द कहे पोतों के रूप में स्वीकार किया। यह दुर्योधन राज्य न लौटाने के स्वार्थ से धर्म की ग़लत व्याख्या करने लगा है। मूर्ख कहीं का।—यह कहते-कहते आकाश में चमकते नक्षत्रों के समक्ष उसे ऐसा लगा मानो धर्म के प्रति उसकी आस्था और गहरी हो गयी। तभी शल्यराज ने करवट ली और करवट लेकर लेटते हुए उसे बेटे पर और गुस्सा आया। कहता है कन्या-शुल्क लेना अपमान है, विवाह से पहले लड़की को बच्चा हो जाना अपमानजनक है, नियोग ग़लत है। तो पूर्वजों की पद्धति गलत है ? मूर्ख ! मूर्ख कहीं का। अब स्वयंवर रचाने में क्या अड़चन है। उधर पांडव और धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध करें, तो यहाँ हम स्वयंवर क्यों न करें ? सुबह उसे बुलाकर कहना है।—यह सोचते-सोचते उसे नींद आ गयी। शल्यराज को पहले गहरी नींद आती थी। बीच में कभी उचटती नहीं थी। पर अब आयु बढ़ जाने के

कारण नींद आधी रात को अगर खुल जाती तो फिर घंटे-आध घंटे बाद ही गहरी नींद आ पाती। आधी रात को नींद खुलने पर तारों की स्थिति से समय का अनुमान लगाते-लगाते वह सो भी जाता था। पर सर्दियों में घर के भीतर सिर तक ओढ़ कर सोते हुए अगर कभी नींद खुल जाती तो उसके लिए समय बिताना मुश्किल हो जाता था।

घर की छत पर ठंडी हवा में फ़र्श पर लेटी पोती हिरण्यवती को भी नींद नहीं आ रही थी। त्रिगर्त से लौटे बापू ने माँ को बताया कि वहाँ कुरू प्रदेश में युद्ध होने वाला है। कोई साधारण युद्ध नहीं। पूर्व और दक्षिण के सभी राजा इकट्ठे होंगे। अभी से कई राजा अपने रथ, घोड़े और पदातियों के साथ अपने-अपने राज्यों से चल चुके हैं। ऐसे मौके पर स्वयंवर के लिए कौन आएगा? पूर्व और दक्षिण के राजाओं को छोड़कर केवल पंचनद, कैकेय, गांधार देश के राजाओं को बुलाकर स्वयंवर रचाना बापू को कोई बड़ी सम्मानजनक बात नहीं लग रही है। माँ भी दुखी है। पर उसे क्या मेरे जितना दुख हुआ है? इस गर्मी में भी घर लौटे बापू के साथ नीचे कमरे के भीतर सोई है। यहाँ मेरी रखवाली के लिए बूढ़ी दासियाँ हैं। नक्षत्र जगमगाते हुए उस नीले आकाश से मानो बाहर आ गये हैं। 'कोई बलिष्ठ युवक मुझे पीठ पर लादकर उठा ले जाय और घोड़े पर आगे बिठाकर धूल उड़ाता हुआ···दो हृदय आपस में टकराते हुए। नहीं तो बहुत बड़े से मंडप में देश-देश के राजा लोग एकत्रित होने चाहिएँ। अपनी इच्छा के अनुसार चुनने का अवसर मिलना चाहिए; फिर भी उसके लिए कितने वर्ष प्रतीक्षा करें!' यह सोचते-सोचते उसने करवट ली। नींद नहीं आयी। 'दादा जी की बात सही है। धर्म के विषय में दादा के बराबर बापू क्या जानें! विवाह के पहले बच्चा हो जाये तो क्या बुरा है? पत्नी के साथ बच्चा भी आये तो लाभ ही है? सब दासियाँ भी यही कहती हैं। पर बापू का हठ है कि हमारे महल में दूसरे ढंग से चलना चाहिए। मुझ पर पहरा है।' उसने फिर करवट ली और झटके से उठ बैठी। सीढ़ियों के पास पहरे पर बैठी बूढ़ी दासी दौड़कर खड़ी हुई। 'डरो नहीं, मैं किसी के साथ भाग जाने को नहीं उठी। पानी दो।' मिट्टी की मटकी से ठंडा पानी लाकर दासी के देते ही वह गटागट पी गयी। पानी पेट में पहुँचते ही गर्म शरीर पसीना-पसीना हो गया। वैसे ही थकी-सी लेट गयी। मटकी को पास रख कर उसका सिर सहलाते हुए दासी बोली।

"नींद नहीं आयी? तुम्हारी उमर में मैं दो बच्चों की माँ थी।" हिरण्यवती बिना कुछ बोले आँखें मूँदे लेटी थी। दासी धीरे-से फिर बोली, "स्त्री इस प्रकार बिना नींद के करवटें ले तो अग्नि देवता हव्य भी स्वीकार नहीं करेगा। राजा ही धर्म के विरुद्ध चले तो वर्षा कैसे होगी? फ़सल कैसे होगी? गायों के थनों में दूध कैसे आयेगा? स्त्रियाँ गर्भिणी होकर एक से दस और दस से सौ और सौ से हज़ार

संतानें कैसे बढ़ायेंगी ?"···लकड़ी की सीढ़ियों पर किसी की पदचाप सुनकर वह चुप हो गई। उस पदचाप को दोनों ने पहचान लिया। हिरण्यवती की माँ आ रही है। बेटी के पास सोने के बहाने या रखवाली को। दासी उठकर पहले की तरह सीढ़ी के पास बैठ गयी। "अंदर तो झुलसाने वाली गर्मी है"—कहती रानी, बेटी के पास बिछे बिस्तर पर लेट गयी। थोड़ी देर में उसकी आँख लग गयी। बाद में उसके खर्राटे शुरू हो गये। बेटी करवटें ही बदलती रही।

शल्यराज की दूसरी बार की नींद बहुत लम्बी न होती थी। ठीक ब्रह्म-मुहूर्त में उसकी नींद खुल जाती। उठते ही वह शाकल पट्टण के पूर्व भाग की ओर चल देता। चार अंगरक्षक उसके पीछे-पीछे जाते। नित्य कर्म से निवृत्त होकर बस्ती के बाहर नदी में स्नान के बाद शुभ्र वस्त्र धारण करके महल लौट आता। महल के पुरोहित होमदत्त के साथ प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक होम करता। मंत्र विधि और सारे कर्म वह भली प्रकार जानता था। फिर भी ब्रह्म-पीठ पर पुरोहित को बिठा कर उसके कहे अनुसार सारे विधान करता। पुरोहित और राजा में घनिष्ठ मित्रता थी। कितनी ही बार दोनों शाम को घोड़ों पर बैठकर साथ-साथ घूमने जाते। नित्य की भाँति आज भी बहू, हिरण्यवती और दूसरे पोते-पोतियाँ, होम के उपरान्त खाने के लिए बैठे। आयु बढ़ने के बाद से शल्यराज को सत्तू बहुत पसन्द आता था। केवल स्वाद के कारण नहीं, बल्कि वह जल्दी हज़म होता था, इस-लिए भी। सबसे पहले सत्तू में दही मिलाता और फिर शहद डालकर खाता। लेकिन दूसरे पदार्थ उसने पूरी तरह से छोड़े नहीं थे।

भोजन करते समय बेटे ने कहा, "हमारे देश जैसा करम्भ और किसी देश में नहीं बनता।"

"पर मैंने सुना है कि मत्स्य देश की गायों का दूध जितना गाढ़ा और चिकना होता है और कहीं नहीं होता।" पुरोहित बीच में ही बोला।

"ऐसा वे कहते हैं, पर बिना बढ़िया जौ के करम्भ कैसे बन सकता है ? हमारे यहाँ के जौ का स्वाद ही कुछ और होता है। और हम इसे कैसे बनाते हैं ?"

परोसने वाले रसोइये ने तुरन्त बताया, "पहले जौ को घी में भूना जाता है, फिर उसे पीसकर आटा बनाया जाता है और फिर उसे घी में पकाया जाता है। केवल बताने से काम नहीं चलता। बनाने का ढंग आना चाहिए।"

"क्या हमारा करम्भ हस्तिनापुर वालों से भी बढ़िया होता है ?" शल्यराज ने प्रश्न किया।

"पिताजी, आप हर बात में हस्तिनापुर की तुलना करते हैं। उनका करम्भ बढ़िया है। उनका परिवार श्रेष्ठ है। उनका पुरोडाश उत्तम है। इतना ही नहीं, उनका ऐश्वर्य महान है। उनका राज्य श्रेष्ठ है और उनका बूढ़ा भीष्म तो सर्व-श्रेष्ठ है। क्या बात है, आपको पहले से ही यह उत्सुकता क्यों है?"

"यह बात नहीं रे! सच्ची बात कहें तो तुम्हें चिढ़ क्यों होती है? यह बात तो सभी मानते हैं कि हमारे पूरे आर्यावर्त में आज कुरू, पांचाल श्रेष्ठ हैं। खैर होमदत्त, तुमने सुना ही है, शास्त्र आदि में कौन श्रेष्ठ है? बताओ।"

आग पर पकी चावल की रोटी और पुरोडाश चबाते होमदत्त ने जल्दी-जल्दी कौर निगलकर मुँह खाली करके कहा, "वेद विद्या, कर्मकांड, भाषा शुद्धि के विषय में कुरू, पांचाल के ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ कहते हैं।"

"ऐसा तो वे कहते हैं न?" रुक्मरथ ने स्पष्ट किया।

"केवल कहते ही नहीं। उन देशों में लोग एक से बढ़कर एक हैं। वहाँ के राजा भी ऐसे ही हैं, अनेक यज्ञ आदि करते हैं। वेदविदों को आश्रय देते हैं। पांडु के पुत्र धर्मराज को ही देखो, सैंतीस-अड़तीस की आयु में ही उसने राजसूय यज्ञ किया। इस आयु में ही ऐसा काम करने की बुद्धि दूसरे राजाओं में क्यों नहीं आयी? इसीलिए विद्वान लोग वहाँ एकत्र होते हैं। एकत्र होने के बाद यदि सुविधा हो तो वहीं रह जाते हैं। स्वयं भीष्म वेद विद्या पारंगत हैं। कृष्ण द्वैपायन ने तो कुरूवंश के उद्धार के लिए वीर्यदान किया। आजकल वे वहीं बसे हुए हैं। द्रोण, अश्वत्थामा, कृष्ण—ये लोग कोई सामान्य पंडित नहीं हैं और पांचाल के राजा भी ऐसे ही हैं। चाहें तो मैं पूरा दिन इसका बखान कर सकता हूँ।" यह कह कर दूध और दही मिला कर बनाया सान्नाय गटागट पी गया।

"यह लोग आज या कल के नहीं। इनकी वंशावली देखें तो कुरू, पांचालों की पहले की कई पीढ़ियों ने महायज्ञ किये हैं। एक यज्ञ भी कर पाना क्या कोई बच्चों का खेल है? कुबेर का भंडार चाहिए।"

रुक्मरथ बोला नहीं। उसका मुँह उतर गया। वह जानता था कि पिताजी या होमदत्त ने उसे नीचा दिखाने को ऐसा नहीं कहा। इसलिए वह शांत बैठा रहा। होमदत्त बोला, "यज्ञ करना आजकल कठिन हो गया है। ज्यों-ज्यों मंत्र-शक्ति की जानकारी बढ़ती गयी है; त्यों-त्यों अधिकाधिक पुरोहितों की आवश्य-कता पड़ने लगी है। पहले तो एक ही पर्याप्त होता था। बाद में ब्रह्म के स्थान के लिए एक, होत्री के रूप में एक, उद्गात्री के रूप में एक और एक अध्वर्यु के रूप में। इस तरह अब चार की आवश्यकता पड़ने लगी है। पांडवों के बनवास जाने के बाद दुर्योधन ने यज्ञ किया था—चार होत्री, चार उद्गात्री, चार अध्वर्यु और चार ही ब्रह्मगण। कुल मिलाकर सोलह वेदविद् बैठे थे और उनके शिष्यगण भी

थे। बात यह है कि आजकल सही ढंग से कर्म करना साधारण लोगों के बस की बात नहीं।"

रुक्मरथ मन-ही-मन कुछ सोचने लगा। उसे मालूम था कि यज्ञ के माने बहुत खर्च होता है। पर उसे यह कल्पना न थी कि इतना खर्च होता है। उसका मन तुरन्त स्वयंवर के ख़र्च का हिसाब लगाने लगा। कितने राजा लोग आएँगे, उनके परिवार, उन सबके भोजनादि की व्यवस्था, रहने-सहने का प्रबन्ध। घोड़ों का चारा, धान, विशाल विवाह मंडप, दान-दहेज। उससे सम्भव हो पाएगा? वहाँ के राजाओं के पास इतना ऐश्वर्य कहाँ से आता है? इतने बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले कुरू, पांचालों को यह सब कहाँ मिल जाता है? सैंतीस-अड़तीस की आयु में धर्मराज ने राजसूय यज्ञ किया। अभी उसे याद है। पंद्रह वर्ष पहले की ही तो बात है। उसकी सगी बुआ का लड़का, शायद उसका नाम नकुल था, सफ़ेद घोड़ा दौड़ाता हुआ आया था। साथ में रथ और अश्व सेना थी। सब समाचार जानने के बाद पिताजी ने ही कहा था—मेरे सगे भांजे हैं। इनके यहाँ यज्ञ कार्य है। इनका सत्कार करके कुछ कंबल, धान्य, दस रथ और बीस घोड़े देंगे। नकुल ने पिता जी को बड़ी श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया था। वह और भी कई जगह युद्ध करके जीत-कर आया था। उसके दो बड़े भाई और एक छोटा भाई कई दिशाओं में उसी प्रकार होकर आये थे। तभी उसने मुँह खोलकर कह दिया, "दस ओर से लूट-खसोट कर यज्ञ करके ही तो लोग बड़े कहलाते हैं!"

"लूटने-खसोटने के लिए भी शक्ति चाहिए, बेटा। क्या तुम कर सकते हो?" पिता ने पोपले मुँह से हँसते हुए कहा।

पुत्र ने प्रत्युत्तर नहीं दिया। इतने दिनों के बाद बाहर से लौटने के कारण विशेष रूप से उसी के लिए बनवाये गये बैल के मांस का टुकड़ा चबाता हुआ चुप बैठा रहा। "बैल के मांस की तुलना में बकरी का मांस फीका होता है न?" होमदत्त के इस प्रश्न का उत्तर उसने नहीं दिया। कुछ देर तक कोई कुछ न बोला। बूढ़ा राजा शहद मिला दूध सुर-सुर करके पी रहा था।

भोजन के बाद शल्यराज विश्राम के लिए चला गया। दरवाजे, खिडकियों और दीवारों पर लगी खस की टट्टियों पर पानी छिड़क कर सेवकों ने कमरा ठंडा कर दिया था। शल्यराज भोजन के उपरान्त कुछ देर सो कर रात की नींद की कमी पूरी कर लेता था। रुक्मरथ भी अपने निवास स्थान में लेटा हुआ था। पर उसे नींद नहीं आ रही थी। वह सोच रहा था, कि स्वयंवर रचा पाना क्या उसके बूते की बात है? या पिता के कहने के अनुसार कन्या-शुल्क लेकर किसी को कन्या दे देना ही ठीक रहेगा? यह उचित नहीं। मुझे ही चुनना है। तो स्वयंवर ही ठीक रहेगा। त्रिगर्त वालों के सहायता के वचन से उसे कुछ तसल्ली हुई। पर कुरुओं के युद्ध के कारण यदि काफ़ी राजा न आये तो लाभ? इन्हीं

विचारों के ऊहापोह में था कि तभी उसकी पत्नी ने आकर कहा, "हिरण्यवती को मासिक धर्म हो गया है। अभी थोड़ी देर पहले ही स्राव दिखायी पड़ा।"

रुक्मरथ फिर से चिन्तित हो उठा। उसे लगा मानो उसके सारे मन पर लाल रंग का पाप पोत दिया गया हो। उसने आँखें मूंद लीं। स्त्री के प्रत्येक ऋतु-चक्र पर यदि बीज प्रदान न किया जाय तो धरती को बंजर छोड़ने के बराबर पाप लगता है। पिताजी कह रहे हैं कि हमारा आर्य धर्म यही कहता है। हिरण्यवती का यह इक्यावनवाँ नष्ट-चक्र है। पहले यह सोचकर विलम्ब किया कि कन्या-शुल्क नहीं लेना चाहिए। अब स्वयंवर की सोच-विचार में बारह चक्र बीत गये हैं। अब कुरुओं के युद्ध के घोटाले में मेरी बेटी का गर्भ बीज के बिना नष्ट हो रहा है। बाँझ होने की स्थिति आ रही है। उसने वैसे ही फिर आँखें मूंद लीं। रक्तवर्ण का पाप अँधेरे में और भी भयंकर दिखायी पड़ने लगा। ऋतु-स्नान के बाद यदि पति पास न हो तो पति के शिष्य को बुलाने वाली गुरु-पत्नियों की कहानियां हैं। क्या उन्हें धर्म मालूम न था या पति-भक्ति न थी? मेरे घर में कैसा पाप चल रहा है। वह इसी उधेड़-बुन में था कि पास बैठी पत्नी बोली, "नींद आ गयी क्या?"

"नहीं," कहकर उसने आँखें खोल दीं।

"कानीन-पुत्र या पुत्री हो जाय तो क्या बुराई है?"

उसने 'हूं' कहा। उसे मालूम था कि कोई हठ से पूछे कि उसमें क्या दोष है, तो उसका जवाब उसके पास नहीं है। पत्नी दुबारा यही प्रश्न न पूछ बैठे, यह सोचकर उसने आँखें फिर बंद कर लीं। थोड़ी देर बाद पत्नी बोली, "हमारे विवाह से पहले मेरा एक पुत्र था न? वही जो मेरे मैके में पैदा हुआ था। जब पिता ने कहा कि हमें इसकी आवश्यकता है, तुम केवल लड़की ले जाओ, तब आपने विरोध नहीं किया था? आप ही ने कहा था कि जब लड़की मेरी हो गयी तो उसके पेट से हुई सन्तान क्या मेरी नहीं हुई। मैं यह बच्चा नहीं छोड़ सकता। अंत में मेरी इस प्रार्थना पर कि मैं ऐसे दस बच्चे पैदा करके दूंगी, इस पर पिताजी का प्रेम है, इसे यहीं छोड़ दीजिए। तब जाकर आप कहीं माने थे। अब ऐसा क्या हो गया? आप इतना क्यों बदल गये?"

"मुझे क्या हो गया?" उसने आँखें खोलीं और घूमकर पत्नी की ओर देखा। इन दिनों इतने बच्चे होने के बाद भी कभी-कभी मुझे इस पर अकारण तिरस्कार हो जाता है। यह जानते हुए भी कि इसकी कोई ग़लती नहीं। मैं ही तो इसे देखकर मोहित हुआ था और बच्चा भी माँगा था। इतने साल बीत जाने पर मैंने एक बार भी इससे मुंह खोलकर नहीं कहा। अब आँख में आँख डालकर पूछ रही है, 'तुम्हें क्या हो गया है?' बेटी के लिए नहीं अपितु ऋतु-नष्ट होने से हमें जो पाप लगने वाला है उसके निवारण के लिए। उसने उत्तर नहीं दिया।

उसके मुंह की ओर देखता रहा। वह भी उसकी आंख में आंख डाले देखती रही।

अन्त में वह झटके से उठ बैठा और बोला, "कुरू-पांचाल, काशी आदि पूर्व के देशों में, विराट, मत्स्य, चेदि, विदर्भ आदि दक्षिणी देशों में कानीन को नीचा मानते हैं और कुछ लोग तो उसे पाप भी कहते हैं। साधारण लोगों की बात तो छोड़ो। राज-परिवारों में तो इसे घृणित मानते हैं। मैं इसी राजसूय यज्ञ में गया था न जो पन्द्रह वर्ष पूर्व, मेरी बुआ के बेटे पांडवों ने किया था। वहाँ मुझे अनेक देशों के आचार-विचार का पता चला था। देश-भ्रमण करके आने वाले ब्राह्मणों के मुंह से भी मैंने सुना है। पुरानी पद्धति को मानने वाले हम लोगों को वे नीचा समझते हैं। अगर मेरे ही घर में मेरी बेटी ऐसा करे तो आर्यावर्त में हम सिर ऊँचा करके कैसे चल सकेंगे?"

बड़प्पन में और वैभव में आर्यावर्त के राजाओं से ब्रह्मावर्त के राजा कम हैं। यह वह भी जानती थी। यह बात नहीं कि उसके मन में भी यह इच्छा न हो कि भले ही हम उनसे ऊँचे न हो पायें पर उनकी बराबरी के स्तर तक तो पहुँचना ही चाहिए। पर व्यर्थ में अपना धर्म क्यों बदलते जाना चाहिए। आर्षेय धर्म की अवहेलना करके अपने मनमाने ढंग से चलें तो क्या बड़े हो जाते हैं? क्या हमें उनका अनुकरण करना चाहिए? उसके पति को इससे ज्यादा देशों का परिचय है। वह इससे ज्यादा जानता है। यह बात उसे मालूम थी पर हर बात पर आर्यावर्त के लोगों का अनुकरण करने की बात उसे पसन्द नहीं आयी, "कुरू देश के भीष्म के बारे में पिताजी सदा बताया करते हैं न कि उसकी सौतेली माँ का भी कानीन पुत्र था। अब वही कानीन पुत्र परम वेदज्ञ और समस्त आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त में कृष्णद्वैपायन नाम से पूजा जाता है। कुरुओं के घराने में भी ऐसी बात हुई है न?"

"वह बात हुए शताब्दी बीत गयी। अब वे सब बदल गये। आजकल तो कई बातों में बदलते जा रहे हैं।"

वह आगे कुछ न बोली। पैसे का मुंह देखकर जिसे-तिसे लड़की देने की अपेक्षा प्रतियोगियों को बुलाकर लड़की को चुनने का अवसर देना ही उत्तम पद्धति है। यह विचार पति के द्वारा ही उसके मन में आया और कानीन के बारे में भी पति ने उसे नया विचार सुझाया था। पता नहीं वह सही है या नहीं पर ऋतु-नष्ट के बारे में वह भी कुछ नहीं जानता। इस पाप के परिहार के बारे में बैठी-बैठी सोचती रही। दोपहर की गर्मी के कारण उसकी आँखें भारी होने लगीं। वह उठकर भीतर आँगन में चली गयी। वहाँ रजस्वला बेटी भीतरी कपड़ों के बिना केवल साड़ी से ही बाँहें और छाती ढके उदास-सी बैठी थी।

दूसरे दिन शल्यराज से मिलने एक दूत आया। पाँच घुड़सवारों सहित आये दूत को देखने से यह स्पष्ट हो जाता था कि वह दूत ब्राह्मण है। महाराज ने उसका सभा भवन में स्वागत किया। उसके साथ उसका बड़ा पुत्र रुक्मरथ और उसके छोटे बेटे वज्र और अजय भी थे। पुरोहित होमदत्त भी उपस्थित था। दूत के रूप में राजा का अभिनन्दन करने के उपरान्त उसने ब्राह्मण के रूप में आशीर्वाद देकर मधुपर्क आदि स्वीकार करके आसन ग्रहण करने के बाद उसने अपना परिचय दिया। उसने बताया कि पांडव विराट के नगर में हैं। उनका अज्ञातवास समाप्त हो गया है। पांडवों में तीसरे भाई अर्जुन के पुत्र के साथ विराट के राजा की छोटी पुत्री का विवाह हो गया है। इस समय वे सब विराट नगर के उत्तर भाग के उप-प्लाव्य नगर में हैं और उसे उन्होंने अपना कार्य-केन्द्र बनाया है। दुर्योधन ने स्पष्ट कह दिया है कि वह उनके भाग का राज्य नहीं देगा। वह कैसा अधर्मी है। यह फिर से बताने की आवश्यकता नहीं। पांडव शल्यराज के सगे भान्जे हैं। वे स्वयं आकर मामा के चरण स्पर्श करके अभय याचना करने को निकले थे, परन्तु युद्ध की तैयारी और दूसरे कारणों से वे आ नहीं सके। उन्होंने मुझे भेजा है। उन्हें मालूम है कि आप व्यर्थ की औपचारिकता में विश्वास नहीं रखते। उसने आगे प्रार्थना की, "आप अपनी पैदल सेना और अश्वों, रथों, गजों सहित स्वतः चलकर रण का नेतृत्व सँभाल कर उन्हें विजय दिलायें।"

"ब्राह्मण देवता, आपका मूल स्थान कौन-सा है?" होमदत्त ने प्रश्न किया।

"कांपिल्य।"

वह दक्षिण पांचाल के द्रुपद का नगर था। तब शल्य और उसके बेटों ने समझा कि वह पांडवों के समधियाने से आया है। परन्तु उसकी भाषा, आत्मगौरव और उसकी बात का ढंग जिसमें विनय और आत्माभिमान टपक रहा था तथा बीच-बीच में उसके स्पष्ट करने का ढंग देखकर होमदत्त कुरूपांचाल देश की उच्च भाषा और संस्कृति देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ।

"कौन-कौन से राजा आपकी सहायता को आ रहे हैं?" रुक्मरथ ने पूछा।

"पांचाल, मत्स्य तो पांडवों के समधी है ही। यादव भी हमारी ओर हैं। पाँचों केकय, चित्रायुध, चेकितान, सत्यधृति, व्याघ्रदन्त, चन्द्रसेन, महारथी काशीराज, सगे मामा आप और आप के पुत्र। और विस्तार से क्या बताना है। समस्त ब्रह्मावर्त और आर्यावर्त पांडवों की ओर है। यह बात नहीं कि वे केवल पांडवों की ओर हैं। वास्तव में वे तो धर्म की ओर हैं। राजसूय यज्ञ के पुण्य की ओर हैं। वेदज्ञ और धार्मिक भी पांडवों की ओर ही हैं। हस्तिनापुर में आचार्य द्रोण, कृपाचार्य आदि लोग और स्वयं भीष्म भी सदा पांडवों को आशीर्वाद देते हैं। यह बात मुझे आप जैसी सूक्ष्मबुद्धि वाले को बताने की आवश्यकता नहीं।"

इस बात से शल्यराज को सन्तोष हुआ। होमदत्त को भी बात का ढंग पसन्द

आया। रुक्मरथ को भी बात अच्छी लगी पर एक पल बाद वह बोला, "तो इसका मतलब यह हुआ कि इन लोगों के सिवा अन्य सभी लोग दुर्योधन के पक्ष में हैं। विराट नगर के उत्तरगोग्रहण में दुर्योधन के पक्ष के त्रिगर्त के पाँचों भाई, कौशल का राजा बृहद्बल, दुर्योधन के सगे मामा शकुनि, गांधार की ओर के सभी राजा, राजा पौरव, जलसंघ, बाह्लीक के राजा लोग, अलंबुष, प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त, अचल, वृषक। ये ही नहीं, हस्तिनापुर के आचार्य द्रोण और आचार्य कृप आदि को पांडवों से प्रेम होने पर भी यदि युद्ध ठन ही जाय तो वे अपने स्वामी दुर्योधन के विरुद्ध नहीं जायेंगे। कर्ण तो अतिरथी है। उसका पुत्र वृषसेन भी कम नहीं।"

पांडवों के दूत का मुंह ज़रा उतर गया। तुरन्त अपने को सँभालकर उसने पूछा, "महाराज, आप जिन-जिन के नाम ले रहे हैं, ये सब अभी तक पांडवों की ओर नहीं। यह बात ठीक है। पर ये लोग अभी दुर्योधन की ओर भी नहीं गये हैं। दुर्योधन के बंधुआ कर्ण के अतिरिक्त आपने जिन-जिन के नाम लिये वे सब पांडवों का साथ देंगे ही। मछली उछलकर पानी में जाकर गिरेगी या रेत में? आर्य धर्म का अनुसरण करेंगे या अधर्म का? शल्यराज, वृत्ति से मैं ब्राह्मण हूँ पर ज्ञान में आप मुझसे बड़े हैं। आर्य धर्म के बारे में आप ही बताइए।"

शल्य ने खँखार कर गला साफ़ किया। रुक्मरथ कुछ कहने को था कि उसने अपने को रोक लिया। शल्य बोला, "दुर्योधन ने यदि पांडवों का राज्य वापस नहीं दिया तो समझ लो इस शल्य की बाँहें, गदा, रथ, अश्व, हाथी, पदाति, सभी कुछ दुर्योधन पर टूट पड़ेंगे। बस।"

"आपके भान्जे, कृतार्थ हुए। आपका आशीर्वाद ही धर्म को जिता देगा।"

रुक्मरथ ने फिर से बोलने का प्रयत्न किया। महाराज ने अपना दायाँ हाथ उठाकर रोकते हुए कहा, "मैंने वचन दे दिया।" फिर ज़रा रुककर बोला, "पुरोहित जी, जाकर मेरे भान्जों को कह दीजिए। जब जिस दिन वे हमें यहाँ से चलने को कहलवा भेजेंगे, उसी दिन हम, हमारे बेटे, सैन्य समेत चल देंगे।"

ब्राह्मण ने बात वहीं समाप्त कर दी। उसने मामा की गृहस्थी और कुशलता के बारे में पूछताछ की। "सुना है, आप अपनी पोती का स्वयंवर कराने जा रहे हैं। पांडवों के पाँच पुत्र एक से एक बढ़कर और परमवीर हैं। उनमें बड़े लड़के के गले में आपकी पोती वरमाला डाले तो उसका सौभाग्य होगा। मैंने ही उसे वेदाध्ययन कराया है और धनुर्विद्या की शिक्षा दी है। जो भी हो, हम सब स्वयंवर में आयेंगे ही।" उसके यह कहने पर रुक्मरथ ज़रा प्रसन्न हुआ। मद्र के दूसरे राज्यों में दौत्य के लिए जाना था। इसलिए वह ब्राह्मण दूसरे दिन प्रातः अंगरक्षकों सहित चला गया।

पांचाल का पुरोहित पांडवों की ओर से आकर शल्य का मन जीत कर सेना की सहायता का वचन लेकर चला गया। युद्ध अनिवार्य है। कब होगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर भारी युद्ध होगा। दोनों पक्ष के लोग सहायता के लिए आर्यावर्त के राजाओं के पास अपने-अपने दूत भेज रहे हैं। सहायता का आश्वासन मिलना चाहिए। सैन्य सामग्रियाँ तैयार होनी चाहिएँ। दो-तीन सप्ताह में वर्षाकाल आरंभ होने को है। नदी-नाले भर उठेंगे। झरने और नदी-नालों में बाढ़ आ जाएगी। बाढ़ का पानी शहरों में घुसकर चारों ओर अठखेलियाँ करेगा। आर्यों की सभी बस्तियाँ नदी-नालों के किनारों पर बसी हैं। वर्षा के समय संचार असाध्य हो जाता है। चलना-फिरना दूभर होने से रथों के चक्र कीचड़ में धँस कर रह जाते हैं। हाथी फिसलने लगते हैं। सैन्यशिविर लगाने को सूखी धरती कहाँ मिल पाएगी? शिविरों में खाना पकाने के लिए जलावन के लिए सूखा ईंधन कहाँ से मिल पाएगा? यदि युद्ध करना ही है तो भादो और असोज के बाद होना चाहिए। तब तक तैयारियाँ की जा सकती हैं। वर्षा की ऋतु में इसी प्रकार दूतों का एक राज्य से दूसरे राज्य तक घोड़े पर सवारी करके, नाव चलाकर, तैर-कर, बीच भँवर में फँसकर पहुँचना—वह भी संभव नहीं।

शल्यराज ने तो अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश दे दिया। बढ़इयों ने रथों को हिला-डुला कर परीक्षण किया। चक्र, गुम्ब, धुरियों और जूए आदि की पुरानी लकड़ियाँ बदली गयीं। नयी रस्सियाँ बटी गयीं। लुहारों ने बाणों की नोकें तैयार कीं और घिसकर भरना शुरू किया। चर्मकार चमड़े के कवच और ढालें तैयार करने में लग गये। मद्र लड़ाई के लिए प्रसिद्ध देश नहीं था। हाल में कोई बड़ी लड़ाई हुई भी नहीं थी। सैनिकों को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता थी। चौरासी वर्ष का शल्यराज सब तैयारियों की देखरेख कर रहा था। वह अपने से कहता कि बिना युद्ध के क्षत्रिय और बिना उपयोग के लोहे को ज़ंग लग जाता है। वह रोज़ प्रातः-सायं, दोनों समय रथ पर चढ़कर घोड़ों की लगाम सँभालकर उन्हें दौड़ाता। वह 'अश्वों का ज्ञाता' था। उसमें अपनी इस प्रख्याति को मानो पुनः चमकाकर स्थापित करने का उत्साह था। युद्ध होगा, हम सब 'हो-हो' करके एक साथ आगे बढ़ेंगे। यह उत्साह सैनिकों में उमड़ पड़ा था। गर्मी की ऋतु होने के कारण खेती-बाड़ी का कार्य नहीं था। कृषकवृत्ति वाले वैश्य भी धनुर्विद्या के अभ्यास में जुट गये थे।

पांचाल का पुरोहित रुक्मरथ के मन को जीतकर चला गया था। उसने उसके मन के स्वयंवर के विचार का अनुमोदन किया था। उसने अपनी ओर से कहा था

कि स्वयंवर में पांचाल ही नहीं, पांडव भी आयेंगे। उसने यह भी सूचित किया था कि यदि उसकी पुत्री पांडु के ज्येष्ठ पुत्र, जिसे उसने स्वयं वेद और युद्ध-विद्या की शिक्षा दी है, गले में वरमाला डाले तो उसका सौभाग्य होगा। रुक्मरथ का मन अब पांडवों की ओर झुक गया। राजसूय यज्ञ करके उन्होंने समस्त आर्य जगत में ख्याति और वैभव प्राप्त किया है। ऐसे में यदि मेरी लड़की उनकी सबसे बड़ी बहू बन जाय! उसने यह बात अपनी पत्नी को भी बतायी। वह भी मान गयी। उसे गर्व महसूस हुआ। पिता ने बेटी को बुलाकर पूछा, "तुम्हारे दादा जी की बहन का पोता है। उसी के गले में वरमाला डालो। आगे होने वाले राजसूय और अश्वमेध यज्ञों में कंकण बाँधने का भाग्य तुम्हारा ही है।"

बेटी ने पूछा, "आपने उसे देखा है, पिता जी, वह लड़का क्या सुन्दर और स्वस्थ है?"

"पांडु का पुत्र क्या स्वस्थ नहीं होगा?"

बेटी का मुख ज़रा खिल उठा।

रुक्मरथ ने अपने भाई वज्र और अजय के अतिरिक्त अपने पुत्रों को भी युद्धाभ्यास में लगा दिया। गर्मी बढ़ने लगी थी। एक दिन रात को सभी लोग छत, उद्यान और आँगन में सोये हुए थे कि वर्षा शुरू हो गयी। सब उठ बैठे।

"यो वर्धन औषधीनां यो आपां। यो विश्वस्य जगतो देव ईशे।" बोलने लगे। आरम्भ में छोटी-छोटी बूँदों के बाद मूसलाधार वर्षा पड़ने लगी। अपने महल के उद्यान में वृद्ध राजा सोया हुआ था। सभी लोग भागकर वहाँ पहुँचे। घर का पुरोहित होमदत्त भी अपनी पत्नी सहित आ पहुँचा। रुक्मरथ, वज्र, अजय की पत्नियाँ और बच्चे भी इकट्ठे हो गये। सब मिलकर होमदत्त के ऊँचे स्वर में अपना स्वर मिला कर वर्षा के अधिपति पर्जन्य का स्तुति-गान करने लगे। ऐसी ध्वनि जो कि वर्षा की आवाज़ को भेद कर बादलों तक पहुँच सके।

इदं वच: पर्जन्याय स्वराजे
हृदो अस्त्वंतरं तज्ज जोषत्
मयो भुव: वृष्टय: सूत्वस्मे
सुपिप्पला औषधीर्देव गोपा:

स्तुति समाप्त होने के बाद आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुषों ने अपने-अपने ऊपरी वस्त्र उतारकर फेंक दिये और गर्मी से शरीर की घमौरियों को वर्षा में शांत करने लगे। पर्जन्य मंत्र को लय से गाते हुए नाचने लगे। वर्षा होती रही। वे भी भीतर न गये। खुले बालों से होकर पानी आँख, नाक, कान, ओंठ—पूरे शरीर पर बहने लगा। उसी उत्साह में शल्यराज ज़ोर से गा उठा और नाचने लगा।

वर्षा पड़ते ही सारे वैश्य खेती-बाड़ी के काम पर लग गये। पर राजवंश के लोगों ने अभ्यास रोका नहीं। सप्ताह में प्रतिदिन तीन-चार बार वर्षा होती रही।

तपती धरती से वर्षा के पानी को सोख कर गर्मी बाहर निकली। ठंडक छा गयी। पुनः वर्षा हुई और धरती पानी पी-पी कर मृदुल हो उठी। वैश्यों की खुशी का ठिकाना न था। लोगों के मनों में युद्ध का उत्साह घट चला।

वर्षा थम गयी। फिर से गर्मी बढ़ने लगी। ऐसे में एक दिन त्रिगर्त के पाँचों राजाओं में एक सुशर्मा शाकल पट्टण आया। उसने महाराज शल्य को सम्मान से नमस्कार करके मधुपर्क स्वीकार किया। शल्य जानता था कि वह उसके पुत्र रुक्मरथ का मित्र है, उसका समवयस्क है। अंगरक्षकों को भोजन और घोड़ों के लिए चारे आदि की व्यवस्था करने के बाद वह सुशर्मा से बोला : "रुक्मरथ इस समय अभ्यास के मैदान में है। बुलवाता हूँ। तब तक तुम विश्राम करो।"

रुक्मरथ के महल से सटे अतिथिगृह में जब सुशर्मा स्नानादि से निवृत्त होकर विश्राम कर रहा था तभी रुक्मरथ आ पहुँचा। दोनों मित्र एक-दूसरे से गले मिले; वहीं भोजन किया। रुक्मरथ ने औपचारिकता से कहा, "तुम्हारे आने तक भोजन तैयार हो चुका था। तुम्हारे सम्मान में रात को जवान बछड़ा काटा जाएगा। इस समय ध्यान नहीं दिया। बुरा मत मानना। सुशर्मा बकरे की बोटी चबाये जा रहा था। तब रुक्मरथ ने पूछा, "कहाँ से आये ?"

"अपने देश से।"

"झूठ। अगर तुम अपने यहाँ से आते तो चंद्रभागा नदी पार करके आना था। तुम शतद्रु की ओर से आ रहे हो।"

"इसके माने तुम्हारी गुप्तचर व्यवस्था बहुत बढ़िया है।"

"तो हस्तिनापुर गये थे !"

"तुमसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। मित्र से कोई लुकाव-छिपाव नहीं। भोजन हो जाये।"

परोसने वाली सुन्दर युवतियों को देखकर रुक्मरथ यह समझ गया कि उनके सामने करने की बात नहीं। अतः मित्र की ओर मुड़कर वर्षा की बातें करते हुए उसने पूछा, "भोजन के बाद परोसने वाली इन सुन्दरियों में विश्राम के लिए तुम्हें कौन सी चाहिए ?"

"वह सब रात की बात है। अब बातें करेंगे।"

सब दासियों को विदा करके रुक्मरथ मित्र को भीतर के कक्ष में ले गया जहाँ एक लम्बे-चौड़े तख्त पर नरम बिस्तर पर तकिये आदि लगे थे। पास ही जुए के सामान भी रखे थे।

"अगर खेल शुरू हो गया तो मैं जिस बात के लिए आया हूँ वही भूल बैठूंगा, विशेषकर तुम्हारे साथ खेलते हुए।" बाद में सुशर्मा ने बिस्तर पर बैठते हुए दायीं बगल में गावतकिया दबाकर कहा, "देखो मैं तुम्हारा मित्र हूँ। अब तक किसी बात पर झगड़ा नहीं हुआ। झगड़े की बात तक कभी मन में नहीं उठी। यहाँ तक

कि शिकार, जुए और स्त्रियों के मामले में भी ऐसी बात नहीं हुई। अब देखो, ऐसा लग रहा है कि भाग्य ने हमें एक-दूसरे के विरोध में ला खड़ा किया है। पर आदमी को अपना प्रयत्न छोड़कर सब बातों में भाग्य को दोष नहीं देना चाहिए, ठीक है न ?"

रुक्मरथ ने चार बार लम्बी-लम्बी साँस ली। तब उसे मित्र की बात का आशय समझ में आ गया। थोड़ी देर लम्बी साँस लेकर धीरे से बोला, "पांडवों की ओर से पांचाल का एक पुरोहित आया था।"

"जानता हूँ। वे कहाँ किसे भेजते हैं। यह दुर्योधन को पता चल जाता है।"

"वे पिताजी की बहन की संतान हैं। इस कारण उनसे पिताजी का विशेष मोह है। पुरोहित के यह कहते ही कि आप अपनी पोती का स्वयंवर रचाइए। हम सब आएँगे। पांडव के बड़े पुत्र के गले में यदि आपकी पोती वरमाला डाले तो उसका भाग्य चमक उठेगा, तत्क्षण पिताजी ने कह दिया, 'मैं, मेरे पुत्र और मेरी सेना पांडवों की धरोहर है।' मुझे बोलने का अवसर ही नहीं दिया। उनका स्वभाव तुम जानते ही हो।"

थोड़ी देर तक कोई न बोला। बाद में सुशर्मा ने कहा, "तो हमारा एक-दूसरे से भिड़ना न्यायसंगत होगा ?"

"छि ! छि ! उसे टालना ही होगा। मुझे एक बात सूझी है। पिताजी अपना हठ नहीं छोड़ेंगे। न भी छोड़ें तो क्या हुआ। अस्सी-नब्बे के हो चुके हैं। उन्हें थोड़ी-बहुत सेना साथ लेकर जाने दो। मैं कोई-न-कोई बहाना बना दूँगा। भाई लोग भी न जा पायें यह भी प्रयत्न करूँगा। तुम भी इसी तरह टाल दो। किसी दूसरे की लड़ाई से हमें क्या लेना-देना ?"

"पांडवों के विरुद्ध युद्ध में यदि मैं भाग न लूं तो यह क्षात्र धर्म के प्रति विश्वासघात होगा। तुम तो जानते हो, विराट नगर के उत्तरी भाग में उसका गोधन हरण करने मैं गया था। कम्बख्त पांडव भी वहीं थे। यदि वे न होते तो मुझे वे सब गायें मिल जातीं। न मिलने की कोई बात नहीं। पर हार जाने से मेरा अपमान हुआ। यदि मुझे यह पता होता कि वे वहाँ हैं तो मैं ज्यादा सेना लेकर जाता। बात यह है कि जो अपमान का प्रतिकार नहीं करता, वह क्षत्रिय कैसा है ?"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। रुक्मरथ बोला, "पांडवों से द्वेष का तुम्हारे लिए तो यह कारण है। मैं उनसे कैसे द्वेष करूँ ! जब पिताजी तो अपने भांजे होने के नाते उन्हें गले लगाने चले हैं ?"

"तुम्हारा मित्र, मैं जब उनसे द्वेष रखता हूँ तो और भी कोई अन्य कारण चाहिए तुम्हें ?"

रुक्मरथ दुविधा में फँस गया। 'कोई और भी कारण चाहिए।' यह बात मित्र के सामने कहना तो दूर वह मन में भी नहीं सोच सकता था। वे समवयस्क थे।

इसके अतिरिक्त आर्यावर्त के लोगों के सामने अपनी मर्यादा और आचार-विचार को बराबरी के स्तरपर लाना चाहिए। ऐसे स्वप्न देखने में साथ देने वाला मित्र। बेटी का स्वयंवर धूमधाम से रचाने के लिए अपने आप सहायता देने का वचन दे चुका है। ऐसे मित्र का शत्रु क्या मेरा शत्रु नहीं ? उसे पिता पर एकदम क्रोध हो आया। पिताजी राज्याधिकार मुझ पर छोड़ चुके हैं। मेरा पट्टाभिषेक भी कर चुके हैं। फिर भी ऐसी मुख्य बातों में वे टाँग क्यों अड़ाते हैं ? पर पिता के सामने पूछने का मन न था और साहस भी नहीं। जब वह यह सोच ही रहा था, सुशर्मा ही बोला, "हम कह सकते हैं उनके झगड़े से हमारा क्या संबंध ? यानी तुम यह पूछ सकते हो कि मद्र, त्रिगर्त ऐसे ही कुछ और देश चुपचाप क्यों न रहें ? यह बात उड़ी है कि केकय पांडवों के साथ दे रहे हैं। गान्धार तो दुर्योधन के पक्ष में है ही। इस युद्ध में समस्त आर्यावर्त किसी-न-किसी रूप में किसी-न-किसी का पक्ष लेगा। यदि हम तटस्थ रहे तो लोग क्या हमें कायर नहीं कहेंगे ? जब वहाँ युद्ध हो रहा हो तब यहाँ सुन्दर दासियों को बाँहों में लेकर सोमरस के नशे में डूब जाना अथवा पाँसों की खनखनाहट में खो जाना इस क्षत्रिय रक्त से कैसे सम्भव हो पाएगा···?"

रुक्मरथ ने बीच ही में पूछा, "इस युद्ध में कौन जीत सकता है ? तुम्हारा क्या विचार है ?"

"दुर्योधन ! इसमें संदेह ही नही होना चाहिए।" इस त्वरित उत्तर के बाद वह जरा सोच कर बोला, "पूछोगे क्यो ? एक तो यह कि पांडव तेरह वर्ष तक भूखे-नंगे भटकते रहे। दूसरे दुर्योधन के पक्ष में जितने राजा आएँगे उतने पांडवों की ओर से नहीं। जो भी हो, सत्ता तो उसके ही हाथ में है। राज भंडार उसके हाथ में है। वह जितना चाहे सेना के लिए खर्च कर सकता है। इतने दिन तीर्थ-यात्रा और सत्संग में रहने वाले दाढ़ी-मूंछ बढ़ाए इन पांडवों को सब नमस्कार तो कर सकते हैं, पर समर्थन या सहायता कोई नहीं देगा !"

"ये लोग राजसूय यज्ञ करने वाले राजा नहीं क्या ?"

"राजनीतिक शक्ति पुराने वैभव की स्मृति से नहीं, आज के अधिकार के सूत्र की शक्ति से आती है। गत तेरह वर्षों में दुर्योधन ने अपने अधिकार को मज़बूत कर लिया है और पांडवों का नाम तक भुलवा देने का प्रयास किया है। यहाँ तक कि उनका बसाया इंद्रप्रस्थ का प्रदेश भी भुला दिया है। पांचाल के दक्षिण से एकाध आकर इनकी नाम भर को सहायता कर सकते हैं। तुम क्यों हारने वाले बैल की पूंछ पकड़ते हो ? मज़बूत बैल जीतने के बाद तुम्हें बिना सींग मारे छोड़ देगा ? तुम्हारे पिता विवेकी हैं, पर वृद्धावस्था !"

दोनों संध्या तक बातें करते रहे। तब तक वर्षा शुरू हो गयी। कहीं बाहर नहीं निकले। रुक्मरथ ने अपने भाइयों को बुलवाया। उनके सामने भी सुशर्मा ने कौरवों की ही पैरवी की। रात के भोज के लिए जवान बछड़ा कटवाया गया।

भोजन के उपरांत अपने लिए लगाये गये बिस्तर पर बैठ कर सुशर्मा ने रुक्मरथ से पूछा, "तुमने बताया था न पांचाल के उस चालाक पुरोहित ने कहा था कि तुम्हारी बेटी का पांडवों के बड़े बेटे के साथ विवाह हो जाना चाहिए। तो तुम्हारी बेटी के भी पाँच पति होंगे। यह आर्य धर्म है या जंगली जाति का रिवाज ? तुम आर्यों से बहिष्कृत हो जाओगे।"

"कैसे ?"

"पाँचों पांडवों ने मिलकर द्रौपदी से विवाह किया है। उसके पेट से पैदा हुए किस बच्चे का पिता कौन है, यह उसे भी मालूम नहीं। खुद वह भी नहीं जानती। जो भी हो बड़े का नाम चलता है। तुम्हारी बेटी से शादी के बाद यदि वे यह कहें कि हमारी पद्धति के अनुसार उसे हम पाँचों भाई बाँट लेंगे तो तुम्हारी बेटी बेचारी क्या कर पाएगी ? तुम भी क्या कर पाओगे ?"

रुक्मरथ को यह सूझा ही न था। उसकी कुछ समझ में न आया। पिताजी को तो बुढ़ापा आ गया है। यह तो उसे विश्वास हो गया। मित्र को कोई उत्तर न दे पाया और चुप बैठा रहा। तीन-चार उबासियाँ लेने के बाद सुशर्मा ने कहा, "तुम्हारी बेटी बड़े राज्य की रानी बने। मेरी भी यही इच्छा है। मैं प्रयास करूँगा कि दुर्योधन का बड़ा बेटा भी स्वयंवर में भाग ले। युद्ध समाप्त होने तक तुम चुप रहो।"

रुक्मरथ उठ खड़ा हुआ। मित्र से विदा लेकर जब वह बाहर आया तब वहाँ चंदन के लेप लगाये गले में रंग-बिरंगी मालाएँ पहने दस नवयुवती दासियाँ खड़ी थीं। वह भूल ही गया था। उसने फिर से भीतर जाकर मित्र से कहा, "जरा उठकर तो देखो, तुम्हारी सेवा के लिए दस सुन्दरियाँ आयी हैं। जितनी चाहे अथवा जिसे चाहे चुन लो। पर जरा ध्यान रखना, हमारे मद्र की स्त्रियाँ, पुरुष चाहे जैसा भी हो निचोड़ डालती हैं। तुम भी पचास पार कर चुके हो !"

दोनों मित्र साथ बैठ गये। दोनों ने दासियों का दिया मद्य पिया। कुछ देर बाद रुक्मरथ उठकर अपने निवास को चल पड़ा। एक सुन्दरी उसका हाथ थाम कर उसे ले गयी और रानी के बिस्तर पर पहुँचा आयी।

बाहर वर्षा जारी थी। मद्य सेवन करके लेटी रानी की आँख लग गयी थी। पति के पास आकर लेटने पर भी उसे मालूम नहीं पड़ा। रुक्मरथ को मद्यपान के बाद भी नींद नहीं आयी। द्रौपदी के साथ भी ऐसा ही हुआ था। स्वयंवर में अर्जुन ने उसे जीता। बाद में बड़े भाई धर्म ने द्रुपद से कहा, 'हमने जिस लड़की को जीता उसे जैसे जी चाहे बाँट लेंगे। कुछ भी पूछने का अधिकार तुम्हें नहीं।' कल को यदि हिरण्यवती के लिए भी ऐसे ही कहे तो ? उसे डर लगा। तब उसे लगा आर्य धर्म को विकृत करने वाले इन पांडवों की सहायता कोई नहीं करेगा। करनी भी नहीं चाहिए। उसने यही निश्चय किया। मित्र सुशर्मा के लिए कृतज्ञता उत्पन्न हुई। करवटें लेने पर भी नींद नहीं आ रही थी। पिताजी का अविवेक है। उन्हें

समझाना चाहिए। तब उसे किसी से बात करने की इच्छा हुई। अपने पास ज़ोर से साँस लेती हुई सोती पत्नी की बाँह हिलायी। उसने 'आँ' कहा और फिर सो गयी। पाँच-छः बार हिलाने के बाद वह जागी। "सुनो, हमने यह सोचा भी नहीं था कि यदि हिरण्यवती पांडवों को दी जाये तो ऐसा होगा।" कहकर उसने विस्तार से सारी बात बतायी। अंत में कहा, "कैसा अनर्थ हो जाता !"

वह फिर से ऊँघने लगी थी। "देखो इतनी गंभीर बात कर रहा हूँ, तुम सोये जा रही हो। ज़रा जवाब तो दो।" तब भी उसे उत्तर नहीं मिला। पुनः उसने उसकी बाँह हिलाकर और जगाकर विस्तार से बातें बतायीं और उसे बात करने को विवश किया।

वह बड़बड़ाई, "पाँच आदमियों को सह सकने की शक्ति उसमें है तो करने दीजिए।" उसने पूछा, "क्या कहा ?" तब तक वह फिर से नींद में डूब गयी थी।

सुशर्मा अगले ही दिन चल पड़ा। रुक्मरथ ने अंगरक्षकों सहित जाकर उसे नदी तक पहुँचा कर सम्मान प्रदर्शित किया और लौटते ही पिता के महल में पहुँचा। उद्यान में संध्या की ढलती सुनहरी धूप में शल्यराज के सफेद बाल चमक रहे थे। वह सिर झुकाए खिलते हुए चंपा के फूलों को निहार रहा था। उसने बेटे से पूछा: "उसे आराम से पहुँचा आये ?" जाने से पूर्व सुशर्मा राजा को नमस्कार करके गया था। रुक्मरथ ने सीधी बात उठायी। "उनके यहाँ पाँच की एक पत्नी है। ऐसे घराने के बड़े बेटे से यदि हम अपनी बेटी ब्याह दें तो ? उन्होंने द्रुपद से जो बात कही थी। वही हमसे नहीं कहेंगे ? क्या यही हमारा आर्य धर्म है ?"

बूढ़े राजा को भी यह बात पसंद न आयी। वह जानता था कि ये बातें त्रिगर्त के सुशर्मा ने बेटे को बतायी हैं। पुरानी प्रथा को ग़लत बताकर, ये दोनों मित्र कुछ नया करना चाहते हैं। इसीलिए जो बात उसे तुरन्त सूझी उसने कह दी : "यदि वह अधर्म होता तो भीष्म मान लेते ? आर्य धर्म को भीष्म से ज़्यादा जानने वाला और कौन है ?"

बेटे का मुँह बंद हो गया। हाँ, भीष्म, द्रोण ने इन सबको स्वीकार कर लिया है। इतना ही नहीं, ऐसे विवाह करने वाले पांडवों के राजसूय यज्ञ में समस्त आर्य राजा और आर्य पुरोहित गये थे। भले ही हम उस घर में अपनी बेटी न दें, पर पांडवों के विवाह को ग़लत नहीं ठहरा सकते। तभी पिता ने पूछा, "तुम्हारे उस मित्र ने ही यह बात तुम्हारे मन में डाली होगी ?" बेटे को मित्र की निंदा बुरी लगी। पर मूल प्रश्न को कुरु-पांचाल आदि समस्त लोगों ने स्वीकार कर लिया

है। उसके विरुद्ध उकसाने वाला मित्र ही तो था। तब उसने पिता से ही प्रश्न किया, "पर क्या अब तक हमारे आर्यों में ऐसा विवाह हुआ था ?" पिता को भी उत्तर न सूझा। वहाँ खड़े-खड़े बात न बढ़ाने के विचार से बेटा अपने निवास की ओर चला गया। रात को नींद में पत्नी ने कुछ कहा था। अब आराम से उससे बात करने की इच्छा हुई।

आर्यों की रीति-नीति-शल्य अधिक नहीं जानता था। पर उसने यह भी सुना न था कि एक स्त्री से ही छोटे-बड़े सभी भाई विवाह करते हैं। यदि यह अधर्म होता तो भीष्म आदि ने कैसे स्वीकार कर लिया ? दूसरे राजा, देश-देशांतरों के आचार-विचारवेत्ता पंडित लोग राजसूय यज्ञ में कैसे गये ? इसलिए वह विवाह धर्मसम्मत होना चाहिए ?पर कैसे ? यह वह नहीं जानता था। यदि नहीं जानता तो क्या हो गया ? इस प्रकार अपने को दिलासा देकर वह अंगरक्षकों के साथ रथ पर चढ़कर मैदान में शस्त्राभ्यास के लिए चला गया। वर्षा काल शुरू होते ही अभ्यास की गति मंद पड़ चुकी थी। वह भी इस ओर नहीं आया था। रथ के चक्र धँसते जाते थे। घोड़े पूरी तेज़ी से भाग नहीं सकते थे। केवल पचास क्षत्रिय युवक धनुष-बाण का अभ्यास कर रहे थे। शेष लगभग पचास लोग बरछी फेंकने का अभ्यास कर रहे थे। राजा को आते देख सब आपस की बातें बंद करके व्यवस्थित ढंग से अभ्यास में लग गये। सबके पसीने से लथपथ शरीर ऐसे चमक रहे थे मानो तेल-मालिश किए हों। शल्यराज का दासी पुत्र शलाक उस अभ्यास का निरीक्षण कर रहा था। उसने पास आकर पूछा, "पिताजी, युद्ध पँर कब जाना होगा ?"

"अभी पता नहीं, बेटे ! वे कहला भेजेंगे।"

"ये सब बड़बड़ा रहे हैं कि पता नहीं युद्ध होगा भी कि नहीं। तब हमें क्यों बेकार में रोज़ अभ्यास कर-कर के थकना चाहिए। इसलिए मैंने पूछ लिया।"

"क्या तुम्हें यह पता नहीं कि युद्ध हो या न हो अभ्यास बंद नहीं करना चाहिए ?"

"परंतु ये पूछ रहे हैं कि इतना अधिक अभ्यास क्यों ?"

महाराज ने कोई उत्तर न दिया। सब को यह पता था कि वर्षाकाल बीतने तक युद्ध नहीं होगा। वह कुछ कहे बिना अपना रथ आगे लेकर चला गया। मैदान में ज़ोर से दौड़ाया और एकदम रोक दिया, एकदम से मोड़ा। घोड़े नये थे। धरती कीचड़ से भरी थी। उसने मन में कहा, 'यह सब मेरे नियंत्रण में है। मैं शल्य हूं न।' एक तरफ़ रथ ले जाकर खड़ा करने पर उसे एक बात याद आयी। कई बहनों का एक पुरुष से विवाह सुना था पर कई भाइयों का एक स्त्री से विवाह करना नहीं सुना था। थोड़ी देर तक रथ पर बैठा रहा। संध्या हो रही थी। वर्षा के लक्षण दिखायी पड़ने लगे। वह रथ स्वयं चलाकर महल पहुँचा। तब अग्नि में घी और

होम-सामग्रियाँ डालने की सुगंध आयी। उसने भी स्नान करके हवन में भाग लिया। बाद में अपनी समस्या पुरोहित को बतायी। पुरोहित ने उत्तर दिया : 'जब पांचाल और हस्तिनापुर के वेदज्ञों ने ही स्वीकार कर लिया तो क्या वह धर्मसम्मत नहीं हो सकता ?'

राजा को दुबारा कुछ पूछने की आवश्यकता दिखायी नहीं दी।

पिता और पुत्र में थोड़ा वाद-विवाद हुआ। पिता ने उससे अधिक तर्क नहीं किया। इतना ही कहा कि भीष्म आदि सभी ने मान लिया है। पुत्र का कथन था, "दुर्योधन के अतिरिक्त हस्तिनापुर वाले, इधर त्रिगर्त वाले और उधर दुर्योधन के समर्थक सभी राजा उस प्रथा का मज़ाक उड़ाते हैं। उनके समान सब भाई एक ही स्त्री को रखें तो यह केवल जंगली लोगों की पद्धति है। जंगल में जन्मे, पले और यौवन में भी उनके साथ रहने वाले पांडवों ने आर्य धर्म को तिलांजलि दे दी है। अपनी पुत्री उनके यहाँ देना मुझसे संभव नहीं। और हम दुर्योधन जैसे शक्तिशाली राजा के विरोध में उनकी सहायता क्यों करें ?"

वर्षाकाल समाप्त होने के बाद यात्रा करने में सुविधा होने लगी। तब उसके गुप्तचर चारों ओर से समाचार लाने लगे। युद्ध अवश्य होगा। भीष्म और द्रोण, दुर्योधन की ओर से लड़ेंगे। आर्यावर्त के बहुत-से राजा भी उसी के पक्ष में हैं। यादवों में केवल कृष्ण पांडवों के पक्ष में हैं। बाकी सब, यहाँ तक कि कृष्ण के भाई बलराम भी दुर्योधन की सहायता के लिए द्वारका से चल चुके हैं। एक दिन पुत्र ने पूछा, "पिता जी, आप ही दिन में दस बार कहते हैं कि भीष्म से बढ़कर आर्य धर्म को जानने वाला और कोई नहीं। जब वे ही दुर्योधन की ओर हैं तो धर्म किस ओर है ?"

"पांडवों को वचन दे चुके हैं न ?"

पुत्र जानता था कि पिता का मन दुविधा में पड़ा हुआ है। वज्र और अजय ने एक उपाय सुझाया, "उन्होंने हमसे पूछकर तो जुआ नहीं खेला था और हमसे पूछ कर युद्ध का निर्णय नहीं लिया। हमें किसी का भी पक्ष लेने की आवश्यकता नहीं। हम तटस्थ रह जाएँगे।" तब रुक्मरथ को लगा कि यही बात ठीक है। शल्य भी मान गया। सबका मन हल्का हो गया।

रुक्मरथ ने गाँव में सूचना भेज दी कि कृषकों को धनुष-बाण अभ्यास के लिए आने की आवश्यकता नहीं। लोगों ने तसल्ली की साँस ली। उस बार खेत में अंकुर अच्छे फूटे थे। किसान नराई, गोड़ाई करने, बाड़ लगाने और पशुओं के

पोषणादि में जुट गये। रुक्मरथ का समय शासन कार्य की देखभाल में बीत जाता था। सैनिकों के प्रशिक्षण का दायित्व वज्र और अजय पर था। अब उनके पास कोई काम न था। चावल का मद्य रखा था। शय्या का सुख देने वाली सुन्दर रसिक दासियाँ थीं। पर पाँच-छः दिन में ही वे उस लंपटता से ऊब उठे। धनुष चढ़ाकर टंकारते हुए भागना, भागते रथ से निशाना साधना, हाथी पर बैठकर जंगल के काँटे और टहनियाँ छाँटते हुए भयानक जानवरों को निशाना लगाकर मारने के रोमांचकारी साहसिक कार्यों के सम्मुख शय्या का सुख फीका लगा। एक दिन सुबह दोनों उठकर अभ्यास के मैदान की ओर गये पर वहाँ कोई न था। यहाँ तक कि क्षत्रिय भी न थे। चिढ़कर उन्होंने योद्धाओं को बुलाया। एक-एक करके सैनिक आये और उन्होंने सम्मान सहित हाथ जोड़कर विनती की—

"जब युद्ध ही न हो रहा हो तो केवल अभ्यास करने से लाभ? इससे तो शिकार पर जाना ज्यादा अच्छा है।"

उनकी बात सच लगी। सब हाथियों के साथ धनुष-बाण, बरछी, भाले, तलवारें लेकर जंगल में घुस पड़े। वर्षा से जंगल घना हो उठा था। हरिण, खरगोश आदि प्राणी पहले मिले। दो चीते और एक शेर भी हाथ लगे। सब रोमांचित हो उठे। अगले दिन अगले जंगल, तीसरे दिन उसी के पास वाले जंगल में। इस प्रकार पंद्रह दिन में मद्र देश के आस-पास के सब जंगल छान डाले। आगे एक मास तक कोई शिकार मिलने वाला न था। उन्हें समझ में न आया कि आगे क्या करना चाहिए। सैनिक तो पेड़ से उतारी गयी सुरा और उन्हीं के लिए नियोजित स्त्रियों में मग्न हो गये। वज्र और अजय के तो कहने ही क्या? पर फिर से वे ऊब उठे। काम-धन्धों की ऊब मिटाने के लिए स्त्रियों की संगत अच्छी रहती है। लेकिन स्त्रियाँ ही यदि काम-धंधे का केन्द्र हो जायें तो उससे बढ़कर ऊब और कोई नहीं होती। यह बात उनकी समझ में बहुत जल्दी ही आ गयी। वे फिर शिकार को निकल पड़े। यह जानते हुए भी कि दूसरे देशों के दूर के जंगलों में भागे हुए मृग इतनी जल्दी नहीं लौटेंगे। सब लोग निराश होकर लौटे।

अजय ने वज्र से कहा, "भैया, शस्त्राभ्यास के बाद शेष समय में हम लोग भी यदि कृषि कार्य करें तो कैसा रहे?"

"यदि हम कृषि करने लगे तो हम सैनिक कैसे बने रहेंगे? शस्त्राभ्यास, युद्ध और बाकी समय में सुख भोगना, सैनिक को और क्या चाहिए?

"युद्ध हो तो अच्छा रहता है। नहीं तो शरीर को नोंच डालने की इच्छा होती है।"

"इसीलिए ऐसा करना चाहिए कि युद्ध हो ही जाये, नहीं तो हमें सुख नहीं मिलता। एक बात और भी है देखो, बीच-बीच में यदि युद्ध न हो तो राजा क्यों हमें सुख से पाले? कह देगा, 'तुम कौन बड़े महत्त्व के हो? तुम भी खेती-बाड़ी

करो।' इतना ही नहीं, यह गौरव भी मिट जाएगा कि हम योद्धा हैं।"

अजय चुप रह गया। उसे भाई की बात माननी ही पड़ी। दोनों मौन होकर कोई रास्ता सोचने लगे। वज्र ऐसे धीमे से बोला मानो उसे कोई नयी बात सूझी हो, "यदि नियंत्रण रहे तो स्त्रियों को हरा सकते हैं। अति हो जाये तो हमीं को हारना पड़ता है। वीर के लिए तो इस अपमान से युद्ध में मरना श्रेयस्कर है।"

अजय हल्के से सिर हिलाकर बोला, "सैनिक भी यही कहते हैं।"

रुक्मरथ के लिए ऐसी कोई समस्या न थी। शासन-कार्य ही काफी समय खा जाता। जब कोई काम न रहता तो शिकार पर जाता। पड़ोस के किसी राजा से जुआ खेलता। स्त्रियों की ओर जाने के लिए उसे अवकाश ही कम मिलता। वैसे उसकी आयु भी पचास के आस-पास पहुँच रही थी। पिता, पुत्र और भाइयों ने मिलकर यह निश्चय कर लिया था कि वे युद्ध में तटस्थ रहेंगे। परन्तु रुक्मरथ का मन उससे अलिप्त न रह सका। राजा होने के कारण देश-देशान्तरों के समाचार एकत्रित करना उसके लिए आवश्यक था। गुप्तचर एक के बाद एक समाचार लाते ही थे। गर्मी की ऋतु में बाहर गये बहुत-से लोग वर्षा की ऋतु में बाहर ही रह गये थे। वे अब लौट रहे थे। हस्तिनापुर से भी आ रहे थे। उपप्लाव्य-पांडवों ने जहाँ डेरा डालकर अपना युद्धकेन्द्र बना रखा था वहाँ से भी आने लगे। यहाँ तक कि दूर काशी गये लोग भी लौटे थे। उनका कहना था कि कुछ राजा इस पक्ष में हैं और कुछ उस पक्ष में। युद्ध के तटस्थ रहने वाला कोई भी राज्य नहीं। किरात, राक्षस, नाग आदि कई आर्येतर लोग भी इस युद्ध में कूद पड़ेंगे। बकासुर, हिडिंब आदि कुछ राक्षसों को भीम ने मारा था। उससे बदला लेने के लिए उन दोनों के सम्बन्धी अब दुर्योधन की ओर आ गये हैं। धृतराष्ट्र ने पांडवों को खांडवप्रस्थ देकर कहा था कि तुम लोग जैसे चाहो इसका विकास करके फूलो-फलो। जब पांडवों ने जंगल को कृषि भूमि बनाने का प्रयत्न किया तो वहाँ के जंगल के निवासी, नागों ने उसका विरोध किया। उनसे चिढ़कर अर्जुन ने गर्मी की ऋतु में उस जंगल के चारों ओर आग लगा दी थी। बहुत-से नाग मर गये, बाकी जान बचाकर भाग निकले थे। अब उन्हें और त्रिगर्त तथा गांधार के नागों को बुलाकर दुर्योधन ने उकसाया है कि अर्जुन को मार डालने का उनके लिए यही सुअवसर है। वे सब अपनी ही एक सेना तैयार करके दुर्योधन की ओर शिविर डाले तैयार बैठे हैं। हिडिंब की बहन के पेट से जन्मा भीम का पुत्र घटोत्कच नाम का एक राक्षस है। उसकी सहायता माँगने को पांडवों ने भीम को भेजा था। केवल एक वर्ष साथ रहकर छोड़कर चले जाने पर भी हिडिंबा को भीम के प्रति मोह नहीं गया है। अपने राक्षस अनुयायियों सहित घटोत्कच आ पहुँचा है। बकासुर और हिडिंब की मृत्यु का बदला लेने दुर्योधन की ओर आये राक्षसों के लड़ने के लिए पांडवों ने घटोत्कच को खड़ा किया है।

हर एक के आकर अपने-अपने समाचार सुनाने से रुक्मरथ के मस्तिष्क में युद्ध का एक विराट चित्र बनने लगा। उनके विवरणों की कमियों को उसने अपनी कल्पना से युद्ध के बारे में पूरा करके एक रेखाचित्र-सा बना लिया। बात यह है कि अब तक इतना बड़ा युद्ध कभी नहीं हुआ। किसी को याद भी नहीं कि कभी किसी ने सुना भी हो। रुक्मरथ को उसमें आसक्ति उत्पन्न हुई। कितने सैनिक! कितने रथ! कितने घोड़े! हाथ के कैसे-कैसे चमत्कार! कैसा युद्ध व्यूह! यह युद्ध इतने विस्तृत क्षेत्र में हो रहा होगा कि घोड़े पर बैठकर पाँच दिन तक यात्रा करने पर ही सब देखा जा सकता होगा। समस्त आर्य और कुछ आर्येतर व्यक्ति इस युद्ध में भाग ले रहे हैं पर मैं अकेला तटस्थ होकर द्वार बन्द किये बैठा रहूँ तो इसकी क्या सार्थकता है? इस युद्ध की कहानी जब अपने पोतों को बताऊँगा तब यदि वे पूछेंगे कि आपने इसमें भाग क्यों नहीं लिया, तो इसका उत्तर मैं क्या दे पाऊँगा? पिताजी को वह वचन दे चुका है कि युद्ध में भाग नहीं लूंगा। रणांगण केवल देखने-भर की वस्तु नहीं। प्रेक्षकों का वहाँ सम्मान भी नही होता है। यह बात मन में आते ही उसका उत्साह भंग हो गया।

एक दिन जब सभा में बैठा वह राज्य-कार्य में संलग्न था तब बढ़इयों के मुखिया नंदक ने आकर कहा, "महाराज, आज्ञा हुई थी कि युद्ध के लिए घिसे हुए रथों को ठीक करना है। नये दो सौ रथ तैयार करने हैं। सामान ढोने वाली पाँच सौ गाड़ियाँ भी बनानी हैं। गाँव-गाँव से बढ़इयों को बुलाया था। मंत्री जी कह रहे हैं कि अब हम युद्ध में नहीं जा रहे हैं। बेकार में यह सब क्यों? पर बढ़इयों का कहना है, गाँव में मिलने वाले काम छोड़कर यहाँ आ गये हैं। सारे वर्ष के काम का समय नष्ट हो गया है। आप भले ही हमसे काम न लीजिए पर हमारी मज़दूरी दे दीजिए।"

हम इंकार नहीं कर सकते। मज़दूरी देने पर काम कराना चाहिए। अगर काम करा लिया जाये तो सामान पुराना पड़ जाएगा और उसमें घुन लग जाएगा। उनकी मज़दूरी के लिए भंडार से धान और कम्बल बाँटे जायें तो कृषकों पर और कर लगाना पड़ेगा। यह सोचकर 'निर्णय कल दूंगा' कहकर उसने नन्दक को भेज दिया। उसी दिन दोपहर को लुहार आया। उसकी भी वही समस्या थी। उसने पूछा, "बाणों के लोहे की नोकें, तलवार, बरछों की नोकें, आदि तैयार करने का काम आरम्भ हो चुका है। कितने बनाने हैं? और कुछ लुहारों को बुला लूं?" रुक्मरथ ने उसे भी कल आने को कह दिया।

फ़सल अच्छी आयी है। धान पर बालियाँ आ गयी हैं। दूसरे अनाज के पौधों पर फूल आ रहे हैं। खेतों में अनाज की गंध फैल गयी है। ऐसी गंध जिसमें ज़ोर से साँस लेने की इच्छा होती है। धान पकाने वाली हल्की धूप पड़ रही है। शल्यराज घोड़े पर बैठकर नगर से बाहर जा रहा है। साथ चार अंगरक्षक भी हैं। एक खेत की मेंड़ की घास पर पाँव पसार कर बैठ जाता है। बचपन से ही प्रिय हरियाली की गंध। भूखे की भाँति वह बार-बार साँस लेता है। पता नहीं इसी प्रकार कितने संवत्सर बीत गये। उसमें एक प्रकार का आकर्षण है। पर विकर्षण भी।

इस हरियाली की गंध को भीतर खेंचते समय इच्छा होती है कि जीते रहना चाहिए चाहे कितने ही वर्ष क्यों न हो जायें। पर तभी अपने जीये अनेक वर्षों की याद आने लगती है। वह गंध स्थिर पानी की याद दिलाती है। कारण समझ में नही आता। उत्साह ही समाप्त हो जाता है। महल, स्वादिष्ट भोजन, सेवा के लिए दासियाँ, पुत्र, पौत्र— यह सब स्थिर पानी की भाँति भासित होते हैं। अभी और कितने साल जी सकता है वह ? भीष्म अब एक सौ बीस का है। क्या वह भी इतने वर्ष जी सकता है ? पर वह तो आजन्म ब्रह्मचारी है। क्या ब्रह्मचारी की आयु अधिक होती है ? यह प्रश्न वह अपने से पूछता है—अधिक आयु तक जीवित रहने के लिए उसने ब्रह्मचर्य की शपथ नही ली। यह भी उतने वर्ष जीवित रह सकता है। पर जी कर क्या करना है ? राज्य का दायित्व लेने की आवश्यकता नहीं, मन भी नहीं। मद्य का आकर्षण भी नहीं। स्त्री का आकर्षण! वह आकर्षण तो सूखे कितने वर्ष बीत गये। इस बीच युद्ध की उत्सुकता उत्पन्न हुई थी। उसमें भी न जाने का निश्चय हो चुका है। अनाज को पकाने वाली तेज़ धूप की भी अपनी एक गंध है। उस गंध से वह अपनी छाती भर लेता है। तलवार लिये घोड़े पर चढ़कर, रथ पर सवार हो धनुष की टंकार करने वाले क्षत्रिय का धान के पकने की गंध अपने में भर लेने की इच्छा कैसी ? मेंड़ पर वैसे ही चित लेट जाता है। अंगरक्षक कपड़ा बिछाने को आगे आते हैं। उन्हें संकेत से मना करके वैसे ही धूप की ओर मुँह करके लेट जाता है। भीष्म ही दुर्योधन का सेनापति बनेगा। वह वीरों में वीर है। उसकी कितनी चौड़ी छाती है ? 'इस आयु में मेरे लिए कैसा सेनापतित्व' कहकर वह जंगल मे तपस्या करने क्यों नही गया ? वह वंश तपस्या करने के लिए भी प्रसिद्ध है न ? उसने वैसे ही आँखें मूंद लीं। सारा संसार हल्के गुलाबी रंग में डूबा हुआ-सा लगता है। आँखें जरा-सी खुलते ही सतरंगी प्रकाश की किरणें युद्ध के तीरों के समान चुभती हैं। शल्यराज एकदम उठ बैठता है। उठकर रास्ते के समीप खड़े अपने घोड़े के पास जाता है। अंगरक्षक उसका घोड़ा थाम लेते हैं। वह आराम से सवार होकर ठीक से बैठकर घोड़ा गाँव की ओर दौड़ाता है। अंगरक्षकों के घोड़ों को पीछे छोड़कर उसका सफेद घोड़ा आगे दौड़

पड़ता है। वह लगाम को ढंग से पकड़कर आसानी से भागता ही जाता है। अंग-रक्षकों को केवल उसकी धूल ही दिखायी पड़ती है। घोड़ा दिखायी नहीं पड़ता। राजा में उत्साह उत्पन्न होता है। थोड़ी देर में घोड़ा पसीने से तर हो उठता है। वह भी पसीना-पसीना हो जाता है। ऊब मिट जाती है।

रुक्मरथ कभी सोचता कि कम-से-कम जुआ ही खेला जाय। छोटे भाई अजय और वज्र के साथ खेलने पर उसे तृप्ति नहीं होती। अपनी ही वस्तु उनसे जीतने या हारने में क्या आनन्द? अपने ही जंगल में शिकार खेलने से कोई उत्साह नहीं आता। राज्य शासन गत दस वर्ष से चला रहा हूँ। उससे पहले पिताजी की सहायता करता था। उत्साह नहीं। पड़ोसी मित्र राजाओं के साथ जुआ खेलने में मज़ा आता है। पाँसे गिरते ही दिल थामकर देखने की इच्छा होती है। पर अब सब युद्ध की तैयारी में लगे हैं। युद्ध की ही बातें करते हैं। किसी को भी जुए का उत्साह नहीं। सभी राजा दुर्योधन या पांडवों के पक्ष में होकर शत्रु या मित्र के दलों में बँट गये हैं। अपने आप को तटस्थ रख पाना क्षत्रिय के लिए सम्भव नहीं। सुशर्मा से विरोध करने से तो बच निकला पर उसका स्नेह का स्रोत सूखता जा रहा है। उसके मन के एक कोने से एक बात उठी। युद्ध में जाना चाहिए। भले ही पांडवों की ओर से ही क्यों न हो।

एक दिन चक्रवर्ती दुर्योधन का भाई दुशासन ही आया। नगर के बाहर ही रुककर उसने अपने आगमन की सूचना दूतों के द्वारा भेजी। रुक्मरथ ने अपने भाई वज्र को भेजकर राजोचित सम्मान से उसका स्वागत किया। पहले शल्यराज के चरण छूकर नमस्कार करके 'मामा' कहकर सम्बोधन करके उसका आशीर्वाद लेकर दुशासन ने इस भूमिका से बात शुरू की, "मेरे पास समय नहीं मामा जी। यह सच है कि पांडव आपके सगे भांजे हैं। पर हम भी तो आपके भांजे हैं। पांडु से आपकी बहन को कौन सा सुख मिला? उसकी मृत्यु के कारण हम नहीं। उनके बनवास के कारण भी हम नहीं। यदि आप चाहते हैं कि आपके भांजों को राज्य मिले तो यह दूसरी बात है। यदि हम राज्य उनके लिए छोड़ भी दें तो भी उन्हें घोड़ों की सईसी से छुटकारा नहीं मिलेगा। बड़ी पत्नी के बेटों के घोड़ों की लीद उठाना ही उनका भाग्य है। तो आप उस बड़ी पत्नी के बेटों को राज्य दिलाने में सहायता क्यों कर रहे हैं? युद्ध में यदि हम जीत जाएँ तो आपकी बहन के बेटों को अवश्य राज्य लौटा देंगे। यह बात दुर्योधन ने शपथपूर्वक कही है। हमारा झगड़ा तो बड़े तीनों से है। छोटे साधु स्वभाव वालों से नहीं।"

शल्यराज का पाँचों पांडवों के प्रति जो समष्टि स्नेह था वह टूट गया। दुशासन ने रुक्मरथ से कहा, "युद्ध के लिए धन और सैनिक चाहिएँ। अन्न, वस्त्र और अन्य सुखों की व्यवस्था होनी चाहिए। नहीं तो व्यर्थ में कौन अपनी जान देगा ? मैं अपने साथ एक हजार कम्बल, एक हजार जोड़े उत्तरीय, और एक देग भरकर स्वर्ण-मुद्राएँ लाया हूँ। यह आपकी सेना के लिए पारितोषिक नहीं। यह तो पूज्य मामा जी के लिए भेंट है। आपके यहाँ से चलने से लेकर युद्ध समाप्ति पर लौटने तक, आपकी सेना के शिविर, स्वादिष्ट भोजन, और घोड़े-हाथियों का चारा देना इन सब का दायित्व हम सब पर रहेगा। आपको कितना दूध, घी, आटा, चावल चाहिए यह अभी बता दीजिए। उससे दुगने का आपके लिए प्रबन्ध किया जायेगा। हस्तिनापुर के राजाओं का स्नेह जितना अपार है उतने ही उनके रसोइयों के हाथ बड़े हैं।"

शल्यराज बोला नहीं। रुक्मरथ का मुंह देखकर ही दुशासन उसके मन की बात भाँप गया। वही बोला, "एक बात और है। यह मत समझिए कि युद्ध होगा ही। पांडव कृष्ण की बातों में आकर हमें धमका रहे हैं। 'हमें इनकी सहायता प्राप्त है, उनकी सहायता प्राप्त है' कहकर डींगें मार रहे हैं। हमने कहा, हमारे भी सहायक हैं। हम भी ज़रा जौहर दिखायेंगे, आ जाओ। अब उनकी तरफ के लोग आने वाले हैं। हम सब एक जगह मिलकर उनको दिखा देंगे। बल प्रयोग करने से पहले केवल बल का प्रदर्शन करेंगे। तब वे न्याय की बात करेंगे। धर्म के अनुसार निर्णय हो। राजसत्ता में आगे बढ़ना या छोड़ देना मुख्य नहीं। धर्म का जीतना मुख्य है। यदि धर्म हार जाय तो प्रजा का हित करना क्या सम्भव होगा ? दुर्योधन केवल प्रजा के लिए राज्य कर रहा है। आप स्वयं हस्तिनापुर आकर देख लीजिए।"

नगर के पूर्व में नदी किनारे विदुर का घर है। पूर्व की ओर ही उसके घर का मुख्य द्वार है। द्वार के सामने पत्थर बिछे हैं। गारे का बनाया गया बड़ा-सा आँगन भी है। वहाँ से तीस सीढ़ियाँ उतरने पर गंगा की धार है। बहते पानी के किनारे बैठे रहना कुन्ती की आदत है। पता नहीं उसे पानी से प्यार है या समय बिताना दूभर लगता है। दोपहर की धूप में पेड़ के तले दोनों पाँव पानी में डाले बैठी रहती है। पाँव गंदे न होने पर भी मछलियाँ आकर गुदगुदाती हैं। मछलियों के उछलने से जब पानी हिलता है तो पानी में हिलता हुआ अपना प्रतिबिम्ब भी दिखाई पड़ता है।

लम्बा-चौड़ा शरीर, झुर्रीदार चेहरा और सफेद बाल। इसी बिम्ब को देख-देख कर वह ऊब चुकी है। पानी के पास बैठने पर उसे और कुछ दिखाई ही नहीं देता। 'कृष्ण सन्धि की बात करने गया है। जो काम हो ही नहीं सकता उसके लिए क्यों गया है? पता नहीं वहाँ और कौन-कौन-सी बातें चल रही हैं?' जब वह यह सोच ही रही थी तभी विदुर आ गया। वह राजसभा में कृष्ण के साथ गया था। कुन्ती ने मुड़ कर देखा। पास आकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर यह पक्का करके कि वहाँ और कोई नहीं, वह बैठ गया। राजसभा में जाने को पहने वस्त्र और उत्तरीय उतार देता है ताकि शरीर को हवा लग सके।

"कृष्ण कहाँ है?"

"दुर्योधन ने उसे पकड़कर बाँध लेने की ही योजना बनायी थी। उसका कहना था कि तुम मेरे ही यहाँ आकर घर-घर जाकर मेरे ही सहायकों को फोड़ लेने का प्रयास कर रहे हो। कृष्ण अपने अंगरक्षकों की सतर्कता से बच निकला। मैंने उसे कह दिया कि अब यहाँ ठहरना तुम्हारे लिए ठीक नहीं। वह चला गया। उसने कल रात ही तुम्हारे कर्त्तव्य के बारे में बता दिया था न? उसके बारे में तुम्हें याद दिलाने की बात जाते-जाते कह गया है।"

कुन्ती बोली, "हूँ।" बाद में उदास बैठे विदुर से उसने पूछा, "वहाँ क्या हुआ?"

"मैंने कहा न, वे तो कृष्ण को ही बाँधने चले थे। बाक़ी क्या कहने को रह गया ?"

"यह तो पता ही था। फिर भी इन्होंने उसे क्यों भेजा ? यह इनका भ्रम नहीं था ?"

"दुर्योधन ने एक और बात कही। वह सुनकर पितामह भी आश्चर्यचकित रह गये। धृतराष्ट्र का मुँह देखने से मुझे ऐसा लगा कि वह बात सुनकर उसे भीतर-ही-भीतर खुशी हुई। पांडवों में कोई भी अपने बाप से पैदा नहीं हुआ। मैं उन्हें पांडव कहकर पुकारने को भी तैयार नहीं। वे इस वंश के हैं ही नहीं। उन्हें आप लोगों ने अन्याय से हिस्सा दिलाया था। वह अन्याय मैंने जुए से ठीक कर दिया था। अब फिर···"

"हूँ। तो उसने कुन्ती को कुलटा कहा।"

"उसका अभिप्राय यह नहीं था। उसका कहना था कि नियोग की सन्तान धार्मिक दृष्टि से अपनी सन्तान नहीं। उसने तो सनातन धर्म की ही अवहेलना करने की बात कही। इस बात में उसके भाई, कर्ण और शकुनि का अवश्य समर्थन है।"

"राज्य देना होगा इस दुख से···।"

"हाँ ! हाँ वह अधर्म की बात है।" विदुर ने आधे में बात पूरी की।

कुन्ती फिर बोली नहीं। पानी में डूबे पैरों की ओर देखती हुई मौन बैठी रही। उसका प्रतिबिम्ब स्पष्ट दीख रहा था। उसका लम्बा-चौड़ा शरीर था। इसी कारण उसका नाम पृथा रखा गया था। अब मुख पर झुर्रियाँ पड़ चुकी हैं, बाल सफ़ेद हो चले हैं। विदुर ने सिर झुकाकर कहा, "दुखी मत हो। मैंने केवल उसकी बात तुम तक पहुँचाई। ऐसी बातें वह हमेशा ही करता रहा है। मैंने उसकी बातों पर शुरू से ही ध्यान दिया। उसने 'कुन्ती के पुत्र' कहा। एक बार भी पांडव शब्द का प्रयोग नहीं किया।" कुन्ती ने मन-ही-मन कहा, 'हूँ, झुर्रियों वाले मुंह और सफेद बालों वाली स्त्री के पुत्र पांडव नहीं। वे कुरू-वंश के ही नहीं।' पृथा के मन की शक्ति कैसी है। यह उन कुत्तों के पिल्लों को मालूम नहीं।

उसके बिम्ब के नीचे मछलियाँ खेल रही थीं। एक-दो-तीन-चार—

"विदुर, जाओ खाना खाओ। कितनी देर हो गयी ?" कहते हुए उसने सिर उठाकर देखा। पेड़ों के बीच से लगा कि सूरज ढलने लगा था

विदुर बोला, "तुम भी उठो।"

विदुर की पत्नी पारंसवी उनकी राह देख रही थी। उसके बेटे, पोते और पड़पोते सभी तब तक खा चुके थे। उन तीनों को रसोइये ने खाना परोसा। खाने में पका नरम भात और जरा गाढ़ी खीर थी। भोजन के बाद कुन्ती लेटी नहीं। सीढ़ियाँ उतरकर नदी के किनारे पानी के पास की शिला पर बैठ गयी। 'कुन्ती

के पुत्र' सोचकर उसे क्रोध आया। नहीं, क्रोध की याद हो आयी। "इस वंश में मिल जाने के बाद बच्चे, पैदा करने वाली बहू के न होकर क्या पैदा करने वाले के होते हैं? इसका बाप अंधा है। शादी से पहले स्त्री क्या है यह भी उसे पता नहीं था। पत्नी के गर्भवती होने के बाद जब स्वाद का पता लगा तब वह दासियों से मज़ा लूटने लगा। नहीं तो यह दुर्योधन भी केवल गांधारी का पुत्र बनकर रह जाता। जैसे इसका बाप अंबिका का बेटा बना था।" उसे क्रोध आया। पर, सनातन धर्म को और जिस कुरू-वंश में वह बहू बन कर आयी है उसके पितरों को अपशब्द नहीं कहने चाहिएँ, यह सोचकर उसने अपने को रोका। "वंश बढ़ाने के लिए जिस प्रकार मेले से हृष्ट-पुष्ट बछिया खरीद लाते हैं वैसे ही बहू ले आये। मेरी सासों से मेरे पति और इसके पिता को जिस प्रकार पैदा कराया गया वैसे ही मुझसे इन बच्चों को पैदा कराया गया। अब ये पांडव नहीं?" अंधे बूढ़े को यह बात सुनकर सन्तोष हुआ। 'धत्। थू।' कहकर थूक देने की इच्छा हुई। 'जब मेरा बड़ा बेटा पैदा हुआ तब ऋषियों ने ही उसे धर्म नाम दिया था। हिमालय पर्वत पर बद्रिकाश्रम के चरणों में तपस्या करने वाले ऋषियों के अनुमोदन को अस्वीकार करने वाला यह अधर्मी अधिक जियेगा नहीं।' उसने मन-ही-मन शाप दिया। मेरा बड़ा बेटा कभी भी अधर्म के मार्ग पर नहीं चला। दूसरे बेटे भी ऐसे ही हैं। धर्म की जय होगी, यह सोचकर उसने अपने को सांत्वना दी। मन तनिक शांत हुआ। वैसे ही उस शिला पर लेट गयी। कुछ देर के लिए आँख लग गयी।

उसे याद आया गत तेरह, नहीं साढ़े तेरह वर्ष से दोपहर के समय यह पत्थर की सीढ़ी ही उसका बिस्तर रही है। ज़रा आँख लगी ही थी कि कल-कल की आवाज़ आयी। तो इस कुरुवंश के क्या-क्या नाम—दुष्यन्त, भरत, हस्तिन, अजा-मिल, महाभौम, दिलीप, इसी प्रकार सौ पीढ़ियों के नाम हैं। अब भीष्म। पांडु भी कोई साधारण नहीं था। 'बेटी पृथा, देखो वह वहाँ बैठा है। गम्भीर पद्मासन लगाये। ताज़ी ऐंठी मूछें, उगती हुई नयी-नयी दाढ़ी, चमकता गोरा पीला सुनहरा रंग। इस आयु में ही आस-पास राज्य का विस्तार करने वाला वीर। सीधे जाकर उसी के गले में जयमाला डाल देना—' पिता ने कहा था। माँ का भी अनुमोदन प्राप्त था। 'उसका बड़ा भाई अंधा है। आगे यही सिंहासन पर बैठेगा। राजसूय, अश्वमेध करने वाले राजा की पट्टरानी बनेगी।' सखी का ध्यान भी इसी की ओर था, 'पृथा, तुम्हारी लम्बाई-चौड़ाई के अनुकूल है उसका गठन! पुरुष का अर्थ है—भूखे शेर की तरह ऊपर झपटने वाला। तुम्हारी बराबरी के गठन वाला और कोई राजा यहाँ मुझे दिखाई नहीं दे रहा है। अगर वह हो तो तुम्हें पहली रात ही निचोड़ डालेगा' कहते हुए आँख मार कर बाईं पसली पर चिकोटी काटी। ज़रा पीला सुनहरा रंग। पर देह का कैसा गठन! आयु छोटी थी, लगभग मेरे

ही जितनी, अठारह या उन्नीस। सभा में चलते हुए सब की आँखें मेरे अंगांग पर चिपकी हुई लग रही थीं। संकोच हो रहा था। पकी दाढ़ी वाले, सफ़ेद बालों वाले, लम्बी-लम्बी दाढ़ियों वाले, भूरे बालों वाले कैसे-कैसे राजाओं का समूह था! एक-एक की ओर देखकर चलते हुए सखी की बात ही ठीक लगी। उछलकर ऊपर गिरने वाले शेर जैसी चौड़ी छाती। भारी धनुष को खींच कर बाण चलाने से उभरी हुई बाँहें। धनुष के चमड़े की डोरी कंधे पर लटकाने से बने घाव के दाग वाला कंधा। और कोई विचार ही नहीं उठा। मेरी लम्बी-लम्बी बाँहें अपने आप आगे बढ़ गयीं। उसने गर्व से सिर उठाकर मुझसे आँखें मिलाकर और जयमाला के लिए सिर झुका दिया। उसने पृथा को जीत लिया। उस समय कोई और राजा उठकर प्रतिशोध से चुनौती देकर मुझे क्यों नहीं उठा ले गया?

कैसा वैभवपूर्ण विवाह! 'बेटी वैभवशाली कुरुओं के घर की पट्टरानी बनेगी,' पिता को यह गर्व अलग था। पिता ने बेटियाँ न होने के कारण मुझे माँग कर बड़े प्रेम से दत्तक लिया था। उनके प्रेम का कहना ही क्या। उन्होंने कुरुओं के महल भरने को कितनी गाड़ियाँ भर-भर कर भेजी थीं। मेरे साथ दस सुंदर दासियाँ भी थीं। उस पुरुष व्याघ्र के व्यंजन के लिए। पहली रात ही अजीब लगा। कुछ समझ में नहीं आया। उसने अपनी मज़बूत बाँहों में मुझे कस कर छाती से लगा लिया। पर वह अधेड़ उमर की, रोमश छाती और कोमल बाँहों की ऋषि की सी पकड़ भी नहीं थी। वह मौन भी नहीं था। 'कुंती, तेरा मुख सुंदर है, तेरी भौंहें सुंदर हैं, तेरी छाती बड़ी सुंदर है,' कहकर केवल बातों ही बातों से तृप्ति देने लगा। पर सखी ने जो कहा था, मैंने जो चाहा था या मुझे जो मालूम था वह सब कुछ नहीं हुआ। थोड़ी देर में ही वह सो गया, हारे बैल की भाँति। 'लगातार यात्रा से थकान हो गयी है; नीद आ रही है' कहकर घूमकर लेट गया। मुख पर चिंता छायी थी। मेरी समझ में न आया। लज्जा छोड़ने का अवसर टल गया। यह सोचकर मुझे कुछ धीरज हुआ। वह सो गया। सोया या नहीं पर आँखें मूंद लीं। मुझे कैसे नीद आती! आशा, लज्जा और पट्टमहिषी बनने का सपना!

सुबह सखी के कोंच-कोंच कर पूछने पर भी पता नहीं मैं सच क्यों नहीं कह सकी। उसने पूछा था, ऐसा किया, वैसा किया, और तुमने क्या किया? उसने जो कुछ पूछा उसके लिए मैंने सिर झुकाकर 'हूँ' कह दिया। क्या मैं पूरा समझ नहीं पायी थी? या पति के मान की रक्षा की इच्छा थी! उसके बार-बार चिकोटियाँ काट-काट कर पूछने पर मैंने कल्पना करके, पुरानी बातें याद करके, एक-एक बात का वर्णन किया! दैव ने मुझसे विश्वासघात किया था। इस बात को ज़बान पर न लाकर मैंने अपने आप को धोखा दिया था। वह एक ही दिन की बात नहीं थी। मायके से हस्तिनापुर आने के बाद ज्यों-ज्यों दिन और मास बीतते गये सखी से एक के बाद एक दूसरा झूठ कहती चली गयी। यदि मायके में

ही सखी से सच कह देती तो वह माँ को बताती और माँ पिताजी से कह देती। पिताजी इसका मान धूल में मिला कर बेटी का दूसरा विवाह कर देते। अहा ! देखने में कैसा सुदर्शन जवान था !

भीष्म को भी बड़ी आतुरता थी। बहू के आने के बाद उसके पहली बार 'बाहर' बैठने की बात जानते ही कसमसा उठे। यह सोचकर कि कुरुवंश का बीज अंकुरित न होकर बह गया। दूसरी बार 'बाहर' बैठते ही हाय तौबा मचाई। तीसरी बार की बात सुनते ही बहू पर ही सारा दोष मढ़ते हुए कहा, "वीर पुत्र के लिए सही क्षेत्र नहीं मिला।" इतना होने पर भी मैंने सच क्यों नहीं बताया ? सखी से भी छिपा कर पति के वीर्यवान होने की अपेक्षा करके कहानियाँ बनायी थीं। मेरे साथ आयी किसी भी दासी को उसने नहीं छेड़ा। तब मेरी सखी ने यही समझा कि उसका मोह और वीर्य अपने में समो लेने योग्य समर्थ पत्नी के होते हुए उसका मन दासियों की ओर क्यों जाएगा।

"धृतराष्ट्र अपने आप को धोखा दे रहा है।" विदुर का स्वर सुनाई दिया।

कुंती की बाह्य चेतना लौटी। उसने आँखे खोली। विदुर आकर पास बैठ गया था। वह भी उठ बैठी। वह बोला, "तुम लेटी रहो। यदि थक गई हो तो।" वह बोली, "नहीं, यूँ ही लेटी थी।"

"जब वह यह कहता है कि ये पाँचों कुंती और माद्री के ही पुत्र हैं तो इस हिसाब से वह अंधा यह नहीं समझ रहा कि वह भी केवल अंबिका का ही बेटा रह जाएगा।"

"उसकी दोनों आँखों में दो तीर मारने को भीम से कहूँ तो उसकी आँखें खुल जायेंगी।" कहते हुए उसने झुक कर बहते पानी से एक चुल्लू पानी पीया।

"तभी हिसाब ठीक होगा।" विदुर जब यह कह ही रहा था तभी एक सेवक सीढ़ियाँ उतरकर आया और बोला, "पितामह ने बुलाया है।" विदुर उसके साथ धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर चला गया।

कुंती ने अंजलि में पानी लेकर पसीने से चिपचिपाया अपना मुख धोया। बाद में सफ़ेद साड़ी के आँचल से पोंछ कर बैठ गयी। धृतराष्ट्र भी अपने आपको धोखा दे रहा है; सच्चाई जानते हुए भी। मैं भी ऐसा ही करके दुख में पड़ी थी। तभी उसे यह याद आई—जीवन भर हिंसा और दुख। मैंने कब सुख देखा ! शुरू के वैवाहिक जीवन में जब सभी पति से सुख पाती हैं तब मुझे इस पति से हिंसा मिली। वह चुपचाप भी तो नहीं रहने देता था। ऊपर गिरना, पौरुष दिखाना, 'ऐ कुंती, ऐसे आ, ऐ कुंती, वैसे आ, ऐसा कर, वैसा कर,' कैसे-कैसे विकृत कार्यों में लगाकर, स्वयं जोर लगा-लगाकर, अंत में न चढ़ पाने वाले सांड की भाँति थककर अपमानित सा होकर अकारण ही मुझ पर खीझ उतारना, 'तू मेरे योग्य पत्नी नहीं' कहकर सारा दोष मुझपर थोप देता। इस बीच उसकी चेष्टाओं से उद्दीप्त होकर

मैं उसका शमन न पाकर जल उठती या उस दोषारोपण से फुंक जाती। रात होते ही यही हिंसा मिलती। मन में मूक तिरस्कार उठता 'यह षंड कहीं और जाकर क्यों नहीं पड़ रहता।' तब भी मैंने अपनी सखी को क्यों नहीं बताया ?

एक दिन पलट ही पड़ी, "आर्यपुत्र, आप मुझे अपने योग्य पत्नी नहीं कहकर डाँटते रहते हैं। दूसरी कौन-सी औरत में और क्या रहता है ? अगर आपमें शक्ति होती तो मैं भी योग्य होती।"

उसका पारा चढ़ गया। फटाक से गाल पर तमाचा जमाकर बोला, "तुम कह रही हो कि मुझमें शक्ति नहीं। अपने महल की किसी भी दासी को मैंने छोड़ा नहीं, समझीं। अब एक वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूँ। मैंने कोई सौ दासियों को भोगा होगा।"

झूठा बखान करके मुझे मारा। उस सारी रात मैं रोती रही। पति सौ दासियों के पास गया था ! उस दिन के उसके गुस्से का कोई ठिकाना नहीं रहा। रोज पास सोता। अकारण डाँटता। मेरे पिता शूरसेन और पालने वाले पिता भोजराज को बुरा-भला कहता। खैर, मुझे उसकी चेष्टाओं से मुक्ति मिली। धीरे-धीरे मैंने ही उसे तसल्ली देकर सारी बातें पूछीं। उसने मुख खोला। मानों अपना बखान कर रहा हो। मेरी समझ में आ गया। उसने पन्द्रहवें साल से ही दासियों को छेड़ना-छाड़ना शुरू कर दिया था। राजकुमार का प्रेम जीतने के लिए दासियाँ एक से बढकर एक आगे आईं। काम की समस्त कलाओं का प्रयोग करके उसका मनोरंजन किया। उसकी शक्ति सामर्थ्य की प्रशंसा करके उत्तेजित किया। तीन वर्षों में काम क्रीड़ा में उसकी आस्था कम हो गई। अंत में पूर्णतः असमर्थ हो गया। इस नष्ट-वीर्य से मैं क्या करती ? तब पति के घर आने के दो वर्ष बाद रोते हुए मैंने सखी से मुँह खोला।

सखी बोली, "पट्टमहिषी, कुछ दिनों से युवराज हमारे शहर की दासियों को दूसरी जगह बुला रहे हैं। उनके साथ भी वैसा ही होता है। युद्ध के बिना ही विजयी होने से जिस प्रकार शत्रु के प्रति तिरस्कार पैदा हो जाता है, वैसे ही उनकी स्थिति है। मैं यह सोच कर चुप रही कि उनका युद्ध तो पट्टमहिषी के साथ ही होगा।"

"सखी, आज तक मैंने तुझ से जो कुछ कहा वह सब झूठ था। एकदम झूठ। आत्म-प्रवंचना थी।" कह कर उसे गले लगाकर मैं फूट-फूट कर रो पड़ी।

"ऐसी आत्म-वंचना क्यों की ? मुझे पहले ही क्यों नहीं बताया ?"

"पता नहीं। पति के वीर्यवान होने की कल्पना करके कहने में ही शायद एक तरह का सुख मिलता होगा। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध कुरूवंश के युवराज जो ठहरे।"

"देखो, मुझे लगता है कि ये राजा लोग होते ही ऐसे हैं। नष्ट-वीर्य गतपुंगव।

इनसे तो ब्रह्मचर्य से वीर्य संचय करके तपस्या करने वाले ऋषियों की पत्नी बनना अच्छा होता है। उनका ध्यान यदि इस तरफ हो जाय तो मालूम है कि वे कितने तगड़े पड़ते हैं !"

उसकी बात सच ही लगी। उसे भी यह मालूम था। बूढ़ी कुंती का मन क्षण भर को स्तब्ध रह गया। उसका ध्यान पानी पर उड़ती मक्खी के बिम्ब की ओर गया। यह सब आज याद आ रहा है। यह पहली बार नहीं। पर पहले इतने विस्तार से याद नहीं आता था। आज क्यों आ रहा है ! उसने अपने आप से पूछा। उसे लगा मानो किसी और से कह रही हो। और सुनने वाला भी 'हूँ' 'हूँ' कर रहा हो। सुनने वाला था भी कौन? सखी की मृत्यु के बाद ऐसा अपना कोई मिला भी नहीं। जीवन में एक ही तो सखी मिलती है। तीन वर्ष वह साथ रही। मेरे साथ हिमालय तक भी गयी थी। सर्दी सही न गई और वहीं मर गयी। ऐसी बातें कही भी किससे जा सकती हैं ? बहू द्रौपदी साथ थी, तब उसे थोड़ा-बहुत बताया था। उसने भी बहुत कष्ट भोगा। बारह वर्ष बनवास, एक वर्ष सेवावृत्ति। पर मेरे जैसा कष्ट नहीं। उसके साथ पाँच पति थे। प्रत्येक चार-चार पत्नियों को सँभालने के योग्य वीर्यवान। अपना मनचाहा पति हो तो और कोई कष्ट, कष्ट नहीं दिखता।

इसी बीच एक और खबर कान में पड़ी। बूढ़े ससुर भीष्म सेना सहित बीस गाड़ी कपड़ा, बर्तन, कंबल और आभूषण आदि लेकर मद्र देश गये हैं। यह सोचकर कि कुंती भोज की पुत्री से मेरा वंश नहीं बढ़ा। अपने वीर्यवान पुत्र के लिए सही गर्भ-शक्ति वाली को ले आना चाहिए। मुझे हँसी आयी। डर भी लगा। यह तो किसी से बच्चा पैदा कर नहीं सकता पर आने वाली अपनी भंगिमा से उसका मन अपनी ओर खींच ले तो मेरा जीवन और भी नर्क हो जाएगा। सखी ने भी यही कहा। ये क्षत्रिय जितनी पत्नियाँ चाहे ला सकते हैं और जितनी दासियाँ चाहे रख सकते हैं। कौन मना कर सकता है ! वह तो मुझसे बच कर दूर रहता था। फिर भी मैंने ही उसके पास जाकर पूछा, "यह मैं क्या सुन रही हूँ ?"

"ताऊ जी घर के बड़े-बूढ़े हैं। उनकी बात मैं कैसे टाल सकता हूँ ?"

"उनसे कहो, बेकार में दूसरी पत्नी क्यों ? इसकी कोई ग़लती नहीं।"

"और क्या मेरी ग़लती है ? मैंने सौ दासियों को भोगा था।" कहकर उसने आँखें दिखायीं।

मैं चुपचाप तिरस्कार से लौट पड़ी।

कुरुवंश को बढ़ाने की एकमात्र इच्छा से भीष्म माद्री को ले आये। वह मुझ से जरा पतली थी और दो वर्ष छोटी भी। मेरे जैसा गठन न था पर जादू भरा आकर्षण था। चंचल नयन। सारे महल में उसके रूप की वाहवाही हो गयी। विवाह का संस्कार भर देखकर मैं अपने महल लौट आयी। अभी भी मैं ही पट्टरानी थी। मन में आया कि उसकी इच्छा हो तो वह आकर मिले, नहीं तो बला से। मेरी ओर

से दूर ही रहे। वह भी इधर न फटका। वह उसके छोटे महल में दूर ही रहा। एक मास बीत गया। माद्री महीने से बैठी। मेरे मन का भार हल्का हो गया। मैं तो हर मास बिना नागा महीने से बैठती थी। जैसे उन्तीस दिन में चंद्रमा अपना चक्र पूरा करके दिखाई पड़ता है। शुद्धि-स्नान के उपरांत वही मेरा महल खोज कर मिलने आयी। बातचीत में होशियार लगी। पहले ही उसने 'दीदी' कहा।

वह बोली, "सुना है आपके मायके वालों ने गाड़ियाँ भरकर दहेज दिया था। स्वयंवर किया था। मैं आपकी बराबरी नहीं कर सकती। हमारे यहाँ कन्या-शुल्क लेकर लड़कियाँ बेचते हैं। विवाह भी लड़की वालों के यहाँ नहीं होता। हमारे यहाँ की यही पद्धति है। मेरा सहारा तो आप ही है। मुझपर कृपा दृष्टि रखनी होगी।"

'इसमें कृपा कहाँ से आ टपकी,' मैंने अपने आप से कहा। अपने को रोक न सकी, पूछ ही लिया, "सुना है महीने से थीं ?"

"और क्या करूँ ?" कहकर उसने मेरी आँखों में सीधा देखा। "जैसे आप होती हैं वैसे ही।"

वह एक मास में सब समझ गयी थी। उसने मेरी तरह अपने को धोखा नहीं दिया था। हम दोनों के बीच का द्वेष मिट गया। डाह के लिए अवकाश ही न था। उसने अपना घर, गाँव, राज्य, जन्म, पालन-पोषण आदि सबके बारे में बताया। मेरे माता-पिता के बारे में भी पूछा। वह बोली, "दीदी, मुझे और आपको बीच-बीच में मिलते रहना चाहिए। नही तो हमारा कौन है ?"

इसके दूसरे दिन वह मेरे घर आया। ऐसे दर्प से मानो कोई भारी विजय करके आया हो। मैंने पूछा, "इतने दिनों बाद इस कुंती की याद आयी ?"

उसने चिढ़ाते हुए कहा, "तुम से तो वह अच्छी है। पता नहीं तुम स्त्री के रूप में कैसे पैदा हो गईं।"

मैं बोली, "सुना है वह भी महीने से हुई है।"

वह भी मुझे दोषी ठहराने को ही झूठ बोल रहा था अथवा अपने को धोखा दे रहा था। अब तक उसके बारे में मेरे मन में एक प्रकार की करुणा थी। अब उसकी जगह तिरस्कार ने ले ली। उसका मुंह भी न देखने का मन हो रहा था। उसकी भरी भुजा पर धनुष के दाग अब भी वैसे ही थे। मांसल बाँहें वैसी ही उभरी थीं। मैंने सीधा उसकी आँखों में देखा। मेरी आँखों में इतनी शक्ति है, यह मैं तब तक नहीं जानती थी। उस दिन मुझे समझ में आया कि सच्चाई जानने वाला केवल अपनी दृष्टि से ही झूठ को निस्सत्व कर सकता है। उसकी आँखों में ईर्ष्या भरी थी। क्रोध भी था। वह तो हारे हुए का जीतने वाले पर भड़कने वाला निस्सहाय क्रोध था। मैंने आँखें हटाईं नहीं। उसकी ही दृष्टि काँपने लगी।

"वही नहीं, चार और भी ले आओ। लेकिन तुम उन्हें रजस्वला होने से नहीं रोक सकते। ज्यों-ज्यों वह रक्त धरती पर गिरता है त्यों-त्यों तुम्हारा पाप जन्म-

जन्मांतर के लिए अधिकाधिक संचित हो जाता है। उसे छिपा कर पट्टरानी से झूठ कहना और भी बड़ा पाप है।" उसकी दृष्टि झुक गयी। धरती को भेदकर छिपने का प्रयास करने लगी। मुंह पर पसीना आ गया, माथे पर नन्हीं-नन्हीं बूंदें चमक उठीं, गर्दन पर पड़ा झीना वस्त्र चिपक गया। मैंने भी उठकर उसे पोंछा नहीं। सामने बैठी रही, बिना कमर झुकाए। सारे कमरे में जड़ता छा गयी। खिड़की से आती धूप, कमरे में फैली सुगंध, हम दोनों के बैठने वाला गद्दा सब जड़ लौह-सा हो उठा। लम्बे-लम्बे डग भरता वह बाहर चला गया। मुझ में एक प्रकार की विजय भावना भर गयी।

दूसरे दिन दोपहर को समाचार मिला। उस दिन वह अश्व, रथ और पैदल सेना लेकर दिग्विजय को चला गया था। आस-पास के राज्यों को जीतकर, जंगली लोगों को भगाकर कुरू राज्य का विस्तार करके स्वर्ग में रहने वाले कुरू-पितरों में आनन्द उत्पन्न करने को; क्षत्रियोचित वीरता दिखाने को, वह चला गया था। पुरजनों के हर्ष का ठिकाना न था। हमारे राज्य की कीर्ति फैलेगी, हमारी सीमाओं का विस्तार होगा—कहकर भीष्म ने सिर सहलाकर पीठ ठोककर आशीर्वाद दिया। मंत्री, चारण, सूत, चारों ओर से घिर आये थे। पुरोहितों द्वारा बल, वीर्य और कीर्तिवृद्धि के मंत्रघोषों से आकाश गूंज गया था। पर कुछ लोगों का आक्षेप था कि युवराज के दिग्विजय पर जाते समय रानियां क्यों नहीं आयीं। कुछेक ने कहा, "अभी नयी-नयी हैं। उनको पति का इतनी जल्दी युद्ध पर जाना अच्छा नहीं लगा।" परन्तु कुछेक ने 'यह क्षत्रियोचित रीति नहीं' कह कर मेरी निंदा की।

दिग्विजय कार्यक्रम लगभग छह चंद्रमास तक चला। एक जंगल हमारे हाथ लगा। उसके निवासी मारे डर के भाग गये थे। दूसरा पड़ोसी राजा हार गया। हारने के उपरांत उसने यह स्वीकार कर लिया कि नदी के इस पार उसका अधिकार नहीं। उसके द्वारा भेंट किये गये घोड़े, रथ और आभूषण हस्तिनापुर पहुंच गये। पुरजनों ने शोभायात्रा निकालकर उसका स्वागत किया। एक ओर पहाड़ी लोग हारे और उन्होंने एक सौ कंबल अर्पित किये। कुरू राज्य के शौर्य की कीर्ति समस्त आर्यावर्त में फैल गयी। पांडुराज दिग्विजय करता हुआ बाहर ही घूम रहा था। एक दिन भी बीच में आकर हमें नहीं देखा। वह इतनी दूरी पर था कि घोड़े की पीठ पर बैठकर वहां से यहां पहुंचने में केवल एक दिन लगता था फिर भी वह न आया। उसके रथ के पीछे ही दस सुन्दरियां थीं। हारे हुए राजा अपनी-अपनी आश्रित दो, तीन, चार युवतियां भेंट स्वरूप देते जाते थे। युवराज को पत्नियों की याद करके नगर आने की क्या आवश्यकता है? पुरजनों के द्वारा गर्वपूर्वक कही ये बातें, दासियों से सुनकर, सखी मुझ तक पहुंचाती थी। यह भी सुनने को मिला कि उत्तर में हिमालय के गंगाद्वार के उस ओर युवराज ने एक गंधर्व को हराकर गीत, नृत्य और अलंकरण में चतुर पांच गंधर्व सुन्दरियां प्राप्त कीं। इसके अतिरिक्त सुनहरे रंग

की, भेड़ों के ऊन से बने सुंदर कशीदाकारी वाले दस महीन कंबल भी प्राप्त किये हैं।

माद्री प्रतिदिन मेरे यहाँ आती थी। हम दोनों का तो एक जैसा भाग्य था। उसी के बारे में बातें किया करती। मैं चुपचाप उसकी बातें सुना करती। जब उसे पता चला कि युवराज ने पहाड़ की गंधर्व सुन्दरियाँ जीत में भेंट स्वरूप प्राप्त की हैं तो वह जरा घबरायी। मैंने कहा, "कैसी भी सुन्दरियाँ क्यों न मिलें, तुम क्यों घबराती हो ?"

"यह बात नहीं, वे गंधर्व जाति की स्त्रियाँ काम-कला की बहुत ही रहस्यमय क्रीड़ाओं में निष्णात होती हैं। बेमन पुरुषों को भी उद्दीप्त करके तनी हुई प्रत्यंचा पर चढ़े तीर की भाँति तान देती हैं।"

"धनुष में यदि सहज शक्ति ही न हो तो तानने से क्या होगा ?"

"दीदी, आपको मालूम नहीं। हमारी तरफ़ धनुष पर डोरी चढ़ाते हैं।" कहकर वह हँस पड़ी।

"तो इतने दिन तक तुमने उस पर डोरी क्यों नही चढ़ायी ? चुप क्यों रही ?"

"जहाँ तक मेरी जानकारी थी मैंने यत्न किया। उससे महाराज को भी तृप्ति होती थी पर कोई फल नहीं निकला। जैसे कि वैद्य की औषधि रोगी को बहुत पसंद आने पर भी कभी-कभी रोग ठीक नहीं होता।"

"तुमने क्या-क्या किया ?"

माद्री ने शरमाते-शरमाते वर्णन किया। ऐसे-ऐसे ढंग कि मैं कल्पना तक भी नहीं कर सकती थी। बाद में वह सुनकर सखी तक आश्चर्यचकित रह गयी।

"माद्री, तुमने यह सब कैसे जाना ?"

"हमारे देश की बड़ी स्त्रियाँ यह सब बताती हैं। क्यों आपके मायके में आपको किसी ने बताया नहीं ?" उसने सहज भाव से पूछा।

मैंने अपने अज्ञान पर एक लम्बी साँस ली। माद्री से डाह हुई। मैंने सोचा, एक-न-एक दिन यदि यह पति के रोग को ठीक करके उससे लाभ उठा ले और मुझसे पहले गर्भवती होकर पुत्र पैदा करके पटरानी का पद आसानी से हथिया ले तो ? उपाय से मैंने उसे कुरेद-कुरेद कर पूछा। वह जितना जानती थी वह सब उसने बताया। तब से हम दोनों एकांत में बैठा करतीं। वह गुरु बनकर मुझे समझाया करती। मैं उस सबकी कल्पना करके ग्रहण करती। षंड पति के साथ रहने वाली किस स्त्री को उससे हिंसा नही मिलती। माद्री से काम-कला की बातें सुनने के बाद उठते-बैठते उद्दीप्त होकर मैं पागल-सी हो उठती। अंत में सुन्दर दृढ़काय तरुण युवराज का चित्र ही ओझल हो गया और विवाह से पूर्व ही, रुचि जाग्रत होने से भी पहले, तृप्त करने वाले उस ऋषि के साथ मन-ही-मन उन कलाओं का प्रयोग किया। उस ऋषि को किसी कला की आवश्यकता न थी। अब इस इच्छा से तड़पने लगी कि वह इस ओर क्यों नहीं फटकता।

छः मास बाद दिग्विजयी युवराज नगर लौटा। पूरा नगर अलंकृत हो उठा। घरों के दीवारों पर गेरू मिट्टी की पट्टियाँ बनायी गयी थीं। सड़कों पर पानी का छिड़काव करके धूल बैठा दी गई थी। जहाँ-तहाँ हुरे, छप्पर और तोरण बनाये गये थे। हाथी-घोड़ों को भी सजाया गया था। वृद्ध भीष्म ही मुख्यद्वार पर स्वागत को खड़े थे। मन न होने पर भी उस वातावरण में मेरा मन भाग लेने को हुआ। मैंने छज्जे में खड़े होकर देखा। माद्री ने भी देखा। विजय में प्राप्त सारी सामग्री गाड़ियों पर शोभा-यात्रा में लायी गयी। जीती हुई सुन्दरियाँ रथ में थीं। अन्त में था युवराज। वह थका हुआ था। लगता था कि वह किसी चिंता में डूबा है।

दूसरे दिन वह मेरे महल में आया। पिछले दिन मैं सपने देखती रही थी। एक नयी औषधि तैयार करने वाले वैद्य की भांति। वह पास आया। सामने बैठा। मुख पर अहंकार छाया था। उस दिन की मार से पहले वाला झूठ का आवरण फिर से घिर चुका था। मुझे असह्य लगा। मेरी दृष्टि से दृष्टि न मिलाकर उपेक्षा से कहीं और देखता हुआ बैठा रहा। मैं भी चुप ही रही। अंत में उसी ने कहा, "कुन्ती, छः मास हो गये मुझे दिग्विजय पर गये।"

मुझे और भी असह्य लगा। चुप रही। कुछ देर बाद फिर से उसी ने कहा, "सुना कुन्ती, छः मास तक दिग्विजय करता रहा।"

"छः बार मेरा ऋतुस्राव हुआ।" मेरे मुँह से अपने आप निकल गया।

उसने गर्दन घुमाकर मेरी ओर देखा। दायाँ हाथ उठाकर चटाक से मेरे गाल पर तमाचा मारा। गाल सूज गया और जलने लगा। क्षत्रिय की मज़बूत उँगलियाँ छप गयी थीं। मैं बोली नहीं। रोयी नहीं। जवाब भी नहीं दिया। पता नहीं कि आँखों से आँसू निकले कि नहीं।

पानी में कुन्ती ने अपना बिम्ब देखा। एक संवत्सर-चक्र यानी साठ साल बीत गये हैं। किसे याद रह सकता है। इतना तो अच्छी तरह याद है कि मैंने अपनी नज़र हटायी नहीं। उसकी क्रोध भरी आँखों को देखती ही रही। उसके गुस्से की आग पर मानो घी पड़ गया हो। उस दृष्टि से मानो धुआँ निकला। आग लगी और वह खूब जला। जलकर, झुलसकर, राख बनकर वह गिर गया। माथे पर पसीने की बूंदें चमकने लगीं। गर्दन के आस-पास सब गीला हो गया। मुझे लज्जा महसूस हुई। "महाराज, आपको गर्मी लग रही है।" कहकर मैं उठी और अपने पल्लू से उसकी गर्दन, पीठ अच्छी तरह पोंछी। वह बिलख पड़ा। 'कुन्ती' कहकर हाथ थामकर मेरी छाती पर अपना मुख रख दिया। एक बच्चे की भाँति। वह बोला नहीं। मुझे अपने पर क्रोध आया। मैंने उसे बाँहों में दबाकर कस लिया। उस क्षण ऐसा लगा, इस पृथा की-सी चौड़ी छाती, कंधे और बड़ा शरीर जो उसे सँभाल सके ऐसी शक्ति माद्री में कहाँ? दूसरी किसी भी स्त्री में नहीं। उसने मुझे अच्छी तरह कस लिया और मेरी छाती में मुँह छिपा लिया। मुझे भी अच्छा

लगा। कसे रतनों के बीच मुंह रखकर जोर से साँस लेता, गर्म-गर्म आँसू बहाता हुआ वह रो पड़ा। मुझे भी रोना आ गया। उसके लम्बे बालों वाले सिर पर मुख रखकर मैं भी रो पड़ी। दिग्विजय के समय लगे बाणों के चुभने से उसकी छाती और भुजाओं पर लगे घावों के निशान थे। कुछ घाव अभी पूरे ठीक तक न हुए थे, उनमें सूजन थी।

संध्या तक वह उसी प्रकार मौन रहा। बाद में जो गया तो एक मास तक लौटा नहीं। मैंने बुला भेजा। आया नहीं। माद्री के पास भी नहीं गया। दिग्विजय से आने के बाद उसके पास गया ही नही। गंगा नदी के उस किनारे पर्णकुटी बना कर रहने लगा। कुन्ती ने सिर उठाकर देखा। नदी के उस पार बाढ़ के कारण जो भूमि अब समतल बन चुकी है, अब भी वहाँ कुटी का निशान है, साठ साल का एक संवत्सर-चक्र बीतने पर भी। दिग्विजय कर लौटा युवराज दो-दो पत्नियों, दासियों और गंधर्व मोहनियों को छोड़कर पर्णकुटी में वास कर रहा था। वहाँ वेद पाठ होने लगा था। वह पुरोहितों से घिरा रहता था। इधर मेरा ऋतुचक्र जारी था। उस पर मुझे जो खीज थी और जो तिरस्कार भाव था वह समाप्त हो गया था। अब वह मुझे धोखा नहीं दे रहा था। मैं उसकी पूर्णरूप से सच्ची पत्नी बन चुकी थी। अब पर्णकुटी बनाकर क्यों बैठा है? दिग्विजय से लौटा और आत्म-विजय करने बैठ गया। जहाँ भी देखो यह क्षत्रिय ऐसे ही होते हैं। अति, हर बात में अति, जिसका कोई ठिकाना नहीं।

एक दिन अपने आप ही मेरे पास आया। धूप ढल गयी थी। संध्या छा रही थी। मुझे ऋतु-स्नान किए तीन-चार दिन ही बीते थे। भीतर आया और पास बैठकर उसने मेरी चौड़ी हथेलियों पर अपने हाथ रख दिये। मुख पर अहंकार न था। मेरे भीतर असह्य वेदना उत्पन्न करने वाला झूठ का पर्दा भी अब नहीं था। उसकी दृष्टि में मेरी उपेक्षा करके बच जाने का प्रयास भी न था। सीधा मेरी आँखों में आँखें मिलाकर शांत और दृढ़ स्वर में बोला, "कुन्ती, राज्य नहीं चाहिए। मैंने हिमालय जाकर तपस्या में अपने शेष जीवन बिता देने का निश्चय कर लिया है। यद्यपि मेरी आयु अभी अधिक नही। केवल चौबीस का हूँ। तुम्हारे बराबर, पर मन कह रहा है कि मैं अधिक जीवित नहीं रहूँगा। तुम्हारी अनुमति चाहिए। उसके बिना चले जाना धर्मविरुद्ध है।"

मेरी शक्ति, लम्बाई, गात्र सभी ढहकर भू-गत होता-सा प्रतीत हुआ। उस समय मुझे यह अनुभव हुआ कि पति के आत्म-सम्मान को इस प्रकार धूल में नहीं मिलाना चाहिए था। उसके दोनों हाथ थामकर बोली, "अपनी इस पत्नी को क्षमा कीजिए।"

"इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। मैंने सब सोच-विचार लिया।" उसका यह आत्मनिरीक्षण के बाद भीतर से निकला हुआ स्वर था।

"यदि आप तपस्या के लिए न जाएँ तो क्या हो जायेगा ?"

"यहाँ रहकर ही मुझे क्या करना है ! मैं हर मास होने वाले ऋतुस्राव को रोककर अंकुरित कर पाने में असमर्थ हूँ।"

मुझे भी कोई उत्तर न सूझा। पाप का भय मुझे भी चिपकने लगा था। चुपचाप बैठ गयी।

"तुम स्वयंवर में पसन्द करके हाथ थामकर मेरे साथ चली आयीं। पहली पत्नी ही धर्मपत्नी होती है। इसके अतिरिक्त ढेरों दहेज साथ में लायी थीं। तुम्हारी अनुमति ही मुख्य है।"

मुझे प्रसन्नता हुई। मात्सर्य का सन्तोष भी।

"कल आऊँगा।" कहकर युवराज सीधा चला गया। नदी के पार बनी पर्ण-कुटी की ओर।

अब मुझे उसके बिना रहना असाध्य लगने लगा। एक मास पूर्व उसने जो धोखे का आवरण तान रखा था उसके फट जाने पर हम दोनों के एक हो जाने के बाद मुझे उसको छोड़कर रह पाना दूभर लगने लगा। तपस्या को जाने वाले पति का अनुसरण करना चाहिए। नहीं तो, यहाँ रहकर करना भी क्या है ? उसे ऋतु-स्राव का जो पाप लगेगा उसका थोड़ा-बहुत अंश मुझे भी तो लगेगा ही। यह पाप उसने तपस्या से धोने का निश्चय किया है। यहाँ रहकर मुझे भी क्या करना है ! हर माह होने वाले ऋतुस्राव को रोककर अंकुरित न कर पाने के पाप से बचने के लिए मुझे भी कुछ-न-कुछ तपस्या करनी चाहिए। वैसे मैं तपस्या के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी। पर पाप के भय ने मेरे मन को जकड़ दिया था। मायके जाने या यहाँ रहने के विचार की अपेक्षा उसके साथ जाने का विचार ही मेरे मन में प्रबल होने लगा। दूसरे दिन जब वह आया तो मैंने अपने मन की बात उससे कही।

"कुन्ती, तुम राजकन्या हो। वह जीवन कष्ट का है।" यह बात उसने सामान्य रूप से समझाने के लिए कही थी। वस्तुतः मेरे निश्चय से उसके मुख पर एक आश्वस्तता दिखायी पड़ी। मुझे लगा या तो उसने औपचारिक रूप से मुझे साथ चलने से रोका अथवा एकदम मान जाने से उसके पौरुष को बट्टा तो लगेगा यही विचार होगा। तभी मुझे चिढ़-सी लगी।

माद्री भी चल पड़ी। "तुम तो सुकुमारी हो। तुम्हें तपस्या के कठोर जीवन की क्या आवश्यकता है ?" कहकर मैंने ही उसके मन को बदलने का प्रयास किया। वह बोली, "यहाँ रहकर मुझे भी क्या करना है ? और रहा भी कैसे जायेगा ?" बाद में उसने मुँह खोलकर कह ही दिया, "दीदी, गाड़ियाँ-भर दहेज लेकर आप आयी थीं और गाड़ियाँ-भर कन्या-शुल्क देकर मुझे लाया गया था। जब आप ही जा रही हैं, ऐसे में यदि मैं यहाँ रह जाऊँ तो लोग मुझे क्या कहेंगे।" मुझे उस पर दया आ गयी। दायीं बाँह में लपेटकर उसे छाती से लगा लिया। वह सिर झुकाकर

रो पड़ी। उसका शारीरिक गठन सचमुच जादू भरा था। हारकर जीत जाने का मुख पर एक कोमल भाव था। उसकी पलकों से झाँकती हुई आँसू की बूँदें, श्वेत-श्याम का मिलन, उसके आकर्षण को द्विगुणित कर रहा था। मैंने उसे और ज़ोर से छाती में कस लिया। "दीदी, युवराज पूर्ण रूप से आपके वश में हैं। ऐसा लगता है कि बिना तुम्हें पूछे वे कोई काम नहीं करेंगे। उनसे कहिए मुझे भी साथ ले चलें, नहीं तो आप ही को मुझे साथ ले चलना होगा।"

"तुम यह बात कैसे समझीं ?"

"क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकती !"

उसके तपस्या के लिए जाने की बात सुनकर सबसे ज़्यादा दुख भीष्म को हुआ। वह दिग्विजय करके आया था और भी दिग्विजय करके कुरुराज्य का विस्तार करके उसकी कीर्ति फैलाने वाला था। वही राज्य को ऐसे छोड़कर चला जा रहा है। उस राज्य का सारा भार सँभालने वाले बूढ़े ताऊ को चिंता हुई। होना स्वाभाविक ही था। पर बेटे ने ज़िद पकड़ रखी थी। ताऊ और बेटे में चर्चा हुई। बेटे ने अपनी तरफ़ से कहा, 'मैं कोई सदा के लिए नहीं जा रहा हूँ। वहाँ सिद्ध हैं। साधु हैं। वहाँ विशेष जड़ी-बूटियों के भंडार हैं। वैद्यकी के बड़े-बड़े रहस्य को जानने वाले योगी हैं। संतान प्राप्त करके ही लौटूंगा। तब तक राज्य का भार आप संभालिए।' इस पर उन्हें मानना ही पड़ा। हमारे पांडु राजा के बड़े भाई धृतराष्ट्र, इसी दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र ने तो छोटे भाई के पास आकर टटोल-टटोलकर हाथ पकड़कर, मेरे सामने ही अपनी अंधी आँखों से आँसू बहाते हुए कहा, 'तुम चले जाओगे तो राज्य का क्या हाल होगा ? मेरा क्या होगा ? समस्त कुरुकुल का भार तुम्हारे ऊपर है। तुम चल ही पड़े हो तो मैं आड़े नहीं आऊँगा। जल्दी लौट आना।' छोटे भाई से बड़ा भाई कोई दस-पन्द्रह दिन ही बड़ा था।

दोनों सासों, दादी और मुझ में कोई विशेष संपर्क ही नहीं था। दादी सत्यवती अपने घर में रहने पर भी किसी से मिलती ही नहीं थी। वे सदा अपने ध्यान में लगी रहती थी। यह समझ में न आता था कि उसे ध्यान कहना चाहिए या तपस्या। पहले वे मछेरिन थीं। अब वे सच्ची क्षत्रिय विधवा से बढ़कर परमार्थ पर लगी थीं। मेरी सास अंबालिका, धृतराष्ट्र की माता अंबिका भी वैसी ही थीं। वे अपनी सास के ही रास्ते पर चल रही थी। उन्हीं के सान्निध्य में रहती थीं। उन्हीं की सेवा में लगी रहती थीं। उनका घर-गृहस्थी में मन नहीं था। सास, बहुओं से भी ज़्यादा बोलती न थीं। सदा निवृत्त रहतीं। बेटे की तपस्या को जाने की बात सुनकर भला कौन दुखी नहीं होता। वे यह सोचकर दुखी हुईं कि राज्य कौन सँभालेगा। पत्नियाँ भी साथ जा रही हैं। पर यह सुनकर उन्हें समाधान हुआ कि वहाँ वैद्य होंगे, जड़ी-बूटियाँ होंगी।

जब हम लोग निकल पड़े तब पुरजन शोकग्रस्त हो उठे। राजा अभी केवल

चौबीस वर्ष का दृढ़काय तरुण है। दिग्विजय कर चुका है। माँ का नाम ऊँचा किया है। राजा का शौर्य अपना ही मानकर सब लोग गर्वपूर्वक बखान करते। उसकी अनुपस्थिति में कोई आकर यदि देश को जीत ले तो इस देश का सारा मान-सम्मान धूल में मिल जायेगा। उन्हें यही चिंता थी। जल्दी लौटने की कामना प्रकट करते सब लोगों ने नदी-तट तक आकर विदा दी। उन्होंने जल्दी लौटकर पुन: दिग्विजय करने की बात भी युवराज से कही।

हिमालय पहुंचने के उपरांत ही मुझ में और उसमें दाम्पत्य भाव पैदा हुआ। हम दोनों ने सोचा कि यह काम-भाव त्यागकर, पति-पत्नी दोनों के परमार्थ की साधना में लगने की स्थिति है। मैं और वह एक ही पर्णकुटी में रहने लगे। उस कुटी में लकड़ी के तख्ते जोड़कर, उन पर पुआल डालकर, उस पर मोटी चटाई बिछाकर कंबल से बनाये एक ही बिस्तर पर दोनों सोते थे। तब सदा अगले जन्म के स्वप्न देखा करते थे। माद्री पिछवाड़े एक अलग झोपड़ी में अकेली सोती थी। पति का सुख दोनों में किसी को न था। फिर भी सान्निध्य-सुख तो स्वयंवर में हाथ पकड़ने वाली पट्टरानी के लिए ही था। पति की वीर्यहीनता की बात मेरे मन में लगभग हट चली थी। बच्चे की भाँति सब तरह से समर्पित पति की इस हीनता के बोध को भुलाया कैसे जाय। इसी हीन भावना के कारण तो हम यहाँ आये थे। खैर, जो भी हो वहाँ मैं ही मालकिन थी। माद्री ने इसका अनुभव किया। मैं जैसा कहतीं वह करती, उसका कभी विरोध न करती। आज्ञा का उल्लंघन न करती। मैं भी उस पर दर्प न दिखाती। एक तरह से जीवन सुखी था। नगर से भीष्म बीच-बीच में, चावल, गेहूँ, गुड़, तिल, घी, कंबल, साड़ियाँ और धोतियाँ गधों पर बेहिसाब लदवा कर भेजते। महल जितने न होने पर भी खाना पकाने और सेवा के लिए नौकर-चाकर थे। होम की अग्नि सदा अखंड रखने को मंत्रज्ञ, पुरोहित भी साथ थे।

हस्तिनापुर से चलकर चौथे दिन हम गंगाद्वार पहुँचे। पति के साथ-साथ चलने पर भी मुझे थकावट नहीं हुई। 'माद्री थक गई' कहने पर उसने कहा, "दीदी, आप मर्द हैं।" मैंने कहा, "तुम घोड़े पर बैठ जाओ।" उसको यह सोचकर संकोच हुआ होगा कि हम दोनों के पैदल चलते रहने पर यदि वह घोड़े पर बैठ जाये तो वह हार जाएगी। महाराज बोले, "तुम कुंती के कहे अनुसार करो। टाँगों की लंबाई और वेग एक ही हो तो चलने की गति भी बराबर होती है।" बराबर से उनका अभिप्राय था कि मेरा गठन उनके समान ही था। रास्ते में मेरा हाथ पकड़कर उसने कहा: "आर्यों की पद्धति के अनुसार पत्नी को मायके के नाम से पुकारना चाहिए। आगे से मैं तुम्हें तुम्हारे जन्म नाम से पुकारूँगा। तुम्हारा नाम 'पृथा' है न। तुम्हारे शरीर का गठन देखता हूँ तो मुझे गर्व महसूस होता है।" मैं शरमा गयी। शरीर को जरा झुकाकर कदम रखने लगी। गंगाद्वार अभी कुछ दूर था कि ऊँची-नीची पर्वत श्रेणियाँ दिखायी पड़ने लगीं। मैं उन्हें देखकर मूक रह गयी।

मायके और ससुराल के आस-पाप के जंगलों की भाँति वहाँ हरियाली न थी। वहाँ आकाश की नीलिमा की भाँति और आकाश की नीलिमा को छूने वाली ऊँचा-इयाँ थीं, "मैंने पूछा यही है क्या ?"

पांडु बोला, "यह तो आरंभ है। इसे चढ़ने के बाद उस ओर और भी शिखर मिलते हैं। उनके बाद भी और शिखर मिलते हैं। दस-पंद्रह दिन उतराई-चढ़ाई के बाद एक घाटी मिलेगी जहाँ से देवलोक आरंभ होता है।"

मेरा उत्साह बढ़ गया। नये लोक में जाकर जीने का उत्साह। ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की इच्छा हुई। पिता, घर, बचपन, पति के घर का भार, इन सबसे मुक्त होकर नया जीवन जीने का उत्साह। मन में यह भाव उठा, वास्तव में यही सुख का राज्य है। पर यह समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हो रहा है। साथ चलती बीच-बीच में सखी कहती, 'पृथा, पता है तुम्हारे मुख पर कितना सन्तोष दिखायी दे रहा है।' क्या यह बात कहने की उसे ज़रूरत थी? एक-एक पर्वत के शिखर पर चढ़ते हुए आगे-पीछे दाएँ-बाएँ दिखने वाले नीले शिखर इसके गवाह थे। हाथ के सहारे की लाठी से आकाश में छेद करके, सुख को और अधिक पाने की इच्छा होती। स्थिति दो या तीन दिन रही। बाद में फिर से मन म्लान होना शुरू हो गया। उत्साह ठंडा पड़ गया। लाठी के सहारे क़दम रखते हरेक क़दम पर यह भाव बढ़ रहा था। शारीरिक थकान तो यह नहीं थी, पर असली कारण मालूम न था। पर्वत ऐसे ही होते हैं, कारण के बिना ही सुख का भाव भर देते हैं। बाद में दुख फिर उभर आता है। ऐसा क्यों और किसलिए होता है यह समझ में नहीं आता।

चढ़ते-उतरते तेरहवें या चौदहवें दिन हम अभीष्ट स्थान पर पहुँचे। पहले से भेजे गये सेवकों ने आश्रम का निर्माण कर दिया था। दक्षिण की ओर एक पर्वत था। उत्तर की ओर एक ऊँचा बड़ा-सा विशाल पर्वत था। बीच में एक घाटी थी। चारों ओर इलायची के पौधे, महकते फूल, स्मृति को उभार-उभार कर पागल बना देने वाले। आस-पास की पहाड़ियों पर फैले 'धव' के पेड़ों की सुगन्धि अत्यन्त आकर्षक थी। तरह-तरह के रंग-बिरंगे मनभावन फूल। 'हमें यहीं रहना है।' पांडु राज बोला।

मैंने पूछा, "महाराज जगह तो इतनी सुन्दर है कि कोई खुशी से पागल हो उठे। फूल और 'धव' के पेड़ तो रस्ते भर में थे। पर आपने इसी जगह को क्यों चुना ?" निरन्तर चलने से पाँव थक गये थे, पिंडलियाँ सूज गयी थीं। शरीर थक-कर चूर-चूर हो गया था।

पांडु भी थक गया था। लाठी पर भार डालते हुए लम्बी साँस लेकर बोला, "पृथा, तुम्हीं बताओ।"

मैंने सोचा, पर कुछ सूझा नहीं। मैंने कहा, "तुम्हीं बताओ।" एक कुटी जरा

बड़ी-सी थी। उस पर इतना सुन्दर छप्पर छाया गया था कि वर्षा का पानी एकदम बह जाता। भीतर कांस की घास से दीवार छायी गयी थी जिससे अन्दर कुटी सदा गर्म रहती। उसके पीछे एक और कुटी थी अपेक्षाकृत छोटी। पास ही यज्ञशाला थी और पाकशाला भी। नौकर-चाकरो की झोपड़ियाँ भी पास मे ही बनायी गयी थी। उसके पीछे घुड़साल थी। ये सब एक ही समतल भूमि पर नहीं थे। चढ़ाई-उतराई पर फैले हुए थे। छोटे-छोटे पत्थरो से सीढ़ियाँ बनायी गयी थी।

मैंने कहा, "आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नही दिया।"

"तुम्ही सोचकर बताओ कि इस स्थान को मैंने क्यो चुना?" मैं अपना ही प्रश्न भूल गयी थी। "क्यो चुना?"

अपनी लाठी ऊँची करके दिखाते हुए वह बोला, "सामने के पर्वत को देखो, वहाँ से देवलोक शुरू होता है। वह, आगे ऊपर वही है।"

मैंने बीच मे ही कहा, "इसका क्या मतलब?"

"हम लोग कुरू है। तुम लोग यादव हो। वे माद्र है। हमारे यहाँ जिस प्रकार भिन्न-भिन्न जातियाँ है। उसी प्रकार वहाँ एक देव जाति है जिसका राज्य इस पर्वत के ऊपर से शुरू होता है। सुना है वे हम आर्यों के मूल पुरुष है। अब भी उनके राजा का नाम इन्द्र ही है। पुरोहित का नाम बृहस्पति है—अग्नि, वायु आदि मत्रो मे जो बोले जाते है वही नाम है। उसी प्रकार की राज्य-व्यवस्था है। जड़ी-बूटियो की जितनी जानकारी उन्हे है उतनी निचले मैदानी प्रदेश वाले आर्यों को नही। उनको अमृत का रहस्य मालूम है। उन सबके मिलने का स्थान यही है। हमारे यहाँ होने वाली दाले, गेहूँ, चावल, वहाँ बहुत कम होती है। उन्हे देखने से उनके मूंह मे पानी भर आता है। उन्हे थोड़ी-बहुत वह चीजे देकर उनसे औषधि लेनी चाहिए। इससे मेरा रोग निवारण होकर बच्चे हो सकते है।" कहते हुए उसकी ध्वनि जरा क्षीण हो आयी।

मुझे ऐसा लगा कि मेरा आधार ही ढह गया हो। तपस्या के लिए इस ओर चल पड़ने पर मन को एक प्रकार की सान्त्वना मिली थी। पति, दाम्पत्य, संतान आदि सभी सुखो से ऊपर उठकर व्यर्थ होने वाले ऋतुस्राव के पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए तपस्या की भावना ही मेरे मन मे रह गयी थी। मेरे मन मे उसी के कारण यह भावना पैदा हुई थी, पर यह फिर से क्यो आशा अकुरित कर रहा है, यह सोचकर मैं बोली, "नही-नही, वह सब नही चाहिए।"

"क्यों, माँ बनने की इच्छा नही तुम्हें?"

"नही।"

"क्या कुरू वंश को आगे बढ़ना नही चाहिए? तुम इस वंश की बहू बनकर आयी हो। क्या तुम्हारे लिए ऐसा कहना ठीक होगा?"

यह स्पष्ट शब्दों में कैसे बताया जाये कि एक रास्ते पर जाना चाहिए अथवा दूसरा रास्ता निश्चित कर लेना चाहिए। किसी जंगली जाति के लोग औषधि देते हैं, इस आसरे से मन में आशा जाग्रत करना और तड़पना। तड़पन जब ज़्यादा हो तब पति पर गुस्सा या तिरस्कार। यह दुख क्यों ? लेकिन यह बात साफ़ शब्दों में उसे बता दी जाये तो वह दुखी होगा। कुरुवंश को आगे चलाने का भार लेकर मेरी छाती पर सिर रखकर वह आंसू बहाएगा और मेरी छाती भिगोकर मुझे भी दुखी कर देगा। अतः मैंने निश्चय किया कि मुझे अपने आप में निष्कामी हो जाना चाहिए। उसकी आशा को छेड़ना नहीं चाहिए। वासना उद्दीप्त नहीं करनी चाहिए। निश्चय कर लेना तो सरल था किन्तु कुरुवंश में बहू बनकर आने के बाद ऐसी निष्काम भावना से कैसे जिया जा सकता था ?

उसने कहा न कि वे पाँचों कुरुवंश के नहीं। उन्हें मैं पांडव कहने को तैयार नहीं। वे कुन्ती के पुत्र हैं। बस मैं अपनी आशाओं का गला घोंटकर, यह सोचकर यत्नपूर्वक इस वंश की बहू बनी हूं कि उसकी आशा सूखने न पाये। कुन्ती ने अपने जबड़े कसकर अपने आपको देखा। 'इतने वर्षों से इस वंश की बहू बनकर ही जी रही हूं। बहू की सन्तान पुत्र की क्यों नहीं ? अधर्म ज़बान से जीत सकता है। युद्ध क्षेत्र में नहीं। कुन्ती हारेगी नहीं।' उसने मन में सोचा। सबको मन से हटाकर अपनी गहराई को निहारने पर पानी में उसकी शुभ्र आँखों का बिम्ब निश्चल दीख पड़ा। पेड़ों की पत्तियों से छन-छन कर आती सूर्य की किरणों से लगा मानों उसका बिम्ब चूर-चूर हो गया हो। उसने सिर उठाकर मुड़कर देखा। सूर्य नीचा हो आया था। इसी प्रकार नीचा होते-होते अदृश्य हो जाता है। और अगले दिन प्रातः होने पर निकल आता है। कृष्ण ने मुझे उसके पास जाने को कहा है। सुबह सूर्योदय से कितना पहले ? वह अकेला नदी तीर पर आ जाता है। इसी बहते पानी में, यहाँ से ज़रा नीचे स्नान करके उगते सूर्य का ध्यान करता है। तब अकेली जाना। उसे मैंने सब बता दिया है। तुम जाकर चुपचाप खड़ी हो जाना। 'बेटा कर्ण' कहना। आगे बस इतना ही कहना कि पांडव तुम्हारे भाई हैं, यह मत भूलना। मुझे और कुछ नहीं कहना है, बस इतना ही कहना है।

कुन्ती ने धीरे से अपनी गर्दन मोड़ी। उसका बिम्ब पानी में यथावत झलक रहा था। पर पाँव, जाँघें, पेट, छाती सब काँप रहे थे। मन में प्रश्न उठा, 'कुरु-वंश की बहू का यह पुत्र कुरुवंश का क्यों नहीं ?' उसे लगा मानो कोई कह रहा हो, 'कुन्ती, तुम्हें हारना ही होगा। अपने-जाए पुत्र से ही।' बिम्ब थर-थर, काँपने लगा। उसने आँखें मूंद लीं, अपने को ज़रा स्थिर किया। कुरु वंश की बड़ी बहू का बड़ा बेटा, बड़ा कौरव होता तो कुन्ती को यह दुख न देखना पड़ता।

पर्वत ऐसे ही होते हैं। अकारण दुख उत्पन्न करते हैं। पहले पता नहीं चलता कि क्यों, किसलिए ? बाद में धीरे-धीरे, सब कुछ स्पष्ट होने लगता है। सामने

जहाँ देवलोक आरम्भ होता है, वहाँ के बड़े-बड़े पर्वतों को देखने पर, बहते झरने में नहाने के लिए उतरने पर, फूल बीनकर पिरोते समय वही यादें। कुछ समझ में आने से पहले ही अंकुरित होकर जो बढ़ा था उसे छिपा लिया था। अब समझ है तो अंकुर नहीं। निष्काम की साधना करनी चाहिए। अब लगता है कि असंयत क्षत्रिय से संयत ऋषि श्रेयस्कर है। सबसे पहले रहस्य भेद करने वाले को कौन भुला सकता है ? वह भी तब जब रहस्य भेद करने वाला साथी शक्तिहीन हो। रहस्य का अनुभव करके जानना चाहिए। केवल जानने की इच्छा करना षंड के पौरुष के समान होता है।

तब मैं अबोध थी लेकिन कौतूहल तब भी था। जीव का निर्माण कैसे होता है ? हाथ-पैर चलाकर किलकारियाँ मारने वाला जीव कैसे जन्म लेता है ? जब बहुत छोटी थी तब माँ से पूछा था तो वह हँस पड़ी थी। मुझे अपमान-सा लगा। पिता से पूछने पर उनकी दृष्टि पास खड़ी दासी पर पड़ी। फिर किसी से न पूछा। दत्तक लेने के समय मैं फटाफट बातें करती थी। कहीं किसी के यहाँ बच्चा होता तो उसे देखने की बड़ी ललक रहती थी। कहाँ से पैदा होता है, कैसे पैदा होता है, स्त्री के पेट से पैदा होता है। यह सुनने पर विश्वास नहीं हुआ। उसे पेट में रखने वाला कौन है ? मन का विकास हो रहा था। इस प्रकार यह लज्जा भी होने लगी कि किसी से पूछना नहीं चाहिए। पर कौतूहल नहीं गया।

दत्तक लेने वाले पिता के घर जब दुर्वासा ऋषि आये तो उनकी सेवा के लिए बेटी थी, इस कारण पिता की खुशी का ठिकाना न था। ऋषि ने पूछा, "राजन, तुम्हारी इस बेटी की क्या आयु है ?" पिता बोले, "पन्द्रह।" तब वे बोले, "कैसा सुन्दर गठन है। तुम भाग्यशाली हो। यह महावीरों की माता बनने योग्य स्त्री बनेगी।" पिता की खुशी का ठिकाना न रहा। मेरी खुशी का क्या कहना ! मैं महावीरों की माता बनूंगी। हाथ-पैर चलाकर किलकारी भरने वाले बच्चों की माँ बनूंगी। यह बात सुनकर मुझे अवर्णनीय प्रसन्नता हुई थी।

पिता ने आज्ञा दी, "बेटी, जब ऐसे ऋषि लोग आयें तो घर की बेटी को ही उनकी सेवा-सुश्रूषा करनी चाहिए। यह पद्धति तुम्हें मालूम ही है न ? उन्हें किसी भी प्रकार का असन्तोष नहीं होना चाहिए।" वे ज़रा क्रोधी स्वभाव के थे पर बहुत अच्छे थे। उनके बाल बिखरे थे। मैंने कल्पना की थी कि इनके बाल बाँधकर यदि सिर पर किरीट रख दिया जाये तो कितने अच्छे लगेंगे। मैंने बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा की। खूब घनिष्ठता हो गयी। उनसे कुछ पूछने की इच्छा हुई। आखिर एक दिन मैंने पूछ ही डाला, "मुनिराज, बच्चा कैसे पैदा होता है ?" उन्होंने घूमकर देखा, मानो उन्हें विश्वास न हुआ हो कि मैंने यह प्रश्न पूछा है। वे चुप रहे। मैं वहीं खड़ी थी। उन्होंने पूछा, "यह क्यों पूछ रही हो ?"

"आपने उस दिन कहा था कि मैं महावीरों की माँ बनूंगी। इसलिए जानने

की इच्छा हो रही है कि वह कैसा होगा ?"

"जब समय आयेगा, तब हो जायेगा।" मैं बोली नहीं, पर वहीं खड़ी रही मानो यह हठ हो कि उत्तर अवश्य चाहिए।

"बच्चा बड़ा प्यारा लगता है क्या ?"

"जी हाँ।"

वे फिर बोले नहीं। मैं भी वहाँ से हिली नही। कुन्ती ने लम्बी साँस ली। काँपता हुआ बिम्ब स्थिर हो गया, पर वह धीरे-धीरे डोल रहा था। हिल-हिलकर देख रहा था। बिना विशेष अर्थ के पूछा गया प्रश्न ! ऋषि बोले, "इधर आओ।" अपने पास बिठा लिया। मैं चुपचाप बैठ गयी। रोमश छाती। लम्बी दाढ़ी। दायाँ हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ा। "पास आओ, और पास आओ" कहा। पास बिठाकर "बच्चा बड़ा प्यारा लगता है ?" कहते हुए उन्होंने मेरे मुंह की ओर देखा। कसकर आलिंगन कर लिया। मुझे क्या हुआ ? उद्रेक ! नहीं, लज्जा आयी। पर लज्जा से अधिक कौतूहल था। एक प्रकार का सुख। घबराहट। 'पृथा, पृथा' करके उन्होंने थपथपाया। उसके बाद मुंह देखकर मुस्कराये।

अगले दिन उन्होंने ही पास बुलाया। मैं कुछ ज्यादा समझ न पायी। पर उसे फिर से अनुभव करने की इच्छा थी। रात-भर सोयी नहीं। पृथा, पृथा कहकर प्यार करने वाली सुखद दाढ़ी। दूसरे दिन भी वही हुआ। हर रोज ऐसा ही होता रहा। मुझे मालूम था कि वे बुलाएँगे। बुलाएँगे सोचकर मैं स्वयं पास जाकर खड़ी हो जाती। मेरे ऋतुचक्र का हिसाब मुझे मालूम था। एक दिन उनके सामने बैठे-बैठे उबकायी आयी, दौड़कर उल्टी करके आयी। उन्होंने हँसकर सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अब तुम्हें बच्चा अवश्य होगा।"

मैंने पूछा, "वह कैसे ?"

उन्होंने कहा, "धीरे-धीरे समझ में आ जायेगा।" संध्या के होम में भाग लेने के लिए जब पिताजी आये तब उन्होने ही कहा, "भोज, तुम्हारे एक दोहता पैदा हो रहा है। कानीन दोहता।" पिता के मुँह पर पहले सन्तोष दिखायी दिया। बाद में खिन्नता। उसके दो दिन बाद ऋषि चले गये। जाने से पूर्व आशीर्वाद देकर बोले, "पृथा, मुझे एक पक्ष पहले ही जाना था। पर तुम्हारी आशा पूरी करने के लिए ही रुक गया। यदि तुम्हें पुत्र पैदा होगा तो वह लोकोत्तर वीर बनेगा। पुत्री हुई तो तुम्हारे जैसी ही सुन्दर होगी।" पिता के सामने ऐसा कहकर राज-मर्यादा प्राप्त करके ऋषि चला गया।

मेरा कौतूहल और बढ़ गया। जब माँ की सखी अकेली थी तब उसे पास बुलाकर पूछा। उसने समझाया। ऋषि ने ऐसा-ऐसा किया न। वही तुम्हारे पेट में बच्चा बनकर अंकुरित हुआ है। बढ़ रहा है। नौ महीने में हाथ, पाँव, आँखें, नाक वाला शिशु बाहर आएगा। उसी मार्ग से। तब मुझे लगा यह सच है। पर

कैसे ? यह रहस्यपूर्ण कौतूहल तो शान्त न हुआ। एक प्रकार का उत्साह था। यूँ ही दौड़ने-भागने, पेड़ पर चढ़कर शाखाएँ हिलाने और तने में रस्सी बाँधकर झूला झूलने का उत्साह। मैं अपनी सखियों को इकट्ठा करके यही बात करती। बीच-बीच में उबकाई आती। चक्कर आते। हिसाब लगाती। एक, दो, तीन, चार ! माँ की सखी का कहना सच था। मेरे पेट के भीतर कुछ बढ़ रहा था। गर्व, आश्चर्य, सन्तोष का अनुभव हो रहा था। एक दिन पिताजी ने बुलाकर माँ के सामने ही मुझसे कहा, "पृथा बेटी, अब तुम महल से बाहर न जाना। बिना विवाह के माँ बन रही हो। यदि बात छिपायी न गयी तो हमारे राज-परिवार की मर्यादा नहीं बचेगी।"

मैंने पूछा, "क्यों नहीं बचेगी ?"

'क्यों नहीं बचेगी ? क्या हो जाता है ?' ऐसा लगा मानो पृथ्वी के भीतर के बिम्ब ने भी लम्बी साँस छोड़ी हो। पर्वत ऐसे ही होते हैं। दुख की पुनः याद दिलाते हैं। यही याद मुझे दुख दे रही है। उन्होंने सब कुछ निश्चय कर लिया था। "बेटी, दुखी न होना। ऋषि सदा पुराने विचारों के होते हैं। हमारे यहाँ क्षत्रिय बहुत प्रगति कर चुके हैं। विवाह से पूर्व माँ बन जाना अपमानकर है। उससे विवाह करने को भी कोई तैयार नहीं होता। हमारी इच्छा है कि तुम एक उपयुक्त और सुयोग्य राजा की पत्नी बनो।"

इस प्रकार बहुत कुछ तसल्ली की बात कहकर पिताजी ने मुझे तैयार किया। पैदा होने के बाद बच्चा रोया था। आँख, नाक, मुँह सब कुछ था। वह जीवित बच्चा। उसने हाथ-पैर हिलाये। मेरा कौतूहल शान्त हो गया। पर उस 'नये विस्मय' को वे लोग लेकर चले गये। माँ की विश्वसनीय सखी ने जिसने मुझे बच्चा होने का रहस्य स्पष्ट समझाया था। बच्चा राधा को, जिसका अपना कोई बच्चा न था, यह कहकर दे दिया कि वह यह कहे कि वह मायके से किसी बालक को ले आयी है। मेरा पेट खाली हो गया। कल उसी बालक के पास जाकर भिक्षा माँगनी होगी। बिम्ब पुनः काँपने लगा।

पर्वतवास जब पुरानी स्मृतियों को जगा रहा था तभी देवलोक से दो वैद्य आये। दोनों की देहयष्टि एक जैसी थी। लक्षण भी एक ही से थे। वे जुड़वाँ भाई थे। उनके पास सूती कपड़े नहीं थे। सदा भेड़-बकरी के ऊनी कपड़े पहनते थे। दोनों सदा साथ आते थे। यदि रोगी के हाथ-पैर में दर्द होता या हड्डी सरक गयी होती तो एक थामता और दूसरा हड्डी चढ़ाता। दोनों साथ-साथ जड़ी-बूटियाँ खोजते। एक पीसता दूसरा छानता। चावल, गेहूँ देखकर उनकी लार टपक जाती। पांडु राजा उनके लिए वे चीज़ें गदहों पर लदवाकर भेज देता। उन्होंने दवा शुरू की जिससे राजा में पुनः वीर्य की उत्पत्ति हो और सन्तान उत्पन्न हो सके। वे जब-जब आते, यही कहते : 'तुम्हारे पेट से जो बच्चा होगा वह हृष्ट-पुष्ट होगा।' मेरा पेट छूकर हँसते थे। उस देवलोक में हमारे समाज के समान स्त्री-पुरुष के सम्पर्क

के बारे में कोई संकोच नहीं था। महाराज बड़ी श्रद्धा से औषधि सेवन करते। मुझमें भी श्रद्धा उत्पन्न हुई। नये-नये सपने जागे। पहली बार जैसे गर्भ में नया अंकुर फूटा था, वैसा ही गर्व महसूस होने लगा। पर्वत की समस्त वायु को भीतर भर लेने की आशा जागी। पृथा को बच्चे सदा प्यारे लगते थे। दस, पन्द्रह, बीस '''चाहे जितने हों। देवलोक से बहकर आता पानी, धव, इलायची नाना प्रकार की लताएँ और पुरुषों को छूकर बहती पर्वतीय हवा उन वैद्यों की जड़ी-बूटी की औषधि—इनमें पांडु का वीर्य सशक्त होकर पृथा सन्तान प्राप्त नहीं करेगी? हुमककर गोद में आने को हाथ-पाँव चलाकर किलकारियाँ भरने वाले बच्चे होंगे। वहाँ की शीतल हवा मेरे अनुकूल थी। लेकिन मेरी सखी को खाँसी शुरू हो गयी। बाद में खाँसी ने दमे का रूप ले लिया। मैंने उसे देश लौट जाने को कहा परन्तु वह न गयी। देव-वैद्यों की दवा से भी ठीक न हुई। जब मैं उसकी मृत्यु के दुख से जल रही थी तब हस्तिनापुर से एक दूत के साथ समाचार आया। जो सौ गदहों पर अनाज, कम्बल और सूत आदि लदवाकर लाया था—वह पहले से ही पांडुराज का विश्वासपात्र था। वह सूचना देने के लिए ही स्वयं सामान के साथ आया था। हमें यहाँ आये एक वर्ष बीत गया था। भीष्म हमारे लौटने की आशा छः महीने से छोड़ चुके थे। वे यह सोचकर दुखी थे कि उनका पाला-पोसा कुरुवंश और हस्तिनापुर पुनः मुरझाने की स्थिति में आ गया है। इसे किसी भी प्रकार बचाये रखने को धृतराष्ट्र का विवाह कर दिया है।

पांडुराज ने पूछा, "लड़की कहाँ की है?"

"गांधार देश की। ऐसे अन्धे को हमारी तरफ़ का कौन-सा राजा अपनी बेटी देने आएगा? सुना है, गांधार की ओर शुल्क लेकर लड़कियाँ बेचते हैं। जैसे मद्र देश से आपके लिए दूसरी लड़की लायी गयी थी, वैसा ही किया गया है। रथों और अश्वों पर सेना गयी और गाड़ियाँ भरकर सामान ले गये थे। उन्होंने लड़की तो दे दी है।"

पांडुराज ने पूछा, "सुना है गांधार देश की लड़कियाँ हमारे आर्य देश के समान पति के कहे में नहीं रहतीं। क्या यह सच है?" उस समय पांडु के पास उस विश्वसनीय दूत के अतिरिक्त मैं थी और कोई न था।

"कहा तो यही जाता है। पर वह तो हमारे यहाँ की स्त्रियों से भी अधिक पति-भक्त है। पति अन्धा है, यह सुनकर उसने आँखों पर एक पट्टी बाँध ली है। तब से इस संसार की किसी भी वस्तु को उसने आँख से नहीं देखा। वैसे ही वह अपने भाई के साथ रथ पर बैठकर चली आयी। हस्तिनापुर में वह विवाह की वेदी पर भी आँखें बाँधे ही खड़ी हुई थी। अन्धे की भाँति ही उसने सप्तपदी में कदम रखे। पति तो जन्मान्ध हैं। पर उसने ऐसा क्यों किया? हस्तिनापुर की प्रजा उसे महा-साध्वी और पति-भक्त कहकर उसके चरणों पर गिरती है और उसका गुणगान

करती है।"

पांडुराज बोला, "भइया बहुत भाग्यवान हैं।"

मुझे भी ऐसा ही लगा। शारीरिक गठन दोनों भाइयों की एक ही जैसी थी। पर जिसकी आँखें ही न हों वह क्या प्राप्त कर सकता है? निशाना साधकर जो बाण न चला सके वह क्षत्रिय कैसा? ऐसे व्यक्ति को ऐसी पतिव्रता पत्नी मिलने का क्या अर्थ है? कुन्ती से अधिक गांधारी ने हस्तिनापुर में पूज्य स्थान प्राप्त किया। पूज्य स्थान प्राप्त करने का मुझे अवसर ही नहीं मिला। मैंने केवल इतना ही किया कि पति के साथ तपस्या करने यहाँ चली आयी। मुझे यह जानकर मन में डाह हुआ कि आँखों में पट्टी बाँधकर नगर में रहने वाली वह महासाध्वी कहलाने लगी। हाँ, कुन्ती को डाह हुई। क्या नहीं होनी चाहिए?

दूत धीमे स्वर में बोला, मानो कुछ रहस्य की बात बता रहा हो—"भीष्म स्वरं सिंहासन पर नहीं बैठेंगे। आप इधर चले आये। वहाँ विधिवत् शासन चलाने के लिए, मुद्रा अंकित करने वाले किसी की आवश्यकता है। इसलिए इस समय भीष्म पितामह ने धृतराष्ट्र को ही गद्दी पर बिठा दिया है।"

पांडु ने आश्चर्य से पूछा, "दृष्टिहीन को?"

"यह आपद्धर्म है। वस्तुतः शासन चलाने वाले पितामह ही हैं।"

इसमें मुझे कोई विशेष बात दिखायी नहीं दी। यदि राजकुमार धृतराष्ट्र चाहता तो राजमहल में दासियों का कोई अकाल न था। मुझे पता नहीं कि उसने अभी दासियों को बुलाना आरम्भ कर दिया था या नहीं। अब एक विवाह हो चुका है। मेरा मन सदा की भाँति स्मृतियों में लीन हो गया। इस बीच में सर्दी की ऋतु आयी। सर्दी माने हस्तिनापुर की सर्दी न थी। भोजनशाला में बैठकर केवल कल्पना मात्र कर सकने वाली सर्दी नहीं, आसमान से टूट-टूटकर सारे पर्वतों को ढक देने वाली धवलता। दक्षिण-उत्तर के देवलोक के पर्वत धवलिमा से भर गये। जहाँ हम थे वह जगह भी हिमाच्छादित हो उठी। सर्दी होने पर भी एक प्रकार से सुख था। बाहर आच्छादित हिम को देखकर खड़े होकर चिल्लाने का मन होता। तब देवलोक के बहुत-से लोग अपनी भेड़-बकरियों समेत घोड़ों और गदहों पर सामान लादकर नीचे उतर आये। उनके यहाँ असहनीय सर्दी पड़ती थी। हमारी वह घाटी उनके लिए अपेक्षाकृत गर्म थी। प्रत्येक सर्दी में उनमें से कुछ और लोग इस घाटी में उतर आते। कुछ अन्य दूसरी तरफ उतर जाते। जो लोग हमारी ओर उतरे थे उन्होंने कुछ दूर पर अपनी झोपड़ियाँ बना लीं। वहाँ तक पहुँचने का मार्ग आठ घड़ी का था। हमारे वैद्य भी उसी दल में आये थे। कभी-कभी वे शिकार के जानवर और कन्दमूल खोजते हुए हमारी ओर आ निकलते। हम उन्हें कभी-कभी आटे की रोटी देते तो वे खुशी से खिल उठते। हमारी-उनकी बोली में अन्तर था। उनकी भाषा हमारी समझ में न आती। उनकी भाषा वेदों की भाषा

जैसी थी। वे इतनी ज़ोर से बोलते मानो आकाश में रहने वाले देवताओं को अपनी बात सुनाना चाहते हों। जो भी हो, वे देवजन थे। उनमें कुल बत्तीस गण थे। एक-एक गण में रहने वाले स्त्री और पुरुष आपस में रह सकते थे। चाहे स्त्री हो या पुरुष, कोई भी किसी को बुलाए तो वह अस्वीकार नहीं कर सकता था। स्त्री-पुरुष के अधिकार समान थे। पैदा होने वाले सभी बच्चे गण के कहलाते। सबके लिए सभी पति थे और सबके लिए सभी पत्नियाँ। उनमें संकोच न था, लज्जा भी न थी। इस विषय में वे भेद-भाव नहीं बरत सकते थे। भेद-भाव बरतते तो गण का मुखिया दण्ड देता। माद्री ने मुझसे कहा, "एक तरह से उनका रिवाज अच्छा ही था। देखो, सभी स्त्रियाँ पीठ पर बच्चों को बाँध कर घूमती हैं। हमारी तरह कोई बाँझ नहीं।" बात मुझे भी ठीक ही लगी। उनके पास रूई के कपड़े नहीं होते थे। स्त्री-पुरुष सभी मोटे-मोटे कंबल ही पहनते थे। जब वे अपने को ढाँक लेते तो पहाड़ी लोगों के समान दीखते। कंबल हटाते तो उनकी सुंदर सुगठित देह दिखायी पड़ती। एकदम गौर वर्ण। हमारी तरह काला और गेहुँआ रंग नहीं था। वे कहते थे कि वे ही मूल आर्य हैं। हम से शुद्ध आर्य हैं। उनका कलाचार ही मूल कुलाचार है। नीचे मैदानी प्रदेश के आर्यावर्त के कई आचार-विचार वे जानते ही न थे। उनका कहना था कि हम कुलाचार छोड चुके हैं। इसी हीनभाव से वे हमें देखते थे। हमारे लिए वहाँ जन-सम्पर्क था ही नहीं। इसलिए यदि उनमें से कोई आता तो हम उसे बुला कर बातें करते। माद्री भी ऐसे अवसरों की ताक में रहती। अन्न से बने हमारे भोजन के लिए वे सदा लालायित रहते थे। उनके यहाँ यह सब पैदा नहीं होता था।

दूत के लौट जाने के बाद पांडु ने मुझसे भी बोलना बन्द कर दिया। सदा विचारमग्न लेटा रहता। ऐसी सर्दी पड़ रही थी कि पानी तक जमने लग गया था। रात के समय मुझसे ज्यादा-से-ज्यादा लिपटकर सोने लगा जैसे माँ की गर्म देह से चिपककर बच्चा सोता है। आरम्भ में कितनी बातें करता था। अब एकदम मौन हो गया।

मैं दिन में हिमाच्छादित पर्वतों को देखने जाया करती। माद्री भी मेरे साथ रहती। देव जाति के लोग यदि मिलते तो उनसे बातें करती। उनके आचार, विचार, काम-धाम आदि के बारे में पूछती और अपनी तरफ़ की बातें भी बतातीं। हमारी घाटी के पश्चिम की ओर दो घड़ी चलने पर एक गाँव था। वह सीधी उतराई पर पाँच-छः झोंपड़ियों का गाँव था। निचली नदी पार करने को बाँसों का पुल था। बात करने को वहाँ उस गाँव की स्त्रियाँ मिलतीं। कभी-कभी वे लोग स्वयं हमें खोजती आ जातीं। हमारा अनाज और रसोई देखकर उनकी लार टपकती थी। उनका आचार-व्यवहार कुछ और ही प्रकार का था। परिवार के सभी भाई एक लड़की से शादी करते। यदि चार भाई होते तो एक, दो, तीन या चार पत्नियाँ लाते। वे सभी भाइयों की पत्नियाँ होती थीं। चाहे किसी भी पत्नी

को संतान हो बड़े भाई का ही नाम चलता। माद्री ने कहा, "यह भी एक तरह से अच्छा है।" मैंने मुंह न खोला। एक बार एक आदमी से पूछा, "अरे भाई तुम्हारी कितनी पत्नियां हैं ?" तो उसने चार उंगलियां उठाकर दिखायीं। पास ही की स्त्री से पूछने पर कि तुम्हारे कितने पति हैं ? तो उसने छः बताए यानी वे छहों सगे भाई थे, और उनकी चार पत्नियां थीं। मैं और माद्री एक-दूसरे का मुंह देखने लगीं। माद्री ने सिर झुका कर कहा, "दीदी, चलो अपने आश्रम चलें।"

सर्दी की ऋतु बीत चली। हमारी घाटी में तभी हिम पिघलकर पानी बहना शुरू हो गया। पर्वत अब भी सफ़ेद ही थे। पर बीच में जहां-जहां हिम पिघलता वहां काला-काला दिखायी देता। एक रात जब हम सोये थे तब पांडुराज ने मेरी बांह पकड़कर कहा, "कुन्ती, हमें यहां आना ही नहीं चाहिए था।"

"क्यों ? इसलिए कि अभी तक दवा से लाभ नहीं हुआ ?"

"सिर्फ़ इतना ही नहीं। मेरे आ जाने से दादाजी ने धृतराष्ट्र का विवाह कर दिया। उसकी पत्नी भी गर्भवती हो सकती है। अब तक हो गयी होगी। अब उसको गद्दी पर बिठा दिया है। आगे चलकर कुरूराज्य उसके पुत्रों का होगा। पहले मैंने गद्दी पर बैठने के बाद दिग्विजय करके राज्य का विस्तार किया था। अब संभवतः मुझे इस पर्वत की तलहटी में ही रह जाना होगा।"

मुझे यह सूझा ही न था। घबराहट हुई। कपड़े-लत्ते, धन-धान्य की व्यवस्था होने से हम वहां आराम से थे। यदि केवल वह सब रोक दें तो इस देव जाति की अथवा निचले पहाड़ी लोगों की भांति केवल शिकार और कन्दमूल पर निर्भर रहना पड़ेगा और भेड़-बकरियों की ऊन काटकर कम्बल बुनकर लपेटने पड़ेंगे। महाराज के छोड़े निश्वास की आवाज सुनाई दी। मैंने कहा, "वापस चलें ?"

"वह भी सोचकर देखा। तपस्या के लिए जा रहे हैं, कहकर यहां आये हैं। तपस्या का फल क्या मिला ? कुछ-न-कुछ साधना करके जायें तो लोगों के और दादा जी के सामने जाने का मुंह भी रहता है। कम-से-कम एक बेटा हो जाता—" कहकर उसने मेरी बांह दबाई।

मैं बोली, "पर अभी दवा से लाभ तो नहीं हुआ है।"

"और कोई रास्ता नहीं ?" उसने मुझसे ही पूछा। पूछकर चुप हो गया। दूसरा कौन-सा रास्ता है। वे पर्वत मेरे मन में दुःख जगाते। तुरन्त एक बात मन में उठी। सखी के मरने के बाद से उस बात को जानने वाला और कोई नहीं था। पति से बता देने की इच्छा बार-बार मन में उठी थी, पर मैंने छिपाये ही रखी। अब मन में आया कि कह देना चाहिए। मैं बोली, "तुम्हें मालूम नहीं। वैसे मेरा एक पुत्र है। अब नौ-दस वर्ष का हो गया है।"

'कैसे ?'

"कानीन" कहकर मैं चुप हो गयी।

महाराज बोला नहीं। गुस्सा था या तिरस्कार मुझे समझ में न आया। मेरा मन तो हल्का हो गया। एक घड़ी बाद उसने पूछा, "कैसे हुआ ? वह अब कहाँ है ?"

उसके जन्म के बारे में बताया। माता-पिता ने उसे कैसे छिपा दिया, वह सब बताने के बाद मैं बोली, "पता नहीं, अब वह कहाँ है ? यह भी मालूम नहीं कि वह सूत स्त्री कहाँ है ? मेरे पिता मे जाकर यदि पूछा जाये तो वह अवश्य खोज करवा देंगे।" सब बताते-बताते उत्साह उमड़ पड़ा। अपने बच्चे को लाकर उसे गले लगा-कर पालने का सुख लूटने लगी। महाराजा बोला नहीं। बाहर पर्वतीय बयार बह रही थी। दोनों पर्वतों के बीच बहने वाली हवा। वह पास आया। अपना दांया हाथ मेरे वस्त्रों में डालकर मेरे पेट पर फिराते हुए पूछा, "कुन्ती, तुम्हारा पेट सदा प्रस्फु-टित होकर अंकुरित होने वाला पेट है पर बीज में शक्ति ही नहीं।" उसने बाद में आलिंगन में कसकर अपना मुख मेरे स्तनों के बीच रखकर गर्म-गर्म साँसें लीं। मुझे बहुत अच्छा लगा। मेरा मन उस बच्चे की कल्पना कर रहा था। हाथों ने महाराज के सिर को जोर से कस लिया। हवा यथावत् बह रही थी। भूत या भविष्यत समझ में न आ रहा था। हस्तिनापुर से आने के बाद पता चला था कि महाराजा की दादी सत्यवती का भी एक कानीन पुत्र था। अब वह महान वेदज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हो चुका है। मेरी दोनों सासों से नियोग करके मेरे पति और धृतराष्ट्र को जन्म देने वाला वही कानीन पुत्र है। जब वह हस्तिनापुर आता है, समस्त प्रजा उसके चरणों पर गिरती है। मेरे पिता ने मेरे पुत्र को क्यों छिपा दिया ? मुझ से भी छिपाकर रखा था। क्यों छिपाकर रखा था ? सत्यवती भी मछेरिन थी। वे लोग कानीन के रहते निस्संकोच लड़की से विवाह करते हैं। इन क्षत्रियों ने क्यों संकोच शुरू कर दिया ? हवा की साँय-साँय कम हो गयी। ऐसा लगा बड़े-बड़े पर्वत भी शान्त खड़े थे। पता नहीं बाहर चाँदनी थी या बादल छाए थे। प्रश्न उठा कि हस्तिनापुर में जिस बात का संकोच नही था वह हमारे यहाँ क्यों शुरू हुआ ?

मैंने कहा, "महाराज, मुझे जब आपकी पत्नी के रूप में दे दिया गया। मेरा बेटा भी आप ही का है न ?"

"पुरातन शास्त्र मैं जानता हूँ। पर अब उस बच्चे को ढूंढ़कर हस्तिनापुर ले जाने पर लोग मानेंगे नहीं। कानीन की स्वीकृति विवाह के समय ही हो जानी थी।"

मेरा मन विवाह के समय की याद कर रहा था। एक वर्ष के बच्चे को गोद में लेकर अथवा पाँव-पाँव चलने वाले बच्चे या बच्ची को पास खड़ा करके उस बच्चे के साथ वर के गले में माला डालती और उस माँ और बच्चे को यानी पत्नी और उस बच्चे को वह स्वीकार करता तो कितना अच्छा होता ! पिता ने माँ को दिलासा दी, "आजकल के लड़के वैसी लड़कियों को पसन्द नहीं करते।

नहीं तो मैं क्यों इसे छिपाता। क्या मुझे मालूम न था कि बेटी रोएगी।" पिता के ये वचन भी याद आए। यह कैसा बंधन। सब को तोड़ देने का मन हुआ। पर कहाँ जाये ? छाती पर मुँह रख कर सुबकियाँ लेने वाले निस्सहाय पति का सिर बाँहों में कसे निस्सहाय होकर लेटी थी।

पांडु बार-बार मेरे पेट पर हाथ फेर रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि वह बड़े प्यार से ऐसा कर रहा है। कुछ कहना चाहता था। क्या कहना चाहता है, यह बात तभी मेरी समझ में आधी आ गयी थी। उसे जोर से कसकर प्यार से उसके कान में मैं फुसफुसायी, "कहिए, महाराज कहिए।"

"हम से पहले यदि धृतराष्ट्र के बच्चे हो गये तो हम डूब गये समझो।"

"तो मैं क्या करूँ ? जैसा आप कहेंगे वैसा करूँगी।"

"मुझे विश्वास है कि तुम्हारा पेट कभी भी बीज को सुखाएगा नही। मुझे एक बच्चा चाहिए, जल्दी।"

शास्त्र की बात मैं अच्छी तरह जानती थी। अपना पुरोहित बीजदाता होता है। परन्तु हस्तिनापुर से हमारे साथ आया पुरोहित हड्डियाँ ठिठुरा देने वाली सर्दी सहन नहीं कर पाया और वापस चला गया था। स्वयं महाराज ही होम कर रहे थे। शीत ऋतु पूरी बीत जाने के बाद, हवा अनुकूल होने के बाद ही उसे वापस आना था। उसकी प्रतीक्षा करने का समय कहाँ था ? महाराज ने यह पहले ही सोच लिया था। यह बात बाद में मेरी समझ में आयी। देवलोक के ब्राह्मण मुखिया को कहला भेजा था। सनातन धर्म का मर्मज्ञ, लोगो का न्याय करने वाला और दंड देने वाला नियन्त्रक ही आया। उसे देखते ही मुझे दुर्वासा की याद हो आयी। उसी जैसी दाढी और उसी जैसा तेजस्वी मुख था। परन्तु शरीर पर एक मोटे कंबल का चोगा पहन रखा था। अधेड़ वय का था। स्वर ऐसा जो आकाश को भी सुनायी दे। हमारा भोजन उसे बहुत पसन्द आया। मुझमें इच्छा और आतुरता जागृत हो गयी थी। दुर्वासा के समय अनजान थी। केवल कौतूहल था। अब मैं समझदार हो चुकी थी। मन में एक आशा थी। मुझे सब मालूम था। इतने दिन की तड़पन विस्मृत नहीं हुई। पर मेरे पति की प्रार्थना पर आये उस यम में कोई आतुरता न थी। वह नित्य तृप्त था। नयी स्त्री में कोई विशेषता दिखायी नही दे रही थो। अब तक अपने गण की कितनी स्त्रियों को भोग चुका था।

उसने पूछा, "महाराज, आप नियोग की बात कर रहे हैं ! इसके लिए किस शास्त्र का आधार है ?"

"यदि पति अशक्त हो अथवा बच्चों के बिना मर जाये तो उसकी वंश-वृद्धि के लिए उसकी पत्नी···"

"ओह-हो"—कहकर वह जोर से अट्टहास कर उठा। सारा आकाश गूंज गया। बाद में बोला, "आप लोग मूल धर्म को अपने ढंग से प्रयोग में लाकर पता

नहीं कहाँ-से-कहाँ ले गये हैं। हमारे गण में यदि कोई मर जाये तो दूसरे और नहीं रहते क्या ? हमारे यहाँ ऐसी पद्धति नहीं। उसकी आवश्यकता भी नहीं। धर्म का ज्ञान मुझे अच्छी तरह है। इसीलिए मुझे धर्माधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया है।"

"धर्मराज, धर्म का एक और पक्ष देशाचार भी है। हमारी ओर का आचार इस प्रकार का है। एक के लिए एक ही पट्टरानी होती है। और भी रानियाँ हो सकती हैं, पर एक स्त्री के लिए एक ही पति होता है। अनेक का होना अनुमेय नहीं। मेरी प्रार्थना है कि आप हमारी पद्धति के अनुसार नियोग कीजिए।" महाराज ने बहुत ही विनीत भाव से कहा।

"अच्छी बात है। हमारे यहाँ यह पद्धति न होने से हमारे देशाचार में इसका निषेध भी नहीं किया गया है। केवल इतना ही कहा गया है कि ऐसी भावना ग़लत है कि पत्नी पूर्ण रूप से अपनी वस्तु या वैयक्तिक सम्पत्ति है। इससे मैं विवाह तो नहीं कर रहा हूँ। इसलिए आपकी प्रार्थना मेरे लिए निषिद्ध नहीं है।"

"पांडु महाराज ने मुझे शपथ दिलायी। मैं इस पुरुष के प्रति मोह न रखूँगी। इसके समीप न रहने पर भी मेरा मन पूर्ण रूप से पति में लीन रहेगा। संतान की इच्छा के अतिरिक्त मेरे मन में कोई इच्छा न रहेगी। गर्भधारण का निश्चय होते ही इसे पितृ समान मान कर दूर हो जाऊँगी···।"

मैंने शपथ ग्रहण की, झुर्रीदार मुख और बड़ी-बड़ी आंखों और सफ़ेद बालों वाले बिम्ब ने कहा। गर्भ ठहरने का निश्चय होते ही उससे दूर हो जाना चाहिए। शपथ के इस अंग का तो पालन हो गया। पांडु के साथ तो अन्याय करने का मन न था। पर शपथ की माँग असाध्य थी। अब तक जिन्होंने नियोग किया, यहाँ तक कि मेरी सासें अंबालिका और अंबिका के नियोगी को पिता मानना सम्भव हो सका होगा ? कृष्ण द्वैपायन ने भी क्या उन्हें पुत्रियों के रूप में कल्पना की थी ? यदि वह भावना आ जाये तो नियोग की क्रिया असाध्य नहीं रह जाती ? बिम्ब की झुरियाँ संकुचित होकर आँखें अधमुंदी हो गयीं। उस दिन से पांडुराज पिछवाड़े माद्री की कुटी में रहता था। धर्माधिकारी हमारी कुटी में पांडुराज के स्थान पर रहने लगा। मैं उसकी सेवा करती। गरम पानी से उसे नहला कर शरीर पोंछ कर वस्त्र धारण कराती। स्वादिष्ट भोजन अपने हाथ से बनाकर परोसती। अग्नि पर आहुति में डालने से भी अधिक ढेर-सा घी उसके गर्म-गर्म चावलों पर डालती। राजकुमारी के रूप में जन्म लेने के कारण मैं सेवा की अभ्यस्ता थी। मैंने सेवा की थी तो केवल दुर्वासा मुनि की। पति पांडुराज की सेवा करने की इच्छा थी, पर वह कभी इसके योग्य न हो पाया। उसके प्रति अनुकम्पा थी, करुणा थी, पर दासी के समान चरण सेवा करने की इच्छा कभी उठी ही नहीं। उस देव धर्माधिकारी की सेवा करने का मन क्यों हुआ ? न उसने माँगी थी और न उसकी इच्छा थी।

एक दिन उसने पूछा, "कुन्ती, क्या तुम्हारे देश में सभी पत्नियाँ अपने पति

की इसी प्रकार सेवा करती हैं ?"

"आप के यहाँ ?"

"एकमात्र पति होने से आप लोग ऐसा करती होंगी न ? हमारे यहाँ यह किसी को पता नहीं रहता कि रात को कौन-सी स्त्री आएगी या कौन-सा पुरुष आएगा। हमारे यहाँ की स्त्रियाँ सुख-भोग की अपेक्षा करती हैं। तुम्हारे समान सेवा नहीं।" उसने यह बात कही, केवल कही ही नहीं, उसका प्रेम उत्कट हो उठा। अपने भाव को उसने इस प्रकार व्यक्त किया। "जितने दिन तक मैं तुम्हारे साथ रहूँगा, वह मेरे जीवन का पुण्यकाल होगा।"

मुझे उबकाइयाँ शुरू हो गयीं। मुझे कितनी प्रसन्नता हुई। एक तड़के ही ऐसा हुआ। सर्दी में ही बाहर गयी। सभी ऊँचाइयाँ चन्द्र से भी अधिक प्रकाशमान होकर चमक रही थीं। शान्त और सौम्य प्रकाश फैला था। मैं सुध-बुध भूल कर देखती रह गयी। कभी न भूल सकने वाली याद ! तब समझ में नहीं आया था। अब समझ में आ रहा है। एकदम पक्की तरह समझ में आ गया। बहुत देर वैसे ही खड़ी रहने के बाद भीतर जाकर दरवाज़ा बन्द करके लेट गयी। उसने गाढ़ा-लिंगन में लेकर पूछा, "उबकाई आयी ? गर्भ ठहर गया लगता है ?"

मैं उसके कान में फुसफुसायी, "ऐसे मुँह मत खोलना। सूचना मिलते ही महाराज तुम्हें लौट जाने को कहेंगे।" उसने लम्बी साँस लेकर और ज़ोर से कस लिया।

उबकाई रोकना, वह भी ऐसी उबकाई, आसान बात न थी। माद्री बड़ी सूक्ष्म-ग्राही थी। पिछली कुटी में सोई थी। बड़ी चौकन्नी होकर ध्यान रख रही थी। क्या उसमें मात्सर्य नहीं था ? मैंने भरसक अपने को रोका। एक-एक दिन बिताने से, ऐसा लगता मानो उस पुण्य काल को बढ़ाने की साधना कर रही थी। दोपहर के समय पांडु कातर होकर पूछता, "कुन्ती, कोई संकेत दिख रहा है ?" मैं कहती, "अभी कुछ समय है।" पर कितने दिनऐ से टालना सम्भव था ? एक दिन उबकाई मेरे सारे नियन्त्रण तोड़कर बाहर आ गई। माद्री की कुटी को ही क्या सारे पर्वत को गुंजायमान करने के समान। माद्री ने ही पास आकर कहा : "दीदी, हमारे लिए राज्य बच गया।" उसके मन में वास्तव में सन्तोष था या मेरा सुख उसी दिन समाप्त कर देने की डाह थी। मैं यह नहीं समझ पायी। महाराज को वास्तव में सूचना देने वाली वही थी। वह दौड़ा आया। मेरा हाथ थाम लिया। भागकर धर्माधिकारी का हाथ भी थाम लिया। उसी दिन एक जवान बछड़ा कटवा कर धर्माधिकारी के लिए भोज का आयोजन करके कृतज्ञता व्यक्त की। खाना खाने तक साँझ हो गयी थी। अब अतिथि के लिए जाने को समय न बचा था। यह निश्चय हुआ कि वह रात वहीं ठहरेगा और सुबह जायेगा। परन्तु महाराज ने उसके लिए पुरोहित के लिए बनी झोंपड़ी में व्यवस्था की। वह स्वयं मेरे पास

आकर लेट गया। अपने वंश के अंकुर को पालने वाले पेट को सहला-सहला कर प्रसन्न होने लगा। मेरे दुख और तिरस्कार को समझने वाला वहाँ कौन था? अतिथि के जाते समय मैंने जोर से पाँव पकड़ कर दबाकर नमस्कार किया। महाराज ने कहा, "धर्माधिकारी, आप अपनी बेटी को आशीर्वाद दीजिए।"

स्वप्न समाप्त हो गया। दूसरा स्वप्न आरम्भ हुआ। आकाश को छू लेने, कहकहा लगाने वाले जीवन का स्वप्न। ऐसा लग रहा था कि पेड़-पौधे, तलहटी, पर्वत सभी कहकहे लगा रहे हों। बीच-बीच में डर भी लगता। हिम पिघलकर बहने लगा और समूचे पर्वत क्षेत्र में हरियाली छा गयी। शीत रहित प्यारी हवा। हस्तिनापुर से सामान लादकर गदहों के झुंड-के-झुंड आये। साथ में वही दूत आया था। उसने बताया, पुरोहित बीमार है। वह इस शीत प्रदेश में दुबारा नहीं आ सकेगा। गांधारी अभी गर्भवती नहीं हुई है। महल की दासियों में कानाफूसी चल रही है कि गांधारी और उसके भाई को उसके गर्भवती होने की बड़ी इच्छा है। उनकी पद्धति ऐसी है कि बहनों के बच्चों के पालन-पोषण का दायित्व मामा पर होता है। उसका भाई शकुनि वहीं आकर रह रहा है। वे ग़रीब पहाड़ी प्रदेश के लोग हैं। दूत को अंदेशा था कि यहाँ की सुख-समृद्धि मे प्रभावित होकर भी वह आया होगा। शीतकाल समाप्त होते-होते देवजन अपने डेरे और सारा सामान गदहों पर लादकर ऊपर चल दिये। निचली तलहटी में आसपास के गाँव के लोगों के अतिरिक्त हम लोग ही रह गये। फूल फिर से खिल उठे। पेड-पौधों की जड़ों से पानी रिसने लगा। मृदुल हरीतिमा छा गयी। वहाँ ग्रीष्म में न गर्मी थी और न अधिक सर्दी। खूब वर्षा होती। तेज़ी से बहता पर्वतों का पानी। वर्षा थम गयी और चारों ओर की हरियाली घनी हो उठी। मनभावन हवा के स्थान पर सर्दी शुरू हो गयी। तभी शिशु ने जन्म लिया। मनोवांछित पुत्र। हिम के समान शान्त मुख, गौर वर्ण। उसके धरती छूकर रोते ही मुझे उसे देखने की इच्छा हुई। काम-काज के लिए नौकर-चाकर और सहायता के लिए माद्री थी। फिर भी सौरगृह का सारा काम-काज पांडुराज ने संभाला। दोनों ओर बड़ी-बड़ी लकड़ियाँ डालकर सदा अग्नि प्रज्वलित रखी। बच्चे के रोते ही गोद में उठाकर पास सुलाकर थप-थपाकर प्यार करने वाला वही था। मंत्र बोलने वाला पुरोहित न होने से स्वयं महाराज ने होम किया। बच्चे के नामकरण के बारे में चर्चा हुई। उसने कुरू वंश के पुराने बड़े-बड़े नाम याद किये। अन्त में धर्म नाम निश्चित किया गया। इसलिए नहीं कि वह देव धर्माधिकारी की कृपा से पैदा हुआ था अपितु उसने पांडु महाराज को पितृत्व प्रदान किया था। महाराज ने ही यह विस्तार से बताया था कि सनातन धर्म के अनुसार इस शिशु का जन्म हुआ है। इस कारण यही नाम उचित है। बद्रिकाश्रम जाते समय जो ऋषि लोग हमारे यहाँ ठहरे थे उन्होंने भी इसी नाम का समर्थन किया।

सारी शीत ऋतु सौर-गृह में सुखद ढंग से बीती। इतना दूध उतरता था कि बच्चे के मुँह से भी बाहर निकल पड़ता। महाराज बीच-बीच में उसे कम्बल में लपेटकर गोद में लेकर प्यार करते। एक दिन उसने कहा, "कुन्ती, बच्चा बड़ा सुलक्षण है। स्वभाव से भी शान्त है। एक दिन भी रोया नहीं।"

"जी हाँ। बच्चों को हाथ-पैर चलाकर किलकारी भरनी चाहिए। रोना चाहिए। तभी अच्छा लगता है।"

"यह तो बड़ा गम्भीर है। शरीर का गठन भी दुबला-पतला है। तुम्हारी जैसी लम्बी-चौड़ी स्त्री के पेट से इतना सामान्य-सा बच्चा पैदा हुआ। इसका कारण वीर्य ही रहा होगा। जो भी हो, धर्माधिकारी शास्त्रों में निपुण है, योद्धा नहीं।" मैं बोली नहीं। उसके मन की बात जानने का कौतूहल हुआ। वही बोला, "देखो क्षत्रिय को कीर्ति वीर पुत्र से मिलती है। ऐसा लगता है यह परमार्थ वृत्ति का शिशु होगा। सही वीर्यवान को स्वीकार करके यदि तुम एक शक्तिशाली बालक को जन्म दो तो मुझे समाधान होगा।"

उसकी बात अनपेक्षित थी। जीवन में एक बार जो अवसर प्राप्त हुआ था उसी अवसर का महाराज एक बार फिर से अनुग्रह कर रहा था। वह यह नहीं जानता था कि यह कुन्ती ऐसे दस नहीं, बीस बच्चे पैदा करके देने को उत्सुक है। मैंने धर्म को उठाकर गले लगाकर प्यार किया। मैंने कहा, "महाराज, क्षत्रिय की आवश्यकता आपसे अधिक कौन जानता है। उसे पूरा करना पट्टरानी का कर्तव्य है। कहने में संकोच न कीजिएगा।"

यह बात होने के पन्द्रह दिन बाद वैद्यों की जोड़ी आयी। दोनों ने पांडुराज की परीक्षा की, साथ लायी नयी जड़ी-बूटियाँ दीं और कहा, "शक्ति में वृद्धि हो रही है। और एक वर्ष में पुत्रोत्पत्ति की शक्ति जागृत होगी। मुझे लगा कि महाराज को सन्तोष हुआ। उसके मन में उनके प्रति इतनी श्रद्धा जम चुकी थी कि चाहे जितने भी दिन, मास और वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़े, वह क्षीण होने वाली न थी।

महाराज ने ही स्वयं उनसे बात छेड़ी: "तुम्हारे धर्माधिकारी से मेरा बड़ा बेटा तो हो गया। पर जितना शक्तिशाली मैं चाहता था उतना शक्तिशाली यह नहीं। मुझे एक शक्तिशाली बेटा चाहिए। वैसा कौन दे सकेगा?"

वैद्यों ने सोचकर कहा, "हमारी सेना का मुखिया। हम सेना को मरुत गण कहते हैं। देवलोक में सबसे बलशाली को ही हम सेना के मुखिया के रूप में चुनते हैं।"

"क्या वे मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे?"

"यदि हम कहें तो वह मान सकते हैं। यह सब ऐसे दिनों में होना चाहिए जब देवलोक को किसी शत्रु का डर न हो। यदि इन्हीं को वहाँ भेज दें तो उनके किसी कार्य में व्यवधान नहीं पड़ेगा।"

महाराज ने ज़रा सोचकर कहा, "इन्हें नहीं भेजा जा सकता। उन्हें ही यहाँ भेजने का प्रबन्ध कीजिए। वे जो माँगेंगे वही मैं उन्हें भेंट करूँगा।"

वे बोले, "आप भी हमारे साथ चलिए, उनसे बात करेंगे।"

दो सेवकों को साथ लेकर महाराज भी उनके साथ उत्तर की ओर का पर्वत चढ़कर देवलोक गया। उसे लौटने में पन्द्रह दिन लगे। तब माद्री ने बताया, "इस साल की सर्दी में ऊपर से देवजनों का एक दल आया है।" वह पिछले वर्ष वाला दल न था। इनमें भी सब स्त्रियाँ सब पुरुषों की पत्नियाँ होती हैं।

पन्द्रहवें दिन महाराज लाठी टेकता हुआ लौटा। जिस काम को गया था वह पूरा हो गया था। सेनापति ने सातवें दिन आने को कहा था। "कुन्ती, वह कितना बलशाली है, मालूम है? मैंने अपने आर्यावर्त में इतना बलिष्ठ व्यक्ति कहीं नहीं देखा। इतना लम्बा है कि मैं सीधा खड़ा होकर पूरे हाथ ऊँचे करूँ तो उसे छू पाऊँगा, इतना लम्बा। लम्बाई के अनुरूप ही उसके शरीर का गठन भी है। इतनी ही लम्बी भुजाएँ हैं। हाथ-पाँव भी वैसे ही मज़बूत। ऐसे वीर्यवान का गर्भ धारण करना तुम्हारे लिए भी कष्टप्रद हो सकता है।"

"क्या मुझे कुरू वंश के वीरों की माँ नहीं बनना?"

महाराज को सन्तोष हुआ। थकान कम होने लगी थी। मुख पर हँसी छा गयी।

"आप इतने क्यों थके हैं?" मैंने पीठ सहलाते हुए पूछा। वह मेरी गोद में सिर रखकर लेट गया। मैंने कसकर आलिंगन करके पीठ मली। उसने बच्चे की भाँति पाँव मोड़कर मुँह मेरी गोद में छिपाकर आँखें मूँद लीं। हर पल वह लम्बी साँस ले रहा था। मैंने पूछा, "इतना क्यों थक गये?"

"देवलोक हमारे लिए अनुकूल नही बैठता। सामने वाला जो पर्वत है न, जब उसे पार करने लगा तभी थकान हो गयी थी। चलने की बात तो दूर, चुपचाप भी बैठो तो भी साँस फूली रहती है। वहाँ तो उठ ही नहीं सका। पाँव पसारकर पड़ा रहा। साथ में यदि वैद्य न होते तो सम्भवतः मैं मर ही जाता। उन्होंने पास ही की किसी बूटी को मसलकर रस निकालकर पिलाया। थोड़ा विश्राम करके धीरे-धीरे चले। सिर्फ़ मैं ही नहीं, मेरे साथ गये दोनों सेवक भी शिथिल पड़ गये थे। पता है ऊपर कैसा है? शीतकाल में यहाँ के पर्वत हिमाच्छादित दिखायी देते हैं न! वहाँ तो गर्मी की ऋतु में भी ऐसे ही दिखायी पड़ते हैं। चारों ओर पर्वत-ही-पर्वत दिखायी पड़ते हैं। चमकने वाली सफ़ेद चोटियाँ हैं। असह्य सर्दी पड़ती है। हम तो चलते ही गये। वहाँ की दिशा और रास्ते तो केवल देवजन ही जानते हैं। उन वैद्यों ने कहा, 'इस देवलोक में आकर हमसे जीतना किसी के लिए सम्भव नहीं।' यह बात बिल्कुल सत्य है। वहाँ चढ़ने में ही मेरे जैसा वीर थककर चूर-चूर हो गया। उन्हें जीतने की बात ही कहाँ से उठती है! उनके नगर पहुँचने के बाद तीन दिन

तक मैं उन वैद्यों के घर में ही विश्राम लेता रहा था। फिर भी दिल की धड़कन कम न हुई। कुछ दिन और ठहरने की इच्छा थी परन्तु शीघ्र मारुत से बात करके लौट पड़ा। अब तो पर्वत उतरने में थकान लगी है। हृदय की धड़कन कम हुई ही नहीं। वैद्यो ने कहा है कि पूरा विश्राम लो।"

मैंने भी वही कहा। एक तरफ़ शिशु धर्म को लिटाया और दूसरी बगल में महाराज को लिटाकर हाथ-पांव की दुबारा मालिश की। महाराज को चैन पड़ा। वह बोला, "कुन्ती, तुम राजकुमारी हो। इससे पहले तुमने कभी इस प्रकार सेवा नही की।" तब मैंने कहा, "भविष्य में ऐसे ही सेवा करूँगी, महाराज।" वह बच्चे के समान नही, रोगी के समान सो गया। मेरे मन में करुणा और वात्सल्य जागा। मन में यह विचार उठा कि भविष्य में इसकी सेवा करनी चाहिए। उसे रात को अच्छी नींद आयी। पर दो-एक बार नीद में 'कुन्ती-कुन्ती' कहकर बड़-बड़ाया। पाँच-छः दिन में थकान उतर गयी। मुख पर कान्ति लौट आयी। लेकिन थोड़ी-सी चढ़ाई पर भी दम फूलने लगता। पर वहाँ उतराई-चढ़ाई के बिना सम-तल प्रदेश था ही कहाँ? वह बाहर कहीं नही जाता, चुपचाप कुटी में रहने लगा।

ठीक सातवें दिन दोपहर के ढलते देवजनों का सेनापति आया। साथ दस अंगरक्षक थे। मैंने सोचा कि ऐसे शक्तिशाली को अंगरक्षकों की क्या आवश्यकता है? आमने-सामने खड़े होने पर मुझ जैसी लम्बी स्त्री को भी गर्दन उठाकर देखना पड़ता था। जैसा कि पांडुराज ने बताया था वैसा ही बलिष्ठ शारीरिक गठन और सुदृढ भुजाएँ। मुख पर कठोरता थी पर क्रूरता न थी, शान्त भाव था। 'यही आपकी पत्नी है।' कहते हुए उसने मेरी ओर देखा। देखते समय ही आँखों में आशा झलक रही थी। पर्वत की घाटी में गूँजने वाली वायु के समान ध्वनि। महाराज ने औपचारिकता दिखाते हुए स्वागत किया। रात के भोजन के लिए एक रसोइए को बकरा काटने को कहा। महाराज ने उससे वहाँ देवलोक में जिन-जिन से परिचय हुआ था, उनकी कुशल-क्षेम पूछी। मैं ही घर की मालकिन थी इसलिए मैंने ही आगे बढ़कर उसका सत्कार किया। माद्री अपनी कुटी में ही रही। महाराज स्वयं बच्चे को ले जाकर उसकी गोद में दे आये।

रात को भोजन के बाद महाराज ने पहले की भाँति मुझे शपथ दिलायी। "इस पुरुष के साथ मैं मोह न रखूँगी। जब वह मेरे पास होगा तब भी मेरा सारा मन पति में···। सन्तान की अपेक्षा के अतिरिक्त मेरे मन में कोई इच्छा···। निश्चय होते ही मैं इसे पिता समान मानकर···।"

उस मारुत का देह-सौष्ठव तो मेरी कल्पना से भी परे था। पत्थर की तरह दृढ़ देह। मुझे लगा कि मैं उसे सँभाल न पाऊँगी। इतने दिन तक पृथा नाम धारण करके मैं अपनी लम्बाई-चौड़ाई और गठन पर गर्व करती थी, लेकिन अब वह गर्व खण्डित हो रहा था। उसने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?" मेरे मुँह से निकल

पड़ा, "पृथा।" उसने कहा, "ओह् हो ! तो इसका अर्थ यह है कि भारी-भरकम शरीर वाली। तुम्हारे देश में तुम्हारा शारीरिक गठन ही लम्बा-चौड़ा माना जाता है।" तब मैं बोली, "तुम्हारे जैसा नहीं।"

"हमारी तरफ़ की स्त्रियों को देखा है ?"

"शीतकाल में इस ओर एक दल आया था। तब देखा था।"

"हमारी ओर भी तुम्हारी-जैसी लम्बी-चौड़ी स्त्रियाँ नहीं होतीं। तुम्हारा नाम पृथा उचित ही है।" कहते हुए उसने मेरे हृदय में इच्छा जागृत की। मुझे पांडुराज के प्रति कृतज्ञता महसूस हुई। कैसा चुनाव ! मेरे शरीर को मसलकर चूर-चूर करके और मेरे जोड़-जोड़ को तोड़कर वह आनन्द देगा, यह भाव उठा। आज तक ऐसा भाव मन में नहीं उठा था। उसकी चरणदासी होकर सेवा करने की इच्छा हुई। दूसरे दिन हंडों में पानी गरम करने को कहा। मैंने स्वयं उसे स्नान-घर में बिठाकर पानी की शीतोष्णता देखकर, जी भरकर खूब नहलाया। पत्थर से उसका शरीर रगड़कर साफ़ किया। स्नान कराकर बिस्तर पर बिठाया। मुझे ही स्वयं भोजन तैयार करना चाहिए, सामने बैठकर परोसना चाहिए और भोजन के बाद हाथ धुलाने चाहिएँ। पर वह अधिक सोने की प्रवृत्ति वाला नहीं था। सुबह के भोजन के उपरान्त अपने अंगरक्षकों को लेकर शिकार को चल पड़ा। मैंने उसे जाते हुए देखा। कितना भारी-भरकम डील-डौल था। फिर भी पर्वत की खड़ी चढ़ाई पर खरगोश की तरह फुर्ती से चढ़ जाता। थकान का नाम भी न था, विश्राम भी न करता। कंधे पर धनुष लटकाए, हाथ में तलवार लिये चला गया। मैं खड़ी-की-खड़ी रह गयी। शाम तक कंधे पर शिकार में मारा शेर लटकाकर लौट आया। साथी लोग कटे मांस के टुकड़े लेकर लौटे। उन्हें शिकार में एक जंगली भैंसा और चार हरिण भी मिले थे। पांडुराज को बड़ी खुशी हुई। उसने पूछताछ की : "आपको यह कहाँ मिला और कैसे मारा ?" मैं स्वयं रसोई में गयी और देखभाल की।

उस दिन रात तक मुझमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया था। माद्री की बतायी सब कलाएँ याद हो आयीं। उनका प्रयोग करके मैंने उसकी बराबरी पर पहुँचने का प्रयास किया। मुझे भी लगा कि मैं बराबरी पर रही। आधी रात को वह बोला, "पृथा, आज तक मुझे यह अनुभव नहीं हुआ था कि स्त्री की बाँहों में रहते हुए इतना क्षेमभाव भी रहता है। बच्चे के समान सुरक्षा के लिए पुरुष की बाँहों में छिपने वाली स्त्री से क्या सुख मिलेगा। खाक।"

मुझे तुरन्त समझ में न आया। धीरे-धीरे समझ में आ गया। आँसुओं से आँखें भर आयीं। यह समझ न पायी कि उसके मुख को छाती से लगा लूँ या उसका सिर अपनी गोद में रख लूँ या उसके पाँव कसकर पकड़ लूँ। वह बोला, "देवलोक की किसी स्त्री में तुम्हारी दासी तक बनने की भी योग्यता नहीं।" मेरे

भीतर सार्थकता का भाव भर उठा। मैं अपनी शक्ति समझ गयी। मुझे पूर्ण रूप से समझ में आ गया कि वह क्या कह रहा है। प्रचंड बलशाली शेर को मार गिराने वाले वीर को मुझमें क्षेमभाव प्राप्त हुआ। वह क्षेमभाव मेरी बाँहों में है ? या सारे शरीर के डील-डौल में ? एक साधारण डील-डौल का व्यक्ति यदि कहता तो सही लगता। पर मेरी जैसी स्त्री को ही जब उसे छूने को हाथ ऊँचा करना पड़े तो ऐसे व्यक्ति के यह कहने में भी सच्चाई महसूस हुई। तब मैं अपनी शक्ति को समझ पायी। उस सारी रात मैं उसी सन्तोष से सपने बुनती रही।

प्रातः उठकर फिर से उसे गर्म पानी में स्नान कराया। सेवा की, उपचार किया। वह शिकार पर न गया। मुझे झोंपड़ी में बिठाकर मेरा हाथ थामकर मेरे मुख को निहारता रहा। मैंने लज्जा से सिर झुका लिया। हाथ बढ़ाकर अपनी चौड़ी हथेलियों में मेरा मुख लेकर पूछा, "पृथा, तुम मेरे साथ देवलोक चलोगी ? हमारी पद्धति के अनुसार गण अपनी मुख्य पत्नी रख सकता है। तुम मेरी पत्नी बनकर रह जाना।" मैं उसकी ओर देखती रही। वह विनीत था। मेरे मन में उसके प्रति जो भाव उठा उससे भी अधिक समर्पण भाव उसकी आँखों में था।

मैं बोली, "आप लोगों के विवाह का ढंग ही कुछ और होता है।"

उसने तुरन्त उत्तर न दिया। कुछ देर बाद पता नहीं क्या समझकर, "अगर तुम चाहोगी तो अपनी गणिकाओं से सम्बन्ध भी न रखूँगा। तुम अकेली ही मेरी होकर रहना। वचन देता हूँ।" कहते हुए उसने मेरा हाथ थाम लिया। मैंने अपना सिर झुका लिया। "मुझे और बड़ा वीर बनने की इच्छा है। तुम्हारी सुरक्षा में मैं बन सकूँगा।"

मैंने सिर उठाकर कनखियों से उसे देखा। तब वह बोला, "अभी समय है, ज़रा सोचो।" मैं बोली नहीं। मौन छा गया। वहाँ बैठने से वह ऊब उठा। मेरी कुटी में रखे अपने धनुष-बाण और तलवार लेकर बाहर चला गया। भरपेट खाकर सोये अंगरक्षकों को भी उसने नहीं बुलाया। मेरे भीतर एक सार्थकता का भाव फूटकर बहने लगा। स्वयंवर में मेरा हाथ थामने को सैकड़ों राजा और राजकुमार एकत्र हुए थे। तभी मुझ में गर्व का भाव उठा था। पर वह अब समझ में आया। स्वयंवर में हर प्रकार के लोग आते हैं। सभी राजा इकट्ठे होने पर जुए और मद्यपान में डूब जाते हैं। कोई भी अनन्य उत्कटभाव से नहीं आता कि इसका हाथ थामने से मैं सार्थक हो उठूँगा। अब उन सबसे बढ़ा-चढ़ा वीर्यवान परम भक्तिभाव से मेरे हाथ की याचना कर रहा है। अपने गण की दूसरी स्त्रियों को भी त्याग देने का वचन देने को तैयार है। दूसरी स्त्रियों से सम्बन्ध हमारे आर्यावर्त का कौन-सा क्षत्रिय नहीं रखता ? ऐसा लगा कि आज पृथा धन्य हुई। पौरुष और शक्ति से भरे ऐसे ही दस बच्चों को जन्म देकर तृप्ति पूर्वक जीने की इच्छा हुई। 'पांडुराज, मैं जाती हूँ। मैं दस पुत्र पैदा करके तुम्हें दान में दूँगी। चाहो तो तुम

माद्री का किसी से नियोग करा लो।' कहने का मन हो आया। 'हाँ' कहते ही वह मुझे कंधे पर बिठा देवलोक के पर्वत को सिंह की भाँति फलांग जायेगा। कुटी में अकेली बैठी थी। बाद में मन का भार सहन न कर पायी और बाहर गयी। माद्री कभी न रोने वाले धर्म को गोदी में उठाए उतराई के पास खड़ी थी। वह बच्चा माद्री की गोदी के अनुकूल ही दीखता था। वह मेरी लम्बाई-चौड़ाई के अनुरूप नहीं दीखता था। पास गयी। बच्चे ने मेरी ओर हाथ बढ़ाये। जाकर उठा लिया। "मसल डालने वाला डील-डौल है न ?" कहकर माद्री मेरी ओर देखकर हँस दी। मैं परवश हो गयी।

उस रात भी उसने याचना की, "क्या निश्चय किया ? तुम्हारे मना करने पर भी तुम्हें कंधे पर डालकर देवलोक ले जाने की शक्ति मुझ में है। बीमार पांडुराज मुझे पकड़ नहीं सकता। तुम्हारे सेवकों में मुझे रोकने की शक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरे दस अंगरक्षक भी हैं। पर मैं समझ चुकां हूँ कि तुम्हें उठाकर ले जाना सम्भव नहीं। उठाकर ले जाने योग्य कोई भी स्त्री मेरे लिए अब से तुच्छ है। तुम्हारे स्पर्श के बाद यह बात मेरी समझ में आ गयी है।"

मेरी बोलने की शक्ति जाती रही। उसने बार-बार मुझसे बोलने के लिए कहा। थके हुए व्यक्ति के समान उसने लम्बी साँस ली। "तुम्हारे पास सोचने को अभी समय है," कहकर उसने एक ही बात से अपने को और मुझे सांत्वना दी। दोनों मौन और निश्चल होकर सो गये। कुटी के बाहर पर्वतीय हवा बह रही थी। कभी-कभी दूर से रीछ की गुर्राहट सुनायी देती। जब मुझे नीद आयी तब पौ फट रही थी। वह भी सारी रात करवटें ही बदलता रहा था।

जब मैं सुबह उठी तो वह नहीं था। उसका धनुष-बाण और तलवार भी नहीं थे। मैंने उठकर स्नान किया। उसके अंगरक्षक पिछले पर्वत पर खड़े होकर उंगली से कुछ दिखा रहे थे। वह एक धनुष पर तीर चढ़ाकर एक निशाना लगा रहा था। उस बचपने से ऊब-सी लगी। पिछले वाली कुटी की ओर नहीं गयी। धर्म को भी गोद में न लिया। माद्री से भी बात न की। चुपचाप अपनी कुटी में चली आयी। उसी तख्त पर बिछे कोमल सूखे पुआल और उस पर चटाई और कम्बल बिछे गर्म कोमल बिस्तर पर बैठ गयी। थोड़ी देर में पांडुराज आया। उसका मुँह उतरा हुआ था। मेरे पास बिस्तर से नीचे बैठ गया। सिंहासन के पास खड़ी प्रजा के समान। मैं चुपचाप उसका मुख निहारती रही। लगा उसे बात करने में कष्ट हो रहा था। वह बड़े कष्ट से बोला, "कुन्ती, कल सुबह और आज रात वह तुम से कुछ कह रहा था। मुझे भी सुनायी दिया। उसकी ध्वनि ही ऐसी है। मैं भी झोंपड़ी के पीछे से सुन रहा था।"

मैं घबरायी नहीं। मेरे मन में भय, विह्वलता, क्रोध आदि भावों से बढ़कर गहरायी में एक मन्थन चल रहा था। उसकी बातें तो कान में पड़ीं, मन आलोड़ित

हो रहा था। उस समय कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। मूक और अर्थहीन होकर उसकी ओर देखती रही। उसने मेरे हाथ पकड़ लिए। उसके हाथ भी दुर्बल महसूस हुए। "तुम अपनी शपथ याद करो। कुरू वंश के लिए एक वीर पुत्र को जन्म देने-भर को तुम मेरी आज्ञानुसार···" कहते हुए उसका गला भर्रा गया। केवल हाथ ज़ोर से थाम लिये। "केवल कुरू वंश को एक वीर पुत्र को जन्म देने-भर को मैं उसकी आज्ञानुसार···" यह बात याद आने पर मेरा भी गला भर आया था। इस वंश के लिए मैंने जो त्याग किया, अपने सुख का बलिदान दिया उसे इनमें कौन समझ पाएगा? पत्नी-धर्म को आगे रखकर शपथ ली है, यह याद दिलाकर मेरे सुख की बलि माँगने वाला मेरा पति यदि आज होता तो सम्भवतः समझ पाता। दुर्योधन ने धर्म की नयी व्याख्या की है। 'वे केवल कुन्ती के पुत्र हैं पांडव नहीं।' यह सोचते हुए क्रोध से उसके दन्तहीन जबड़े कस उठे। "धर्म क्या है? कुन्ती जो धर्म जानती थी उसमें वह कभी नहीं हारी।" यह कहकर वह प्रयत्नपूर्वक स्मृति की परतों को ऐसे खोलने लगी ताकि वे दुबारा गुँथ न जायें।

सूरज धीरे-धीरे ढल रहा था। बीच में शुरू हुआ कमर का दर्द पता नही कब गायब हो गया। ऐसे महान वीर ने जो अकेला ही भालू का शिकार करके आया था मेरे हाथ थामकर पांडु से भी ज्यादा गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की थी। उसकी प्रार्थना पांडु की भाँति निस्सहाय न थी। प्रत्येक रात उसकी आँखों में आँसू छलछला उठते। मैंने भी उसकी छाती पर दुख के पता नहीं कितने गर्म आँसू गिराये। पर गर्भ ठहरने का निश्चय होते ही मैं स्वयं पांडु से कहकर और उस गिड़गिड़ाने वाले को तसल्ली देकर उससे अलग हुई थी। उसके बाद भी वह आठ दिन तक बना रहा पर मैं उसकी शय्या पर न गयी। 'कुन्ती में धर्मनिष्ठा नहीं?' उसके मन ने उसी से यह प्रश्न किया। भीम कैसा प्रचंड शिशु था। उसने कहा था, "पृथा, तुम क्षेमभाव से भरी हो। मैं बल और वीर्य से परिपूर्ण हूँ। पता है कैसा बच्चा पैदा होगा? अगर हम देवलोक चले गये तो सभी उसी को सेना-पति चुनेंगे।" सचमुच मेरा पुत्र ऐसा ही वीर है। बनवास जाने से पूर्व मैंने द्रौपदी से कहा था। उसके पेट के लिए कमी न होने देना। उसका बल यदि क्षीण हो गया तो हमारा नाश हो जाएगा। जंगल में कंदमूल फल, और शिकार से मिला भुना मांस खिलाकर बारह वर्ष के कठिन जीवन में उस बेचारी ने उसे क्या खिला-कर उसका पोषण किया होगा। विराट नगर में रसोइये का काम मिलने के बाद उसका शरीर जरा पुष्ट हुआ है। यह कृष्ण ने बताया है। बच्चा हो तो भैसा। बच्चे को कमर पर बिठाकर दस कदम रखने में ही माद्री सुस्त पड़ जाती। पिता पांडु की तो साँस ही उखड़ने लगती। वह उसे प्यार भी उतना ही करता था। उसमें पिता मारुत का-सा अखंड और निर्व्याज प्रेम है। अब वह तिरेपन-चौवन वर्ष का

हो चुका है। सुना है इन तेरह वर्षों में उसकी पीठ जरा झुक चली है। भले कितना भी क्यों न झुक जाय, जन्मजात गुण कही छूटते हैं ! एक जवान हाथ पूरे ऊँचे करके खड़ा हो तो वह इतना लम्बा नहीं होगा। द्रौपदी उसके कन्धे तक नहीं पहुँचती, छाती तक ही रह जाती है। फिर भी वह उसका वंशानुवर्ती है।

बेचारी ऐसी बहू ने जंगल में बारह वर्ष काटे और एक वर्ष सेविका का कार्य किया। शांत स्वभाव वाले बड़े पुत्र और मुख देखने से ही धैर्य पैदा कर सकने वाले दूसरे पुत्र के पैदा होने के बाद वापस चलने को जब महाराज से कहा तो वह क्यों नहीं माना। उसे एक पागलपन था। देवलोक के वैद्य की शक्ति के रहस्य में उसे अन्धविश्वास था। उसे विश्वास था कि उसमें पुंस-शक्ति अवश्य आ जाएगी अथवा अपने बीज से बच्चे पैदा करने की आंतरिक इच्छा थी। अगर कुछ ऐसा होता और इन नियोग से हुए बच्चों की उपेक्षा करता तो मैं उसके हाथ, नहीं उसकी बाँह पकड़कर पूछती, उसकी धर्मनिष्ठा के बारे में ! वही इच्छा रही होगी। नहीं तो वह वहाँ क्यों रहता ? वैद्य लोग जब भी आते उन्हें महीनों ठहराता और धनधान्य लदवा-लदवाकर भेजता। देवलोक से लौटने के बाद पांडुराज को थकावट होने लगी। दिल धड़कने लगा। देव वैद्यों की दवाई देने पर भी सुधार नहीं हुआ। "चढ़ाई चढ़ने की तो बात ही नही उठती। तभी आकर सिंहासन पर बैठ जाता तो बात ही कुछ और होती। यह संकट नहीं आता"—कहकर उसने पानी की ओर देखा। पानी बहने पर भी बिम्ब दिखाई दे रहा था। आश्चर्य हुआ। बहते पानी के बीच बिम्ब कैसे दिखायी दे सकता है। उस विस्मय में कुछ देर तक मन खोया रहा। पहाड़ पर, पानी के बहाव में यह शान्ति कहाँ ? एक वर्ष के बच्चे भीम को उठाकर ले जाना। बाप रे ! बाप ! कितना कठिन था। उसने चलना तक नहीं सीखा था। कुटी से दो आवाज तक की दूरी पर बहते सोते में नहलाते समय उसे कितना आनन्द आता। अभी पूरे एक वर्ष का भी नहीं हुआ था। उसे न ठंड से डर लगता, न गर्मी से थकान। तभी तो इन्द्र आया था न! हाँ, तभी। याद की परतें धीरे-धीरे खुलने लगीं। हाँ तभी। कैसा सुन्दर रूप ? लम्बी-तीखी नाक, तीखी भौंहें। श्वेत बर्फ जैसा रंग, मेरे जितना लम्बा। उसके उत्तरीय में मोरपंखों जैसा कसीदा किया हुआ था। मैं जहाँ बच्चे को नहला रही थी, वहीं आकर खड़ा हुआ। ऊपर जरा दूर धनुर्धारी लोग खडे थे। ऐसा लगा मानों मुझे उठाकर ले जाने को तैयार होकर आया हो। पर उसके मुख पर शांत भाव था।

"तो तुम्हीं पृथा हो ?" ऐसे बोला मानो पूर्व-परिचित हो।

मैंने अपने भीगकर चिपक गये कपड़े ठीक करते हुए पूछा, "तुम कौन हो ?"

"यही हमारे मारुत का बेटा है न ? देखते ही पहचान में आ गया। हमारी जाति की ही कान्ति है इसमें।"

मैं समझ गयी कि वह देवलोक का है। पहले धर्माधिकारी और बाद में

मारुत द्वारा बतायी उनके प्रमुख लोगों की वेशभूषा याद हो आयी। फिर भी मैंने पूछा : "तुमने बताया नहीं, तुम कौन हो?"

"इन्द्र।"

"यानी?"

"ओह! जानते हुए भी पूछ रही हो। देवलोक के राजा को इन्द्र कहते हैं। मुझ देवलोक के राजा को इन्द्र कहते हैं। मुझे इस पद पर पाँच वर्ष पहले चुना गया।"

"अच्छा!" पर कुछ और बात न सूझने से संकोच हुआ। मैंने सिर नीचा कर लिया। सिर नीचा करके संकोच व्यक्त करने में अजीब-सा लगा। सिर उठाकर देखा। अन्य धनुर्धारी नज़र न आये। वह समीप आया, हाथ बढ़ाकर बच्चे को माँगा। भीम किसी भी नये आदमी के पास जाने में रोता न था। नया मुख, चमकते नीलाभ, हरे मोर पंख जैसे वस्त्र! बच्चे ने जाकर उसे ज़ोर से पकड़ लिया। उसने भी उसे गोद में लेकर प्यार किया। स्रोत से निकलता हुआ पानी बहा ही जा रहा था। बच्चे को गोद में लेकर पत्थर पर बैठकर उसने मुझसे कहा, "ज़रा बैठो, बात करेंगे।"

मुझे लज्जा महसूस हुई। मैं बोली, "तुमसे कैसी बात?"

उसे क्रोध न आया। मुस्कराया। बच्चे को खूब प्यार करता हुआ बोला, "पृथा, हमारे देश में बत्तीस गण हैं। हर एक गण में सभी पुरुष सभी स्त्रियों के पति होते हैं। यह तुम जानती ही होगी। पर एक गण का पुरुष दूसरे गण की स्त्री को नहीं छू सकता। इन्द्र किसी भी गण की स्त्री के पास जा सकता है। हमारे लोक की स्त्रियों में इससे बढ़कर कोई गर्व की बात नहीं कि इन्द्र उनके पास आया था।"

"मैं तुम्हारे लोक की स्त्री नहीं हूँ।"

"यह बात भी नहीं कि पूरी तरह से नहीं हो। खैर, उस बात को जाने दो। मेरे सेनापति मारुत ने बताया था कि जब तक तुम्हारी कृपा प्राप्त न हो तब तक किसी भी वीर को यह समझ में नहीं आता कि क्षेमभाव क्या है। पता चला है कि तुमने उसकी पत्नी बनना अस्वीकार कर दिया। तुम्हारी समस्या वह भी समझ गया है। गणमुख्य और इन्द्र अपनी पत्नी रख सकते हैं। मेरा विवाह हो चुका है। दूसरा विवाह नहीं कर सकता। पर तुमसे भिक्षा माँगने आया हूँ। तुम्हें देखने के बाद मारुत की बात सच लगी।"

उसकी बात सुनकर मेरी साँस रुक-सी गयी। हज़ार प्रयत्न करने पर भी गर्दन उठ नहीं सकी। बच्चा उसकी गोद में बैठकर किलकारियाँ भर रहा था। ऐसा लगा अनिरीक्षत रूप से मैं उसके पाश में चली गयी। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। मेरी स्थिति शहद में फँसी मक्खी जैसी हो गयी।

वह धीरे से बोला, "आवश्यकता पड़ने पर साथ रहें," सोचकर मैं अपने साथ

बीस वीर धनुर्धारियों को ले आया हूँ। तुम्हें उठा ले जाना तो कोई कठिन कार्य नहीं। परन्तु तुम्हें देखने के बाद मारुत का यह कहना सच लगा कि यह असम्भव है।"

बिना कुछ बोले बैठे रहना मुझे अजीब-सा लगा। मुझे लगा कि वह मेरे मुख के भावों से ही मेरे मन के भावों को समझने लगा है। अतः मैंने झूठ बोलने का निश्चय किया। उसकी ओर देखते हुए बात करना कठिन लगा। गिरते हुए पानी को देखकर बोली, "हमारे यहाँ विवाहित स्त्री को पर-पुरुष को अवकाश नहीं देना चाहिए।"

"हमारे यहाँ भी ऐसा ही है। पर क्या तुमने हमारे धर्माधिकारी और सेना-पति को अपने देश की नियोग की पद्धति कहकर आमंत्रित नहीं किया ! उसी तरह मुझे भी स्वीकार करो।"

"विधवा की बात और होती है किन्तु पति के होते हुए नियोग का निश्चय वही करता है। इसके अतिरिक्त हमारे दो बच्चे हो गये हैं। अब नियोग का अर्थ लंपटता होगी।" तब तक उसकी ओर देखकर बात करने योग्य साहस मुझमें आ गया था। मैं उसके मुँह की ओर 'हारकर पिघल जाने वाली दृष्टि' से देख रही थी। जो भी हो वह राजा था। समस्या का परिहार करना उसके लिए कठिन न था। यह भाव उसके मुख से व्यक्त हो रहा था।

वह बोला, "तो तुम्हारी स्वीकृति है। मैं कृतार्थ हुआ। तुम घर जाओ। थोड़ी देर बाद मैं ही आकर तुम्हारे पति से बात करूँगा। वह अवश्य मान लेगा। पत्नी के रूप में तुम अनुकूल अभिप्राय देकर उसे मनवाओ। मनवाओगी न ?" यह कह-कर उसने वचन माँगने को मेरा हाथ पकड़ा।

लज्जा से मेरा सिर झुक गया था। उसने बच्चे को मेरी गोद में बिठाया। मैं तेजी से पानी के किनारे से चढ़ायी चढ़कर चली आयी। पानी का स्रोत ओझल हो गया। मन की घबराहट, उल्लास, हल्केपन के भाव मन को मथ रहे थे। महाराज बिस्तर से टेक लगाये धर्म को खिला रहा था। मेरी गोद में किलकारियाँ भरने वाला भीम धूप के प्रकाश से छाया में जाते ही रोने लगा। मैंने उसे चुपचाप पिता के पास बिठा दिया। फिर धूप में जाकर गीले कपड़े बदलकर बाल सुखाने लगी। इन्द्र का रूप आँखों में समाया हुआ था। तीव्र दृष्टि, नीली आँखें, तीखी नाक, ठोड़ी और मुख की सुघड़ बनावट। थोड़ी ही देर में पाँच धनुर्धारी आये। मुझसे कहा, "महाराज पांडु से मिलना है।" महाराज उठकर बाहर आया। उन्होंने उसे बताया कि देवलोक का अधिपति उस स्रोत के पास है। महाराज की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह बोला, "मैं स्वयं आकर उनका स्वागत करता। पर वहाँ उतरने के बाद चढ़ने में थकान लगती है। उन्हें ही पधारने को कहो।"

इन्द्र राजकीय गर्व के साथ आया। वीर उसे घेरे थे। मधुपर्क तैयार करने को राजा ने मुझसे कहा। अतिथि का स्वागत करके उसे दूर्वा की चटाई पर बिठाया। महाराज से इन्द्र का परिचय था। दोनों ने परस्पर कुशल-क्षेम पूछा। अंगरक्षक दूर जाकर पहाड़ की उतराई के पास बैठ गये। मैं दोनों बच्चों को लेकर कुटी के सामने बैठकर इन्द्र की वाक्-पटुता देखने लगी।

"इन्द्र, आपका यहाँ आना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। हस्तिनापुर होता तो राजोचित ढंग से सत्कार करता। इस पर्णकुटी की दरिद्रता को देखकर यह न समझिए कि मैं मन से भी इतना ही दरिद्र हूँ। आप किस कारणवश पधारे हैं?"

"हमने सुना है कि आपके भाई धृतराष्ट्र के यहाँ लड़का हुआ है। वह अब आपके दूसरे लड़के के बराबर का हो चुका है।"

"जी हाँ, समाचार आया है।"

"अर्थात् आपके और आपके भाई के बेटों के बीच के संघर्ष को बचाया नहीं जा सकता।"

"ऐसा ही लगता है।"

"इतने दिनों राज्य करने वाले आपके भाई ने राजकोश से धन खर्च करके प्रजा और सैनिकों का समर्थन प्राप्त किया है। यदि कल युद्ध हो जाये तो आपके और आपके बच्चों के साथ कौन होगा?"

महाराज बोला नहीं। उसके मुख पर कितनी चिन्ता छायी होगी यह मेरी समझ में आ गया।

"आपके दो बच्चे देवजनों की कृपा से हुए हैं। हमारे लोगों की इच्छा है कि आपको एक और वीर पुत्र प्रदान किया जाय। इसलिए मुझे भेजा है। मारुत ने भी आपकी ओर से मुझसे प्रार्थना की है।"

"देवराज, जिनके सन्तान नहीं, वे एक या दो बच्चे नियोग से पैदा करा सकते हैं। मेरे अब से दो बच्चे हो ही चुके हैं।"

"आपके बड़े बेटे में तो योद्धा बनने के लक्षण नहीं हैं। दूसरा ही एक अकेला है।" कहकर वह चुप हो गया। कुछ देर बाद वही बोला, "देवलोक के सभी गणों की स्त्रियों पर इन्द्र का अधिकार है। इसके अतिरिक्त आपने हमारी नर्तकियों को देखा है। वे सब पहले इन्द्र की सेवा करती हैं। स्त्रियों से मैं भी ऊब गया हूँ। फिर आगे चलकर आपके राज्य की स्थापना हस्तिनापुर में होनी है। आपके और देव-जन के बीच निकट स्नेह होना चाहिए। हमारे लोगों ने आपको इसका आशीर्वाद देने के लिए भेजा है। मैं आया हूँ। यदि आप नहीं चाहते तो मैं जाता हूँ।"

फिर मौन छा गया। पांडुराज बोला, "मैं देवजन का कृतज्ञ हूँ। आप लोगों का निरादर नहीं कर सकता। मैं आपसे नियोग के लिए प्रार्थना करता हूँ।"

इन्द्र ने 'तथास्तु' कहा। कुछ देर बाद पांडु ने प्रार्थना की। "इन्द्र महाराज,

मेरी दो पत्नियाँ हैं। बड़ी से दो बच्चे हैं। छोटी की उपेक्षा करना न्याय नहीं। बड़ी की अनुमति के बिना छोटी का नियोग कराया नहीं जा सकता। बड़ी से पूछता हूँ। आप कृपा करके छोटी को आशीर्वाद दीजिए।"

"मैं वर देने आया हूँ। आप जिसके लिए चाहे स्वीकार कर लीजिए। पर आप की बड़ी पत्नी ने देव धर्माधिकारी और देव सेनापति के वीर्य धारण करके यह सिद्ध कर दिया है कि उनमें गर्भ धारण कर सकने की शक्ति है। इन्द्र के वीर्य को सिद्ध शक्ति वाली स्वीकार करे तो अच्छा है। आप अपना अभ्युदय स्वयं सोचकर निश्चय कर लीजिए।"

अतिथि को विश्राम करने को कहकर महाराज बाहर आया। तब तक मैं ज़रा दूर चली आयी थी। सामने पेड़ के पास ले जाकर उसने मुझे फिर से नियोग को तैयार होने की बात कही। इन्द्र को भोज दिया गया। उस रात महाराज ने शास्त्र के अनुसार मुझे शपथ दिलायी : "मैं इस पुरुष पर मोहित न होऊँगी। गर्भ ठहरने का निश्चय होते ही मैं इसे पिता समान समझ कर···"

वह इन्द्र सुन्दर ही नहीं चतुर भी था। उसमें केवल शारीरिक शक्ति ही नहीं अपितु कला में भी निपुण था। रात के अँधेरे में मन और देह के समागम में ही नहीं, दीये के उजाले में भी आनन्द देने वाली कलाओं का प्रयोग करता था। उसकी बातें, मुखमुद्रा, भंगिमा, क्रिया और चतुरता में मारुत जैसा गाढ़ा समर्पण न था, परन्तु प्रगाढ़ता में बिना खोये अपार रति मार्दव का सृजन करके उसने मुझे भी यह बोध कराया कि किस प्रकार परस्पर आनंदभाव उत्पन्न किया जा सकता है। मुझे कभी-कभी क्रोध आता कि यह केवल लंपट तो नहीं। पर उस रसिक की लंपटता तन-मन को पर्वत शिखरों के परे आकाश में उड़ा ले जाती। उस देवराज के लिए रात और दिन का अन्तर ही नहीं था। मन का आनन्दभाव बनाए रखने में सहायक उसके अंगरक्षकों द्वारा लाया गया वृक्ष का मद्य भी था। मुझे भी उसमें हिस्सा दिये बगैर नहीं छोड़ता था। अपने लोक का नृत्य करके मुझे नृत्य करने को प्रेरित करता। "प्रिये, मैं तुम्हारा दास हूँ।" यह बात बार-बार कहकर मुझे जीतता। हाथ पकड़कर विवश करके पहाड़ों पर घुमाने ले जाता।

इन्द्र कितने दिन रहा, यह हिसाब किसने रखा ? पांडु और माद्री के अतिरिक्त पर्वत की तलहटी के नीरस दिनों में उसने रस भर दिया। उन दिनों मेरा शरीर भी मुझे फूल-सा हल्का लगने लगा। उसने मुझे अपनी पत्नी बनने को नहीं कहा। भावनाओं के भार से मुझे बाँधा नहीं। साथ आने को कहकर धर्मसंकट में नहीं डाला। गर्भ ठहरने की सूचना के बाद उसे छिपाकर अपने निर्गमन की अवधि को आगे बढ़ाकर मुझे प्रसन्न रखने का भी प्रयास नहीं किया। पांडुराज के नियोग की अवधि की सूचना देते ही अखेद सबसे विदा ले गया। मुख पर तृप्ति का भाव था। "पांडुराज, इन्द्र का पुत्र आपका बेटा बनेगा। आगे चाहे जो भी इन्द्र हो,

आवश्यकता पड़ने पर देवसेना को आपकी ओर से युद्ध करने को भेजेगा। यह भूलिएगा नहीं।" यह कहकर मित्रभाव से आलिंगन करके गले लगाकर चला गया।

अर्जुन का भी वही रूप है। तीखी नजर, नीली आँखें, तीखी नाक, सुघड़ मुख और ठोड़ी। स्वभाव भी वैसा ही तेज़, फुर्तीला, होशियार, उल्लासमय और सुख-प्रिय। कुन्ती के गर्भ ने कभी बीज के गुण को बदलकर कमजोर नही किया। बच्चे के पैदा होते ही मुझे ऐसा लगा कि स्त्री को वश में करने के लिए उसकी नीली आँखें ही पर्याप्त हैं। वही उसके पिता की निशानी के लिए बहुत थीं। ऐसा कोई न था जो उस बच्चे को गोद में लेने को ललक न उठा हो। तब तक माद्री के मन में काफ़ी जलन शुरू हो गयी थी। पर वह उसे अपने कोख-जाए के समान गोद में लेकर गले लगाकर प्यार करती। ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। इतने दिन तक मैंने उसके मन को जानने का ज्यादा प्रयास ही नहीं किया था। धर्म पांडुराज की इच्छानुसार जन्मा था। मारुत का चुनाव भी उसका था। इसमें मेरा क्या दोष? यह अवश्य था कि मैंने तीन बार सुख भोगा था। तीन बार गोद भरी थी। वह दुबली तो थी ही और क्षीण होती जा रही थी। अपनी कुटी में जब वह पांडु-राज से पूछ रही थी तब मुझे सुनायी दिया था: "प्रभु, अब हमारे तीन बच्चे हो गये। दीदी ने ही तीनों बार गर्भ धारण करके कष्ट उठाया है। आपका हाथ थामने के बाद यदि मैं भी आपके लिए कुछ कष्ट उठाऊँ तो मुझे भी प्रसन्नता होगी। इतने दिन तक मेरा ऋतु-मष्ट भी हुआ है। कम-से-कम एक बार···"

मुझे दुख हुआ। महाराज ने मालकिन होने के नाते मुझसे पूछा। मैंने कहा कि जल्दी ही हो जाना चाहिए। पर वीर्यदान के लिए किसे चुना जाय? तब तक महाराज में उन वैद्यों के प्रति बहुत श्रद्धा जम चुकी थी। उनमें भी वीर्यदान करने की इच्छा दिखाई दी। यही उसके लिए उनको महापुरुष मानने को काफ़ी था। उनके आते ही उसने पूछा, वे बोले, "महाराज, हम जुड़वाँ हैं। हम एक-दूसरे के विना वैद्यक नहीं करते। आप हमको वैद्यों के रूप में वीर्यदान करने को कह रहे हैं। इसलिए हम दोनों ही भाग लेंगे।"

महाराज ने मुझसे पूछा। मुझे इसमें कुछ ग़लत नहीं लगा। देवजनों में गण के सभी पुरुष सहोदरों के रूप में भाग लेते थे। हमारी घाटी के गाँवों में रहने वाले परिवारों में सभी भाई मिलकर इसी प्रकार वैवाहिक जीवन चलाते थे। ये वैद्य भी भाई हैं; जुड़वाँ हैं। माद्री हँस पड़ी। पति की ओर से मैंने ही उसे शपथ दिलायी। इतने दिन सूखी हुई माद्री हरी हो गयी, पल्लवित हुई। उसके मुख पर मार्दव नृत्य कर उठा। वह इतनी निखर आई थी कि मुझे उसे बाँहों में लेकर प्यार करने की इच्छा होने लगी। धर्म छः बरस का था, भीम चार का और अर्जुन दो का हो चला था। माद्री का पेट उसके गात्र से भी बड़ा हो रहा था। मुझे बच्चों का पागलपन था। मैं सब बच्चों को अपना बना लेना चाहती थी। माद्री से उत्पन्न

होने वाले बच्चे की राह देख रही थी। उसकी प्रसूति कराने वाली मैं ही थी। मुझे बड़ी खुशी हुई। जुड़वाँ लड़के थे। महाराज के वंश को पाँच शाखाओं में बढ़ाने वाले लड़के ही हुए।

माद्री बोली, "दीदी, ये लड़के होने से मुझे निराशा हुई। मैं लड़की चाहती थी।"

दोनों के मिलने के कारण क्या ये जुड़वाँ हुए? नही, यह ग़लत है। यहाँ के गाँवों में एक के चार या पाँच पति होते हैं फिर भी एक ही बच्चा होता है। देव स्त्रियों में भी ऐसा ही होता है। जुड़वाँ तो एकाध होता है। फिर भी मुझमें मात्सर्य जन्म लेने लगा। इसे एक ही बार में दो लड़के हो गये। तो क्या इसकी कोख मुझ से अधिक शक्तिशाली है? यदि फिर से जुड़वाँ हो जायें तो? छोटी होने पर भी इसका स्थान मुझसे ऊँचा हो जाएगा। यदि एक भी बच्चा हो गया तो तीन होने से उसका स्थान और मान मेरे बराबर हो जाएगा। मैं महाराज से बोली, मुझे भी भीम के बाद नियोग की आवश्यकता न थी। देवजनों का संबंध निकटस्थ हो जाय, यह सोचकर आपने विवश करके इन्द्र से मिलाया। अब माद्री के भी दो बच्चे हो गये। अब उसके माँगने पर भी अनुमति नहीं देनी चाहिए। धर्म लंपटता की सीमा तक नही पहुँचना चाहिए। यदि आप में सामर्थ्य होती तो और बात थी। भले ही इतने होते कि दोनों का एक बार भी ऋतु-नष्ट न होता। इस बात का महाराजा ने न केवल अनुमोदन किया परन्तु पसन्द भी किया।

हमें हस्तिनापुर छोड़े नौ वर्ष बीत चुके थे। वहाँ गांधारी के भी एक के बाद एक बच्चे हो रहे थे। इन्द्र ने यह बात केवल मुझे पाने के लिए नहीं कही थी। मुझे स्पष्ट ऐसा लगा कि राज्य के लिए संघर्ष करने को यहाँ मेरे बच्चे और वहाँ उसके बच्चे बढ़ रहे हैं। कम-से-कम अब भी हम लौट जायें। लौटना एक विवेक-पूर्ण बात थी। मैंने यह सूचित किया और पूछा भी पर महाराजा ने सुना नहीं। "औषधि ने परिणाम दिखाया है, मुझे सामर्थ्य दे रही है। उसका पूरा लाभ उठाए बिना क्यों जाना चाहिए?"—उन्होंने कहा।

एक दिन मैंने कहा—हमारे पाँच बच्चे है। तब वह बोला, "हैं। पर और दस, पंद्रह हो जायें तो कोई नुकसान है?" उससे यह अर्थ ध्वनित हो रहा था कि नियोग से नहीं। मुझे और अधिक तर्क करके उसे दुखाने का मन न हुआ। कम-से-कम मैंने और माद्री ने सुख तो पाया है, पर पता नहीं रिक्तमन से महाराजा ने कितना दुख अनुभव किया। मैंने भी प्रार्थना की कि उनके भीतर शक्ति की वृद्धि हो पर उसकी शक्ति घटती ही गई। उस पर्वत की घाटी में उतरायी-चढ़ाई के अतिरिक्त कोई काम ही न था। उतरने-चढ़ने में उसे साँस चढ़ जाती। वह सुस्त पड़ जाता।

माद्री के जाए नकुल और सहदेव भी मेरी गोद से उतरते न थे। पाँचों मेरे ही बच्चे थे। दोनों को एक साथ आराम से सुलाने योग्य बड़ी गोद थी मेरी। वे अपने

पिताओं जैसे सुंदर थे और सुघड़ भी। धर्म के समान शांत स्वभाव के थे। भीम की भाँति पहाड़ और पेड़ गुंजा देने वाली किलकारियाँ नहीं भरते थे। लातें भी नहीं मारते थे। पर निश्चेष्ट भी न थे। सदा मुसकराते रहते। हाथ-पाँव ऐसे हिलाते कि बड़ी माँ को तकलीफ न हो।

वर्षों के बीतते-बीतते सेवकों की संख्या भी घट गयी थी। वहाँ ठंड और निर्जनता से ऊबकर कुछ लोग लौट गये थे। उन दिनों देश से आने वाला सामान का सरंजाम भी घटता जा रहा था। बच्चों का सारा भार मुझ पर आ पड़ा था। निशक्त पति की सेवा का भार माद्री पर था। यदि मैं सेवा करती तो महाराज को कुछ हिचकिचाहट होती। उसके मुख पर आशा, भरोसा, निशक्ति स्पष्ट दीखने लगे। तेंतीस-चौंतीस में ही शरीर स्थूल दीखने लगा था। शरीर में पानी की मात्रा बढ़ने लगी और वह सैंतालीस, अड़तालीस का दिखायी देने लगा। उसने अपनी मृत्यु आप बुला ली। बच्चों की देखभाल में व्यस्त कुन्ती को यह पता न चला।

जब वह यही सब सोच रही थी तभी पीछे से किसी की पदचाप सुनायी दी। उसने मुड़कर देखा। विदुर सीढ़ियाँ उतरकर उसके पास आ रहा था। विदुर ने पूछा, "तब से यहीं बैठी हो?" उसने गर्दन के संकेत से उसे आकर बैठने का इशारा किया। "तब से क्या सोच रही हो?" कहता हुआ वह पास आकर बैठा।

"उसने कहा न, ये पांडव ही नहीं। यह कैसे हो सकता है? यही सोच रही हूँ।"

"सोचने से यह हल होने वाला नहीं।"

उसे भी ऐसा ही लगा। "भीष्म ने बुलवा भेजा था। उन्होंने क्या बात की?"

"अब तक वे भी दुखी ही हो रहे थे। उन्हें यह डर लग रहा था कि यदि सनातन धर्म को ही न मानें तो क्या दुनिया बचेगी? पर मुझे यह चिन्ता निरर्थक लगी। मैंने कहा, 'चलिए मैं, आप, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य सब मिलकर दुर्योधन से पूछते हैं—तुम अगर ऐसा करने लगोगे और पांडवों को पांडव ही न मानोगे तो हम इस देश में न रहेंगे। इधर-उधर कहीं भी चले जाएँगे।'"

"उन्होंने क्या उत्तर दिया?"

"उन्हें हस्तिनापुर से ज्यादा मोह है। मुझे लगता है कि···" इतना कहकर विदुर चुप हो गया।

"हाँ, उन्होंने आगे क्या कहा?" कुन्ती ने जोर देकर पूछा।

"वे ज़बान से चाहे जितना भी सनातन धर्म जपें पर दुर्योधन पर उन्हें विशेष ममता है। मैं बहुत दिन से सोच रहा हूँ कि ऐसा क्यों है? शायद इसलिए ऐसा होगा कि वे धृतराष्ट्र से ही पैदा हुए हैं या यह मेरी अपनी कल्पना है।"

कुन्ती को लगा कि आधार की एक सीढ़ी ही खिसक गयी। उस बूढ़े के मन में पता नहीं वास्तव में क्या है। मैंने कभी उनके सामने बैठकर बात नहीं की। पहले

से ही इतना भय और संकोच। पर यह भी ध्यान आया कि सनातन धर्म के बारे में उनके समान श्रद्धा रखने वाला और कोई नहीं···।

"देखो, एक और बात है। तुम्हारे पुत्रों ने कृष्ण से तुम्हें अपने साथ ले आने को कहा था न ? लेकिन स्वयं कृष्ण को ही छिपकर जाना पड़ा। अब उसने संदेश भेजा है कि तुम्हें अलग रथ में भेज दिया जाये। उस सेवक ने मुझसे यही कहा है।"

उसने सोचा, तेरह वर्ष चार मास बीत गये। बच्चों और द्रौपदी को देखने की इच्छा होती है। कृष्ण के साथ ही चल देना चाहिए था। "सूर्यास्त होने वाला है। चलो, चलें।" कहते विदुर उठा। वह बोली, "तुम चलो, मैं थोड़ी देर में आती हूँ।" विदुर ने गंगा में हाथ-पांव धोए और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर चला गया।

मैं भी जानती हूँ, भीष्म को दुर्योधन आदि से विशेष ममता है। क्या इसलिए कि वे धृतराष्ट्र से ही पैदा हुए हैं ? यह विचार उसके मस्तिष्क में आया। विश्वास न हुआ। पर भली प्रकार बिना सोचे-विचारे कहने का स्वभाव विदुर का नहीं। यह सोचती हुई वह बैठी रही। सूर्य डूब गया। पानी में उसका बिम्ब धुंधला हो उठा था। ध्यान से देखने पर ही दिखायी देता था। इक्यासी वर्ष पूरे हो गये। आँखें भी धुंधली हो चली हैं। उसे ऐसा लगा और क्या दिखायी देगा। पंतीस में वह विधवा हो गयी। कुन्ती विधवा हो गयी, पाँच बच्चों को लेकर। भविष्य में ऐसी बातें सुननी पड़ेंगी, यह सोचकर माद्री चली गयी। क्या उसे मुझसे ज्यादा समझ थी ? उसे पति पर और माद्री पर क्रोध आया। निशक्त होते पति की सेवा-सुश्रूषा वही किया करती थी। मेरे सेवा करने पर उसे हिचकिचाहट होती थी। क्यों ? यह बाद में समझ में आया। मैं घर की मालकिन थी न। बलिष्ठ माँ को देखकर जैसे बच्चे डरते हैं। शायद वह उसी प्रकार डरता था। यह बात मैं तब समझ न पायी। समझने से पहले ही एक दिन दोपहर को जब सर्दी समाप्त हो रही थी, धूप में माद्री रोती हुई 'दीदी, दीदी' चिल्लाती दौड़ी आयी। कोई बच्चा पानी में तो नहीं गिर गया या किसी को जानवर ने तो नहीं पकड़ लिया, सोचकर मैंने कुटी के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। नकुल-सहदेव वहीं खेल रहे थे। अर्जुन पेड़ पर लगे फलों को अपने तीर का निशाना बना रहा था। धर्म और भीम मुझ से पूछकर ही पास के गाँव में गये थे। मैंने पूछा, "क्या हुआ ? क्या हुआ ?"

"महाराज···!" कहकर बिलख-बिलखकर रोते हुए उसने मेरी छाती पर मुंह रख दिया। "कहाँ ? क्या ?" इतना पूछते समय ही मैं समझ गयी। वह मेरा हाथ पकड़कर उस ओर भागी। आस-पास के पहाड़ बर्फ़ से ढके हुए थे। गड्ढों का पानी जमकर दही जैसा दीख रहा था। सीधी चढ़ायी के रास्ते पर घूम-फिर-कर चढ़कर गयी। पहाड़ पर चमकती धूप में एक चट्टान की छाया में चित हाथ-पाँव पसारे पांडुराज मृत पड़ा था। गहरी पीड़ा के कारण मुंह विकृत दीख रहा

था। मैंने पूछा, "यह क्या हुआ ?" वह बोली, "साँस चढ़ गयी थी।" "इतनी दूर क्यों चलाकर लायी ?" पूछने पर वह बिलख पड़ी। वह इतनी ज़ोर से रो पड़ी कि दोनों ओर के पर्वतों को सुनायी दिया होगा। मेरा रोना गले में ही फँसकर रह गया। महाराज की छाती, हाथ, पैर आदि टटोलकर देखे। भीतर का वस्त्र न था। ऐसा लगा मानो नहाने को तैयार हुआ हो। तब माद्री की ओर मेरा ध्यान गया। तत्क्षण समझ गई। "पति को मार डाला पापिन तुमने। 'उसके' लिए इतनी दूर तक चलाकर लायी ?" कहते हुए उसके गाल पर एक थप्पड़ मार दिया। तब मुझे होश ही न था। वह प्रज्ञाहीन हो गिर गयी। उसके हाथ-पाँव मलकर कम्बल में लपेटने तक महाराज की मृत्यु की स्थिति का भाव मन के बाहर ही खड़ा था। महाराज के शव और उस स्थिति में उसे छोड़कर सेवकों को बुलाने जाना, संभव भी न था। उन्हें यदि मैं ऐसे छोड़ जाती तो सर्दी के कारण नीचे उतर आये भेड़िये उन दोनों को खा जाते। उसके शरीर को गर्म करने के लिए मलने और ठंडे शरीर को ढँकने के अलावा और कुछ न सूझा। उसमें जान थी। होंठ हिला रही थी। बीच-बीच में बड़बड़ा रही थी। उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। अपनी छाती से सटाकर उसे गर्म किया।

"माद्री, माद्री, जो होना था सो हो गया, इधर सुनो। छोटे बच्चे कुटी के बाहर खेल रहे हैं। नौकरों से कहकर नहीं आयी।" यह उसके कानों में कहने के अतिरिक्त मुझे कुछ न सूझा।

काफ़ी देर में उसकी चेतना लौटी। उसने आँखें खोलीं। रोकने पर भी उठ बैठी। झुका सिर उठाया नहीं। "सेवकों को बुला लाती हूँ।" कहकर मैं वहाँ से भागी। बच्चों को सँभालने को, एक सेवक से कहकर और दो सेवकों को साथ लेकर लौटने तक मेरी साँस फूल गयी थी। माद्री महाराजा के सिर को गोद में लेकर बैठी थी। उसका मुख भीगा हुआ था। पर आँखें रीती थीं। सेवकों ने पूछा, "क्या हो गया ?" उसने इशारे से बताया, "कुछ न पूछो।"

अब अगला कार्य शव-संस्कार करना था। पर किसी को न सूझा कि वह भी करना है। तब ऐसा नहीं लग रहा था कि माद्री को इस दुनिया का होश है। शव को जला देने के बाद कुछ नहीं बचेगा। इस शून्य भाव ने मुझे घेर लिया। मैं भी चुप बैठ गयी। सेवक खड़े ही थे। पता नहीं कितनी देर बाद मैं ही बोली, "पास के गाँव जाकर धर्म और भीम को बुला लाओ।" छोटा सेवक तुरन्त भागा।

बूढ़े सेवक ने सुझाया, "माँ, आप ऐसे चुप बैठ जाएँगी तो कैसे काम चलेगा ! अगला काम भी तो करना चाहिए। शव अकड़ता जा रहा है, ऊपर से सर्दी भी बहुत है।" मैंने शून्य आँखों से माद्री को देखा। वह ऐसे बैठी थी जैसे उसे सुनायी ही न दिया हो। मैं भी हिली नहीं। थोड़ी देर में छोटा सेवक धर्म और भीम के

साथ भागा-भागा आया। धर्म ने मुझसे पूछा, "माँ पिताजी को क्या हो गया?" आठ वर्ष का भीम माद्री के कन्धे से लगकर कन्धे दबाकर पूछ रहा था, "माँ पिताजी मर गये, क्यों मर गये?" तब तक गाँव के आठ-दस पुरुष दौड़े-दौड़े आये। उनके पीछे उनकी पत्नियाँ, बच्चे, बूढ़े भी आये। शव के चारों ओर खड़े हो गये। माद्री ने धीरे से शव के सिर को उठाकर नीचे रख दिया। गर्दन अकड़ चुकी थी। उठकर मेरे पास आकर हाथ पकड़कर बोली, "दीदी, अगला काम कराइये। मैंने निश्चय कर लिया है, शव के साथ ही लेटकर मैं भी अग्नि में समा जाऊँगी।"

मुझे समझ में न आया। "तुम क्या कह रही हो?" मेरे यह पूछने पर उसने इतना ही कहा, "मैंने निश्चय कर लिया है।" तब मैं बोली, "मैंने मारा इसलिए गुस्सा आ गया? जो होना था सो हो गया। अब तुम ऐसा करोगी तो बच्चों का क्या होगा? मेरा साथ दो।"

माद्री ने अपना निश्चय बदला नहीं। सेवकों ने समझाया, गाँव वालों ने समझाया। धर्म और भीम ने लिपटकर प्रार्थना की। मैं नकुल-सहदेव को उसकी गोद में रखकर गिड़गिड़ायी। वह टस-से-मस न हुई। यह सोचकर कि शायद वह मन बदल दे, मैंने संस्कार करने में ज़रा देर की। गाँव वालों से शव को उठवाकर कुटी में लायी और गर्म कम्बल पर लिटाकर उढ़ा दिया। "संस्कार कल होगा" कहा। वह भी शव के पास बैठ गयी। समाचार पाकर पास की घाटी के गाँव के कुछ और लोग भी आ गये। उन्होने भी समझाया पर उसने निश्चय न बदला। उसने कुटी का द्वार बन्द कर लिया ताकि कोई भी भीतर न आ सके। रात को कुटी में मैं, शव, वह और जलता दीया; बस इतने ही थे।

वह मध्य रात्रि तक मौन थी फिर एकदम बोलने लगी, "दीदी, देखिए मेरा मरना तो निश्चित है। उससे पहले आपको सब कहे देती हूँ। जो भी हो मेरे बच्चों की माँ तो आप हैं ही। आपको मुझसे डाह है। पर मैं जानती हूँ कि बच्चों पर नहीं। उन्हें भी पैदा करने की इच्छा आपकी थी न?"

मैं बोली नहीं। चुपचाप उसका मुँह देखती रही। मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने अपनी बात जारी रखी। "महाराज में सामर्थ्य जागे पाँच-छः मास बीत गये पर आपसे वे डरते थे। पता नहीं क्यों? मुझे भी आपका डर था। घूमने के बहाने मैं उन्हें दूर ले जाती थी। मैं तो भूखी थी ही : भूख कितनी मालूम है? इससे बढ़कर कोई दण्ड नहीं। उस बूढ़े भीष्म ने सैन्य-बल और संपत्ति-बल दोनों के सहारे मुझे खरीदकर इस अन्तहीन भूख में धकेलकर बाहर से द्वार बन्द कर दिया। उसे तो रौरव नर्क मिलेगा। उसे सद्गति संभव नहीं। मरने से पहले उसे क्यों शाप दूँ। हाँ, मैं क्या कह रही थी?" कहकर याद करने को ज़रा रुकी। तब मैं बोली, "तुमने कहा कि तुम्हें भी मेरा डर था।" "हाँ, महाराज की तुम पर

राज्य करने की इच्छा थी। पर समीप आने का साहस न था। एक दिन उसने मुझसे ही कहा था : 'कुन्ती बहुत ही सुन्दर स्त्री है। उसे देखते ही आदमी हारकर दास बन जाता है, पर उस पर सवारी करना सम्भव नहीं। तुम्हीं मेरे योग्य हो।' यह बात सुनकर तुम पर मुझे जो डाह थी उसका शमन हो गया। समझीं !" यह कहकर बात बन्द करके उसने मेरे मुंह की ओर देखा। मैं भी बैठी सुन रही थी। पुन: वही बोली, "मैंने भूख की बात कही न ? पाँच-छ: मास से महाराज के साथ जा रही थी न ? पेड़, पौधे और चट्टानों की ओट में मुझे उद्दीप्त करते थे। पर पूरी शक्ति न थी। बहुत जल्दी थककर आराम करने लेट जाते। मैं कहती, महाराज, इतनी जल्दी क्यों ? दवा को अभी और असर करने दीजिए। वीर्य जरा और गाढ़ा हो जाये। पर वह सुनते न थे। मुझे उद्दीप्त करते और मैं अतृप्ति से और भी तड़प जाती। वे अपने को रोक न पाते। मालूम है क्यों ? वे जल्दी से एक बच्चा पैदा करना चाहते थे। अपना ही एक बच्चा पैदा करके, देखकर, उठाकर, गले लगाकर, खुश होने की आतुरता उनमें बढ़ती जा रही थी। मुझमें यह लोभ था कि महाराज के अपने वीर्य से एक बच्चा हो मेरे गर्भ से। मुझे यह लोभ था। आपके प्रति डाह भी उसमें काम कर रहा था।" मैं थक गयी थी। कुछ अजीब-सा अनुभव करने लगी, सिर चकराने लगा, सामने पड़े शव पर सिर टेक दिया। ठंडा, पत्थर-सा शव। उस समस्त तलहटी में साँय-साँय की ध्वनि हो रही थी। मुझे ऐसा लगा मानों मेरी आधार नाड़ी ही रुक जाएगी। थोड़ी देर में चक्कर आने बन्द हो गये। सिर उठाकर बैठ गयी। माद्री मुझे ही देखे जा रही थी। उसने अपनी बात फिर शुरू की।

"इस दोपहर में क्या हुआ मालूम है ? मैं उद्दीप्त हो चुकी थी। महाराज ने छेड़-छाड़ करके मुझे उद्दीप्त कर दिया था। वे स्वयं बहुत जल्दी थककर स्खलित हो गये। मुझे कितना कष्ट हुआ। मैं कसकर लिपट गयी। उन्हें छुड़ाने का अवकाश नहीं दिया। 'महाराज, यह मेरे लिए काफ़ी नहीं। क्या इतनी ही आपकी शक्ति है ?' कहते मैंने भुजाएँ पकड़कर मसल दीं। पहले आपको हस्तिनापुर में बताया था न ? वही कलाएँ जो हमारे यहाँ की बूढ़ी औरतें समझाया करती हैं। उन सब कलाओं को याद करके उसे उद्दीप्त किया। शुरू-शुरू में उन्हें तकलीफ़ हुई। क्रमश: उत्तेजित हो उठे। 'माद्री, माद्री, तुम्हारे कारण मेरी सामर्थ्य बढ़ रही है। ऐसी शक्ति इससे पहले कभी नहीं थी।' कहकर मोह से खिल उठे। वे निरोग हो गये। अब वे पुरुष हो गये, पूर्ण पुरुष; इस सन्तोष में मैं अपने को भूल गयी। उत्तेजना में उनके मुख पर कैसा उन्माद था। मेरे मन में सुख की पहली सीढ़ी आयी। तभी उनके मुख पर विकार दिखायी दिया। दर्द के चिह्न लक्षित हुए। वैसे ही मेरे माथे पर मुख रखकर लेट गये। हकलाये। तभी उनके दिल की धड़कन रुक गयी। मुझे कुछ देर बाद समझ में आया।"

मुझे उस पर दया आई। मुझे लगा जैसे वह मेरी कोख जायी बेटी हो। भाग्यहीन बेटी। उठकर शव का चक्कर काटकर उसके पास जा बैठी। मैंने दोनों हाथों से उसे कसकर लपेट लिया। वह ऐसे बैठी रही मानों उसे मेरा आलिंगन पसन्द न आया हो। चुपचाप निश्चेष्ट बैठी रही, सामने पड़े शव की भाँति। मेरी आँखें छलछला आयीं। उसकी आँखें जमी बर्फ की भाँति सूखी थीं। पता नहीं कितनी देर उसी तरह कसे बैठी रही। वह निश्चेष्ट काठ के पुतले की तरह बैठी रही। अन्त में उसका मन बदलने को मैंने उससे कहा, "देखो, पति की चिता में मर सकती हो, पर तुमने कहा था न कि पाँच मास से महाराज की शक्ति जाग्रत् हो गयी थी। इतने दिनों में तुम अकस्मात् गर्भवती हो गयी हो तो। यदि अकस्मात् आज ही बीज का स्पर्श हो गया हो तो भ्रूण हत्या का पाप लगेगा। सुबह शव का संस्कार करेंगे।"

उसने तुरन्त उत्तर न दिया। मेरे मन में आशा पैदा हुई पर थोड़ी देर बाद वह बोली, "आप भूल गयीं क्या? नकुल, सहदेव के पैदा होने के बाद से मेरा ऋतुस्राव हुआ ही नहीं। मुझे तो पता नहीं गर्भ ठहरा भी या नहीं। फिर भी मैं मरूँगी ही?"

"अकस्मात् ठहर ही गया हो?"

"भले ही ठहर गया हो। बूढ़े शांतनु से हमारे ससुर विचित्रवीर्य पैदा हुए थे। बाद में जो कष्ट झेलना पड़ा उसकी कहानी आपने नहीं सुनी? मेरे पेट से यदि रोगी बच्चा हो और लुज या डरपोक बने इसकी आवश्यकता नहीं। नकुल, सहदेव स्वस्थ हैं, शक्तिशाली हैं।"

मैं आगे बोली नहीं। मेरे अतर ने कहा कि उसके निश्चय को बदलना संभव नहीं। वही बोली, "दीदी, अब और किसी लोभ की बात न करना। आप कह सकती हैं कि मरने से तुझे क्या मिलेगा? ज़िंदा रहने पर क्या मिलता है? आप ही बताइए? इतने दिन तक विधवा की भाँति सब इच्छाओं को दबाकर रही। आगे भी ऐसे ही रहना होगा। हमें हस्तिनापुर ही जाना है न? वहाँ सभी लोग यही कहेंगे कि इसने पति को खा लिया। इस निंदा में डूब-डूबकर मरना होगा।"

माद्री चली गयी। सर्दी से नीचे उतर आये देवजनों के एक गण को यह समाचार मिला। वे भी आये। आस-पास की तलहटी के गाँव के लोग भी आये। चारों ओर लोग इकट्ठे हो गये। रोते हुए बच्चों को सेवकों ने कुटी में ही रोक रखा था। माद्री चिता पर चढ़ गयी थी। शव से लिपटकर लेट गयी थी। मैं अपने को रोक न पायी। 'माद्री! माद्री, उठो' कहकर। चिल्ला पड़ी। फिर भी उसने शव को नहीं छोड़ा। चट्-चट् करती आग की लपटों में कराहती, चीखती रही; उठी नहीं। आगे का सारा दुख मेरे सिर पर लादकर चली गयी।

मैं हस्तिनापुर लौट आयी। दुख लादकर या उसका सृजन करके। महाराज

की मृत्यु का समाचार सुनकर देवलोक के सभी लोग आये थे। धर्माधिकारी, इन्द्र, मारुत, वैद्य बंधु। "पृथा क्यों जाती हो। यह सब हमारे बच्चे हैं। तुम हमारी पत्नी हो। देवलोक की ही बनकर रह जाओ। ये भी देवकुमार बन जाएँगे।" यह सब उन्होंने कितने स्नेह से कहा था। मारुत ने तो भीम को कसकर पकड़ लिया था। इन्द्र को भी अर्जुन पर मोह हो आया था। वैद्यों का नकुल, सहदेव पर कितना गहरा वात्सल्य था। पैंतीस वर्ष तक सहे उस दुख की ओर ध्यान न देकर, देवलोक का वैधव्य रहित जीवन त्यागकर, हस्तिनापुर के वैधव्य को स्वीकार करके सेवकों की देखरेख में, नकुल, सहदेव को एक के बाद एक को गोद में लेकर, पहाड़ों की श्रेणियाँ लाँघती इस हस्तिनापुर में आ पड़ी न? तब जिस भीष्म ने पाँचों पोतों को कसकर छाती से लगा लिया था। क्या उसे भेदभाव करना चाहिए? कुन्ती ने निःश्वास छोड़ा। अँधेरा छा गया था। नदी के पानी के बहने की आवाज़ भर सुनायी दे रही थी। दिखायी नहीं दे रहा था। वह आँखें खोले बैठी थी फिर भी बिम्ब न था। थोड़ी देर में विदुर ने ऊपर से आवाज़ दी। वह धीरे से सीढ़ियाँ चढ़कर गयी। ऊपर घर से होम की सुगंधि आ रही थी।

वह भी विदुर के साथ भोजन को बैठी। दूध में पका नरम भात था। लकड़ी की थाली में उसे ठंडा करके पी गयी। साथ में विदुर और उसकी रोगिणी पत्नी थे। उसके बेटे-पोते और पोतियाँ पिछले उद्यान और छत आदि जगहों पर सोने चले गये थे। कुन्ती को याद हो आयी, 'कल सुबह जल्दी उठना है। अरुणोदय से पहले ही कर्ण से मिलना है।" मन को दुख हुआ मानों काँटा करक रहा हो। भोजन के बाद बाहर आकर सूखे गारे के ढेर पर बैठ गयी। थोड़ी देर में विदुर भी वहीं आ बैठा। दोनों मौन बैठे थे। पहले से ही ऐसा था। दोनों साथ बैठे रहे, बिना कुछ बोले। मौन! पता नहीं कितनी देर बीत गयी। विदुर ने पूछा, "कुन्ती, सोओगी नहीं?"

"सोती हूँ। देखो एक बात है। तब भीष्म ने ही न्याय करके झगड़ा रोकने के लिए उस कोने के खांडवप्रस्थ को मेरे पुत्रों को दिलाया था। मूल राजधानी हस्तिनापुर को दुर्योधन के लिए बचा लिया था। अब तुम मेरे पुत्रों को यह संदेश भेज देना: तुम्हारी माँ हस्तिनापुर में आकर बैठ गयी है। यहाँ से हिलेगी नहीं। उन्हें युद्ध करके हस्तिनापुर को ही जीतना चाहिए और यहीं पट्टाभिषिक्त होना चाहिए।"

विदुर हक्का-बक्का रह गया। उसने पूछा, "तुम यह क्या कह रही हो?"

"अंधे से पहले मेरे पति का राज्याभिषेक होना चाहिए था न? दुर्योधन से धर्म दो वर्ष बड़ा है। मेरे पुत्र को कौरव-वंश के मूल नगर में राज्य करना चाहिए। मैं धर्म की बात कह रही हूँ। इसको ठीक ढंग से समझकर समझा सकने वाले दूत

को भेजो। सैन्य सहित विजयी होकर वे यहीं आकर मुझसे मिलें। मैं तब तक यहाँ से हिलूँगी नहीं।"

"अकस्मात् फिर से संधि-वार्ता चले तो?"

"तो दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ जाय।"

८

कृष्ण ने उपलाव्य नगर में ही डेरा डाल रखा था। वह नगर पांडवों की युद्ध की तैयारी का केंद्र था। वह छोटा गाँव तो नहीं था किन्तु राजधानी विराटनगर का आधा भी न था। युद्ध की सभी योजनाओं का केंद्र वही रहे, यही सोचकर विराटराज ने उसे नये समधी पांडवों को फ़िलहाल दे रखा था। केवल पाँच पांडवों के लिए ही नहीं, यदि बाहर से कुछ राजा-महाराजा आ जाएँ तो उनके आतिथ्य के लिए बड़ी संख्या में घर खाली करा दिये थे।

दोपहर की चिलचिलाती धूप से परेशान भीम ठंडे गारे के फ़र्श पर लेटा हुआ था। खिड़की तथा दरवाज़ों पर खस की टट्टियाँ लगाकर सेवक पानी छिड़क रहे थे। भीम ऊँघ रहा था। थोड़ा खाने का निश्चय करके बैठने पर भी करंभ और बकरे के मांस के स्वाद के सम्मुख केवल मन का निश्चय कैसे ठहर सकता था? आज भी पेट खूब भर गया है। ऊपर से यह तेज़ गर्मी। अभी सात-आठ घड़ी यही हाल चलेगा। संध्या होने के बाद ठडी हवा चलेगी। गर्मी कम होगी। इस खस की टट्टी की अपेक्षा बाहर पेड़ के नीचे लेटना अच्छा लगेगा। यह सोचकर वह करवट ले ही रहा था कि सेवक ने कहा, "यादवराज कृष्ण पधारे हैं।"

भीम उठ बैठा। रेशमी वस्त्र बिछा पटरा खींचकर प्रस्तुत करने पर भी कृष्ण उस पर न बैठकर भीम की बगल में ही गारे के फर्श पर आराम से बैठ गया। भीम जानता था कि वह अब क्यों आया है। इसलिए मन से जो कसमसाहट दूर हो गई थी वह फिर से लौट आयी। उत्तरीय उतारकर रखने के बाद गर्दन, छाती और बग़ल पोंछते हुए कृष्ण ने कहा, "जो भी हो मत्स्य देश की ये गायें बढ़िया नस्ल की होती हैं। इनके दूध की-सी चिकनाई मथुरा की गायों के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलती। इसीलिए यहाँ जितना भी करंभ खाया जाय, जी ऊबता नहीं, है न?"

भीम बोला नहीं। कृष्ण ने उसके मुख के भाव से मन की बात समझकर फिर से पूछा, "चुप क्यों हो?"

"तुम्हारे मथुरा के दूध का स्वाद मैं नहीं जानता। विराट की गायों के इस दूध का स्वाद तो अद्भुत है। पहाड़ की बढ़िया घास खाने से बढ़िया दूध उतरता

है। पर पहाड़ की उतराई-चढ़ाई से थक जाने से दूध कम हो जाता है। सारा पानी पसीने में बह जाने के कारण खाली दूध भर रह जाता है।"

"शाबाश भीम ! गायों की जितनी जानकारी तुम्हें है उतनी मुझे भी नहीं।" कहते हुए कृष्ण ने पास खिसक उसके कंधे को सहलाया।

"कृष्ण—गाय, दूध, दही, घी—वास्तव में भोजन के बारे में तुमसे मेरी जानकारी ज़्यादा है। मैं यह नहीं समझ रहा हूँ कि तुम झूठी प्रशंसा क्यों कर रहे हो। इस समय तुम केवल प्रशंसा करने यहाँ नहीं आये हो। इस धूप में लेटकर आराम करने की बजाय मेरी प्रशंसा से मुझे खुश करके वहाँ जाने के लिए मनवाने आये हो। मोटे आदमी को पसीना बहुत आता है। तुम्हारे जैसे पतले लोग एक प्रकार से सुखी ही रहते हैं," कहते हुए उसने पास पड़ा खस का पंखा उठाकर पाँच-सात बार ज़ोर से हवा की और बाद में बोला, "सवारी के घोड़े भी नहीं थकते।"

"तुम अकेले अपने को ही हवा कर रहे हो। ज़रा मेरी ओर भी आने दो," कहकर कृष्ण ने भीम के पंखे की ओर अपनी छाती आगे की। कुछ चैन मिला। बाद में बोला, "तुमने 'वहाँ' जाने की बात कही, वहाँ यानी कहाँ ? साफ़-साफ़ मुँह खोलकर कहो। जो भी हो पहली पत्नी है, उसने यौवन में तुम्हारे कोमल मन को जीता था। नाम लेने में शरम आती है। मन-ही-मन लड्डू फूट रहे होंगे। मेरे सामने दिखावा क्यों करते हो ?"

भीम को गुस्सा आया। कृष्ण की जगह कोई और होता तो दो जड़ देता, पर उसने अपने को रोक लिया और बोला, "मेरा तिरेपन या चौवन चल रहा है। माँ होती तो याद करके ठीक से बताती। ऊपर से बारह वर्ष वनवास का ब्रह्मचर्य। एक वर्ष की नौकरी। अब मन में स्त्री, प्रेम जैसी चीज़ें शेष नहीं रहीं।"

"मैं जानता हूँ, तुम्हारा ध्यान दूसरी स्त्री की ओर कभी नहीं था। पर वह अपने आप प्यार से तुम्हारे पास आयी थी। तुम भी उस पर पिघलकर लुट गये थे। वह पहली पत्नी थी। यहाँ मन की बात कहाँ उठी।"···

"मैंने यह नहीं कहा, मैंने कहा कि पचास पार कर चुका हूँ। जंगल में खाने-पीने के अभाव में सूख जाने पर भी इस भीम की भुजाओं में शक्ति की कमी नहीं आयी। पृथा का पुत्र है यह। देवसेनापति के वीर्य से जन्मा है। कैसी भी सेना क्यों न आ जाय, अकेले सामना कर सकता हूँ। फिर दूसरे की सहायता क्यों माँगी जाये ? भिक्षा और भीम दूर की चीज़ें हैं। मैं तो नहीं जाऊँगा। उसके अतिरिक्त दूसरी कोई बात करो।"

"युद्ध हो रहा है। 'आओ' कहने से भिक्षा कैसे हुई ? इसी तरह हमने कई राजाओं को बुलवा भेजा है। दुर्योधन भी बुला रहा है। क्या यह सब भिक्षा है ? इसके अतिरिक्त बाहर के राजा ही जब आकर सहायता कर रहे हैं तब तुमसे उत्पन्न तुम्हारे पुत्र को आकर क्या सहायता नहीं करनी चाहिए ? लेकिन जब तक

पता न चले वह कैसे आएगा ? जाकर बताने का काम तुम्हारा ही है। वैसे पत्नी से भी मिलना हो जाएगा।"

यह कृष्ण ने गंभीरता से आत्मीय ध्वनि में कहा। भीम का गोरा मुख और सुर्ख हो गया। पर बात लग गई। हाथ के पंखे को देखने लगा। गर्मी में एक मोटी मक्खी दीवार पर बैठने के प्रयास में उससे टकरा रही थी। कुछ देर बाद कृष्ण ने बात आगे बढ़ाई—"विवाह के बाद फिर एक बार भी नहीं गये। बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा नहीं किया। पत्नी को दुबारा देखा नहीं। अब जाकर अपनी राक्षस सेना से 'आकर युद्ध करो' कहने में लज्जा क्यों अनुभव करते हो ? यह तुम मुझसे पूछ सकते हो। पहली बात यह है कि हर एक काम में अपना कुलाचार होता है। ऐसी कितनी ही जातियाँ हैं जहाँ पैदा करने वाले की कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती। केवल माँ ही पाल-पोसकर बड़ा करती है। तुमने मुझे क्यों नहीं पाला, यह बात पिता से पूछना वे जानते ही नहीं। यह भी हो सकता है कि उसने तुम्हारे दुबारा आने की अपेक्षा ही न की हो। इसके अतिरिक्त तुम लोगों को सारे समय में वन-वास और अज्ञातवास में रहना पड़ा। ऐसे में उसे बुला भेजने की स्थिति ही कहाँ थी ? यह सब समझाने से क्या वह समझेगी नहीं ? तुम्हारे मन की उलझन को मैं समझता हूँ।"

इतना कहकर कृष्ण चुप हो गया। भीम को तत्क्षण एक बात सूझी, वह बोला, "सबके मन की बात तुम समझ जाते हो, तुम बड़े समझदार हो।" उसके स्वर ही नहीं नाक, आँख और चेहरे से उसका गुस्सा स्पष्ट दीख रहा था। उसका दायाँ हाथ अचानक फिर से ज़ोर से पंखा झलने लगा। दीवार पर बैठने का प्रयास करती मक्खी सँभल न पायी और टकरा गयी। कृष्ण थोड़ी देर और चुप रहा फिर धीरे से बोला : "बाहु का बल तो केवल द्वन्द्व-युद्ध में काम आता है। दुर्योधन जरासंध जैसा मूर्ख नहीं कि भीम के साथ द्वन्द्व-युद्ध करे। और यह कहें कि 'अगर तुम जीत गये तो राज्य तुम्हारा नहीं तो पांडवों का,' यह कहकर ललकारने से वह आएगा नही। इन्द्रप्रस्थ में जो सम्पत्ति तुमने एकत्रित की थी वह अब उसके भंडार में पहुँच चुकी है। मतलब यह है कि और अधिक राजा, अधिक सैन्य, रथ, घोड़े, हाथी उसके पास हो गये हैं। तुम्हारे अकेले का बाहुबल क्या कर सकेगा ? चाहे जहाँ कहीं से योद्धा मिलें उन्हें अपनी ओर मिला लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक और बात याद रखो।" तब तक भीम का दायाँ हाथ हवा करना भूल गया था। धरती पर गड़ी उसकी आँखें कृष्ण से मिलीं।—"तुमने जिन हिडिंब, बक आदि राक्षसों को मारा था उनके पास दुर्योधन ने अपने चतुर दूत भेजे हैं। तुमसे बदला लेने की भावना क्या उनमें नहीं होगी ! युद्ध में राक्षसों का एक विशेष तरीका होता है। यह तुम भी जानते ही हो। रात के अँधेरे में आक्रमण करने का उन्हें अभ्यास होता है। जंगली जानवरों की भाँति अपनी जान की परवाह न करके शत्रु

पर टूट पड़ने की उनकी उन्हें आदत है। क्या आर्य जाति उनकी बराबरी कर सकेगी ? दुर्योधन के पक्ष से लड़ने वाले राक्षसों की बराबरी के लड़ने वाले कुछ लोग यदि साथ न हों तो तुम अकेले क्या कर पाओगे ?"

भीम की आँखें कृष्ण की आँखों में गड़ गयीं। उसकी आँखों के भाव को पढ़ रही थीं। मक्खी भी दीवार के पास न थी। उसे देखने को भीम ने गर्दन न घुमायी। सेवक बाहर से खस की टट्टियों पर पानी छिड़क रहा था। यह गाँव अच्छा है, गर्मी में भी पानी का कष्ट नहीं। जब भीम यह सोच रहा था तब कृष्ण बोला, "घटोत्कच के पास तुम्हारे सिवा और किसका जाना उचित रहेगा ? तुम्हीं बताओ ?"

दूर कहीं ठन-ठन की आवाज़ सुनाई दी। हथौड़े से लोहा पीटने की आवाज़ थी। तभी पेड़-पौधों के हिलने की आवाज़ हुई। हवा नहीं आँधी आयी है। धूल भरी आँधी। ज़रा चले तो आकाश से भूमि तक व्याप्त गर्मी थोड़ी कम हो जाएगी। इस गीली खस के भीतर धूल नहीं घुसती। चिपचिपे शरीर पर नहीं चिपकेगी। बारह वर्ष के वनवास में—पूरे बारह तो नहीं, बीच में चार वर्ष हिमालय में थे। शेष आठ वर्ष की गर्मी में इस चिपचिपे शरीर पर धूल गिरने का नारकीय जीवन। फिर भी धूल और आँधी शांत होने के बाद नदी में नहा कर शरीर रगड़ने पर कितना सुख मिलता था। यह सोचकर भीम बोला, "कृष्ण ! आओ बाहर चलें, आँधी देखना बहुत अच्छा लगता है।" कृष्ण भी उसके पीछे हो लिया। आँधी बड़े ज़ोर की थी। जिस जंगल में वे रहते थे वहाँ पेड़-पौधे झुककर काँप रहे थे। बाँस कट-कट करते झुके पड़ते थे। सूखे बाँस घर्र-घर्र करके रगड़ खाकर जलने लगते। उस दावानल की लपटों को फैलाने वाली साँय-साँय करती हवा चलती रहती किंतु आकाश को ढक लेने वाली धूल न थी। इस उप्लाव्य नगर में तो शीतकालीन ओस की भाँति घर-द्वार-आकाश सभी धूल से ढँक गये हैं। पत्ते-तिनके धूल के चक्रवात में फँसकर ऊपर-नीचे हो रहे हैं। चक्कर काट-काटकर फिर लौट आते हैं। बरामदे में खड़े होकर कृष्ण और भीम दोनों देख रहे थे। कृष्ण सीधा खड़ा होकर हाथ उठाये तो भीम की लंबाई को पहुँचता। भीम आँधी देखने में मग्न था। कृष्ण भी उसी में मग्न हो गया। उसने बचपन से मथुरा-वृन्दावन में ऐसी आँधियाँ देखी थी। उसकी स्मृतियाँ उमड़ने लगी। उस आँधी के बीच कभी-कभी ठन-ठन की आवाज़ सुनाई पड़ जाती। क़रीब दो घड़ी के बाद आँधी शांत हो गयी। ठंडी बयार फिर बहने लगी। भीम एकदम उल्लसित हो उठा। तब तक कृष्ण अपने शिविर में चला गया था।

भीम अकेला नगर के पिछवाड़े के तालाब पर गया। पेड़ों के बीच पत्थर से बने तालाब में धड़ाम से कूद पड़ा। कुछ देर तक तैरता रहा। पानी की गहरायी कम थी। गंगा में तैरने में ही मज़ा आता है। हस्तिनापुर की याद आयी। नदी के

किनारे लंबे-लंबे काँस और लंबी दूर्वा के कारण गर्मी में भी पानी ठंडा रहता। वहाँ से हिमालय समीप है। मुझे वहाँ पहुँचने में डेढ़ दिन लगता है। गर्मी में भी शीत कम नहीं होता। यमुना कैसी है ?हमारा इन्द्रप्रस्थ उसके किनारे पर ही है। पता नहीं क्यों मुझे जैसा प्यार गंगा से है वैसा प्यार जमुना से नहीं। बचपन से आदमी जहाँ रहता हो उसी पर प्रेम होता है, कहीं और वैसा प्रेम संभव नहीं। वहीं तो नशीले लड्डू खिलाकर पानी में डुबोकर मुझे मार देने का षड्यंत्र रचा था, उस अंधे के बेटे ने। उसमें नदी का क्या दोष ? जो भी हो गंगा से मुझे ज्यादा लगाव है। यही सोचते वह पानी पर चित तैरने लगा और पानी मुंह में भरकर ओठों से ऊपर की ओर फव्वारा फेंकने लगा। इस तरह पानी फेंकने से उसे एक प्रकार की शांति महसूस हुई। आँखों में पानी चले जाने से आँखें धुंधला गयीं। बचपन में तैरने की अपेक्षा ऊपर से कूदने और कलाबाजियाँ खाने में आनंद आता था। भीम जब कूदता तो लहरों में बाकी तैरने वाले बह जाते और पानी पी जाते। उस याद से हँसी आने से मुंह का पानी बह निकला और मुँह से पानी का फुव्वारा रुक गया। अब ऐसे खेलों में आनन्द नहीं आता। केवल तैरने और आराम से पीठ के बल बहते जाने में ही तसल्ली मिलती है। सिर से तालाब का किनारा टकराया तो उसने कहा, "धत् यह तालाब तो बहुत छोटा है। यहाँ केवल नहाया ही जा सकता है यह तैरने योग्य नहीं।" शरीर से पानी सुखाने के लिए वह कुछ देर किनारे पर खड़ा रहा। बाद में कपड़े पहनकर घर की ओर चल पड़ा। गर्मी से राहत मिली। शरीर हल्का हो गया। आकाश अब जल नहीं रहा था। सूर्यास्त का समय हो गया था।

घर पहुँचते ही सेवक ने निवेदन किया—"पटरानी आयी हैं। छत पर बैठी हैं।"

भीम सीधा सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गया। यह सोचकर वह छत पर पहुँचा कि इस समय द्रौपदी का आना अच्छा ही हुआ। आराम से बैठकर बातें करेंगे। वहाँ द्रौपदी के साथ दो दासियाँ खड़ी थीं। इसके आते ही वे दोनों तुरंत सीढ़ियाँ उतरकर चली गयीं। कोमल घास की चारपाई पर बैठी द्रौपदी पास आये पति के हाथ पर हाथ रखकर उठ खड़ी हुई। आकाश में लालिमा छा गयी थी। आर्यों के साधारण रंग की तुलना में द्रौपदी ज़रा काली ही कही जा सकती थी। उसके मुख पर चिंता थी। उसके सिर पर काले बालों के बीच कहीं-कहीं एकाध सफ़ेद बाल दीखने लगा था जो उसकी प्रौढ़ता को कांति दे रहा था। अपनी छाती तक पहुँचने वाले उसके माथे को देखकर भीम ने कहा : "कृष्णा, तुम्हारे बाल इतने सफ़ेद हो गये, मैंने कभी देखा ही नहीं !"

"अब तो देख लिये न। चमकते काले बालों वाली एक राजकुमारी लाकर शादी करा दूं ?"

भीम नीचे बैठ गया । हाथ पकड़कर उसे भी पास बिठा लिया । वह चुपचाप बैठ गयी । वह आकाश को निहार रहा था । कुछ देर बाद यकायक बोला : "तैरने गया था । तालाब बहुत छोटा था । तुमने देखा ही होगा । गंगा की याद हो आयी । मैंने निश्चय कर लिया है कि भविष्य में मैं गंगा में ही तैरूंगा । यमुना में नहीं ।"

पांचाली बोली नही । ऐसे विचार उठने पर उसका साथ देने वाली वही अकेली थी । वह कभी अर्जुन के साथ मुक्तभाव से बैठकर स्वप्न देखने की बातें नहीं करती थी । उन दोनों के सपने अलग-अलग थे । बड़ा भाई धर्मराज तो बुजुर्ग था । दोनों में घनिष्ठता बहुत कम थी । इंद्रप्रस्थ में राज्याभिषिक्त होने के बाद से वह बड़ा गंभीर हो गया था । पर भीम ने साहस और बचपना खोया न था । राजसूय यज्ञ के बाद धर्मराज ने जब जुए में सब खो दिया, पत्नी और भाइयों को दरिद्र बनाकर बनवासी कर दिया । तब भीम उसके दोनों हाथ आग से जला देने को तैयार हो गया था । यदि अर्जुन न रोकता तो जला ही देता । जंगल के बारह वर्ष में बी-बीच में उसे धर्मराज पर क्रोध आ जाता था । इंद्रप्रस्थ के राज्यकाल में भीम बड़ा विनीत होकर धर्मराज से व्यवहार करता था और उन दोनों में एक प्रकार का संबंध बन गया था । जुए में राज्य खो देने के बाद भीम ने उसके प्रति निरंतर तिरस्कार भाव दिखाया । उससे न केवल वह संबंध टूटा अपितु आगे चलकर उस प्रकार की आत्मीयता का विकास होना संभव न हो सका । अब वह नकुल, सहदेव से चाहे जितनी घनिष्ठता से व्यवहार करता, वे तो सदा उसके प्रति भय-भक्ति ही दिखाते । इस प्रकार उसके साथ आत्मीयता से बात करने, गप्पें लड़ाने, सपने देखने में पांचाली के सिवा दूसरा कोई न था । कोई अन्य पति उसे उसके मायके के कृष्णा नाम से नहीं पुकारता था ।

उसने कहा, "मेरी बात सुनी ?"

"बड़े भइया का निश्चय ही मुख्य है न ? सुना है संधि के लिए कृष्ण को ही भेजना चाहते हैं ?"

"कृष्ण भले ही जायें पर संधि नहीं होगी ।"

"बुजुर्ग बीच में पड़कर कही दुर्योधन को मनवा लें तो ?"

"बुजुर्ग तो कहेंगे ही । यह सच है । पर उसका मानना असंभव है । उसके मन की बात मुझसे ज्यादा और कोई नहीं समझ सकता । आमने-सामने लड़ने वाले दो जवान सांडों को देखा है ? एक का मन जितना दूसरा जानता है उतना बाहर वाला नहीं समझ सकता । वह सांड की तुलना के योग्य भी नहीं । उसे अधिक से अधिक कुत्ता कहा जा सकता है ।"

"कुत्ते का सांड से डरकर संधि के लिए तैयार हो जाना कोई असंभव बात नहीं ।"

"कृष्णा, इधर देखो" कहकर अपनी छाती खोलकर दिखाने का इशारा करते हुए वह बोला : "दुबारा राजा बनने की इच्छा धर्मराज को है, अर्जुन को है। यह नहीं कह सकता कि नकुल और सहदेव को नहीं है। पर मुझमें नहीं है। बारह वर्ष जंगल में कंदमूल और शिकार खाकर कष्ट उठाए। एक वर्ष दूसरों के घर नौकरी की। सुख भोगने की शक्ति की आयु समाप्त होने के बाद फिर महल में रहे तो क्या, जंगल में रहे तो क्या ? अब तो मुझे जंगल के जीवन से ही प्यार हो गया है। मेरे जीवन की एकमात्र इच्छा दुर्योधन, दुशासन, कर्ण, शकुनि और शेष समस्त कौरवों को और उन्हें पैदा करने वाले अंधे को जान से मार डालना है। मेरे जीते जी उन्हें पैदा करने वाले और मेरी पत्नी को दासी कहकर छेड़ने वाले उन सब को। अकस्मात् संधि हो जाए और वे इंद्रप्रस्थ हमें लौटा दें तो मैं सेनापति बनूंगा ही। सेना ले जाकर उन सबको मारकर ही मेरा मन शांत होगा। यह बात मैंने किसी के सामने इतनी स्पष्टता से कही नहीं। पर दुर्योधन निश्चित रूप से यह जानता है। वह इतना मूर्ख नहीं कि वह यह न समझ पाये। कुत्ते को गंध न आये, यह नहीं हो सकता।"

द्रौपदी अपलक उसका मुख देखे जा रही थी। अब भी उसकी आँखें खिले कमल के समान थीं। भीम ने भी उसकी आँखों से आँखें मिलायीं। मौन रहने पर एक-दूसरे का मन मिला हुआ है, यह दोनों जानते थे। एकदम उसकी आँखों में आँसू भर आये। भीम को लगा कि वह अभी बिलख पड़ेगी। पर इतने में उसने अपने को रोक लिया। भीम कसमसा उठा। वह बोला, "कृष्णा, यदि तुम रो पड़ोगी तो मुझे भी स्त्री की भाँति रोना आ जाएगा। पर तुमने अपने को रोक लिया है तो मुझे क्रोध आ रहा है। मेरे सामने तुम्हें घमंड नहीं दिखाना चाहिए।"

अब वह अपने को रोक न पायी। उसने बाँध टूटने दिया। स्वयं आगे बढ़कर उसकी गोद में सिर रखकर बिलख पड़ी। भीम ने उसे बच्चे की भाँति गोद में लपेट लिया। वह रुक-रुककर अस्पष्ट रूप में बोलने लगी, "तुम्हारे पास नहीं तो किसके पास जाकर रोऊँ ?" उसकी भारी जाँघों को कसे मुख नीचा किये बैठी द्रौपदी ने जब सिर उठाकर देखा तब उसकी आँखें भी भरी हुई थीं वह जानती थी कि उसकी आँखें अवश्य भरी होंगी। भीम जैसे पुरुष की आँख में आँसू नहीं आने चाहिएँ। अकस्मात् कहीं एक बूंद आँसू आ भी जाये तो गंगा नदी के समान होता है। "मैं जानती हूँ कि इतने दिनों में मेरे लिए तुम्हारी आँखों से कितना पानी बहा है। और किसी की आँखों से एक बूंद पानी नहीं गिरा।" यह कहकर अपने हाथ से अपने आँचल से उसकी आँखों को पोंछते समय उसे तसल्ली हुई। वह मौन बैठा रहा। शाम अब अँधेरे में बदल रही थी। धूल के आवरण में तारे मद्धम दिखायी पड़ रहे थे।

कृष्णा कुछ कहने को छटपटा रही थी। भीम समझ न पाया। अँधेरे में उसकी

अस्पष्ट मुखाकृति को देखते हुए उसके मन में दुर्योधन के अंधे पिता की सफ़ेद दाढ़ी की याद आ रही थी। तेरह वर्ष पूर्व वह ऐसी थी। अब पता नही कैसी है।

उसने पूछा, "सुना है वहाँ जा रहे हो ?"

"कहाँ ?"

"राक्षस सेना की सहायता माँगने ?"

"कृष्ण ने सुझाया है। उसकी बात ठीक भी लगती है।" तेरह वर्ष पूर्व की सफेद दाढ़ी की कल्पना में उसका मन भटक रहा था।

"उस सेना के बिना यह भीम जीत नहीं सकता ?" कहते हुए द्रौपदी ने उसकी दोनों भुजाएँ सहलायीं।

"दुर्योधन ने हमारे शत्रु राक्षसों को इकट्ठा कर लिया है। उसी के समान प्रतिशक्ति हमारे पास भी होनी चाहिए। कृष्ण का विचार सही लगता है। आखिर जो भी है, वह पुत्र है, पिता की सहायता करे।"

इतना कहकर वह फिर मौन हो गयी। कुछ देर बाद उसी के "क्या यह ठीक नही ?" पूछने पर "हूँ" करके चुप हो गयी। भीम समझ गया कि उसकी ध्वनि भारी है। "क्यों, दुख हुआ ?" कहते हुए उसके दोनों कंधे दबाते हुए पूछा। "दुख तो नहीं।" कहकर वह खिलखिला पड़ी। पर वह हँसी बनावटी है, यह भीम समझ गया।

"कृष्णा, तुम्हारे मन में क्या खटक रहा है ? बताओ। जल्दी बताओ। मुझे गुस्सा मत दिलाना।" उसे गुस्सा आ गया था। यह उसकी ध्वनि से ही नहीं उसके कंधे पकड़ने वाली उन उँगलियों से वह समझ गयी।

"तुम जानते हो, तुम्ही अकेले मेरे रक्षक हो। यह बात सदा तुम्हारे मन में रहे।"

"इसका क्या मतलब ?"

"अगर समझ नहीं सकते, तो कहने से भी कोई लाभ नहीं। तुम भी मत पूछो, मैं भी अपना गला नहीं सुखाऊँगी।" दो-टूक बात कहकर वह मूर्ति की भाँति बैठ गयी।

भीम ने सोचा पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। कुछ देर अपने में छटपटाया। उसे क्रोध आ गया। "देखो, यह युद्ध का समय है। स्त्रियों की पहेलियाँ बुझाने का अवकाश नहीं। जल्दी से कहो।" 'हूँ' कहते हुए उसके दोनों कंधों को दबाकर हिलाया।

उसके इसी प्रकार मसलते रहने के कारण द्रौपदी की भुजाएँ सख्त हो चुकी थीं। इस बीच उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था। उसने फिर से दो-टूक कहा, "तुम्हें ही समझना होगा। मैं नहीं बताऊँगी। और गुस्से में आकर तुम क्या

करोगे, यह मैं जानती हूँ। भीम शत्रुओं की हड्डियाँ तो चूर-चूर न कर पाया पर पत्नी की हड्डियाँ तोड़ डालीं। यह अपवाद लग जाएगा। यदि तुमने ऐसा-वैसा किया तो।"

उसे और गुस्सा आया। कोई बात स्पष्ट नहीं कहती। बेकार में पहेलियाँ बुझाती है। यह कैसी पत्नी है? डाँटने को मन हुआ।

स्वभाव से उसकी ज़बान पर आ जाने वाली गालियों का उत्तर उसने पहले ही देकर बात खत्म कर दी थी। यह सोचकर वह असहाय-सा बैठ गया। फिर से तेरह वर्ष पहले की—उस बूढ़े की दाढ़ी, नहीं मुँह पहले जैसा ही होगा अथवा लटक गया होगा। यह बात कौंध उठी। पिताजी के मरने के साथ छोटी माँ शव के साथ चिता पर चढ़ गयी। हम अनाथ होकर माँ के साथ पर्वतों पर चढ़ते-उतरते थके-माँदे आये। तब ताऊजी के चरण स्पर्श करो कहने पर उसी को पिता समझकर ज़ोर से उसके पाँव कस लिये थे। अंधा है। अंधे की आँख खोलनी है। वह युद्ध में तो नहीं आएगा पर उसकी अंदर की आँखें खोल दूँगा। जब वह यह सोच रहा था तब द्रौपदी उठकर खड़ी हो गयी। उसने पूछा, "क्यों?"

"अपने शिविर में जाऊँगी।"

"यहीं रहो।"

वह बोली नहीं। उसने उसका हाथ पकड़कर झटका देकर बिठाया। वह मौन होकर बैठ गयी।

उसने पूछा, "क्यों?"

"उस विषय के बारे में बात भी नहीं करनी चाहिए। उसे छोड़े तेरह वर्ष हो गये।"

"अब तो वह नियम नहीं है न?"

"नहीं रहा नियम? यह निश्चय होना चाहिए कि कब किसकी बारी है। निश्चय क्या होना है, मेरा ऋतु-चक्र समाप्त होने का समय हो चला है।"

"अज्ञातवास के समय तुम धर्मराज के साथ थीं न?"

"हूँ। वह पहले से ही निवृत्त स्वभाव का है। फिर भी नियम का निष्ठा से पालन होना चाहिए। अभी छः मास भीम के लिए निषेध है। कृष्णा के लिए भी वही है।" कहती हुई वह विषादपूर्वक हँस पड़ी। कुछ देर बाद उसने उसके घने बालों को दोनों हाथों से सहलाया और अपने आप बोला, "अब तुम जाओ। दासियाँ नीचे प्रतीक्षा कर रही होंगी।"

उस नगर में घर गोलाई से बने हुए थे। चोर-उचक्के या शत्रुओं के लिए प्रवेश आसान न था, फिर भी भीम दासियों को साथ लेकर अपने घर से तीसरे घर में जहाँ उसका निवास था, छोड़ आया।

दो मार्गदर्शक और बीस अच्छे घुड़सवारों को साथ लेकर वह चल पड़ा। उसने तो अकेले जाने का हठ किया था। परन्तु धर्मराज, अर्जुन, कृष्ण, द्रौपदी आदि कोई भी सहमत नहीं हुआ। उपप्लाव्य नगर मत्स्य देश के उत्तर भाग में था। वहाँ से हिडिंबप्रदेश जाने को कुरू प्रदेश लाँघकर जा सकते थे। पांचाल देश होकर भी जा सकते थे। कुरू प्रदेश के दक्षिण भाग से वारणावत से होते हुए जायें तो एक रात और एक दिन की पैदल यात्रा थी। भीम को उसके घने जंगल के मार्ग की धुंधली याद थी। मार्ग का अर्थ यह नहीं कि वह जन-संचार के योग्य था। जान बचाने के लिए ये पाँचों माँ के साथ चढ़ाइयाँ-उतराइयाँ पार करके किसी प्रकार पहुँच गये थे। हिडिंब प्रदेश कोई ऐसा प्रदेश न था कि जिसके आस-पास के राजाओं ने उसकी सीमा पर उनका अधिकार स्वीकार कर लिया हो। एक ओर कुरू, दूसरी ओर पांचाल राज्य करते थे। वह प्रदेश ऐसा था कि कोई भी भीतर घुसने का और उसे अपने अधिकार में लेने का साहस कर नहीं पाता था। घोर जंगल था वह। शेर-चीतों जैसे भयानक जन्तुओं से भरे उस प्रदेश मे जाकर कोई भी आर्य जाति नहीं बसी थी। जंगल को साफ़ करके कृषि के लिए उपयुक्त बनाये बिना वहाँ बसना संभव भी नहीं था। शिकार, कुछ कंदमूल, जंगली जानवर और अपने आप उगने वाले बाँस के चावल आदि पर जीने वाली राक्षस जाति के अतिरिक्त वहाँ किसी और समुदाय के लिए ठहरना संभव नहीं था। राक्षस दूसरों को वहाँ घुसने भी नहीं देते थे।

धर्म, अर्जुन आदि ने बताया कि उसे कुरू प्रदेश होकर नहीं जाना चाहिए। दुर्योधन का निशाना वही है। उसका काम तमाम करने के लिए दुर्योधन सतत प्रयत्नशील है। उसके देश से जाने पर वह छोड़ेगा भी नहीं। अतः सबने लम्बा रास्ता ही सुझाया। भीम तो एक ही रास्ते से जाना चाहता था। वारणावत से एक दिन एक रात जंगल में तेज़ी से चलकर पहुँच जाता। उसके साथ शस्त्रास्त्र सज्जित दस घुड़सवार आये थे। पीछे दस अंगरक्षक थे। बीच-बीच में खाना पकाने के लिए चावल-आटे की बोरियाँ, घी के बर्तन, उसके बैठने और विश्राम करते समय देखभाल करने के लिए पहरा देने वाले भी थे। तो भय, शंका के लिए अवकाश ही कहाँ था! वहाँ गये कितने वर्ष बीत गये? भीम ने याद किया।

अज्ञातवास बीते छः मास बीत गये हैं। वनवास में बारह साल रहे। उससे पहले राज्य भी किया था। एकचक्र नगर में भिक्षाटन करके एक साल बिताया था। ससुर द्रुपद के यहाँ भी छः महीने रहे। हिडिंबा के साथ एक वर्ष रहा। कुल कितने साल हुए? सत्ताईस या अट्ठाईस। ठीक से हिसाब नहीं मिल रहा है। जो भी हो, कितनी पुरानी बात! ओह, कितना समय बीत गया! बीचमें क्या-क्या हो गया! अब घोड़े पर जा रहा हूँ। आगे शस्त्रास्त्र सज्जित दस अश्वारोही हैं और दस अश्वारोही पीछे। दुर्योधन द्वारा नियुक्त हत्यारों से बचाने को। उस समय भी

उसकी ओर के हत्यारों से छिपकर जंगल में सिर छिपाकर, वेश बदलकर, नाम बदलकर, घूमते रहे। दुर्योधन, तेरा सिर काटकर, तेरा राजसी वेश उतारकर तेरा नाम तक न मिटा दूं तो मेरा नाम भीम नहीं। यह सोचते हुए उसका ध्यान अपने नाम के अर्थ की ओर गया। मेरे माता-पिता ने मेरा नाम कितना सार्थक रखा। जब मैं पैदा हुआ था तभी काफ़ी लम्बा-चौड़ा था। गोद में लेने पर माँ की गोद से लेकर कंधे तक पहुँच जाता था। माँ जैसी लम्बी-चौड़ी स्त्री भी मुझे गोद में लेकर चलती तो हाँफने लगती। तभी उसका ध्यान अपने घोड़े की ओर गया। उसकी सवारी के लिए विशेष रूप से चुना गया घोड़ा बह्लीक जाति का था। फिर भी मद्धम चाल से चल पाता है। उस समय घोड़ा भी नहीं था। यह भी भरोसा नहीं रहता था कि कल इस समय तक जीवित भी रहेंगे या नहीं। जान बचाने के लिए सिर छिपाकर झाड़-झंकाड़ों के बीच से आगे अर्जुन, पीठ पर कपड़े की झोली में माँ को बिठाकर मैं, मेरे पीछे धर्म और दोनों छोटे भाई। बीच में कोई पक्षी भी पंख फड़फड़ाता था या चीं-चीं भी कर देता था तो यह डर लगता कि किसी हत्यारों को देखकर डर के मारे तो नहीं चिचिया रहा। मैंने ही उस सूखे लकड़ी के घर में आग लगायी थी। वह घर राल, घी, तेल और सूखे तख़्तों से बनाया गया था ताकि आग लगते ही हम भस्म हो जायें। सुरंग में प्रवेश करने से पूर्व मैंने ही आग लगा दी थी। । एक मिनट में भक से आग लग गयी और धुंआ छा गया। उसमें सोयी भीलनी और उसके पाँचों बच्चे आग की लपटों में जलभून गये होंगे। उन जले हुए शवों को देखकर दुर्योधन उन्हें कुन्ती और उसके पाँचों पुत्र समझकर मारे खुशी के दूध और शहद मिला सोमरस पीकर नाचा था। दो वर्ष बाद जब हमने कृष्णा को जीता तब हमें पहचानने के बाद उसका मुख देखने लायक था। धर्म को गद्दी पर बिठाकर जब राज्याधिकार सौंपा गया तब उसने ऐसा व्यवहार किया जिसे बूढ़े, युवक और सभी लोगों ने पसन्द किया। खैर, उसकी बात तो अलग रही। खेल न जानने पर जुआ खेलने क्यों गया यह धर्म ? यह अच्छा शासक, बुद्धिमान, विवेकी, सहनशील, शांत गुणों वाला था। परन्तु अधिकार और राजसूय यज्ञ की कीर्ति ने इसका दिमाग फेर दिया था। खैर, इसे भी जाने दो। बूढ़ों को प्रसन्न करने के लिए बार-बार चरण छूकर उसे महाप्रसाद मानना इसकी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। इसकी इस दुर्बलता से लाभ उठाकर उस अंधे बूढ़े ने हमें गड्ढे में धकेल दिया। अंधे ने यह समझा था कि प्रतिदिन यदि इसी प्रकार इसका यश बढ़ा और यह जनप्रिय होता गया तो जनता इसी युवराज को चाहेगी और इसे राजा का पद दिये बिना कोई चारा न रहेगा। पिता-पुत्र ने योजना बनायी। कैसी चिकनी-चुपड़ी बातें! बातों में प्यार तो उमड़ा पड़ता था। "मेरे प्यारे बेटे धर्म में शासन के प्रति कैसी कर्त्तव्यपरायणता है, यह देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। इस छोटी आयु में कितना भार उठा रहा है।"

"ताऊजी, राज्य आपका है। मैं तो यह समझता हूँ कि आपकी चरण-सेवा करने का यह एक अवसर है।"

"बड़ों के प्रति तुममें जो भक्ति है, वही तुम्हारी रक्षा करेगी। तुम शासन चलाकर थक चुके हो। कुछ दिन विश्राम लो। इसके अतिरिक्त एक और महत्तर कार्य भी है। वारणावत नाम का एक नगर है। तुमने देखा है?"

"नहीं ताऊजी।"

"वह हमारे शत्रु पांचाल देश का सीमावर्ती प्रान्त है। ऐसा नहीं लगता है कि वहाँ की जनता हमें पूर्णरूप से पसन्द करती है। दो राज्यों के सीमावर्ती लोगों का स्वभाव ऐसा ही होता है। तुम जैसा जनप्रिय युवराज यदि वहाँ दो-एक साल निवास करे अथवा उसे अपनी उपराजधानी बनाकर शासन सँभाले तो अच्छा है। तुम समझदारी, न्याय और नीति से लोगों का मन जीत सकते हो। अपनी स्थिति भली प्रकार दृढ़ करने के बाद पांचाल के सीमावर्ती प्रदेश को भी जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया जा सकता है। तुम्हारे पूज्यपिता पांडु ने राज्य का विस्तार करके यश कमाया था। क्या तुम्हें वह काम नहीं करना? चुप क्यों हो बेटा? मेरी बात तुम्हें कैसी लगी?"

"आपका कहना सही है ताऊ जी!"

"तुम्हारे और तुम्हारी माता तथा भाइयों के लिए सुविधाजनक एक महल बनवा दिया है। कुरु युवराज के स्तर के लिए क्या किसी साधारण भवन से काम चल सकता है! एक दम नया महल बनवाया है। उसमें जो रंगबिरंगी सज्जा की गयी है वह अमरावती और इन्द्र-प्रासाद में भी नहीं। धर्म, तनिक इधर आओ।" कहकर उसे पास बुलाकर गले लगाकर दोनों अंधी आँखों से झर-झर पानी टपकाते हुए कहा, "यह सब देखकर प्रसन्न होना चाहूँ भी तो भगवान ने मेरे पैदा होने से पहले ही मेरी आँखें छीन लीं। मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलकर वहाँ के फूलों की सुगन्ध का सेवन करना भी चाहूँ तो इस हस्तिनापुर का मोह छोड़ता नहीं। पैदा होने के बाद से मैं इस नगर की सीमा छोड़कर कहीं गया भी नहीं।"

'जनप्रियता की जड़ काट डालना ही ताऊजी का उद्देश्य है', यह बात घर आकर धर्म ने बतायी थी। क्या उसका उद्देश्य केवल उतना ही था। भीम का मन मूल का ही पता लगाने का प्रयास करने लगा। पर कितनी बार मैंने इस बारे में नहीं सोचा! दुर्योधन इस कुचक्र के मूल में था। इस बारे में मुझे कोई संदेह नहीं। पर उसका बाप उससे भी नीच था। यह धर्म और अर्जुन नहीं मानते। दोनों ऐसे ही हैं। बूढ़े का बहुत सम्मान करते हैं। सम्मान अधिक हो जाने से आँखें अंधी हो जाती हैं। कृष्णा ही ठीक है। वह यह मानती है कि पिता पुत्र से भी अधिक नीच है। उसने अंधेपन की सीमा तक पहुँचने वाला सम्मान किसी के प्रति नहीं रखा। तभी मन कृष्णा की स्मृतियों से भर उठा।

उसने कहा था, "अकेले तुम्हीं मेरे रक्षक हो। यह तुम्हें भी मालूम है। यह बात सदा तुम्हारे मन में रहे। यही मेरे लिए बहुत है।" यह कहते-कहते वह रो दी थी। वह सदा यह बात कहती थी। पर कल यही बात कहते हुए वह जिस तरह रो दी थी उससे मन कचोट उठा। बाद में इसका अर्थ कई बार पूछने पर भी उसने अपना अभिप्राय स्पष्ट नही किया। मैं ऐसा कौन-सा काम कर रहा हूँ जिससे उसको सुरक्षा न मिले। घोड़े की चाल धीमी पड़ गयी। आगे-पीछे चलने वाले घोड़े भी थक गये थे। यह समझ में नहीं आया कि कितनी दूर निकल आये हैं। मत्स्य देश पहाड़ी प्रदेश है। गर्मी से जले-फुंके राख के ढेरों के समान फैले पहाड़। वहाँ धूप भी खूब पड़ती है। सबसे आगे चलने वाले घोड़े पर सवार नील ने अपना घोड़ा रोककर कहा, "महाराज, इस चढ़ाई के बाद एक नाला है। चारों ओर पेड़ का झुरमुट है। पानी ठंडा है। घोड़े भी थक चुके हैं। ज़रा विश्राम करके धूप ढलने के बाद चलेंगे। मैं अच्छी तरह रास्ता जानता हूँ। चाँदनी में अच्छी तरह रास्ता तय किया जा सकता है।"

सबने स्वयं अच्छी तरह पानी पीकर और घोड़ों को भी पानी पिलाकर खाना बनाना आरम्भ किया। भीम पेड़ की छाया में बैठ गया। ठंडी हवा से आराम मिला। खस की गीली टट्टियों के घर की अपेक्षा वह अच्छा लगा। वैसे ही चित लेट गया। इधर-उधर सूखे पत्ते उड़ रहे थे। साढ़े तेरह वर्ष बाद बूढ़े की मुखाकृति कैसी होगी? राजमहल के सुख से पुष्ट होकर और फूल गया होगा अथवा 'भीम के हाथों मेरे पुत्र की मृत्यु का समय पास आ गया' सोचकर चिंता के मारे छिलके की तरह लटक गया होगा? जनप्रियता की जड़ काट देना ही बूढ़े का उद्देश्य है। लाख का घर बनवाकर हम सबको जला डालने की योजना तो पुत्र की थी। पिता को यह सब मालूम न था। यह बात बाद में चाचा जी ने हम से कही। चाचा जी का यह विचार ग़लत क्यों नही हो सकता? अंधे और चाचा जी का सम्बन्ध बड़ा विचित्र है। एक-दूसरे पर गुस्सा करते हैं, पर एक-दूसरे को छोड़ भी नहीं सकते। उसे यह गुस्सा रहता है कि सूत मेरी माँ की दासी का पुत्र है। मेरी बात ही नहीं मानता। मुझे ही विवेक सिखाता है। पर सेवक, भृत्य, गाँव के लोग, सूत, वैश्य सभी चाचा जी को सम्मान देते हैं। वैसे जब अंधे का मन चिंतित हो उठता है तब सांत्वना के लिए उसे सूत-भाई की आवश्यकता पड़ती है। बचपन में अंधे का हाथ थामकर स्नानघर, रसोईघर, महल के आंगन में घुमाने वाला मित्र वही था। सुबह उठकर वह डाँटता है, "तुम सूत हो। अपनी हैसियत समझकर रहा करो।" अगर अगले दिन वह न आये तो "भइया अगर तुम ही मुझसे गुस्सा कर लोगे तो मेरा कौन है" कहकर आँसू बहाता है। वह सचमुच आँसू हैं जो जब चाहें तब आ जाते हैं? चाचा जी भी ऐसे ही हैं। मार ले, डाँट ले, पर मालिक से दूर न जाने वाले श्वान जैसी निष्ठा है। धृतराष्ट्र को पापी कहते हैं, पर उस पापी से स्वयं

दूर नहीं जाते। वे स्वयं पाप नहीं करते। यह कैसा विचित्र मोह ! सोचते-सोचते उसे पाँचवी या छठी बार जमुहाई आयी। उसने आँखें मूंद लीं। पेड़ की छाया ठंडी है। बीच-बीच में पत्तों में छनकर आने वाली धूप आँखों में सुई-सी चुभती है। पलकों को भेदकर आँखों में आग-सी लगा देती है।

सब कुछ आग में भस्म हो गया। सारा भवन लकड़ी का बना था। राल, घी, तेल और सूखी लकड़ी के फट्टे लगे हुए थे। आग लगते ही धुंए से दम घुटने जैसी चीख-पुकार; छः व्यक्तियों के भुने हुए शव। साथ ही दुर्योधन द्वारा नियुक्त हत्यारा पुरोचन भी जल मरा। उसका मरना अच्छा ही हुआ। पर उस निष्पाप स्त्री और उसके बच्चों की मृत्यु में कौन-सा न्याय था ? उस रात मैंने ही अपनी जान बचाने के लिए आग लगा दी ताकि उसी घर में वे जल मरें तो दुर्योधन उन्हें कुन्ती और उसके पुत्र समझकर प्रसन्न हो। हमें ढूंढ़ने और जान लेने का प्रयास फिर न करे। धूप की तीखी किरणें सुई की भाँति भेद रही थीं। उसने करवट ली; आँखें बन्द कर लीं। कमबख्त जान बचाने के डर से कहीं भी किसी को बलि चढ़ा देना चाहिए ? मन में घृणा उत्पन्न हुई। वह यह सोच रहा था बलि तो दे ही दी गयी। भीम को फिर जमुहाई आयी और पलकें भारी होने लगी। केवल साढ़े तेरह वर्ष की ही बात नहीं। उससे पहले दस वर्ष और उससे भी पहले दो वर्ष और उससे पहले की अवधि की स्मृति हाथ में दबे अँधेरे के ढेले की तरह आगे आयी। तब लगा मानों मांस खंड-खंड हो गया और अस्थियों के टुकड़े-टुकड़े हो उठे हों। समस्त स्नायुतंत्र झनझना उठा। तभी कहीं एक घोड़ा हिनहिनाया। उसके साथ ही शेष पाँच-छः घोड़े भी हिनहिना उठे। वह तुरन्त उठ बैठा। सारा शरीर पसीने से तर हो जाने के कारण असह्य लगा। उठकर पास के नाले में गर्दन, बाँहें, बगलें, छाती धोकर, एक के बाद एक नौ-दस चुल्लू पानी पिया तब ज़रा तसल्ली हुई। फिर से पसीना-पसीना होती हुई देह को उत्तरीय से पोंछकर आगे सरक गयी छाया में जाकर बैठते समय फिर से कृष्णा की बात याद हो आयी, "तुम जानते हो सिर्फ़ तुम्हीं मेरे रक्षक हो! यह बात सदा तुम्हारे मन में रहे, यही बहुत है। इसका क्या अर्थ है इस संदर्भ में ? बोलकर साफ़ बताओ कहने पर 'ऊँहूँ' कह दिया। कृष्णा सदा एक पहेली है। स्पष्ट कुछ नहीं कहती। उसके मन की बात कौन बाहर निकाल सकता है ! पता नहीं वही ऐसी है या सभी स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं। हमारे घर में और स्त्रियाँ हैं ही कहाँ ! माँ पहेली नहीं बुझाती। पिताजी से बुझाती होगी। सुभद्रा है। वह अर्जुन की पत्नी है। मुझ से बात करने योग्य घनिष्ठता ही नहीं है। स्त्री के नाम पर मैंने केवल कृष्णा को ही जाना है। स्त्री ही ऐसी होती है। एकदम पहेली। स्त्री सदा पहेली होती है।

वह यही सब सोच रहा था कि तभी नील ने समीप आकर साभिवादन भोजन तैयार होने की सूचना दी। चावल, तिल मिली आटे की रोटियां, पका हुआ गर्म-

गर्म बैल का मांस। बैल का मांस ही स्वादिष्ट होता है। इन्हें मालूम है। मुझे इसकी कितनी आवश्यकता थी। पर ये यह नहीं जानते कि कच्चा मांस भी स्वादिष्ट होता है। अगर कहूँ कि मैं कच्चा मांस खा सकता हूँ तो सब लोग मुझे अनार्य, राक्षस कहेंगे। क्या पकाने में ही आर्यत्व है? मन में वह यह सोच ही रहा था तभी उसे हिडिंबा की याद हो आयी। वह कच्चा मांस ही खाती थी। "पका कर खाने में एक नयी तरह का स्वाद होता है। तुम उसकी रुचि नहीं जानतीं। ज़रा खाकर देखो" कहकर मैंने ज़बर्दस्ती उसे स्वाद चखाकर आदत डाली थी। पता नहीं उसे स्वाद अच्छा लगा था या मुझे खुश करने को ही खा लेती थी। खुश करने के लिए दिखावा करना; नहीं, यह उसका स्वभाव न था। एक-दम सीधी, बात में, व्यवहार में। वह अपने मन की बात कहने में कभी पहेलियाँ नहीं बुझाती थी। सुरंग से बाहर निकलते ही जगल के बीच पहुँचते ही पास की नदी तक चले। वहाँ चाचा जी के नियुक्त मल्लाह की सहायता से नदी पार की। उसी ने बताया था। 'देर न कीजिए, तुरन्त दूर जाकर कहीं छिप जाइए। नहीं तो आप लोगों की हत्या हो जाएगी।' आधी रात और सारा दिन चलते रहे। ऐसे जंगल की न कभी कल्पना की थी और न कभी देखा था। पीठ पर बँधी झोली में माँ, आगे अर्जुन, पीछे बाकी लोग थे। ज़ोर से बात करने में भी डर लगता था। न खाने को कुछ था न पीने को पानी। भटक-भटककर वहीं कहीं चक्कर न काटते रह जायें इसलिए नदी की दिशा की सहायता से दक्षिण की ओर चल पड़े। वह नदी ही कुरुदेश की सीमा थी। उसके दक्षिण का वह जंगल, क्या नाम था? हिडिंबवन। उसका कोई निश्चित नाम न होने से हमने ही उसे यह नाम दिया था। रात होने के समय तक मांस, हड्डियाँ, नसें सब थककर चूर हो गयीं। तब भी उस वन में नींद से छुटकारा न था। "तुम लोग सोओ मैं रात भर पहरा देता हूँ।" मेरा इतना कहना था कि सभी लोग झरने का पानी पीकर भय और आतंक सब भूलकर वहीं चट्टान पर लुढ़क गये। सब लोग अचेत पड़े थे। केवल साँस का अन्तर था। पेट खाली रहने के कारण खर्राटे ज़ोर से नहीं ले रहे थे। कहीं शेर या चीता घात लगाकर आक्रमण न कर दे, इस विचार से मैं चारों ओर नज़र दौड़ा रहा था कि तभी वह दिखायी पड़ी। वह इतनी लम्बी थी कि मुझे ऐसा लगा कि कहीं वह माया तो नहीं। मेरे कंधे तक पहुँचने वाले आर्य पुरुष से भी वह लंबी थी। उसके शरीर का गठन भरी-पूरी गाय जैसा था। कमर पर केवल चमड़ा लपेट रखा था। मुझे डर लगा कहीं वह माया तो नहीं। एक बार दिखकर ओझल हो गयी। धुंधला प्रकाश होने पर मैं अपनी नींद रोक नहीं पा रहा था। तभी वह फिर से दिखायी दी और पास आकर बोली: राक्षस भाषा भी हमारी आर्य भाषा जैसी ही है। हिमालय की तलहटी में देवलोग भी ऐसे ही बोलते हैं। उच्चारण भी ऐसा ही है। ऊँची ध्वनि। "आप लोग कौन हैं? हमारे जंगल में क्यों आये?"

उसके यह पूछने पर झूठा परिचय देकर मैंने पूछा, "तुम कौन हो ? तुम रात्रि में यहाँ चक्कर क्यों काट रही हो ?" इतना पूछना था कि वह सीधी बोली—पहेली नहीं, नाज-नखरे नहीं— "मेरा नाम सालकटंकटी है। हम राक्षस हैं। मेरा भाई हमारे राक्षस कुल का राजा है। रात में घूमते हुए अकस्मात् तुम्हें देखा। देखते ही तुम पर मन आ गया। तुम यहाँ धरती पर सोये लोगों जैसे नहीं हो। तुम सुंदर राक्षस जैसे लगते हो। तुम मेरे पति बन जाओ।" हम लोग दो रात एक दिन से बिना कुछ खाये भटक रहे थे। ऐसे में सीधे उस प्रस्ताव से मेरी नींद अपने आप उड़ गयी। ज़रा प्रकाश होने पर उसे देखा। कैसा रूप ! कितनी भारी भरकम ! मेरे बराबरी की और किस स्त्री का सृजन करना भगवान के लिए सम्भव था। तब उसकी उमर भी छोटी थी; मेरी भी क्या उमर थी! शायद पच्चीस। उसका प्रस्ताव सुनते ही पहली बार जीवन में मैं रोमांचित हो उठा। पर डर लगा; अपरिचय का डर। मैं बोला, "लड़की, यह तुम्हारा जंगल है, तुम, तुम्हारे लोग, सब मेरे लिए अपरिचित हो। तुम पर कैसे विश्वास करूँ ?"

"तुम पर आसक्त हो गयी हूँ। सारी रात पेड़ों के बीच से देखती रही हूँ। इसमें विश्वास की क्या बात है ! मैं अपने को रोक नहीं सकती। मेरे पास आओ। ऐसा नहीं लगता कि तुम्हारे इन लोगों की नींद अभी खुलेगी।" कहते हुए आलिंगन को बाँहें फैलाए आगे चली आयी। कौन-सी आर्य स्त्री ऐसे निःसंकोच सीधी चली आती है ! वैसे भी मैं जिस आर्य स्त्री को जानता हूँ। पहले दिन उसका धर्म के साथ विवाह हुआ। वह रात उसने उसके साथ बितायी। दूसरे दिन मेरे साथ। शास्त्र कराकर मेरी शय्या पर भेजने तक मैं उससे मिलने की प्रतीक्षा में तड़प रहा था। सालकटंकटी के साथ एक वर्ष जीवन बिता लेने के बाद से एक वर्ष तक स्त्री से कोई संसर्ग न था। फिर तीन मास तक वही भूख। वह लम्बाई-चौड़ाई में मुझसे छोटी होने पर भी स्वयंवर में एकत्रित सभी लोगों का मन मोह लेने वाला था। उसका आकर्षक रूप। स्त्री की बात सालकटंकटी की भाँति सीधे ही जानी जा सकती है। यही समझकर मैं बिना उससे बात किये सीधा अपने काम के लिए उसके पास गया। तो वह मुँह फेरकर सिकुड़कर बैठ गयी। वह मुझे कैसे सहन कर पाती ? बेचारी! बिलख-बिलखकर रोते हुए वह बोली, "कैसे अक्खड़ हो तुम, अनार्य की भाँति आतुर हो।" मैं मारे शर्म के सारी रात सिर झुकाए बैठा रहा। "ऐसे नहीं रहना चाहिए।" कहती है। पर कैसे रहना चाहिए यह नहीं बताती। एक दिन, केवल एक दिन, उसने कहा था। संभवतः उस दिन मैंने जंगल में उसे सुगंधयुक्त पुष्प लाकर दिये थे। "भीम, तुम्हें ऐसे रहना चाहिए। तुम्हें इस प्रकार रहना चाहिए। पत्नी पति से खोलकर कहे और पति उसके कहे अनुसार रहे तो उसमें किस स्त्री को सुख न मिलेगा! अब देखो पुष्प की सुगन्ध प्यारी है न ? तुमने बात समझी और सारा दिन भटककर यह फूल खोजकर लाए थे। सदा तुम

इसी प्रकार मेरे मन की बात समझो तो कितना अच्छा रहे ?" पहेली बुझाने के लिए सदा जाग्रत बुद्धि होनी चाहिए । "तुम जानते हो । तुम ही अकेले मेरे रक्षक हो । यह बात सदा तुम्हारे मन में रहे । बस यही बहुत है ।" यह कहा न कल उसने । इसमें क्या विशेष अर्थ है ? वह तो खोलकर नहीं बताती । सदा पहेली बुझाती है । इतना अभिमान है । "अगर तुम समझना नही चाहते तो क्या हर बात स्पष्ट करके बतानी चाहिए मुझे ?" कहकर सिर नीचा करके चली जाती है । इतना गर्व है चाहे कितनी बार उसकी आँखें पोंछी जायें, उन्हें रोककर छिपाने का अभिमान सदा रहता है । "भीम, अकेले तुम्हारे सामने मैं मुक्त होकर रो सकती हूँ । शेष चारों में से किसी के सामने अगर मैंने कभी एक आँसू की बूंद गिरायी हो तो मैं द्रुपद की बेटी नहीं ।" एक दिन उसने यह कहा था। कब ? भीम ने स्मृतियों को कुरेदकर देखा । मगर कब यह तुरन्त याद नहीं आ रहा था । पता नहीं कब । खैर, उसकी आँखों के आँसुओं के कारण ही उसका और मेरा मन एकरस हो चुके हैं ।

भोजन के बाद नील ने छाया में एक नरम चटाई बिछाई । सिरहाने के लिए कपड़ों की एक पोटली रख दी । बंधे बालों को ढीला करके लेटते ही भीम को नींद आ गयी । दोपहर के बाद एक घड़ी सोना उसकी आदत थी । यह नील ने समझ लिया था । उसका और भीम का डेढ़ साल का परिचय और स्नेह था । बारह वर्ष वनवास समाप्त करके अज्ञातवास के समय पांडव द्रौपदी के साथ विराट नगर आये । भीम वहाँ रसोइया बना । धर्म आस्थान के धर्मज्ञ के वेश में रहने लगा । नकुल दामग्रंथी के नाम से विराट के यहाँ अश्वपाल बना । सहदेव तंत्रीपाल बना । द्रौपदी विराट की पत्नी का शृंगार करने वाली दासी बनकर समय बिताने लगी । तब नील और भीम में स्नेह बढ़ा । विराट का विश्वस्त अंगरक्षक होने से नील को राजा की पाकशाला से भोजन मिलता था । वलल के नाम से सेवक बनकर रसोई में काम करने वाले भीम ने अपनी पाक कला से राजपरिवार के मन को न केवल जीत लिया बल्कि वहाँ भोजन करने वाले अन्य लोग भी उस पर मोहित हो गये । परोसने में भी भीम का हाथ वैसा ही बड़ा था । इसलिए नील के मन में भीम के प्रति स्नेह और कृतज्ञता की भावना बढ़ी । "रसोइये, तुम्हारे शरीर का गठन कितना अच्छा है ! सुना है कि प्रतिदिन सुबह-शाम तुम व्यायाम करते हो ? तुम क्यों मेरी तरह योद्धा नहीं बन जाते ?" उसने एक-दो बार पूछा भी था ।

"रसोइया बनने पर जो चाहे और जितना चाहे बनाकर खा सकता है । फिर

योद्धा बनने में क्या धरा है ! जैसे तुम मेरे सामने गिड़गिड़ाते हो वैसे ही मुझे रसोइयों के सामने दाँत निपोरने होंगे।" कहकर भीम हँस पड़ा था।

अज्ञातवास बीत जाने पर ये लोग पांडव हैं। प्रसिद्ध वीर भीम यही है। अपने राज्य के सेनापति मल्ल कीचक को मारने वाला यही है। यह जानने पर नील को भीम के सामने आने में भी शरम लगने लगी। इस कारण वह दूर ही रहता। परंतु नील के धैर्य, शक्ति और स्वभाव से परिचित भीम ही उसे बुलाकर बातचीत करके पीठ ठोककर काम करने को उपप्लाव्य नगर साथ ले आया था।

दोपहर की नींद बहुत देर न टिकी। भीम जल्दी ही जाग गया। शेष अश्वारोही इधर-उधर पेड़ों की छाया में सो रहे थे। दोपहर की धूप में यात्रा संभव न थी। रात को ही रास्ता तय करने का निश्चय हुआ था। वे लोग आराम से सोए हुए थे। भीम के घोड़े को स्वयं नील ने गेहूँ का भीगा दलिया खिलाया, पानी पिलाया और उसके आगे घास डालकर भीम के पास आया। यह सोचकर कि वह कुछ कहने आया है, भीम ने उसे इशारे से बैठने को कहा।

चटाई से हटकर धरती पर बैठकर नील ने पूछा, "महाराज, मैंने सुना है कि आपने युद्ध करके कई राक्षसों का वध किया है। अब उन्हीं से हम सहायता माँगने जा रहे हैं ? उनके युद्ध की विशेषता क्या है ? क्या वे हम लोगों से धनुप-बाण में अच्छे लक्ष्यवेधी है ?"

"उनकी विशेपता पूछते हो ?" नींद से जागे भीम ने मुँह खोलकर जम्हाई लेते हुए कहा। उसने कहा, "राक्षस सदा जगल में रहते हैं। वहाँ वे शेर, चीते, भेड़ियों के बीच रहते हैं। उन्हें मारकर जान बचानी पड़ती है। हमारे मुकाबले में वे इन जंगली पशुओं से कम डरते हैं। जिस शत्रु के साथ तुम सदा लड़ते-भिड़ते रहो, क्या उसके गुण तुम में नही आयेंगे ? इसी प्रकार राक्षसों में शेर और भेड़िये के गुण रहते हैं। युद्ध में जान के संकट की परवाह न करते हुए वे सदा कूद पड़ते हैं। सर्दी, गर्मी, वर्षा सहने से उनका शरीर सुदृढ़ रहता है। चाहे कैसा भी पेड़ क्यों न हो, चढ़कर कूद पड़ते हैं। पानी में तैरकर या डुबकी मारकर दूर तक जाने का अभ्यास भी उन्हें होता है। शिकार का मांस भर पेट खाकर आसानी से हजम कर लेते हैं। यह सब उनके विशेष गुण हैं। शेर और चीते आदि शिकारों के सामने न होने पर भी उनकी आवाज़ सुनकर ही बाण चलाने का अभ्यास उन्हें होता है। वे गंध से ही अपने शत्रु को पहचान सकते हैं।"

"आपने उनके साथ कैसे युद्ध किया ? बाण से या मुष्टि से ? पहली बार जब आप पर राक्षस टूट पड़ा था तब क्या आपको डर नहीं लगा था ?"

"मैं—?" भीम ने एक बार और हल्की-सी जम्हाई ली। एक मिनट आँखें मूंद कर याद करके धीरे से आगे बोला, "जिस लड़ाई के अंत में शरीर में पीड़ा

न हो उस लड़ाई में कैसा आनंद ? मृगछौने को मारने से शिकार में आनंद आता है ? मुझे तो मुष्टि, गदा से मारने, पेड़ और तने घुमाकर फेंकने में ही आनंद आता है। मेरा अब तक यही विचार है कि दूर खड़े होकर बाण चलाना स्त्रियों का काम है। बचपन में मेरे बराबर मल्लयुद्ध करने वाला कौन था ? तब तक तो दूसरों के साथ कुश्ती करना कीड़े-मकोड़े मसलने जैसा लगता था। हमारे दुर्योधन ने हम लोगों को घर में बंद करके जला देने का कुचक्र रचा था। हम ही स्वयं उसमें आग लगाकर सुरंग से बच निकले।"

"सुना है। धर्मराज जब यह सब हमारे विराट महाराज को बता रहे थे तब मैं पास में ही था। बाद में जब आप लोग जंगल में गये और जब सब लोग सो गये तब आपको देखकर हिडिंबा देवी आप पर मोहित हो गयीं। उसके भाइयों को आपने मार डाला। वह युद्ध कैसा हुआ ? अब हम वहाँ जा रहे हैं। अकस्मात् कोई राक्षस हम पर टूट पड़े तो हमें अपनी जान कैसे बचानी होगी ? यह जानने के लिए ही मैं आपसे यह सब पूछ रहा हूँ।"

हिडिंबा के मोहित होने की बात उससे कहने का मन भीम का न हुआ। पर उसे छोड़ दिया जाये तो हिडिंब के साथ हुए युद्ध की भूमिका न बन पाएगी। कहाँ से शुरू करे यह एक मिनट सोचते रहने के बाद उसने कहना शुरू किया : "पौ फट रही थी। मेरी माँ और मेरे भाई लोग एक साफ़ समतल चट्टान पर अभी सोए हुए थे। मैं थोड़ी दूरी पर खड़ा पहरा दे रहा था। वह मेरे पास आयी। यकायक एक सेंध से उछलकर उसका भाई मेरे सामने आ खड़ा हुआ। उछलकर, नहीं शेर के भाँति छलाँग लगाकर आया। करीब तीस वर्ष का था। मैं कोई चौबीस या पच्चीस का रहा हूँगा। मेरे जैसा ही डीलडौल। शेर की भाँति शक्तिशाली हथेलियाँ ! हथेलियाँ न कहकर शायद पंजा कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।"

नील ने बीच ही में पूछा, "उन लोगों का रंग कैसा होता है ?"

"हमारी तरह गोरे। पूरे कपड़े नहीं पहनते, धूप और हवा से बचते नहीं। इसलिए ज़रा ताँबई रंग के हो जाते हैं। एक ही छलाँग में वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ और गरजा : 'किसकी आज्ञा से तुमने इस हिडिंबासुर के राज्य का अतिक्रमण किया है ? बोलो।' आवाज़ इतनी भारी थी मानों आकाश में सूर्य से बात कर रहा हो। मुझे भी तनिक घबराहट हुई। मैंने राक्षसों के बारे में सुन रखा था पर देखा न था। वह तुरंत बहिन की ओर घूमकर बोला, 'सीमा की देखभाल करके आती हूँ, कहकर आयी थी। अब यहाँ दूसरे कुल के व्यक्ति के सामने खड़ी क्या कर रही है ? अब तक तुम्हारे प्रेम की बात सुन रहा था। बाद में तुम्हारी खबर लूँगा। मैं केवल तुम्हारा भाई ही नहीं हूँ, इस राज्य का राजा भी हूँ। अपने बाप का घर समझकर मेरे राज्य में सोए हैं न ये। पहले इनके सिरों के दो-दो टुकड़े कर दूँगा।' यह कहते हुए उसने झुककर पास पड़ा एक बड़ा पत्थर उठा लिया।

झगड़े के कारण सबकी नींद उचट गयी। वे घबराकर आँखें मल ही रहे थे, तभी यह उनकी ओर मुड़ा। तुरंत आगे बढ़कर मैंने उसे लपेट लिया, नहीं तो उस बड़े पत्थर के गिरने पर एक-दो पिस जाते।"

"आगे क्या हुआ ?" नील ने बड़े चाव से पूछा।

"मैंने उसे कसकर लपेट लिया। पत्थर मेरी पीठ पर से लुढ़कता हुआ नीचे गिरा। मांस फट गया। हड्डी को कुछ नहीं हुआ। वह भी बड़ा शक्तिशाली था। उसने एक बार झटके से छुड़ाया। मैं गिरते-गिरते बचा। मगर वह चित गिर पड़ा और उस पर मैं गिरा। उसकी पीठ में चोट लगी। मेरे घुटनों में दर्द हुआ। गिरते ही उसने करवट लेने की कोशिश की और चीखा। युद्ध में क्या करना चाहिए ? यह मन में पहले से ही निश्चय हो तो अवसर मिलते ही शत्रु का काम समाप्त कर दिया जा सकता है। मुझे यह मालूम न था कि मुझे उसे जान से मार डालना चाहिए। अगर यह निश्चय होता तो उसी समय उसका गला दबाकर काम तमाम किया जा सकता था। मैं तो केवल उसे चित करने में लगा था। उसने छुड़ा लिया। यह सब उसी चट्टान पर हुआ। मुझे लगा यदि मैं गिर जाऊँ तो मेरी हड्डी-पसली टूट सकती है। इसलिए मैं पीछे हटकर जान-बूझकर कच्ची ज़मीन पर खड़ा हो गया। वह भी कूदकर आगे आया।"

"तब भी समाप्त कर देना चाहिए, यह नहीं सूझा ?"

"वही अनाड़ीपन हुआ। पता है मेरे साथ क्या हुआ ? उसे ज़ोर से लपेट लेने पर पाँव से ढकेलते समय, दाँव लगाकर मरोड़ते हुए उसके पत्थर जैसे शरीर का स्पर्श मुझे अच्छा लगा। हस्तिनापुर के अखाड़े में मैं अभ्यास करता था। वहाँ मेरी बराबरी का जोड़ीदार कोई नहीं था। कितने ही दिन तक एक छोटे हाथी को छेड़-कर लड़ता था, अपनी हवस मिटाने को। हाथी के पाँव और सूंड पकड़ने में मुझे आनंद आता। उस मूर्ख जानवर को सूंड से उठाने के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही न था। यह जानते हुए भी कि उससे संकट में पड़ सकता हूँ, कभी-कभी ऐसे किये बिना मेरी हवस नहीं मिटती थी। अब वह मिला। मैं कुश्ती का आनंद ले रहा था छाती-से-छाती लगाकर पीठ से छाती सटाकर घुटने मोड़कर कैंची का दाँव लगाने की इन क्रीड़ाओं में ही मैं तल्लीन हो गया। पर एक बात देखो वह राक्षस बड़ा शक्तिशाली था। मेरे जितना नहीं। किस जगह पर दाँव लगाने से शरीर का कौन-सा हिस्सा निष्क्रिय हो जाता है। तुरंत कौन-सा हिस्सा पकड़ना चाहिए, कहाँ दबाना चाहिए, किस सूक्ष्म नाड़ी को दबाने से सारा पार्श्व का नियंत्रण जाता रहता है, यह ज्ञान उन्हें नहीं रहता। उनका युद्ध तो शेर जैसा होता है। ऊपर छलाँग लगाकर गर्दन या बाँह पर दाँत गड़ाकर दुश्मन का काम तमाम कर देना अथवा एक जाँघ पर पाँव रखकर दूसरी को मरोड़कर तोड़ डालना उनका काम होता है। इतने में अर्जुन चिल्ला उठा, 'भैया, तुम मल्ल क्रीड़ा कर रहे हो ! वह

तुम्हें जान से मार डालने की घात लगा रहा है। देर मत करो, उसे जल्दी समाप्त कर दो।' तब तक सबकी नींद अच्छी तरह खुल गयी थी। वे सब पास आ गये थे।"

"क्या वे उस पर टूट न पड़े ?"

"बताता हूँ, ठहरो। मैं थकता चला जा रहा था। दो रात और एक दिन पूरी तरह सोया न था। दो दिन से कुछ खाया न था। पूरी एक रात और एक दिन सारे जंगल में माँ को उठाकर भटकता रहा। साँस फूल रही थी। नीद भी ज़ोर पकड़ रही थी : अर्जुन आदि समझ गये। फिर भी मेरी एक आदत से वे परिचित थे। तुम्हारे राज्य पर कोई आक्रमण करे तो तुम क्या चुप रह जाओगे ? तुम्हारे घेरे शिकार को कोई दूसरा मार डाले तो क्या तुम चुप रहोगे ? इसी प्रकार तुम्हारे प्रतिद्वंद्वी को कोई और मार डाले तो तुम्हें निराशा न होगी ? अर्जुन ने तो कहा था : 'भैया, मैं उसे तीर से मार डालता हूँ। तुम ज़रा दूर रहो।' मैंने उसे मना किया। मुझे खत्म कर देने के लिए हिडिंब गरजता हुआ आगे आया। तब तक मैंने सोच लिया था कि मुझे क्या करना चाहिए। पर मन में एक संकोच था। मैंने बहुत कसरत की थी; बहुत कुश्ती की थी। पर किसी को जान से नहीं मारा था। दूर खड़े होकर तीर से मार डालना सरल होता है। तलवार लेकर किसी को काट डालना इतना आसान नहीं होता। शरीर लगाकर कसकर पकड़कर मरोड़-कर साथ लुढ़काने वाले को जान से मार डालने में कष्ट होता है। वह भी तब जब किसी को जान से मार देने का अभ्यास न हो। तब तक उसने अपने पास वाले बरगद के तने को तोड़ लिया था। मैंने दूसरा तोड़ लिया। वह तने से मुझे मारने आया। मैं फुर्ती से सरक गया। उसकी चोट धरती पर पड़ी। मेरी चोट उसके सिर पर सीधी पड़ी। उसका सिर दो फाँक हो गया, रक्त बह निकला। उसने चिल्लाने को मुंह खोला पर आवाज़ नहीं निकली। वह धरती पर गिर गया। वहाँ की धरती उसके रक्त से लाल हो गयी।"

"बाद में उसकी बहिन चुप रही ?"

"उसने भाई के खून बहते सिर को गोद में लेकर रोना-पीटना आरंभ कर दिया। उसके रोने-पीटने के ऊँचे स्वर को सुनकर जंगल के पेड़, लता-बेले भी स्तब्ध रह गये। दो राक्षस भागते हुए आए। उनकी आहट सुनते ही अर्जुन ने एक के बाद पाँच-छः तीर चलाये। हिडिंब के शव को देखने से पहले ही वे रोते-चिल्लाते नीचे गिर पड़े। भाई के सिर को नीचे रखकर उसके रक्त सने पैरों से कूदकर हिडिंबा ने उन्हें देखा। दोनों राक्षस दर्द के मारे छटपटा रहे थे। बाण मर्मस्थलों पर लगे थे। दोनों मर गए। वह अदृश्य हो गयी। हम लोगों ने समझा कि वह अपने लोगों को इकट्ठा करके लाने गयी है। यह प्रश्न उठा कि वहाँ से भाग चलें या उनका मुकाबला करें ? जायें तो कहाँ जायें ? हम जिस दिशा से आये थे वही भूल गये थे। लौटने पर दुर्योधन का भय। सामने संकट है, यह तो स्पष्ट था। पर मुझ पर नींद

ज़ोर मार रही थी। 'धर्म, अर्जुन, नकुल, सहदेव तुम लोग ज़रा देख लो। अगर एक क्षण भी खड़ा रहा तो चक्कर आने से गिर पड़ूँगा।' कहकर जिस पेड़ का तना तोड़ा था उसी की जड़ में पड़कर सो गया। मुझे इतना ही याद है कि मैंने जागते में तीन-चार साँसें लीं होंगी।"

"दुबारा राक्षस समूह आया नहीं ?"

"मेरी जब नींद खुली तब दोपहर भी बीत चुकी थी और संध्या भी ढलने को थी। मैं अपने आप नहीं जागा। माँ ने बाँह झकझोरकर जगाया। सामने हिडिंब की बहन खडी थी, साथ में सात-आठ बुजुर्ग राक्षस खड़े थे। लड़ाई का कोई चिह्न न था। उन्होंने प्रार्थना की, 'हमारे राजा को मारने वाले इस वीर के साथ हमारी राजकन्या विवाह करेगी। उसका हाथ स्वीकार करके आप हमारे राजा बनिए।' उसके लिए माँ की सहमति थी।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? उसके प्रति मोह तो हो ही गया था। मोह माने क्या ?" भीम ने बात वहीं बन्द कर दी। उस प्रसंग को वहीं रोककर कहा, "तुम योद्धा हो। दूसरी बातों से तुम्हें क्या। योद्धाओं को तो केवल युद्ध-विषयक बातें जाननी चाहिएँ। दूसरी बातें नहीं।" उसके बाद वह अंतर्मुखी हो गया। यादें उमड़ रही थीं। पर उस तीस वर्ष के योद्धा के साथ बात करने में भीम को संकोच हुआ। स्त्री के विषय में या श्रृंगार के विषय में उसने किसी और पुरुष से बात नहीं की थी। इतनी उमर हो जाने पर इस बारे में बात करना चाहिए ? उसकी जीभ रुक गयी। "दूसरी बातों से तुम्हें क्या ?" कहने पर नील को भी लज्जा महसूस हुई। अपमानित-सा हुआ। चुपचाप सिर नीचा करके बैठ गया। बाद में उठकर आकाश की ओर देखकर "दिन ढल रहा है। अब चल पड़ना चाहिए" कहकर खर्राटे लेकर सोने वालों के कान पर चिल्लाकर और चिकोटियाँ काट-काटकर जगाने लगा।

फिर से प्रयाण आरंभ हुआ। आगे तलवार लिए, बाएँ कंधे पर धनुष और निषंग लटकाए घोड़े पर नील था। उसके पीछे उसी की भाँति सज्जित अश्वारोही थे। बीच में शस्त्र-सज्जित भीम था। फिर उसके पीछे दस अश्वारोही थे। सभी के घोड़ों पर दोनों ओर बोरियों में चावल, आटा और अन्य अनाज थे। कुछ लोगों के घोड़ों पर बर्तन और धरती पर बिछाने के कपड़े आदि थे। पूर्व दिशा की ओर चलने के कारण सारी धूप पीछे से पड़ रही थी। घोड़ों की टापों के स्वर की गूंज और चारों ओर धूल फैली थी। और तीन-चार दिन में हिडिंब के वन में पहुँच जाएँगे : पुत्र घटोत्कच और पत्नी सालकटंकटी से भेंट होगी। भीम का मन असमंजस में फँस गया। इतने वर्षों से संपर्क नहीं था। अब जाकर 'मैं भीम हूं। एक वर्ष तुम्हारे साथ पति बनकर रहा था। तुम्हारा पिता मैं ही हूँ' कहकर पुत्र के सामने खड़े होने में भी उसे लज्जा आयेगी। उसने सोचा कि ऐसे ही वापस लौट जाऊँ। पर

जब चल ही पड़ा हूँ और कृष्ण को वचन दे चुका हूँ। दुर्योधन की ओर एकत्रित होने वाले राक्षसों के मुक़ाबले की शक्ति न हुई तो हमारी सेना तहस-नहस हो जाएगी। हमारी सेना अल्पसंख्या में है। जब वह सोच ही रहा था कि विचार आया कि वह भी मुझे डाँट सकती है। और पीठ पर धमाधम धौल जमाकर पूछ सकती है कि इतने दिन क्यों नहीं आये? किन्तु मन में यह भी आया कि वह तिरस्कार नहीं करेगी। मुझसे उसे कितना प्यार है। देखते ही उसे मुझसे प्यार हो गया था। रक्त बहते भाई के सिर को गोद में लेकर सारे जंगल को गुँजाकर रोती रही, पर उसने अपने भाई को मारने वाले से ही प्रेम की भिक्षा माँगी। मैं सचमुच कठोर हूँ। स्त्री के मन को समझ नहीं सकता। माँ यदि न होती तो संभवतः मैं मानता ही नहीं। मुझे जगाने से पहले ही, माँ, धर्म और अर्जुन ने बातचीत करके निश्चय कर लिया था। धर्म और अर्जुन का व्यवहार और हिसाब ठीक ही था। उस समय जंगल में रहने वाले उन राक्षसों के बीच रहना ही सुरक्षित था। दुर्योधन के पक्ष वाले यहाँ प्रवेश नहीं कर पाएँगे। इसका हाथ थामकर भीम यदि इनका राजा बन जाय तो हम सुरक्षित रह पाएँगे। नहीं तो यह राक्षस हमारी चमड़ी उधेड़कर खा जाएँगे। ऐसे अवसर पर यह सोचना ठीक ही था। पर माँ ने क्या कहा: 'स्त्री के प्रेम को समझने के लिए परिपक्व अनुभव होना चाहिए। अभी तेरा बचपना है। समझ नहीं है। जब स्त्री अपना मन न्योछावर करने आती है तब मना करना महापाप होता है। इस बात में कि यह राक्षस है, यह नाग है, यह निषाद है, यह किरात है, यह देव है, इस प्रकार का कोई भेद-भाव नहीं रहता। यह अविवाहिता है। तुमसे प्रेम करती है। उसके प्रेम का भली प्रकार प्रतिदान मिलना चाहिए। उठो।' यह कहकर उसने मुझे उठाकर बिठाया था। माँ की आज्ञा का कैसे उल्लंघन किया जा सकता था! सालकटंकटी के प्रेम को मेरे समझने से पहले माँ ने समझ लिया था। प्रेम! कैसा प्रेम था उसका? उसी रात वह हमें जंगल के भीतर ले गयी। हम लोग आधी रात तक चलते रहे। वहाँ उन लोगों ने हमें पेट-भर पका मांस खिलाया। माँ ने कहा, 'अगले दिन प्रातः विवाह होगा।' यह सुनकर वह पेड़ पर चढ़कर उसपर बने बाँसो की झोंपड़ी में जाकर सो गयी। हमें भी ऐसी ही झोंपड़ियाँ मिलीं। माँ को पेड़ पर चढ़ने में डर लगता था। किन्तु नीचे सोने पर शेर और चीते का भय था। अगले दिन पानी के किनारे माँ के कहने के अनुसार आर्य पद्धति से विवाह सम्पन्न हुआ। बाद में उसने मुझे दूर चट्टानों की ओट में ले जाकर कितना प्यार उँड़ेला! मेरे सारे शरीर और मुख को ज़बान से चाट-चाटकर दाँत से काट-काटकर अपना प्रेम प्रदर्शित करने पर भी उसे तृप्ति न होती थी। उसका शरीर-गठन कितना आकर्षक था! पहलवान जैसी सुदृढ़ जाँघों, पिंडलियों, बाँहों और वक्ष का कैसा गठन। अपराजेय सौंदर्य। कृत्रिम रूप से रूठकर यदि मैं सो जाता तो वह मुझे उठाकर अपनी इच्छानुसार

अच्छी जगह पर ले जाकर लिटा देने योग्य शक्ति उसकी देह में थी। गुस्से में आ जाने पर चार धौल जमाकर फिर गले लगाकर रो देने का अभिमान भी था उसमें। शिकार में साथ, तैरने में साथ, दौड़ने में साथ, पेड़ों के तनों पर बाँसों की झोंपड़ी में भी साथ। जंगली हाथी आने पर यदि बचने का प्रयास करे तो बिना डरे साथ देती थी। पति की बच्चे के समान रक्षा करने की शक्ति थी। रति-क्रीड़ा समाप्त होते ही अखाड़े की मिट्टी पर जोड़ की कुश्ती समाप्त होने जैसी थकान लगती। कृष्णा के साथ एक दिन भी ऐसा अनुभव न हुआ। वह सुकुमारी है। वह ऐसी फूल-सी है कि डर लगता कि कहीं मुरझा न जाय, सोचकर ध्यान से हाथों में लेकर सूँघकर प्रसन्न होना पड़ता है। उसकी सारी चतुराई केवल बातों में है, भृकुटी-संचालन में और आँसुओं की निःशब्दता में है। सालकटंकटी के समान एक दिन भी वह अपने आप ऊपर गिरकर नहीं आयी। आँखों की चमक से उसकी इच्छा समझनी पड़ती है। नहीं तो कुछ भी नही कहती है। आर्य पत्नियों को ऐसा ही संकोचशील होना चाहिए। 'कृष्णा, तुम ऐसा क्यों नही करती हो' कहने पर मुँह सिकोड़कर भौंहें टेढ़ी करके उत्तर देती थी: 'यह सब ठीक है।' पर कृष्णा की मान-रक्षा के लिए मैंने कितने कष्ट नहीं उठाये! जुए के उपरांत दुःशासन ने जब उसकी साड़ी खींची, जंगल में जब जयद्रथ उसे उठा ले गया, कीचक ने जब उस पर आँखें गड़ाईं, सालकटंकटी होती तो वह अपने आप दुःशासन की आँतें निकालकर माला बनाकर गले में पहन लेती। जयद्रथ की लम्बी गर्दन तोड़कर चट्टान पर पीस देती। कीचक के पौरुष के स्रोत को ही मसलकर खत्म कर देती। कृष्णा तो अबला है। वह आर्या है। लेकिन उसकी बात टालना संभव नही। उसकी रक्षा करना, उसका अपमान करने वालों को दण्ड देना ही मेरे पौरुष की सार्थकता है। न तो सालकटंकटी ने कभी मेरे पौरुष को सार्थक करने के लिए कोई बात कही, न मैंने ऐसा कोई कार्य किया। और अब मैं उससे सहायता माँगने जा रहा हूँ। भीम को फिर से लज्जा महसूस हुई। लौट जाने का मन हुआ।

सूर्यास्त हो चुका था। अँधेरा छा चला था। पर्वत-श्रेणियाँ कम होती जा रही थीं। अब कुछ दूर चलने के बाद मैदानी प्रदेश आरंभ होगा, यह स्पष्ट था। नील कह रहा था: "अब मत्स्य देश की सीमा समाप्त हो रही है। थोडी दूर चलने से भोज की सीमा आरंभ हो जाएगी। यानी वहाँ पहले यादव थे, वही मथुरा। घूमकर जाना पड़ा है न। इसके अतिरिक्त अँधेरा भी बढ़ रहा है। आगे केवल एक ही पर्वत-श्रेणी है, शेष सारा प्रदेश समतल है। थोड़ी देर में चाँदनी फैल जाएगी। पाँच-छः घड़ी चलने के बाद पानी मिल जाएगा। वहाँ रुककर भोजन करके यात्रा आरंभ करेंगे।"

भीम को लगा कि इतनी दूर आ चुके हैं कि अब लौट जाना कठिन है। इतनी दूर आकर यदि अब लौटें तो लोग क्या सोचेंगे? एक दिशा में चल पड़ने के बाद

रुकना ठीक नहीं। चलना नहीं चाहिए। जाना ही नहीं चाहिए। पर चल देने के बाद लौटा कैसे जाय? इतने में माँ की याद हो आयी। उस पर गुस्सा आया। उसने ऐसा क्यों किया? 'सालकटंकटी की इच्छा के प्रति ध्यान न देना पाप है,' यह बात सुझाने वाली वही थी। सात-आठ मास बाद 'यहाँ बहुत दिन रह चुके। चल देना चाहिए। किसी आर्य देश में चलकर रहना चाहिए,' यह कहकर जल्दी मचाने वाली भी वही थी। माँ को और बाकी चारों को सुखी रखने के लिए सालकटंकटी ने कितना श्रम उठाया! उनके लिए मांस पकाती थी, पेड़ों के ऊपर वाली झोंपड़ियों में जब सोना संभव न हो सका तो उसने अपना नियम तोड़कर धरती पर झोंपड़ियाँ बनवायीं और चारों ओर बाढ़ लगवायी। रात के पहरे को राक्षस नियत किये। सदा कंदमूल मँगवाकर इकट्ठे करवाकर रखती। फिर भी माँ को वहाँ से चल देने की जल्दबाज़ी थी। 'भीम उसके मोह में डूब गया है। यह यहीं रह जाने को कह रहा है। किसी प्रकार उसे यहाँ से ले चलना चाहिए। प्रसूति-भर हो जाये' माँ की यह बात मैंने अपने कानों से सुनी थी। मोह की इसमें कौन-सी बात थी? कितना भी फ़ासला क्यों न हो, उछलकर पार कर जाने वाली सालकटंकटी अब पेट बढ़ जाने से धीरे चलने लगी। पेड़ पर बनी झोंपड़ी पर जाने में भी थक जाती। शिकार में भाग न पाती, साँस चढ़ जाने के कारण मेरी सहायता लेकर थकान मिटाती। उसे देखकर मन में दया आती। यह मोह था? 'मुझे छोड़कर जाओगे? तुम्हारी माँ ने मुझसे ही कहा कि हम यहाँ रह नहीं सकते! उन्हें सुखी रखने के लिए क्या करना चाहिए? तुम्हीं बताओ।' यह कहकर वह कितना गिड़-गिड़ायी थी। रात को उसे सोया छोड़कर कहीं भाग न जाऊँ, यह सोचकर अपने बढ़े हुए पेट का ध्यान न रखते हुए बाँह में बाँह डालकर सोती। पाँच-छः बार उसने सुझाया भी था कि तुम्हारे भाई चाहें तो राक्षस स्त्रियों में से चुनकर विवाह कर सकते हैं। माँ तो कभी उसे मन से नहीं चाहती थी। अब मेरी समझ में आया है। माँ ने कहा था: 'सालकटंकटी नाम हमें नहीं चाहिए। हम अपनी तरह का नाम रखेंगे।' माँ ने ही 'कमलपालिके' नाम दिया था। नये नाम को उसने कितने उत्साह से अपनाया था! 'कमलपालिके, कमलपालिके' नाम उसने कितनी बार ज़ोर-ज़ोर से दोहराया था। उसने अपने लोगों को आज्ञा दी कि उसे इसी नाम से बुलाया जाय। मुझे सूझा ही न था। माँ ने केवल उसका नाम 'कमलपालिके' रखा था। उसका अर्थ कमल के फूलों की रक्षा करने वाली होता है। उसने कमलमुखी क्यों नहीं रखा? कमललोचना क्यों नहीं? तन एकाग्र होकर उसका रूप याद करने लगा। दीर्घकाय, सुडौल शरीर, कमल के समान भरा हुआ मुख। गोरा रंग। माँ ने नाम रखने में भी पक्षपात किया था। भेदभाव दिखाया था। 'हम यहाँ चाहे जितने भी सुरक्षित रहें, पर यहाँ आर्य जीवन नहीं। आर्य आहार नहीं। आर्य वेश-भूषा नहीं। अगर हम यहीं रह जाएँ तो हम भी इन्हीं के समान राक्षस हो जाएँगे।'

कहकर छटपटाती थी। 'तुम्हारी माँ और भाई लोग जहाँ जी चाहे जायें, पर तुम मुझे छोड़कर मत जाओ। सब राक्षस लोग तुम्हें राजा मानकर कैसे तुम्हारे अधीन हो गये हैं, देखा ?' कहकर कमलपालिके गिड़गिड़ाती। 'कमलपालिके नहीं। वह नाम नहीं चाहिए। सालकटंकटी ही ठीक है।' यह बात कहने पर माँ आग-बबूला हो गयी थी, 'मेरे बेटे को मुझसे और भाइयों से अलग करना चाहती है। मायाविनी ! यह सब कुन्ती के साथ नहीं चल सकता। आज ही चल दो।' कहकर माँ हठ करके बैठ गयी। बाद में सबने मिलकर यह निश्चय किया कि बच्चे के पैदा होने के तीन मास बाद जा सकते हैं। एक महीने तक मेरे सामने ही सास और बहू दोनों एक से बढ़कर एक रोयीं। यदि ज़िद करके मैं वहीं रह जाता और पाँचों को भेज देता तो क्या हो जाता ? यह बात मन में आते ही भीम उद्विग्न हो उठा। मन को सँभाला। इतने वर्ष से छोड़ी पत्नी और बच्चे के सम्मुख सहायता की याचना करने की स्थिति नहीं आती, यह सोचकर ज़रा हल्का हुआ।

तब तक चाँदनी धीरे-धीरे फैल गयी थी। टापों की आवाज़ें वर्षा होने की आवाज़-सी लग रही थी। धूल धरती से कमर तक उड़ रही थी। आगे जाने पर कुछ कुत्ते भौंकते दिखायी पड़े। चार घुड़सवार सामने आ खड़े हुए। उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो ? कहाँ जा रहे हो ?" नील ने पहले से ही सोचा हुआ उत्तर दिया। "हम विराट राजा की तरफ़ के हैं। यज्ञ करने के लिए द्रुपद राजा के आस्थान के ऋत्विजों को बुलाने जा रहे हैं।" उनके यह पूछने पर "ऋत्विजों के बुलाने के लिए इतने सारे घुड़सवार क्यों ?" नील ने उत्तर दिया, "राजसम्मान के लिए।" फिर उन्होंने कुछ नहीं पूछा। नील ने उन्हीं से पूछकर पानी पीने की जगह का पता लिया।

सब लोगों ने कुएँ से पानी भरकर हाथ-पाँव धोए, नहाए। बाद में चाँदनी में दोपहर का बचा भोजन करके पानी पिया। यात्रा फिर से शुरू हो गयी। शुरू में तेज़ी से चलने वाले घोड़े अब धीरे-धीरे चलने लगे। जब पौ फटने को हुई तो एक घनी अमराई में ठहर गये। घोड़ों को बाँध दिया गया। उनकी रखवाली करने के लिए दो सैनिकों को छोड़कर बाक़ी सब लोग सूखे पत्तों पर ही लुढ़क गये। दोपहर तक नींद, भोजन, फिर विश्राम। शाम को यात्रा पुनः आरंभ होगी। "आधी रात को हम पांचालों की सीमा पर पहुँच जाएँगे।" नील ने बताया। भोजन के बाद चार घड़ी सोकर भीम उठ बैठा। अभी धूप थी। शरीर चिपचिपा रहा था। वह शरीर धोने चला गया। उसके लौटने तक नील भी जाग गया था। भीम के चटाई पर बैठ जाने के बाद कुछ दूरी पर वह भी चुपचाप बैठ गया।

"क्या बात है, नील ?"

"यों ही बैठ गया।"

"यों ही तुम नहीं बैठते। बात क्या है, पूछो या बताओ।"

"महाराज, सुना है, आपने रोज़ एक गाड़ी भोजन, गाड़ी खींचने वाले दो पशु और एक आदमी को खा जाने वाले राक्षस को मुष्टि से मार डाला था। वह बात आपके ही मुंह से सुनने की इच्छा हो रही है।"

"तुम्हें किसने बताया ?"

"पांडवों के भीम ने ऐसे किया। यह हमारे यहाँ दस-बीस वर्ष से कथा के रूप में प्रचलित है। इसलिए जब यह पता चला कि वह भीम आप ही हैं तो गाँव के लोग झुंडों में इकट्ठे होकर आपको देखने आते थे। आप एक पुराण-पुरुष हैं।"

"एक गाड़ी अन्न और उसे खींचने वाले बैल या भैंसों और एक मनुष्य को खा जाने की बात सच है। पर वह अकेला नहीं खाता था। उसका परिवार और उसके अनुयायी सब मिलकर खाते थे। मैंने उनके नायक को मुष्टियुद्ध में मारकर उनको डराकर भगा दिया था।"

"वह कहाँ हुआ था ? ऐसे नरभक्षी को मारने या भगाने को राजा या उसकी सेना जैसी कोई वस्तु न थी वहाँ ?"

"क्या सभी राजा शक्तिशाली होते हैं अथवा सभी शक्तिशालियों का राजा बनना संभव है ? तुम्हारा विराट राजा क्या शक्तिशाली है ? क्या वहाँ एक भेड़िया आकर उत्पात नहीं करता था; वही कीचक—उसका साला ? वही जिसे मैंने मार डाला ? वैसे ही वहाँ भी भेड़िया आ गया था।"

"उस राज्य का नाम क्या था ?"

"एकचक्रानगरी। हम एक वर्ष हिडिंब के राज्य में बिताकर दक्षिण की ओर गये अर्थात् कुरुओं की सीमा से दूर। दुर्योधन की ओर से हत्यारों का डर हमें तब भी था। हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये। दक्षिण दिशा में चार दिन तक चलते रहे। तब कृष्ण द्वैपायन महर्षि मिले। उनका नाम सुना है ?"

"देखा भी है। पंद्रह वर्ष पूर्व हमारे राज्य में भी आये थे। उनके बराबर वेदों का मर्मज्ञ और कोई नहीं है। सारा नगर उनके चरणों पर पड़ा था।"

"हमने उनको अपना परिचय दिया। एक तरह से वे हमारे दादा हैं। जब हमारे दादा संतानहीन मर गये तब हमारी दादियों से नियोग किया। मेरे पिता और दुर्योधन के पिता को जन्म देने वाले वे ही हैं। उन्हें अपने पोतों पर प्यार भी आया। उन्होंने बताया : 'पास ही एकचक्रा नाम का राज्य है। वहाँ ब्राह्मण बनकर भिक्षाटन करके कुछ दिन जीवन बिताओ। मैं कुरू देश जा रहा हूँ। सात-आठ मास में लौटूंगा। वहाँ विदुर से बात करके बताऊँगा कि आगे तुम्हें क्या करना है।' इस प्रकार हम वहाँ गये। वहाँ एक ब्राह्मण का घर था। किसी ज़माने में वे अच्छे संपन्न लोग थे। घर बड़ा-सा था पर अब ग़रीबी आ गयी थी। मेरी माँ ने उससे प्रार्थना की। उसने हमें घर के पिछवाड़े रहने दिया। हम वहाँ रहने लगे। पाँचों

भाई अलग-अलग वीथियों में वेदमंत्रोच्चार करके भिक्षा माँगते थे। जानते हो अपमान क्या होता है ? तुम भी क्षत्रिय हो न ?"

"जी हाँ ?"

"भिक्षा माँगने पर लोग कहते : 'अरे भाई, देखने में योद्धा लगते हो। चार आदमियों के बराबर हो, भिक्षा माँगने में लज्जा नहीं आती !' यह बात वे लोग मुझसे ही अधिक कहते। मुझे क्रोध आया। इस स्थिति में पहुँचने की अपेक्षा सुख से जंगल में रहा जा सकता था।"

"तो जंगल से क्यों निकल पड़े ?"

"हमारी माँ जबरन ले आयी। यह सोचकर कि यहाँ रहे तो मेरे बच्चे राक्षसों की भाँति कच्चा मांस खाकर और जानवरों के साथ रहकर राक्षस ही बन जाएँगे। मेरे लिए इतना बड़ा शरीर लेकर भिक्षा माँगना दुःसाध्य हो गया। दूसरों से कोई इतना कटु नहीं बोलता था। वे माँगकर लाते, मैं उसमें से आधा खा जाता और सुबह-शाम व्यायाम करता।"

"व्यायाम न करने से शरीर में दर्द होता है न ?"

"एक व्यक्ति के मल्ल होने का लक्षण यही है। उस घर के लोगों ने इसी बारे में पूछा। 'मल्ल-बल्ल कुछ भी नहीं। उन लोगों के साथ मिलकर शरीर बढ़ा रखा है।' कहकर माँ ने बात उड़ा दी। हाँ, कहने पर आसपास के लोगों को पता चल जाने का डर था। हम पाँच भाई थे। विधवा माँ थी। दुर्योधन के गुप्तचरों को खबर मिल जाये तो ? पर कोई हमें पहचान न सकता। शुरू-शुरू में भिक्षा खूब मिलती थी। रोज़ उठकर उन्हीं घरों में जाते पर ऐसे कौन भिक्षा देता है। पहले एक झोली भर जाती थी। धीरे-धीरे पौनी भरने लगी। बाद में आधी। फिर और भी कम हो गयी। धर्म, अर्जुन, नकुल, सहदेव भी ऊब गये थे। झोली लेकर जाना बंद कर दिया। पर खाने का और कोई रास्ता न था। वह गाँव छोड़कर और कहीं जाना चाहते थे। पर कृष्ण द्वैपायन के लौटने का समय पास आ रहा था। कई दिन आधा पेट रहना पड़ता। दूसरों का आधा पेट भरता तो मेरा चौथाई पेट भरता। कभी-कभी वे दूसरे गाँवों में जाकर भिक्षा लाते थे। वास्तव में गाँव कहलाने लायक बड़े गाँव भी पास न थे। हमने यह सोचा कि हममें से कोई दो यहाँ रहें बाकी पास के किसी बड़े गाँव में जाकर महर्षि के आने की प्रतीक्षा करें। वहाँ से कुछ अनाज यहाँ भेजते रहें। पर माँ तैयार नहीं हुई। उसका हठ था कि उसके पाँचों बच्चों को एक साथ रहना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाये ? बड़ा गाँव होने से तीन-चार कोस जाने पर भी शिकार में एक खरगोश तक नहीं मिलता था।"

नील ने केवल 'हूँ' कहा। "उसे समझ में नहीं आया कि उस समय क्या किया जा सकता था। रोज़ अपने भाग्य को कोसना, दुर्योधन को शाप देना। लम्बी-लम्बी साँसें लेना और पेट पर पट्टी बांधकर पड़ रहना। इसके अतिरिक्त हमें

कोई काम न था। तभी हमें एक बात का पता चला। उस एकचक्रा नगरी का राजा वेत्रकीगृह नामक नगर में रहता था। उस जनपद का वही स्वामी था। महा डरपोक। यह बात न थी कि उसके पास सेना और योद्धा न थे। राजा में धैर्य हो तो सेना में भी साहस रहता है। बात यह थी कि उसका पिता एक शक्तिशाली राजा था। राजा के बड़े पुत्र को गद्दी पर बिठाने की प्रथा थी। उस डरपोक को राजा बना दिया गया। पता नहीं ऐसा नियम क्यों बना कि राजा के पुत्र को ही राजा बनाना चाहिए। शक्तिशाली सामान्य व्यक्ति क्यों न राजा बने? बात यह थी कि ऐसे डरपोक राजा के राज्य में जैसा होना चाहिए वैसा ही वहाँ हो रहा था। एकचक्रानगरी के दो कोस दूर यमुना नदी के किनारे एक राक्षस आकर रहने लगा। वह अपने परिवार और अनुयायियों के साथ किसी भी गाँव में घुस जाता। वे लोग जो भी व्यक्ति हाथ पड़ता उसे मारकर कच्चा ही खा जाते। धन-धान्य और पशुओं को उठा ले जाते। जनता में खलबली मच गयी। सभी राजा के पास गये। राजा सेना के साथ गया। राक्षस एक साथ उस पर कूद पड़े। राजा के हाथ-पाँव काँपने लगे। वापस दौड़ने की शक्ति भी उसमें न रही। वह पास खड़े अंग-रक्षकों से लिपट गया। सेना घबरा उठी। ऐसी स्थिति में राजा और राक्षस—उसका नाम बकासुर था—में एक संधि हुई। बकासुर के निवास-स्थान पर रोज़ दोपहर को एक गाड़ी स्वादिष्ट आहार, गाड़ी खीचने वाले अच्छे जवान दो बैल या भैंसे और एक आदमी भेजना होगा। बकासुर स्वयं उस राज्य के किसी भी गाँव में घुसकर जनसाधारण को नहीं मारेगा। बाहर से यदि कोई शत्रु इस राज्य पर आक्रमण करे तो राज्य की रक्षा उस राक्षस का दायित्व होगा। ये संधि की शर्तें थीं। समझ में आया संधि का भीतरी अर्थ?"

"क्या?"

"अब नालायक राजा को देश की रक्षा का काम भी न रहा और राक्षसों से बचाने का दायित्व भी न रहा और उसी राक्षस की सहायता से गद्दी बनाये रखने का भी सुख लूट सकता था। हर रोज़ हर एक परिवार से एक आदमी राक्षस के पेट में जाने लगा। अयोग्य को जब राज्य मिल जाता है तब कोई बाहरी व्यक्ति लोगों को एक-दूसरे के विरोध में खड़ा करके दोनो से लाभ उठाकर अपने स्थान को दृढ़ बनाता है। अपने को बचाने का तंत्र भी करता ही है। साधारण जनता को कर देने से मुक्ति नहीं मिलती। शुरू में दूसरे गाँवों के लोगों की बारी आयी। एक दिन राजा के दूत ने आकर एकचक्रानगरी में भी बताया कि कल से आपके गाँव की बारी है। जिस ब्राह्मण ने हमें आश्रय दिया था वही गाँव का पहला घर था। यानी अगले दिन उसे एक गाड़ी आहार, दो पशु और एक मनुष्य का प्रबन्ध करना था। इतनी जल्दी आहार और पशु कैसे जुटाए जाएँ? मान लो कर्ज़ लेकर या अपने पास का सब कुछ बेच-बाचकर वह प्रबन्ध कर भी दिया तो नरभक्षक

के लिए एक आदमी का प्रबन्ध कहाँ से हो ? घर में से किसे दिया जाये ? धनी तो किसी कर्जदार अथवा ग़रीब को ख़रीदकर उस मृत्यु देवता को अर्पित कर सकते थे। पर ऐसे पैसे वाले कितने होते हैं ? जो भी हो राजा का दूत यह कह-कर चला गया कि बारी उस घर की है। पति-पत्नी, विवाह योग्य एक लड़की और एक छोटा लड़का बस इतने ही आदमी थे। निस्सहाय पति ने पत्नी को कोसा। पत्नी ने पति पर दोषारोपण किया। बच्चे माता-पिता से लिपट गये। पति-पत्नी ने एक-दूसरे का हाथ थाम लिया। सब एक साथ रोने लगे। पति ने कहा, 'कल मैं जाऊँगा।' उसी का जाना ठीक होगा ! पर पत्नी बोली, 'तुम चले गये तो क्या परिणाम होगा जानते हो ? मैं विधवा हो जाऊँगी। मेरी मान-रक्षा कोई नहीं करेगा। इस जवान बच्ची को लंपट उठा ले जाएँगे। इस राज्य में लंपटों को पकड़कर दण्ड देने की शक्ति राजा में नहीं है। इसलिए मैं जाऊँगी। तुम बच्चों को पालो।' लड़की ने फुसफुसाते हुए एक बात सुझायी। 'हम चारों रात को छिपकर इस राज्य की सीमा से परे क्यों न भाग जाएँ !' पिता ने कहा, 'आज से हमारे घर के चारों ओर गुप्तचर लगा दिये गये हैं। यह काम हमें पहले ही करना चाहिए था। यह बात मैंने तुम्हारी माँ से चार वर्ष पूर्व कही थी। तब इसने कहा था, 'पता नहीं किस गाँव की बारी आएगी। तुम तो बेकार डरते हो। अपनी जन्मभूमि को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी।' इसकी बात मानने से ऐसा हुआ। उन्हें कोई उपाय न सूझा। सब एक साथ रोने लगे। मैं इस बारे में कुछ जानता ही नही था। उसी घर के कोने वाली कोठरी में मैं सोया हुआ था। कोई काम न था। बाकी सब बाहर गये हुए थे। माँ को उनकी बातें सुनायी दीं। उसने उनके पास जाकर पूछा। बात स्पष्ट हुई। वह भी कुछ देर तक सिर पर हाथ रखकर बैठी थी। बाद में मेरी कोठरी में आकर मुझे जगाकर सब बताया और अंत में बोली : 'बेटा, हम लोगों को इन लोगों ने एक वर्ष आश्रय दिया। जब कुछ भी खाने को न था तब जो कुछ उनके पास था उसे उन्होंने हमें दिया। क्या हमें उनका थोड़ा भी ऋण नहीं चुकाना चाहिए ?'

मैंने पूछा, 'क्या करना चाहिए तुम्हीं बताओ माँ ?'

'मैं उनसे जाकर कहती हूँ कि गाड़ी के साथ तुम्हें भेज देती हूँ। तुम सब एक साथ जाकर किसी प्रकार उस राक्षस का वध कर डालो। इससे हम अपने उपकार का ऋण ही नहीं चुकाएंगे बल्कि एक नरभक्षक समूह से लोगों को बचाने का पुण्य भी हमें मिलेगा। वह तुम्हारे साथ थी न कमलपालिका, चाहे वह तुम से कितना ही प्रेम क्यों न करती थी, पर वह नरभक्षक जाति मुझे फूटी आँख नहीं सुहाती। कच्चा मांस खाने वाले मनुष्य का मांस खाने में हिचकिचाते भी नहीं हैं ? अनार्य हैं।'

सालकटंकटी की निंदा से मुझे ग़ुस्सा आया, पर उस राक्षस को मार डालने

की बात आने से मैं पुलकित हो उठा। यह बात न थी कि मैं उसकी बात को पहले न जानता था। मैंने स्वयं जाकर अपने आश्रयदाता से पूछा। उसने बताया : 'गाँव से दो कोस दूर यमुना के किनारे उसकी गुफ़ा है। वह राक्षस अपनी पत्नी और बच्चों के साथ वहाँ रहता है। इतने दिनों से उसे पका अन्न खाने का स्वाद पड़ गया है। उसके साथ कच्चा मांस और मनुष्य का मांस उसके लिए चटनी की भाँति है। उसके साथी राक्षस वहाँ नहीं रहते। इधर-उधर के जंगलों तक जाते हैं। पूर्व में मगध के जंगलों में भी घूमा करते हैं। कुरुदेश के जंगलों तक जाते हैं। वहाँ उनके संबंधी रहते हैं। गाड़ी के साथ भेजे गये जानवरों को जब उनके बहुत-से संबंधी इकट्ठे होते हैं तब एक साथ मारकर खाते हैं। गाड़ी के सामान और मनुष्य को दूसरे दिन मध्याह्न तक समाप्त कर देते हैं।' इतना विवरण मेरे लिए पर्याप्त था। इतने में बाहर से चारों भाई भी लौट आये। अपनी कोठरी में बैठकर हम छहों ने विचार-विमर्श किया। प्रश्न उठा, इस बकासुर को मारना क्या संभव है? मैंने आवेश से ही कहा, 'संभव है।' उसे मार डालने से क्या हम पहचाने नहीं जाएँगे? यह संदेह भी हुआ। पर धर्म ने कहा, 'उसे मार डालने पर भी हम छिप कर रह सकते हैं।' यह निश्चय हुआ कि अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं। कल प्रातः वहाँ जाएँगे। यह निश्चय हुआ कि यूँ ही नहीं जाना चाहिए। भोजन की गाड़ी के साथ जाना चाहिए। माँ ने जाकर उन्हें बताया, मैं अपने दूसरे बेटे को भेज देती हूँ। पर उन्होंने माना नहीं। उन्होंने कहा, इस पाप के भागी हम क्यों बनें? माँ के ज़रा ज़ोर देकर समझाने पर वे मान गये। कौन नहीं मानेगा? माँ उन्हें अनाज-पानी तैयार करने को कहकर लौट आयी। जो कुछ था उसे बेच-बाचकर उन्होंने तुरन्त चावल, घी, गुड़, तेल, गेहूँ आदि मँगवाया। मैं भूखा था। उस दोपहर ही उस सामान से खाना बनवाकर खूब पेट भर खाया। रात को फिर छककर भोजन किया। ज़रा शक्ति आयी। दूसरों ने भी भोजन किया।"

नील का मुख खुशी से खिल उठा। अब उसे समझ में आ गया कि आगे राक्षस के साथ होने वाला युद्ध का वर्णन आने वाला है। दो डग और आगे आकर बैठ गया। उसका कारण यह भी था कि वह जहाँ बैठा था वहाँ धूप पड़ने लगी थी।

"सोने से पूर्व हमने विचार-विमर्श किया। निश्चय किया कि पाँचों जाएँगे। मैं राक्षस के साथ युद्ध शुरू करूँगा। बाकी लोग धनुष से बाण चलाएँगे। यह धर्म का सुझाव था। अर्जुन बोला, 'भिक्षाटन के बाद से मैंने अपने धनुष का प्रयोग ही नहीं किया। कल प्रातः ज़रा अभ्यास करके बाणों की नोंक तेज़ कर लूँगा।' नकुल और सहदेव ने उसका समर्थन किया। मेरे मन में कुछ और ही था। यह मेरा शिकार है। दूसरों को साथ लेकर उसे नहीं मारना चाहिए। एक वर्ष राक्षसों के साथ रहकर उनके लड़ने का ढंग समझ चुका हूँ। घुस पड़ें तो आगा-पीछा देखे बिना टूट पड़ते हैं। जंगली जानवरों की भाँति। एक जानवर के मरने पर जैसे

दूसरे जानवर भाग लेते हैं इसी प्रकार उनके नायक के मरते ही ये भी भाग जाते हैं। खड़े होकर युद्ध की स्थिति कैसी है यह विचारने की समझ उनमें नहीं होती। वे जिस जोश से चिल्लाकर घुसते हैं उससे यदि हम डरें नहीं और उनकी क्रूरता का धैर्य से सामना करें और बुद्धि से काम लें तो उनसे जीतना कठिन नहीं। इतने दिनों से इस ओर से उनका कोई विरोध नहीं था। आराम से खाना पहुँचता था इस कारण बक के अतिरिक्त वहाँ आहार स्वीकार करने की जगह पर और कोई न होगा। इसके अतिरिक्त अकेले जाकर साहस करने को मन उतावला हो रहा था। मेरी बात बाक़ी चारों ने मान ली। माँ ने आज्ञा दी, 'जो भी हो तुम चारों धनुष-बाण लेकर वहीं कहीं छिपे रहो।' उसे मना नहीं किया जा सकता था। मैंने अच्छी नींद ली। सपने में भी बक के साथ दो-दो हाथ करने की बात ही देख रहा था।

उस गाँव की वह पहली बारी थी। इसके अतिरिक्त एक परदेसी होकर भी मैं उस गाँव के एक गृहस्थ के प्राण बचाने के लिए अपने प्राण देने जा रहा था। मुझे जाते देखने को सारा गाँव उमड़ आया। निर्लज्ज कहीं के। वहाँ इकट्ठे हुए लोगों में यदि अंधे लोग भी साहस करते तो बक को मारकर और राजा का भी वध करके किसी शौर्यवान राजा को गद्दी पर बैठा सकते थे। भरी गाड़ी खींचते हुए बैल धीरे से चले। उसके साथ मेरा बोझ भी तो था। रास्ते भर मेरा मुँह चलता ही रहा। रास्ते में गाड़ी रोककर जान-बूझकर देर की। बक को प्रतीक्षा कराकर चिढ़ाने के लिए। एक पेड़ का तना तोड़कर तैयारी करके ही चला था। मेरे पहुँचते ही 'देर क्यों हुई ?' कहकर गरजा। 'अपने बाप को बुला,' मैंने कहा। 'मेरे सामने जबान खोलने वाला कौन है ?' कहता हुआ वह कूदकर आगे आया। वह अकेला था। दो वर्ष पूर्व मैंने हिडिंब के साथ युद्ध किया था न। पर उसमें और इसमें अन्तर था। अब मैं राक्षसों की दुर्बलताएँ अच्छी तरह जानता था। ओर मैं मल्ल क्रीड़ा के लिए भी नहीं गया था। उसे समाप्त कर देने का स्पष्ट उद्देश्य था। मनुष्य का वध करने का अभ्यास भी था। ग़ुस्से से भरा जानवर जैसे एकदम झपटता है। चोट से बचने का प्रयास नहीं करता। उसके पास विवेक नही होता। बक झपटा। मैंने अपने को बचाया। पेड़ के तने से ठीक जगह पर चोट मारी। वह लड़खड़ा गया। उसे मुड़ने का अवकाश ही नहीं दिया। फिर से मारा, वह ठंडा हो गया। आगे क्या करना चाहिए, थोड़ी देर सोचा। तब तक उसकी चीख-पुकार सुनकर उसकी ओर की स्त्रियाँ और बच्चे समीप आये। मैं उसका शव कंधे पर डालकर उनकी ओर भागा। वे मारे डर के गुफ़ा की ओर भागे। मैंने पीछे-पीछे जाकर उसका शव गुफ़ा के द्वार पर फेंका। तब भीतर घुसे उन लोगों से राक्षस भाषा में चिल्लाकर कहा—एक साल में उनकी भाषा और उच्चारण सीख गया था न—'अब कोई और राक्षस इस राज्य में आया तो उसे भी पीस डालूंगा।

यह तुम अपने सभी लोगों को कह दो।' मैंने सोचा था कि वे स्त्रियाँ मुझ पर टूट पड़ेंगी। पता नही उन्होने ऐसा क्यो नही किया। शायद वे भी इतने दिन आराम से बैठकर पका खाना खाने के कारण हमारी स्त्रियो की तरह हो गयी थी। यह बात मैं अब तक समझ नही पाया। संभवत: बकासुर पूरा राक्षस भी नही रहा होगा। अथवा मुखिया के मर जाने से वे डरकर भाग गये होंगे। वापस आने तक बैलों ने बिदक कर गलो में फंदा डाल लिया था और गाड़ी उलट गयी थी। रस्सी के खिचने से गर्दन टेढ़ी होकर साँस रुक-सी रही थी। खाना सब मिट्टी में मिल गया था। रस्सियाँ खोलकर फिर से गाड़ी जोड़ी और उस पर बैठकर गाँव लौट आया। मेरे भाई वहीं छिपे रहे और अँधेरा होने के बाद लौटे। तब से किसी राक्षस ने उस राज्य में घुसने का साहस न किया। अगले दिन मैं अकेला जाकर गुफ़ा देखकर आया। वह खाली हो गयी थी। पुरानी सूखी हड्डियों और मांस के लोथड़ों के अतिरिक्त वहाँ और कुछ न था। वे सभी भाग गये थे।"

"बस, क्या इतना ही है उस युद्ध का विवरण?" बहुत ज्यादा सुनने की इच्छा रखने वाले नील को निराशा हुई।

"मैंने बताया नहीं। वह एक पल में खत्म हो गया।" कहकर भीम भी चुप हो गया।

ग्रीष्मकाल की गर्मी ने आकाश की ध्वनि को भी पिघला डाला था। पेड़ों की छाया में सोये लोगो के शरीर और चेहरे पर पसीना बह रहा था। धूप के कारण कुछ लोग अपनी आँखें मूँदे हुए ही दूसरी जगह छाया में जा सोये थे। दूर कही एक कौआ यदि काँय-काँय न करता होता शायद उन्हें संसार के अस्तित्व का बोध ही न होता।

थोड़ी देर बाद नील ने पूछा, "बक को मारकर उन राक्षसो के संकट से बचाने के कारण लोगो ने आपको डर के मारे सम्मान दिया होगा?"

"हाँ, डर के मारे दूर खड़े थे। लोगों की भीड़ से सड़क भर गयी थी।"

"समाचार जानकर वह राजा भी डर गया होगा?"

"हो सकता है।"

"उसे मारकर आप ही उस गद्दी पर बैठ सकते थे। जनता प्रसन्नता से स्वीकार कर लेती!"

"क्या कहा?"

"उसका वध करके।" नील ने फिर से वही बात पूछी। "ऐसा क्यों नहीं किया?"

"क्यों नही किया।" भीम को उत्तर न सूझा। उसने वह बात याद की। ऐसा लगा कि सरलता से ऐसा किया जा सकता था। वह एक हारे व्यक्ति के समान मौन रह गया। विचार-शून्य हो उठा। थोड़ी देर बाद पसीने की चिपचिपाहट का बोध

हुआ। उठकर पानी के पास गया। नील पानी भरकर लाया। उसे अंजुली में लेकर सिर, गर्दन, मुंह, पीठ, बाँहें और बगलें धोने के बाद बालों की जड़ों में छप-छपाया। इस बीच नील ने आवाज़ दे-देकर सबको उठाया। सब उठ खड़े हुए। घोड़ों को भर पेट पानी पिलाया। सभी लोग हाथ-मुंह धोकर घोड़ों पर सवार हो गये।

यात्रा पुनः आरंभ हुई। पहले की तरह नील आगे-आगे चला। हम आसानी से वेत्रकीगृह जनपद के राजा बन सकते थे। प्रजा भी चाहती थी। शायद राजा स्वयं डर के मारे शरणागत हो जाता। कंबख्त दुर्योधन से भी कोई टकराव न होता। पर यह बात तब सूझी ही नहीं। दोनों ओर बड़े-बड़े पेड़ दिखाई देने लगे। बीच में छायादार रास्ता था। बड़ा आराम मिला। संभवतः पास कोई गाँव होगा। वास्तव में आस-पास के लोगों ने माँ से पूछा, तुम्हारे पुत्र में ऐसी शक्ति कैसे आयी? तब माँ ने गर्व से कहा, उसे भगवान का वर मिला है। वह देव सेनापति मारुत का वर है। नही तो साधारण व्यक्ति के पास ऐसी शक्ति होना क्या संभव है? मुझे भी गर्व महसूस हुआ। माँ को इतनी दूर तक झोली में बिठाकर गले में लटकाकर उठा-कर लाया। हिडिंब को समाप्त किया। बक का भी नाश किया। इसके पहले भी कैसे-कैसे लोगों को मैंने संसार से उठा दिया। जरासंध, ओह! उस बूढ़े से मल्ल-युद्ध करके जीतना कोई आसान बात नहीं थी। बाद में मुझसे डरकर पूर्व देश के सभी राजाओं ने एक-एक करके राजसूय यज्ञ के लिए भेंटें दी। द्रौपदी को उठा ले जाने आये सैंधव का सिर मुड़वा दिया था। कीचक की हड्डी-पसली तोड़कर लुगदी बना दी थी। इस भीम में कितनी शक्ति है, यह आर्यावर्त को अभी मालूम नहीं। दुर्योधन और उसकी ओर खड़े होने वाले सभी की हड्डी-पसली एक न कर डालूं तो इस भीम को जन्म देने वाले उस देवता की कीर्ति को कलंक लगेगा। केवल माँ ही समझती है कि भीम जन्म देने वाले बीज को कलंकित नही करेगा।

उधर मैं बक की गुहा की ओर जब गाड़ी हाँककर ले जा रहा था तो पांचाल के राजा के दूत आकर गाँव में यह खबर सुना गये कि 'राजकन्या का स्वयंवर है। जो पाँच हाथ ऊँचे ताँबे की पत्तियों के बने धनुष पर तीर चढ़ाकर द्रुपद की राज-सभा में निशाना लगायेगा उसके गले में राजकन्या वरमाला डालेगी।' मेरे लौटने तक माँ ने निश्चय कर लिया था। रात को ही धीरे से बोली, 'हम सब वहाँ चलेंगे। तुम लोगों का भी धनुष-बाण चलाने का अभ्यास छूट गया। रोज़ अभ्यास करो। अर्जुन, तुम अधिक ध्यान से अभ्यास करो। पांचाल और कुरुओं में बहुत

पुरानी शत्रुता है। यदि पांचालों से संबंध हो जाय तो हमें उनकी सेना भी मिलेगी। तब दुर्योधन से डरने की आवश्यकता न रहेगी। फिर हमें अधिकार से वंचित कर पाना उससे संभव न हो पाएगा।' माँ बहुत कुशाग्र बुद्धि है। उसे देखे तेरह वर्ष बीत गये। वनवास में धूप, वर्षा और ठंड में उससे भटकना सम्भव नही था। पोतों के साथ समधियों के यहाँ रहने को कहा गया तो वह मानी नहीं। द्वारका जाने को भी तैयार नहीं हुई। उसने हठ पकड़ ली कि इसी हस्तिनापुर में रहूँगी। यहाँ रहने के मेरे अधिकार को कोई नहीं छीन सकता। उसकी पहले से ही इच्छा थी कि हमें हस्तिनापुर पर राज्य करना है। खांडवप्रस्थ गये। उसे इंद्रप्रस्थ बनाया है। राजसूय यज्ञ करके वैभव में हस्तिनापुर से बढ़ा-चढ़ा देने पर भी एक दिन उसने कहा था, 'बेटा, चाहे जितना भी ऐश्वर्य रहे। यह तो मूल स्थान से दूर रहकर हमने कमाया है। वास्तव में हस्तिनापुर तुम्हें मिलना चाहिए। अंधे ने बड़ी चतुरता से तुम्हें एक बार फिर से दूर कर दिया। सारे बूढ़े हाथ मलते रह गये।' साढ़े तेरह वर्ष के लिए माँ को छोड़कर मैं कैसे रह पाया? वह भी कैसे रह गयी! चाचा जी के दूत ने बताया तो था पर प्रत्यक्ष भेंट का आनन्द कुछ और होता है। उसने कहा था, सिर के बाल सफ़ेद धुनी रूई की तरह हो गये हैं। पहले जैसे घने भी नहीं रहे। मुख पहले की भाँति भरा हुआ नहीं रहा। कमर झुक चली है। मेरी माँ की कमर, मेरी माँ की कमर क्यों झुके? वह कितने वर्ष की हो गयी होगी? भीम ने हिसाब लगाया। ठीक से हिसाब नहीं लगा। कितनी भी हो। अस्सी तो जरूर पार कर गयी है। पर उसकी कमर क्यों झुके? मैं पास रहता तो रोज़ तेल से मालिश करके नहलाकर ठीक रखता। अब वनवास और अज्ञातवास समाप्त हो गये हैं। पोते अभिमन्यु का विवाह हो गया है। बुला भेजा तो उसने कह दिया, 'कहाँ जाऊँ? दूसरों के घर? अपना राज्य स्थापित करके मुझे ले जाओ।' माँ जैसा पौरुष! थू! थू! यह धर्म तो कायर है। अपनी कायरता को छिपाने के लिए संभवतः धर्म का मुखौटा चढ़ा लेता है। माँ का बेटा कहला सकने का साहस कहाँ है उसमें?

भीम को माँ की याद हो आयी। मैं अपने शैशव में इतना लंबा-चौड़ा था कि माँ की कमर और गोद सब भर जाती। मुझे गोद में उठाकर पर्वत की चढ़ाई-उतराई में माँ की साँस फूल जाती, फिर भी उठकर ही चलती थी। जब पिताजी मरे तब मैं सात साल का था। धुँधली-सी याद है। वे धर्म को उठा लेते थे। मुझे उठाने से उनकी साँस फूल जाती थी। खाली उँगली पकड़ाकर चलते थे। जो भी हो वे मेरे पिता थे। याद मिट-सी गयी है। कितने वर्ष पुरानी बात है! तब मैं सात वर्ष का बच्चा था। क्या पिताजी अपने भाई जैसे थे। धत्! वे अंधे नहीं थे। दोनों सगी बहिनों की संतानें थे। बीज एक ही नियोग करने वाले पिता का था। फिर भी ऐसा कौन-सा नियम है कि एक जैसा होना चाहिए?

सूर्य अस्त हो रहा था। पीठ पीछे पेड़ और पौधों के बीच डूबता जा रहा था। उसका ध्यान रास्ते की ओर गया। पांचाल समीप आ रहा है। विराट के राज्य से पांचाल समृद्ध है। सब प्रकार से समृद्ध। उनके राज्य में पानी है, हरियाली है, और वर्षा भी खूब होती है। पश्चिम और दक्षिण की ओर अच्छे मार्ग हैं। पूर्व और उत्तर की ओर घने जंगल हैं। उस ओर हिमालय की तलहटी है। पिताजी यदि जीवित होते तो क्या पांचालों की बेटी को स्वीकार करते? दोनों घरानों का झगड़ा बड़ा पुराना है। पिताजी बड़े वीर थे। उन्होंने कुरु राज्य का विस्तार किया था। माँ ही बताती है। पिताजी होते तो उनके नाम से ही राजसूय यज्ञ कर सकते थे। उनके पाँच-पांच बेटे हैं। अश्वमेघ करके समस्त आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त में अत्यंत कीर्तिशाली राजा बनकर रह सकते थे। वे इतनी छोटी आयु में क्यों मर गये? केवल पेंतीस साल की आयु में। माँ भी पेंतीस की ही थी। तब पाँचों बच्चों को साथ लेकर माँ नीले आकाश, सफ़ेद पर्वत-शिखरों और घाटियों को लाँघकर हस्तिनापुर पहुँची थी। छोटी माँ. माँ से लंबाई-चौड़ाई में काफ़ी छोटी थी। बड़ी तेज़ आँखें थीं—हिरन जैसी। हम दोनों को—धर्म और मुझे झोंपड़ी में भेज दिया गया था। हमें बात का पता चल गया था। छोटी माँ पिता के साथ लेटकर अग्नि में भस्म हो गयी। नकुल, सहदेव को कुछ भी मालूम नहीं। याद रखने की आयु भी न थी उनकी। माँ जब हमें लेकर चली तब देवलोक के सभी मुखिया, नियोग करके हमें पैदा करने वाले धर्म के पिता, धर्माधिकारी, मेरे पिता मारुत, अर्जुन के पिता स्वतः देवराज, नकुल-सहदेव के पिता सभी आये थे। कितनी-कितनी अच्छी औषधि देते थे! कहते हैं ऐसी औषधि देने वाला और कोई नहीं है। फिर भी, इतने वर्ष औषधि लेने पर भी पिताजी बचे क्यों नहीं? माँ सब कुछ जानती है पर वह मुँह खोलकर कुछ बताती नहीं। पर बार-बार कहती थी न कि 'तुम लोग इस वंश के लोगों की तरह मत बनना। दासियों के पीछे मत भागना। अति कामुक मत बनना।' यह कहने के अतिरिक्त हमारे चाल-चलन पर बहुत ध्यान रखती थी। क्या पिताजी अति कामुक होने से मरे? अंधे के सौ पुत्र हैं। दासियों से छियासी है। क्या वे सब युद्ध में मेरा मुकाबला करेंगे? पितृऋण चुकाने के लिए मैं उन्हें मसल डालूंगा। चीटियों को जैसे पाँव से मसला जाता है। उन्होंने भीम की शक्ति को क्या समझ रखा है? मारुत का पुत्र हूँ। देवता लोगों ने ही मारुत को चुना था। उसके बलिष्ठ वीर्य से जन्मा पांडु पुत्र हूँ मैं। आर्यावर्त में ही प्रसिद्ध मल्ल कीचक की हड्डियों और मांस का लोथड़ा नहीं बना दिया था मैंने। पिताजी की याद स्पष्ट है। एक ही बार में उठा कर उन्होंने बायीं बाँह पर बिठा लिया था न: कितने ज़ोर से कस लिया था? माँ ने मुझसे उन्हें नमस्कार कराया था। मारुत का पुत्र भीम मसल डालेगा। एक ही बार में अंधे की संतानों को। यही सब सोचते-सोचते उसका ध्यान बाहर की ओर लौट आया। सूर्य डूबे काफ़ी देर हो चुकी थी। चारों ओर झुटपुटा छा गया था।

आज चांद कल की अपेक्षा कुछ देर से निकलेगा। आगे घोड़े, पीछे घोड़े हैं। उसे अपने घोड़े को रास्ता दिखाने, अथवा दायें-बायें मोड़ने की आवश्यकता नहीं। अपने आप चल रहा था। सबसे अगले अश्वारोही के हाथ में एक मशाल थी। निरंतर सवारी करने से जांघें, आसन और कमर में दर्द आरंभ होने लगा था। घोड़े पर चढ़े तेरह वर्ष हो गये। नील के कहने के अनुसार मैं रथ पर आ सकता था। परंतु यहां रास्ता ही नहीं, ऐसे भयंकर जंगल में रथ कैसे चलता ! अब क्या है, एक दिन का रास्ता शेष रह गया। घोड़ों की टापों से धूल उड़ रही है। धूल भी बड़ी महीन है। ओस की भांति फैल रही है। स्मृति भी उस धूल जैसी ही अस्पष्ट है। बचपन में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को देखता पत्थरों पर बैठा रहता। वही ऊँचाई से गिरते पानी की ध्वनि, नीला-नीला आवरण, सफ़ेद शीतल धुएँ जैसा कोहरा! पर्वतों के शरीर से निकलकर पेड़, पौधे, पत्थरों पर फैल जाता था। ऊपर आकाश को चूमने वाले श्वेत शिखर। ऊपर जाना चाहता तो मां जाने से रोक देती थी। रस्सी से बांध देती थी। वहां देवजन रहते थे। 'अकेला खो जाएगा और उन्ही में मिल न जाएगा' यही डर था उसे। तुम भी साथ चलो कहने पर उसके मुख पर प्रसन्नता छा जाती। पर पिताजी मना करते थे। पिताजी से चलने का हठ करता तो उनमें पर्वत चढ़ने की शक्ति न थी, सांस फूल जाती थी। देवलोक एकदम श्वेत रहता था। उसकी बहुत याद आती है। वहां जाना चाहिए। श्वेत शिखर, घाटियां, चढ़ाइयां, ढलान भी श्वेत। ऐसी जगह पर जाना चाहिए। वनवास के चार ग्रीष्म हमने हिमालय की तलहटी में बिताए थे। परंतु वह गधर्व देश है, देवलोक नहीं। अर्जुन ही भाग्यशाली है। देवलोक गया था। श्वेत शिखर, श्वेत घाटियों, श्वेत चढ़ाइयों और ढलानों के प्रदेश में।

चांदनी फैलने के कुछ देर बाद सामने बड़ी नदी दिखाई दी। पानी की धारा से काफ़ी पहले ही रेत मिलने लगा था। पसीने की चिपचिपाहट स्वयं ही घट गयी। रेत के कारण घोड़ों की चाल धीमी पड़ गयी थी, लेकिन आगे पानी है यह भांपकर घोड़े अपने आप तेज चलने लगे। चांदनी होने पर भी अगले सवार के हाथ की मशाल जल रही थी। पानी अभी सौ क़दम दूर ही था कि नील घोड़े से उतरा। सबको उतरने को कहा, 'गर्मी है नदी के किनारे शेर, चीते पानी पीने आ सकते हैं। हाथी तो यहां रहते ही हैं। मशाल मत बुझाओ। किनारे पड़ी सूखी लकड़ी, पत्ते, घास-फूस इकट्ठा करके बड़ा-सा अलाव जलाओ।' सब उतर पड़े। अपने घोड़ों की लगाम दूसरों के हाथ में थमाकर करीब पंद्रह व्यक्ति जलावन इकट्ठा करने चल दिये।

नील भीम के पास आ गया। भीम ने उससे पूछा, "यह यमुना है न ?"

"जी हां। आपसे पूछने आया था। सुना है गर्मी के दिनों में यमुना, गंगा जैसी गहरी नहीं रहती। मैं मत्स्य देश का हूं, इस कारण मुझे नदियों के विषय में

अधिक जानकारी नहीं। आप तो यमुना के किनारे रह चुके हैं। इसके स्वभाव से परिचित होंगे। मैं इसलिए पूछ रहा हूँ कि क्या इस रात में नदी पार करना ठीक रहेगा। केवल हमारे ही पार करने की बात नहीं। पीठ पर सामान लादे घोड़ों को भी पार कराना है। अनाज, आटा आदि भीग सकता है। अनजाने रास्ते में कहीं-कहीं दह आदि भी हो सकते हैं। यह जगह देखने में गहरी लगती है। किंतु कितनी गहरी होगी, यह पता नहीं।"

"बाँस देकर दो व्यक्तियों को पता लगाने भेजो ?"

"ऐसा तो करूँगा ही। एक बात और है। नदी पार करने के बाद आठ-दस घडी चलने पर पांचाल देश शुरू होगा। वहाँ से बायी ओर मुड़ना होगा। यह मुझे ज्ञात है। वहीं से वह राक्षस प्रदेश शुरू होता है। आज पांचाल पहुँचकर रात-भर विश्राम करें तो सुबह उठने पर धूप चढ़ आएगी। आगे जंगल ही जंगल है, रास्ता नहीं। अब नदी के किनारे ही विश्राम करके सुबह उठकर किसी से पूछकर राक्षस प्रदेश की सीमा तक पहुँचेंगे। बाद में जाने के मार्ग का निश्चय करेंगे। यह यदि परसों सुबह-सुबह पहुँच जाएँ तो आगे आपको वहाँ के पेड़-पौधे नदी-नालों का परिचय है ही।"

"कितनी पुरानी बात हो गयी।"

"मैंने सुना है कि राक्षसों के प्रदेश जल्दी बदलते नहीं। हमारे आर्य तो पेड़-पौधे, जंगलों को साफ़ करके भूमि को कृषि योग्य बना लेते हैं। गाँव खड़ा कर देते हैं। गौओं के लिए गोठ और रास्ते बना डालते हैं। पुराने चित्र ही मिटा देते हैं। यही बात है न ?"

भीम को कुछ और ही बात याद आ रही थी। पेड़-पौधे, जंगल साफ़ करके कृषि योग्य भूमि बनाना, गाँव बसाना। पुराने चिह्न मिटाकर नये गाँव बसाने की यादें। उसने 'हूँ' कहा। "महाराज हम समझते हैं कि हम बचपन की बातें भूल गये हैं। उस जगह पर जाकर खड़े होते ही हर बात याद आ जाती है। बच-पन में मैं अपनी नानी के घर गया था। मैं समझता था कि मैं वह सब भूल गया हूँ किंतु पिछले वर्ष जब वहाँ गया तो बीस वर्ष बाद भी गाँव की गली-गली और पिल्ले को लेकर जहाँ-जहाँ भागा था, वे सब जगहें याद आ गयी। हम पाँच-छ: बच्चे थे। हमारे मामा ने हमें जहाँ तैरना सिखाया था, वह जगह ऐसी याद थी मानों कल-परसों देखी हो" भीम ने केवल 'हूँ' कहा।

"तो क्या करें ?"

महाराज का मन कहीं और है, यह बात नील समझ गया। पानी की गहराई नापने के लिए दो अच्छे तैराक भेजने के लिए वह वहाँ से चला गया। अन्य लोग जलावन का ढेर लगा रहे थे। नील ने मन-ही-मन निश्चय किया कि सारा जलावन एक साथ नहीं जलाना चाहिए। सभी लोगों ने उसके विचार का समर्थन किया।

'यहाँ हवा कितनी ठंडी है। चाँदनी है, रेत दूर तक फैली है, इतनी बड़ी नदी है। हमारे देश में ऐसी कहाँ ? रात यहाँ बिता कर चलेंगे।'

साथ में दोपहर का पका जो भोजन था वही सबने खाया। नील ने यह निश्चय किया कि थोड़ी आग जलाकर धनुष-बाण लेकर सैनिक बारी-बारी से पहरा दें। मृदुल रेत पर नरम चटाई बिछाकर उस पर मोटा कपड़ा बिछाया गया। भीम उस पर पाँव पसारकर लेट गया। चाँदनी खिली हुई थी। नदी निःशब्द बह रही थी। उसे याद आया, गंगा के अतिरिक्त इतनी बड़ी नदी और नहीं देखी। इसी नदी के किनारे यहाँ से कितनी दूर होगा हमारा इंद्रप्रस्थ ? कुरु प्रदेश की सीमा को न छूकर चक्कर काटकर आये हैं। यानी पूरे एक अथवा दो दिन घोड़े की पीठ पर दक्षिण की ओर यात्रा करने से इंद्रप्रस्थ मिलेगा। जब मैं वहाँ था तब पता नहीं कितनी चाँदनी रातें मैंने नदी किनारे बितायी थीं। सारी गर्मी नदी की रेत पर ही काटते थे। कई बार कृष्ण साथ रहता था। वह इसी नदी के तट पर जन्मा और बड़ा हुआ था। इस नदी मे उसे कितना प्यार है, उतना ही जितना मुझे गंगा से है। कृष्ण ने कहा था, 'गंगा के किनारे दुर्योधन आदि के पास ही रहने दो। यमुना को साधारण मत समझना। ज़रा नीचे चलने पर मेरी जन्मभूमि मथुरा है। इस खांडव वन को साफ़ करके कृषि योग्य बनाएँगे। यहाँ एक छोटा-सा नाला बहता है। उसके तट पर एक महानगर भी बसा लेंगे। ऐसा नगर जो सारे आर्यावर्त में सुन्दर हो।' उत्साह देखना हो तो कोई उसमें देखे। नयी-नयी वस्तुएँ बनाने में उसकी बुद्धि और उत्साह की कोई सीमा नहीं रहती। सुना है कि उसने ऐसी सुन्दर द्वारिका नगरी का निर्माण किया है कि जिसे देखते आँखें नहीं थकतीं। मैं तो एक बार भी नही गया। इस युद्ध की समाप्ति के बाद जाना चाहिए। खांडव वन कोई सामान्य वन था ! वह भी सालकटंकटी के घोर अरण्य के समान ही जंगल था। वहाँ नाग जन रहते थे। बीच में खांडवप्रस्थ नाम का केवल एक गाँव था। चारों ओर वन्य प्राणी रोगयुक्त हवा। द्रुपद के समधी बनने के बाद अंधे ने प्रेम दर्शाकर हमें बुला भेजा। चक्कर में डालकर हमें यह बंदी बनवा दिया। 'बेटा धर्म, गर्मी के कारण आग लग जाने से तुम्हारा भवन जल गया। यह सुनते ही मेरा हृदय दुख से जल उठा। अपने बेटों से भाई के बेटे अधिक प्यारे होते हैं। हमारे कुरुवंश के पुण्य प्रताप से ही तो तुम लोग बच निकले। कुछ घर बिगाड़ने वाले कहते हैं कि हमारे दुर्योधन ने ही जान-बूझकर आग लगवा दी। भगवान की कृपा है कि वह अपवाचन झूठा निकला।' कहकर आँसू न आने पर भी आँखें पोंछीं। सम्भव है कुछ आँसू आ भी गये हों। उसकी आँखों के कोर तक नहीं हैं। सदा बंद रहने वाली आँखें जब खोलने का प्रयास करता तो देखने वालों को लगता कि उसका दुख उमड़ पड़ा है। 'यह ठीक है कि दुर्योधन ज़रा नटखट है, पर अभी बचपना है। पर अपने ही सहोदर का वध करने का घातक स्वभाव

हमारे कुरुवंश रक्त के किसी बच्चे में नहीं है। उसे जाने दो। मैंने निश्चय कर लिया है कि भविष्य में तुम सभी भाई एक जगह न रहो। हमारी ही खांडवप्रस्थ नाम की जगह है न, दक्षिण की ओर। पूर्व काल में आयु, पुरुष, नहुष, आदि के समय में वहीं तो हमारी राजधानी थी। बाद में हस्तिनापुर राजधानी बना। अब उसकी अवनति हो गयी है। पेड़-पौधे बढ़ गये हैं। तुम पाँचों वहाँ जाकर वैभव से राज्य करो। क्या दक्षिण कुरु प्रदेश को समृद्धिशाली नहीं बनना चाहिए? समस्त खांडवप्रस्थ का भाग तुम्हीं लोगों का होगा।'

कितनी चतुराई से हमें जंगल में भेज दिया। यदि कृष्ण न होता तो यह हस्तिनापुर से बढ़ा-चढ़ा नगर न बनता। उसके उत्साह की कोई सीमा नहीं। कितनी भी नई-नई वस्तुओं का निर्माण क्यों न हो जाए, उसका उत्साह नहीं थकता। बूढ़े ने चिकड़ी-चुपड़ी बातें करके हमें खांडव वन में ढकेल दिया। रथ, घोड़े, गाय, बैल, बर्तन, कपड़े, कम्बल, आदि द्रुपद ने भिजवाये। द्वारका से कृष्ण ने कुछ कम भेजा? समुद्र पार के तटवर्ती देशों से व्यापार करके यादवों ने बहुत ऐश्वर्य अर्जित किया है। हम पाँचों ने द्रौपदी, माँ कुन्ती और कृष्ण के साथ बड़े उत्साह से यात्रा की। पहुँचने के दिन ही मैंने कृष्ण, अर्जुन, नकुल और सहदेव घोड़ों पर सारा जंगल घूम आये और निश्चय यह किया कि सबसे पहले जंगल साफ़ करेंगे। आँखों के सामने काम होने पर कैसे चुपचाप बैठा जा सकता है! गर्मी के कारण पेड़-पौधे सूखे पड़े थे। एक तरफ़ से आग लगाना ही काफ़ी था। आग लगते ही एकदम काला धुआँ निकलने लगा और चट-चट की आवाज़ होने लगी। कीड़े-मकोड़े, साँप, बिच्छू, छिपकलियाँ, गिरगिट आदि सब जलकर भस्म हो गये। शेर, चीते भाग निकले। ऐसी भयानक आग मैंने पहले कभी नही देखी। धूल-भरी हवा चलती तो आग की लपटें और तेज़ हो जातीं। युद्धाग्नि ऐसी ही होनी चाहिए। दुर्योधन की सेना रथ, हाथी, घोड़े, सूखे जंगल की भाँति एकत्र होनी चाहिए। अग्निबाण चलाकर लकड़ी के रथों में आग लगा देनी चाहिए, और जब हवा चले तो चारों ओर से बाणवर्षा करके ऐसे ही जला देना चाहिए, जैसे खांडव वन को जलाया है। उसकी समस्त सेना खांडव वन की भाँति जलकर राख हो जानी चाहिए, जैसे वह भीलनी और उसके बच्चे जल गये थे। उसी प्रकार बीच में एक ओर दुर्योधन, दुःशासन दूसरी ओर कर्ण, शकुनि आदि तथा उनका शेष परिवार जल जाना चाहिए। अंधा बूढ़ा तो युद्धभूमि में आ नहीं सकेगा। तभी एक जम्हाई आयी और उसने अँगड़ाई ली। कुछ लोग सो चुके थे। शेष नदी किनारे पानी में पाँव डाले बैठे बातें कर रहे थे। आकाश में चाँदनी फैल चुकी थी और चाँद उस पर तैरता-सा दीख रहा था। उसे ऐसा लगा कि यहाँ रात बिताना अच्छा ही रहा। एक और जम्हाई आयी पर नींद अभी दूर थी।

केवल इन्द्रप्रस्थ की याद आ रही थी। कितना कष्ट उठाकर वह नगर बसाया

था। घने जंगल साफ़ करके भूमि कृषि के योग्य बनायी थी। हमसे स्नेह के कारण ही हस्तिनापुर से आये अपने कृषकों को हमने भूमि दी। नया नगर बसाया, नये देश का निर्माण किया। इस काम में हमने जो कष्ट उठाए, वे क्या कम थे। वह धरती हमें यूं ही नहीं मिल गयी थी। अंधे ने दान में नहीं दी थी। वह भूमि नाम-भर को कुरुओं की थी। पर वास्तव में वह नागों के अधिकार में थी। हम लोगों के आने की बात सुनते ही वे चिढ़ गये और इकट्ठे होकर जंगल से बाहर निकले। उनके पास विष-बूझे बाण थे, जिनका शरीर में चुभ-भर जाना पर्याप्त था। बाण शरीर से बाहर निकाल भी दिया जाए तो विष चढ़ने से मृत्यु अवश्यम्भावी थी। उनके स्त्री-पुरुष सभी धनुष-बाण लेकर आये। हमारे पास कोई सेना न थी। हम पांच और साथ में कृष्ण, बस इतने ही थे। घोड़े और रथ लाने वाले पांचाल के कुछ लोग साथ थे। कृष्ण की ओर से कोई सहायता भी अभी न आयी थी। हम लोग कवच भी नहीं पहने थे। वे लोग एकदम हम पर टूट पड़े। हम लोग मर जाएँ इसी-लिए अंधे ने खांडववन देने का नाटक किया था। कृष्ण का धैर्य ही हम सबका धैर्य था। उसने तुरंत घोड़ों को मोड़ने को कहा। कवच पहने और धनुष-बाण लिए भीड़ से बचते हुए हम लोग जंगल के पिछले हिस्से में घुस गये। चारों ओर से नहीं, आठ ओर से हमने जंगल में आग लगा दी। ओह ! कितना भयानक था वह सब। किस ओर से बचते ? भीतर फँसकर उनमें से अनेक अपने-अपने लोगों की रक्षा करने के प्रयास में लपटों से झुलसकर मर गये। डर के मारे भागते हुए बाहर आने वाले पता नहीं कितने लोग हमारे बाणों के शिकार बने। इसका कोई हिसाब नहीं। कृष्ण की बुद्धि बड़ी तेज़ है। यदि चारों ओर से आग न लगाते तो हम कैसे बचते ? वे हमें किसी तरह बचने न देते। पता नहीं भीतर कितने थे। आग लगने से मधु के छत्ते से उड़ने वाली सैकड़ों मधुमक्खियों की भाँति आकर वे हमें घेर लेते तो हम थे ही कितने ? अधिक-से-अधिक सौ रहे होंगे। पुरुष तो इतने भी नहीं थे। उनके कुछ लोग बच गये, हमने नदी की ओर आग नहीं लगायी थी। उस ओर भागकर नदी पार करके कुछ लोग बच निकले। नागों के सबसे बड़े शत्रु पांडव हैं। यह बात उन्होंने अपने लोगों में फैला रखी है। आर्यावर्त के जंगलों में जहाँ-जहाँ नाग हैं, दुर्योधन ने अपने दूत भेजे हैं। 'मैं पांडवों से युद्ध कर रहा हूं। आप लोग मेरी ओर आ जाओ और अपना बदला चुकाओ। उनके सिरों को काटकर धरती पर गिरा देने का अवसर मैं आप लोगों को दे रहा हूँ।' यह संदेशा भेजा है। अरे दुर्योधन ! अपना कुचक्र फैलाकर हमारे शत्रुओं को अपनी ओर मिलाने वाले, तेरा सिर काट-कर इसी बाएँ पांव से कुचल न दूं तो मेरा नाम बदल···। लेकिन यह नाम बदल-कर और कौन-सा नाम रखा जा सकता है ? कुछ सूझा नहीं। उसके लिए भीम नाम छोड़कर और कोई दूसरा नाम ही नहीं है। यह नाम बहुत सोच-विचारकर नहीं रखा गया था ! पैदा होते ही शिशु की लंबाई-चौड़ाई देखकर पिता पांडु के

मुख से एकदम निकल पड़ा था। इसे बदलने की हिम्मत किसमें है ? यह सोचते-सोचते अँगड़ाई ली। दोनों मुट्ठियाँ कसकर कोहनियाँ मोड़ते हुए दृष्टि सीधी भुजा पर पड़ी। उसने सोचा अब भीम बूढ़ा हो चला है। जब जवान था, तब बाँहें पीसने के पत्थर जैसी कड़ी थीं। अब मांस ढलकने लगा है। बारह वर्ष का वनवास। रोज़ शिकार भी कहाँ मिलता था ! ऊपर से धर्म के साथ वेदों की चर्चा करने के लिए ऋषियों के भोजन की व्यवस्था भी करनी पड़ती थी। दूध, दही, मक्खन, घी, कुछ भी न मिलता था। भुना अनाज और आग पर सिकी रोटियाँ। चावल भी नहीं था। भीम ढलता नहीं तो और क्या होता। तिस पर कृष्णा यदि ध्यान न रखती तो इतना भी न रहता। चलते समय माँ ने मेरा हाथ उसके हाथ में थमा-कर कहा था न—'इसके पेट का ध्यान रखना। बाक़ी सब कुछ अपने आप मिल जाएगा।' विराट नगर में अगर भीम रसोइया न बनता तो मर ही जाता। धर्म कभी युद्ध न करता, वापस जंगल लौट जाता। बड़े भाई का भक्त अर्जुन भी उसके पीछे-पीछे जाता। तब नकुल-सहदेव क्या करते ? तब कृष्णा का क्या होता ? कृष्णा, अभी भीम ज़िंदा है। मुझे और तुम्हें और कोई इच्छा नहीं। तुम्हें फिर से पट्टरानी बनने का मोह नहीं। दुर्योधन, उसके भाई, कर्ण, शकुनि इन सबके सिर काटकर पाँव से कुचलता देखने को ही तुम जीवित हो। वह बिना दिखाये मैं मरूँगा नहीं। यमराज भले आ जायें पर तुम्हें जाने नहीं दूंगा। मन-ही-मन कहते हुए भीम ने ज़ोर से अँगड़ाई ली और शरीर ढीला छोड़कर सो गया। नदी किनारे बैठने वाले भी एक-एक करके आकर लेट गये। उससे थोड़ी दूर पर सोए होने पर उनके खर्राटों की आवाज़ उसे सुनाई पड़ने लगी। झींगुरों की झीं-झीं जारी थी। सुना है अब इन्द्रप्रस्थ में कोई नहीं। वह अब राज्य के रूप में नहीं रहा और राजधानी भी नहीं रही। हमारे चले जाने के बाद, वहाँ वेदज्ञ, अभिनेता, संगीतकार, महावत और सैनिक कोई नहीं रहे। अब वह फिर से पहले की भाँति गाँव बन गया है। वहाँ जंगल उग आया है। इसलिए दुर्योधन उसे नागों को दे सकता है। समस्त आर्यावर्त और ब्रह्मावर्त में ऐसा सुंदर नगर और ऐसा सुंदर सभा-भवन नहीं था। खांडव वन के रास्ते वह मयासुर कहाँ जा रहा था ? वह गांधार दूर छोड़ चुका था। जीविकोपार्जन के लिए अपना देश छोड़कर जरासंध के राजगृह जा रहा था। जरासंध तो बड़ा राजा था ही। उसने सोचा कि वह काम भी देगा और दाम भी। उस बेचारे को जंगल की आग में क्यों फँसना चाहिए था ? बचकर जब वह जंगल से भाग रहा था तब कृष्ण ने उसको अपने बाण का लक्ष्य बनाना चाहा परंतु वह नाग जैसा दिख रहा था। अर्जुन ने कृष्ण को रोक दिया। नहीं तो वह मय शिल्पी वहीं ढेर हो जाता। और ऐसा सुंदर वैभवशाली इंद्रप्रस्थ न बन पाता और न ही ऐसा सभा भवन। उसने आकर अर्जुन के हाथ थाम कर पूछा, "तुमने मेरी जान बचाई, तुम कौन हो ?"

"इस राज्य के राजा का भाई हूँ, मेरा नाम अर्जुन है।"

"तुमने मेरी जान बचायी है। बताओ उसके बदले मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"तुम क्या कर सकते हो ? तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये ?"

"मैं शिल्पी हूँ। यहाँ के भवनों से सुंदर भवन बना सकता हूँ। सुंदर नगर की योजना बना सकता हूँ।"

कृष्ण के दिमाग़ में एकदम सूझा कि द्वारिका की ओर अच्छे नगर बनाने हैं और भवन भी सुंदर बनाने हैं। वह बोला, "सुनो शिल्पी, हमें एक नगर का निर्माण करना है और नये भवन बनाने हैं। तुम्हें जो सामान और सहायता चाहिए हम देंगे। तुम अपनी सारी योग्यता लगाकर ऐसे नगर और भवनों का निर्माण कर सकते हो जिनके जोड़ के कहीं और न मिलें।"

मय वहीं रह गया। कृष्ण ने द्वारका से और भी शिल्पी बुलाए। एक वर्ष के भीतर ही नगर का निर्माण आरंभ होगा। अब वह छोटी-मोटी गलियों वाला हस्तिनापुर न था। कई मंज़िलों के मकान, प्रत्येक घर में पृथक् स्नानागार। नगर के बीचों-बीच एक आकर्षक तालाब। तालाब के चारों ओर ईंटों की दीवारें थी और चारों ओर घने छायादार वृक्ष। नगर में आधा घंटे से अधिक वर्षा का पानी कहीं नहीं ठहरता था। उस समय हस्तिनापुर की दुर्दशा की याद आती थी। वर्षा हो जाय तो गलियों में रास्तों में महीनों पानी खड़ा रहता था। मेंढक घरों में घुस आते। वेहिसाब मक्खी, मच्छर, दुर्गन्ध। इन्द्रप्रस्थ की सड़कें कितनी चौड़ी-चौड़ी थीं। आमने-सामने दो-दो गाड़ियाँ निकल जातीं तो भी दो हाथ जगह बाकी रहती। सीधी सड़कें थीं, टेढ़े-मेढ़े रास्ते नहीं। नगर के बाहर लोहे को पिघलाकर फ़ौलाद बनाने की भट्टियाँ थीं। उसकी याद आते ही उपप्लाव्य से चलने की पूर्व संध्या को ठन-ठन हथौड़े की याद हो आयी। सुबह जब चले तो सड़क के किनारे राह में लोहे से भरी दो गाड़ियाँ खड़ी थीं। स्मृति का सिलसिला टूट जाता है। भीम को नींद नहीं आयी। कितने उत्साह भरे वर्ष थे वे दस वर्ष जिनमें क्या-से-क्या हो गया !

वह उठ बैठा। चारों ओर शीतल मोहक चाँदनी फैली थी। पानी के पास बैठने का मन हुआ। वह खड़ा हो गया। सब सवार सो रहे थे। दो पहरे पर थे। थोड़ी दूर पर अलाव जल रहा था। भीम अकेला रेत पर डग भरता हुआ चला। पानी ठंडा था। किनारे पर बैठकर पाँव पानी में डाल दिये। पानी एकदम स्थिर सा था। उसका पानी पीने का मन हुआ। आठ-दस अंजलि पानी पीकर उसने लंबी सांस ली। इसी नदी के किनारे से ऊपर की ओर चलने पर वह नगर बसा हुआ था। क्या से क्या हो गया ! धीरे-धीरे याद करके एक-एक स्मृति को जोड़ने लगा। एक के बाद एक नहीं बल्कि कई बातें दिमाग़ में एकसाथ घुस आईं। जंगल जलाना, नागों को भगाना, आग पंद्रह दिन तक लगातार जलती रही थी। पंद्रह दिन के बाद ही तो मज़दूरों ने भीतर घुसकर रहे-सहे बड़े-बड़े पेड़ों को जड़ समेत काट डाला। उनके सूख जाने के बाद फिर से वही आग, धुआँ, राख, गर्मी ज्यादा पड़ी।

उस वर्ष वर्षा में विलंब हुआ। वर्षा होने पर भी उसी वर्ष खेती कैसे संभव थी। पांचाल से सामान-सरंजाम न आता तो हमें और हमारे साथियों को भूखे मरना पड़ता। दूसरे वर्ष फ़सल हुई। कितनी बढ़िया फ़सल थी! दानों से लदे पौधे बिल्कुल झुक गये थे। खबर फैलते ही उन लोगों के सगे-संबंधी भी वहीं बसने को आ गये, जो पहले आ गये थे। इंद्रप्रस्थ भरा-पूरा नगर बन गया—नहीं तब तक उसका नाम इंद्रप्रस्थ न था। खांडवप्रस्थ यानी एक भरा-पूरा नगर जहां बढ़ई, मुसहर, ईंटें पाथने वाले, मिस्त्री, कुम्हार, शिल्पी, रथ बनाने वाले, ग्वाले, कृषक सब थे और किसी के लिए काम की कमी न थी। उत्साह ही उत्साह फैला था। नयी-नयी चीज़ों के निर्माण का जोश था। पुराने नगर का तो नाम होता है, पर नये नगर में सुविधा रहती है। सभी वही बात कहने लगे। कितनी विशाल सड़कें थी, स्नान के तरणताल थे, साफ़-सुथरे घर थे। मय शिल्पी की अनुमति और द्वारका के शिल्पियों के मार्ग-दर्शन के बिना कोई भी अपने घर की नींव नहीं रखता था। दीवार तक खड़ी नहीं कर सकता था। प्रत्येक मार्ग एक राजमार्ग था। सब बन जाने और सभागार भी बन जाने के बाद एक उत्साहपूर्ण यह सुझाव था कि अब इसका पुराना नाम अर्थात् खांडवप्रस्थ नहीं रहना चाहिए। अच्छा नया नाम इंद्र-प्रस्थ रखेंगे। सभी ने उत्साह के साथ 'तथास्तु तथास्तु' कहकर अपना अनुमोदन दिया। कृष्णा के गर्भ से एक के बाद एक सभी लड़के ही पैदा हुए। प्रत्येक बच्चे के जन्म पर माँ के संतोष का ठिकाना नहीं था। धर्म, अर्जुन, मुझे और नकुल, सहदेव सभी को एक-एक पुत्र दिया कृष्णा ने। नाम भी कितने प्यारे प्रतिविंध्य, श्रुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतसेन। माँ अपने पोतों को प्यार करती न अघाती थी। माँ को गर्भवती बहू की प्रसूति कराकर पुनः गर्भधारण करने को तैयार बहू, और एक के बाद एक पति का गर्भ धारण करती उस बहू से उसे कितना प्यार था! कृष्णा की कोख बड़ी उर्वर थी। विवाह के बाद ऋतु-स्राव दुबारा हुआ ही नही। प्रथम बार ही गर्भ ठहर गया। बच्चे मुझसे कितना प्यार करते थे! दौड़ते हुए आते और मेरी पीठ, कंधे, सिर पर लद जाते। उनके लिए अकेला मैं ही पिता था। बाक़ी चारों भी पिता थे। यह सच है। मैं पाँचों बच्चों को एक साथ उठाकर ले जाता और इसी यमुना की रेत के किनारे पर पानी में डाल देता। ओह-हो-हो भीम को हँसी आ गयी। हँसी इतनी ज़ोर से आयी कि लगा मानों दोनों जबड़े ही, टूट जायेंगे। अपनी हँसी की आवाज़ सुनकर उसका ध्यान बाह्य जगत की ओर लौट आया। चारों ओर निस्तब्धता छायी थी। पक्षियों तक की आवाज़ न थी। झीं-झीं करने वाले झींगुर भी चुप हो गये थे। उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा। चंद्रमा पश्चिम में ढल रहा था। आधी रात बीत काफ़ी देर हो चुकी थी। सुबह जल्दी उठकर चल देना चाहिए। नील की कही यह बात याद आयी। पाँव पानी से निकालकर खसखसाती बालू पर आकर फिर लेट गया।

भीम सोना चाहता था। पर इंद्रप्रस्थ की याद साथ नहीं छोड़ रही थी, बराबर सताए ही जा रही थी। ऐसा सुंदर और नया नगर समस्त आर्यावर्त में नहीं था। नये ढंग का सभागार। मय ने ही कहा था कि शिल्प का ऐसा काम करने वाले तो मिल सकते हैं, पर शिल्पियों को उनकी आवश्यक वस्तुएं जुटाने वाले राजा नहीं मिलते। ऐसा लोकोत्तर नगर और ऐसा भव्य भवन-निर्माण! दूर-दराज के सभी देशों के राजा देखने आये, देश-देश का पर्यटन करने वाले और कला देखकर उसकी प्रशंसा करने वाले ब्राह्मण आये और पांडु के बेटों की प्रशंसा कीं। धर्म की आकांक्षा थी कि दुर्योधन ने जिन पांडवों को मारने का कई बार षड्यंत्र किया था वे अब किस स्थिति पर पहुँच चुके हैं, यह बात खूब फैले। राजसिंहासन पर बैठने वाला ज्येष्ठ पुत्र वही था? उत्साह तो हम सब में उमड़ पड़ा था। प्रजा में भी यह आकांक्षा जाग उठी थी कि दूर-दूर तक लोग प्रशंसा करें। यह कैसे संभव था? राजसूय यज्ञ से। कृष्ण को कहला भेजा। कृष्ण के आते ही मेरी जरासंध से मुठभेड़ हुई। यह सोचते हुए उसने करवट लेनी चाही। जम्हाई आई। इस बार जम्हाई के साथ आँखों में नींद भी उतर आयी। ठंडी हवा चल रही थी। इतनी निःशब्दता कि अपने आप को ही अखर रही थी। नींद ने आँख, नाक और सम्पूर्ण शरीर पर आक्रमण कर दिया।

सुबह सब जल्दी उठ बैठे। उनके न जगाने पर भी भीम की नींद खुल गयी। उस दिन ज्यादा रास्ता तय नहीं करना था। जंगल की सीमा तक पहुँचकर रात को वहीं विश्राम करके कल सुबह जंगल में घुसने का निश्चय हुआ था। नदी पार करने के बाद घने वृक्ष दिखायी देने लगे। कृषि भूमि कम हो गयी। गाँव दूर-दूर पर बसे हुए थे। प्रातःकाल की यात्रा आरंभ होने से भीम का मन बच्चों की याद से भर उठा। इंद्रप्रस्थ में वह उनके साथ खेला करता था। सर्दी में उन्हें नदी की रेत पर और गर्मी में उन्हें पानी में खिलाता था। जब-जब वह उन्हें मिल जाता तो वे एक साथ इसके शरीर पर चढ़ने की आपस में होड़ करते। वही याद! राजसूय यज्ञ के समय प्रतिविंध्य नौ वर्ष का हो गया था। बाकी आठ, सात, छः और पाँच के थे। बड़ा तो 'पिताजी, पिताजी' करता मुझसे एक क्षण भी दूर नहीं रहता था। जुए में धर्म के राज्य हार देने के बाद कृष्णा उन्हें साथ जंगल ले जाने को तैयार न हुई। उन्हें ननसाल भेजने का निश्चय हुआ। तब वे सब मुझसे लिपट कर 'पिताजी, पिताजी' कहकर रोने लगे। तेरह वर्ष एक-दूसरे को देख नहीं सके थे। राज्य के चले जाने पर तो मैं नहीं रोया पर उस समय अपने को रोक न पाया। सिर झुकाए खड़े धर्म पर और भी क्रोध आया। अब बच्चे कुछ और ही ढंग के हो गये हैं। क्यों?

उपप्लाव्य आये चार मास हो गये फिर भी पहले जैसी घनिष्ठता नहीं। उनमें क्षत्रिय कुमारों जैसा उत्साह नहीं। उनमें म्लानता भरा मौन है। वे ऐसे क्यों हो गये ? प्रतिविंध्य को पुकारकर गले लगाने पर उसने सिर झुकाकर पाँव छूकर नमस्कार किया और सिर झुकाए खड़ा रहा। मुख पर हर्ष की झलक भी नहीं आयी। चौबीस वर्ष के युवक के मुख पर तेज नहीं! बाकी सब भी ऐसे ही हैं। ऐसे क्यों? धृष्टद्युम्न ने इनकी ढंग से देखभाल नहीं की ? हो सकता है उसकी पत्नी ने उपेक्षा की हो!

पूर्व में सूर्य दो हाथ ऊपर हो उठ आया था पर पेड़-पौधों के कारण ठंडक थी। घोड़े की सवारी में हल्का-सा पसीना आ रहा था। पर ठंडी-ठंडी हवा अच्छी लग रही थी। दूर-दूर तक बड़े-बड़े वृक्ष दिखायी पड़ रहे थे। नील अपने पिछले वाले सवार से कहता सुनायी दिया, आगे संभवत: कोई गाँव आ रहा है। वहीं पता लगाना चाहिए। भीम को लगा बच्चों के बढ़ने की आयु में पिता को साथ ही रहना चाहिए। नहीं तो पराये-से हो जाते हैं। जब वह बात कचोट रही थी, समस्या का समाधान उसे सूझने लगा तो उसका मन उन्हीं में डूब गया। मन-ही-मन बार-बार कहने लगा 'नहीं तो वे पराये-से हो जाते हैं।' धृष्टद्युम्न तो महावीर है, महारथी है, अतिरथी भी हो सकता है। फिर भी मुझे ही बच्चों को शस्त्र-विद्या सिखानी चाहिए थी। साथ ही शरीर साधना कराकर, पसीना चुआकर, पुष्टिकारक आहार देकर गदा, तोमर, तलवार, फरसा, निषंग आदि के प्रयोग में पारंगत बनाना चाहिए था। अरे ! गदा-युद्ध के योग्य अंगसौष्ठव किसी में नहीं। बढ़ने की आयु में पौष्टिक आहार की कमी थी क्या ननसाल में ? भीम को गुस्सा आया। 'खाना-पीना ये क्या जानें।' तभी मार्ग की दिशा बदली और बायीं ओर मुड़ गयी। दायीं ओर पेड़ों के न होने से तेज धूप पड़ने लगी थी। सामने से सफ़ेद गायों का एक झुंड आ रहा था। उसके साथ के रखवाली के कुत्ते इन्हें देखकर भौंकने लगे। इतने सारे घोड़े और सवारों को देख वे भौंकते हुए दूर हट गये। गाएँ घबरायी नहीं। ग्वालों ने उन्हें रास्ते से हटाया। नील ने उन्हीं से राक्षस वन का मार्ग पूछा। उन्होंने बताया कि आगे दीखने वाले गाँव से चार कोस बायीं ओर चलने पर उस वन की सीमा मिलेगी। उससे अधिक विवरण उनमें से कोई नहीं जानता था। उनमें से कोई भी गाय चराने को उस सीमा तक जाता ही न था। वही अंतिम गाँव था। घोड़ों की पंक्ति आगे चल दी। गाँव निकल जाने के बाद अनायास भीम को ध्यान आया। द्रुपद के महल में पौष्टिक आहार की कमी नहीं। विवाह के बाद के प्रारंभिक दिनों में वे हमें कितना अच्छा खाना खिलाते थे! मेरा खाना देखकर धृष्टद्युम्न कितना खुश होता था। वह तो धनुष-बाण चलाने में प्रसिद्ध है। यह बच्चे मल्लयुद्ध और गदायुद्ध के योग्य नहीं बन पाये। भीम के नाम के योग्य नहीं। किसी को भी मेरी जैसी लंबाई नहीं मिली। वे सब केवल मेरे कंधे तक ही आते हैं। उसी के अनुकूल उनकी काठी है। धर्म और अर्जुन जितने ही हैं, बस। तुलना में वे सब धर्म, अर्जुन,

नकुल, सहदेव जैसे ही हैं। ये मल्ल कसे बनेंगे ? यह मन में सोचते हुए उसे एक नयी बात सूझी। घोड़ों की चाल कुछ मंद पड़ गयी थी। लंबे-लंबे डग भरने वाला उसका घोड़ा अब भार ज्यादा होने के कारण धीरे-धीरे चलने लगा।

सूर्य सिर पर दो हाथ ऊँचा उठने से पहले ही वे रुक गये। घना जंगल शुरू हो गया था। अधिक गर्मी न थी। वृक्ष काफ़ी ऊँचे थे। बड़े-बड़े वृक्षों के आश्रय में उस गर्मी में भी कोमल पत्तों से लदी लताएँ हरी-भरी थीं। कोसों दूर तक जंगल ऐसा दिखता था मानो हरा छप्पर बुना हुआ हो। दूर पेड़ों के तनों के बीच से पहाड़ी श्रेणी दीख रही थी। भीम को याद आयी। वह पहाड़ी, राक्षस प्रदेश की सीमा की गढ़ी थी। यह दक्षिण की ओर है न? हाँ, यहीं से हम जंगल से बाहर निकले थे और आगे कहाँ जाना है, यह निश्चय न होने पर भी चलते जा रहे थे। तब कृष्ण द्वैपायन के कहने पर एकचक्रा नगरी चले गये थे। जंगल का सारा विवरण अपने आप याद आने लगा। पहाड़, नाले, उतराई, चढ़ाई, हाथी, वन, पक्षियों के बसेरों वाली अमराई—सब एक-एक करके याद आने लगे। यह जंगल वैसे का वैसा ही है। आग लगाकर पेड़ों को छाँटकर धरती को समतल करके कृषि योग्य नहीं बनाया गया। इसलिए रास्ता भूलने का प्रश्न ही नहीं उठता। दो व्यक्ति खाना पकाने में लग गये। शेष ठंडे पानी में नहाने और घोड़ों की मालिश में जुट गये। भीम एकदम म्लान हो उठा। बस आज सारा दिन आराम करना है। रात को आधे आदमी सोएँगे और आधे पहरा देंगे। आधी रात को बारी बदल जाएगी। सुबह आगे चलेंगे। दोपहर तक पहुँच जाएँगे। तभी मन में विचार उठा। अब भी वापस मुड़ चलें तो कैसा रहे ? यह विचार आने से मन को ज़रा शांति मिली। इतनी दूर आने के बाद लौटा नहीं ज़ा सकता। कृष्ण ने कहा था, 'मन को अच्छा लगे या न लगे कुछ काम करने ही पड़ते हैं, नहीं तो जीतना संभव नहीं।' धर्म और अर्जुन ने भी बहुत ज़ोर दिया था। अब खाली हाथ कैसे लौटा जाय ? खाना बनने तक लेटने की इच्छा हुई। सालकटंकटी अब कैसी होगी ? उसकी आयु लगभग मेरे जितनी होगी। उसने कितनी अनुनय-विनय की थी ! रोयी थी! हमें भी आश्रय चाहिए था। मैं भी उसके साथ था। वह भीम के योग्य स्त्री थी। समस्त आर्यावर्त में ऐसी लंबी-चौड़ी काठी की स्त्री नहीं मिलती। भीम के बीज से गर्भवती हो जाने पर पेट भी उसके डील-डौल के मुताबिक ही बढ़ गया था। भारी नहीं दिखता था। जन्मते समय ही मेरी पूरी गोद में समा नहीं पा रहा था वह भीमपुत्र ! भीम का पुत्र। मैं भी पैदा हुआ तो ऐसा ही था। माँ ने ही बताया था। माँ पर क्रोध आया। ऐसे बच्चे और जच्चा को छुड़ाकर हमें लेकर क्यों चल पड़ी ? ज़्यादा दिन रहता तो मुझे बच्चे से मोह हो सकता था। क्या इसीलिए उसने ऐसी जल्दबाजी की ? उस बच्चे को स्वयं उसने भी बहुत प्यार नहीं किया। उसे उसकी माँ की गोद में देकर मुझे इस देश से बाहर निकाल लायी। आँखें बंद करके लेटा-लेटा वह यही सोच कर रहा था। म्लानता

बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे ऊँघ आने लगी।

थोड़ी देर में नील ने जगाया, "महाराज, भोजन तैयार हो गया। आपके भोजन करने के पूर्व कोई भोजन नहीं करेगा। उठिए। नहाइएगा नहीं ?"

भीम झट से उठ बैठा। धीरे से बहते नाले की ओर गया। पानी बड़ा सुखद ठंडा था। छाती तक पानी में जा बैठा। उस बच्चे की ही याद आ रही थी।

ऐसे पानी में उस बच्चे को स्नान कराता। बड़े होने पर कमर में रस्सी बाँध कर तैरना सिखाता, अपने शरीर पर नचाता। अपने कौर में से आधा उसे खिलाकर खुद खाता। प्रतिबिंध्य, श्रुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक, श्रुतसेन को यमुना के तट पर रेत में, पानी में उठा-उठाकर डाल देता था। वे उछलकर 'पिताजी, पिताजी' करते मेरे कंधे पर चढ़ जाते और कूदते। मेरा पेट बड़ा-सा है। वह शिकार का मांस, पकाए हुए कंदमूल गले तक भर पेट खिलाती। न खाता तो 'भेड़िये-सा पेट है तुम मेरे भेड़िए हो, वृक-वृक !' मुझे वृक कहकर मेरे पेट को बाँहों में लपेटकर प्यार करती। उसका भी पेट मेरे जितना ही बड़ा होगा। उसकी माँ ने उसे भी खूब खिलाया होगा।

भीम बिना हिले-डुले पानी में बैठा रहा। हाथ-पैर भी नहीं मल रहा था। नील ने फिर से समीप आकर पुकारा। भीम ने बाहर आकर ज़रा धूप खोजकर शरीर सुखाया। भोजन करते समय फिर से ध्यान आया। बच्चे को पाला नहीं। उसके रक्त, मांस और मज्जा का पोषण नहीं किया। अब वहाँ जाकर, 'मेरी ओर से युद्ध में भाग लो' कहने की अपेक्षा वापस लौट जाना अच्छा है। भोजन के बाद हमेशा की तरह दो व्यक्ति पहरा देने लगे और शेष लेट गये। आधे घंटे में उन्हें नींद आ गयी। भीम के लिए चटाई, बिस्तर बिछाने के बाद नील भी सो गया। इतनी प्यारी छाँव में सोने को मन नहीं चाहता था पर तन नहीं मान रहा था। भीम को नींद न आयी। मन तो लौटने की बात कह रहा था। यह बात साथियों से कैसे कहे ? मन में संघर्ष होने लगा। थोड़ी देर बाद वह उठकर बैठ गया। उठकर घने बिखरे सूखे पत्तों पर पांव धरता उत्तर में फैले पहाड़ों की ओर चल पड़ा। वहीं नाड़ राक्षस की गढ़ी है। पहाड़ चढ़कर उस ओर को देखता चुपचाप बैठ गया। समस्त वन प्रदेश की यादें एक-एक करके स्पष्ट होने लगीं। सामने आकाश को छूने वाले पेड़ों को पार करके आगे जायें तो कँटीली झाड़ियों का एक झुंड आयेगा। उसे सीधी ओर छोड़कर नाला लाँघकर उसी दिशा में चलने पर सालकटंकटी के निवास वाली अमराई आयेगी। अब चलें तो रात होने तक पहुँचा जा सकता है। माँ की बात फिर से याद आयी। इतने में दो राक्षस आते दिखायी दिये। वे भीम के समवयस्क थे। उन्होंने भीम को देखा। शत्रु को देखने वाले शेर के समान इसी की ओर देखते खड़े रहे। वे विष बाण का निशाना लगाकर मार भी सकते थे। भीम को तुरंत याद आया। उसने राक्षस भाषा में आवाज़ दी। "तुम कौन हो ? यहाँ आओ।"

वे आये नहीं।

भीम ने फिर से कहा, "मैं तुम्हारी ही तरफ़ का हूँ। सालकटंकटी को तुम लोग जानते हो ?" उनके मुख पर छायी घबराहट कुछ कम हुई। भीम ही पहाड़ उतर कर उनकी ओर गया। हाथ में तीर-कमान या पेड़ के तने के बिना सौम्य भाव से चलकर आते भीम को देखकर वे चुपचाप खड़े रहे। भीम ने पास जाकर पूछा :

"तुम्हारा राजा कौन है ?"

उनमें से एक बोला, "घटोत्कच"

"घटोत्कच की माँ सालकटंकटी कहाँ है ?"

"वहीं बेटे के पेड़ के पास वाले पेड़ पर।"

"अब तुम लोग वहाँ जाकर बताओ। घटोत्कच का पिता भीम आया है। इस पहाड़ के उस ओर शिविर लगाया है। तुम लोगों से मिलना चाहता है।"

"ओह्-हो !" उनमें से एक ने पहचान कर कहा। "मैं पहचानता हूँ। बीस पर आठ साल हो गये न ! मैंने तुम्हें देखा है। रोज़ शिकार करके ताज़ा मांस लाकर दिया करता था। तुम्हें याद है ? मेरा नाम राका है ?"

भीम ने याद किया। उसे याद आ गया। हाँ। ओह ! अब इसके आधे दाँत गिर गये हैं। पोपला हो गया है।

"अब सालकटंकटी कैसी है ?"

"भैया, तुम्हारे जाने के बाद मांस, शराब, पानी, कंदमूल छोड़कर रोती कलपती बैठ रही। बच्चा न होता तो शायद मर ही जाती। बच्चे के लिए बची रह गयी।" भीम का मन दुखी हुआ। साथ ही गर्व भी महसूस हुआ। अपना यहाँ आना सार्थक लगा। "बाद में दो-तीन वर्ष तक उसने किसी को पास नहीं फटकने दिया।" राका का अंतिम वाक्य सुनकर भीम का गर्व ढह गया। बाद में आने दिया क्या? वह कौन होगा ? वह कैसी स्त्री है ? उसके उस पति को पकड़कर मसल··· सोचकर जब वह दाँत पीस रहा था तभी राका आगे बोला, "आज भी तुम्हें याद करती है। 'वह अपनी माँ की बात मानकर छोड़ गया। एक बार भी उसे दुबारा आना नहीं चाहिए था !' यह कहकर रोती रही थी तब, पाँच-छः वर्ष तक। अब मैं जाकर बताता हूँ। तुम आये हो। यह सुनते ही वह मुझे पाँव का कड़ा ज़रूर इनाम में देगी।" यह कहता हुआ वह अपने साथी को लेकर मुड़कर एक साँस में भाग निकला। भीम सोच ही रहा था कि वे दोनों आकाश छूने वाले पेड़ों के बीच आँखों से ओझल हो गये।

भीम लौटकर उस चट्टान पर चढ़कर बैठ गया। उसका मन अनजाने भँवर में चक्कर खा रहा था। क्रोध, खेद, अपमान, असहायता का अनुभव कर रहा था। वह चार-छः आदमी ऊँची चट्टान थी। सुबह से शाम तक सूर्य चाहे जिस ओर भी रहे

वहाँ छाया रहती थी। वह जगह काफ़ी घनी थी। वह उसी पर चित लेट गया। नींद आ जाय तो कोई राक्षस आकर पत्थर से उसका सिर न कुचल डाले यह भय भी उसके मन में न आया। माँ पर ग़ुस्सा बढ़ रहा था। उसे अपने पर भी ग़ुस्सा आ रहा था।

उस रात किसी को भी ठीक से नींद न आयी। जंगल में किसी ओर से हाथियों की चिघाड़ें सुनाई दे रही थीं। बीच-बीच में शेर की दहाड़ें। आधी रात बीतने पर भीम को गहरी नींद आ गयी पर थोड़ी ही देर में नींद खुल गयी। पहाड़ी की ओर से ढोलों की आवाज़ आने लगी। सब उठ बैठे। आवाज़ पास आने लगी। बाद में मशालों की रोशनी दिखायी दी। मशालों वाले पहाड़ी पर चढ़कर चट्टान पर खड़े हो गये। ढोल वाले और बाक़ी लोग धनुष-बाण, लाठी, गोफन लिये खड़े हो गये। उन्हें देखकर सब घबरा उठे। घोड़े खड़े-खड़े बिदकने लगे। भीम ने सबको दिलासा दिया और उठ खड़ा हुआ। अकेला उस चट्टान की ओर चल पड़ा। आधी राह में रुककर खड़ा हो गया। ढोलों की आवाज़ रुक गयी। भीम ने ज़ोर से कहा, "मैं ही भीम हूँ, घटोत्कच का पिता। तुम लोग कौन हो ?"

भीम के अंगरक्षकों को आश्चर्य हुआ। वह भाषा भी अपनी भाषा जैसी ही थी पर स्वर बहुत ऊँचा था। शब्द-विन्यास में थोड़ा अंतर था।

चट्टान से एक व्यक्ति उतरकर आया। उसके दोनों ओर मशालों वाले थे। भीम की दृष्टि उसी पर लगी थी। उसी जैसा रूप। अपने यौवन में यह जितना लंबा था उससे भी लंबा। लंबा-चौड़ा डील-डौल। मुख की आकृति भी वैसी ही। उसके मुख पर ऐसा भाव झलक रहा था कि उछलकर किसी भी तने को तोड़कर किसी भी शेर पर टूट पड़ सकता था। भीम के मुख से निकल पड़ा : "तुम्हीं घटोत्कच हो?" उसने पास आकर भीम के घुटनों तक सिर झुका दिया। तब चार अन्य व्यक्ति चट्टान से उतरकर आये। सबके हाथों में मशालें थीं। भरे-पूरे जवान राक्षस। किन्तु शरीर घटोत्कच जितने लंबे न थे। पेड़ तोड़ सकने वाले हाथियों जैसा बल न था। उन सबने भीम के सामने सिर झुकाया और खड़े हो गये। घटोत्कच ने कहा : "ये सब मेरे भाई हैं।" बाद में वे सब भीम से ज़रा हटकर खड़े हो गये।

घटोत्कच ने कहा, "माँ स्वयं आ रही थी। 'हम ही बुला लाएँगे' कहकर उसे वहीं छोड़ आए हैं। एक पूरी रात देश की सीमा तक चलकर आने के बाद वापस लौटने पर उसके पाँवों में दर्द होता है। अब उसकी शक्ति घट चली है।"

यह निश्चय हुआ कि भीम को उसी समय चल देना चाहिए। उसके साथियों को ले जाने के लिए वहाँ का राजा घटोत्कच तैयार न हुआ। "आप मेरे पिता हैं। मेरी माँ के पहले पति। इसलिए हम सब के पिता हैं। पर इन बाहर वालों को हम भीतर प्रवेश नहीं करने देंगे। यह हमारी पद्धति के विरुद्ध है। वे यहीं रहें। उनकी रक्षा के लिए मैं अपने सैनिकों को छोड़े जाता हूँ। परंतु उनमें से कोई भी उस

चट्टान को पार न करे। हमारे जंगल के किसी भी प्राणी से अथवा किसी राक्षस से उन्हें नुकसान न पहुँचे। यह व्यवस्था हमारे यह लोग कर देंगे।"

नील को कहकर भीम उनके साथ चल पड़ा। चट्टान लाँघने के बाद घटोत्कच ने भीम के पास आकर उसकी ओर पीठ करके उकड़ूँ बैठ गया और बोला, "चढ़कर मेरे कंधे पर बैठ जाइए।" भीम को कसमसाहट-सी हुई। वह बोला, "आज तक मैं लोगों को अपने कंधे पर उठाकर ले जाता रहा। मैं किसी के कंधे पर नहीं बैठा और अभी बैठने लायक कमज़ोर भी नहीं।" "माँ की आज्ञा हुई है। कंधे पर पिता को बैठाकर ले आओ।" भीम बैठा नहीं, घटोत्कच उठा नहीं। पर फिर वह बोला नहीं। भीम खड़ा ही रहा। घटोत्कच बैठा ही रहा। भीम ने मना किया पर वह मौन बैठा ही रहा। अपने मालिक को पीठ पर बिठाने वाले और न हिलने-डुलने वाले गजराज की भाँति वह बैठा ही रहा। अंत में उसके कंधे पर दोनों ओर पाँव लटकाकर भीम बैठ गया। उसका सिर थामकर। घटोत्कच आराम से उठा और धड़धड़ाते हुए भागना शुरू किया। उसके सामने चार गज़ आगे दूसरे चारों दौड़ रहे थे। 'ओह! कितनी ज़ोर से दौड़ रहा है। पता नहीं इसकी आयु में मुझ में भी इतनी शक्ति थी या नहीं। नहीं थी। कभी नहीं थी।' भीम ने मन-ही-मन निश्चय किया। अपनी लंबाई और ऊपर बैठने वाले की लंबाई का ध्यान रखते हुए घटोत्कच नीचे झुके वृक्षों की टहनियों से बच-बचकर भाग रहा था। सूखे पेड़ की लकड़ी जैसी सख्त बाँहें। भीम की पिंडलियों को भी कड़ा लगने वाला उसके वक्ष का गठन। उसकी मज़बूत कोहनियों ने भीम के घुटने थाम रखे थे। भीम का उल्लास दुगुना हो उठा। भीम गर्मी की लंबी यात्रा, आगे आने वाला युद्ध और इतने दिन के क्लेश सब कुछ भूल गया। घटोत्कच ने बीच में कहीं भी उसे उतारा नहीं। रुककर साँस तक नहीं लिया। ऊपर बैठे व्यक्ति को एक इंच भी इधर-से-उधर सरकाया नहीं। दौड़ने से पसीना छूटने लगा था। भागने वाले घटोत्कच के कंधे, छाती और बाँहों से भी पसीना टपक रहा था। बैठने वाले और उठाकर ले जाने वाले दोनों के पसीने बहे और बहकर एक हो गये। भीम में शक्ति का संचार हुआ। उसे लगा कि वह फिर से अट्ठाईस और तीस वर्ष की आयु का युवक बन गया। हर्ष से उसकी छाती फूल उठी। पौ फटने तक वे अपने निवास वाली अमराई में पहुँच गये। दूर से ही इनके आगमन की आवाज़ सुनते ही अमराई के पास ढोल बज उठे। आठ-दस आदमी नाचने लगे। एक पेड़ के तले आग सुलग रही थी। भीम को याद हो आयी। वही पेड़ जहाँ उसने और सालकटंकटी ने बड़े-बड़े बाँसों की झोंपड़ी में एक वर्ष बिताया था। पेड़ ज्यादा बड़ा नहीं हुआ था। वैसा ही था। तब तक सालकटंकटी दिखायी पड़ी। वह बुढ़िया हो चली थी। शरीर घट गया था। हट्टी-कट्टी होने पर भी मुख पर रेखाएँ उभर आयी थीं। सिर पर बाल घट गये थे। फिर भी तुरंत पहचान में आ गयी। घटोत्कच माँ के सामने खड़ा हो गया। यात्रा

समाप्त होते ही पाँव मोड़कर घुटनों के बल उकड़ूँ बैठे गजराज की भाँति उसने घुटनों को कसकर पकड़े हाथों को छोड़ दिया। चिपचिपाती भुजाओं को अलग किया। धरती पर पाँव रखने से पहले ही भीम ने बैठे-ही-बैठे झुककर घटोत्कच के माथे पर नाक रखकर लंबी-लंबी तीन साँसें लीं।

भीम के सामने खड़े होते ही सालकटंकटी ने उसकी दोनों बाँहों को ज़ोर से पकड़ लिया। वही मज़बूत पकड़। इसके बाद उसके हाथ, मुख, शरीर को दोनों हाथों से सहलाकर एकदम बगल में खड़े होकर ज़ोर से सात-आठ घूंसे पीठ पर जमाये। मुख पर तनाव आ गया। आँखें लाल हो गयीं। मुख से 'भीम, भीम' कहते दोनों हाथों की मुट्ठियाँ कसकर घूंसे लगाए। वह चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा। बाद में मुट्ठियाँ ढीली कर पीठ और बाहों पर दस-बारह बार मारा। शरीर पर निशान उभर आये। वह हिला भी नहीं। अंत में मारना बंद करके सामने आ खड़ी हुई। उसके झुके मुख को दोनों हाथों में लेकर ऊँचा करके आँखों से आँखें मिलायीं। उसकी आँखों में एकदम आँसू भर आये। 'भीम, भीम' कहते हुए रुआँसी होकर उसने उसकी दायीं बाँह पर एक और ज़ोर का घूंसा जमाया।

तभी सामने के एक पेड़ से एक युवती उतरी। राक्षस स्त्री की भाँति भरी-पूरी शक्तिशाली स्त्री थी। दूसरों की अपेक्षा वह ज़्यादा लंबी-चौड़ी थी। दूसरी राक्षस स्त्रियों की भाँति कमर में चमड़ा लपेटे थी। भरे हुए स्तन। कोई आवरण न था। गले, बाँहों और पाँवों में हाथी दाँत के कड़े थे। और चमकते पत्थरों की मालाएँ। गले में कल की पहनी फूलों की माला मुरझा गयी थी। उतरते हुए बायीं बाँह में एक बच्चे को थामे थी। भीम देखते ही समझ गया। वे घटोत्कच की पत्नी और बच्चा थे। पास आकर उसने बच्चे को उसके पाँवों पर सुला दिया और अपना मुख उसके घुटनों तक झुकाकर खड़ी हो गयी। भीम ने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

"कामकटंकटी।"

भीम ने बच्चे को उठा लिया। बच्चा खूब मोटा-ताज़ा और गोरा था। बाप जैसी गठन। अभी तीन-चार मास का ही रहा होगा। उसे गोद में उठाकर छाती से लगाकर उसकी पीठ सहलाते हुए पूछा, "इसका नाम क्या रखा है?"

माँ बोली, "बर्बरक।"

भीम थक-सा गया था। स्नान करने की इच्छा हुई। उसी अमराई के कुछ दूर पर एक सरोवर के होने की बात याद आयी। उसने कहा, "मैं नहाने जा रहा हूँ।"

"चलो मैं भी चलती हूँ।" कहकर सालकटंकटी भी साथ हो ली। रास्ते में कोई न बोला। प्रकाश फैल गया था। पर सूर्योदय का होना घने पेड़ों के बीच से पता नहीं चल पा रहा था। सरोवर के पास बीस-तीस राक्षस थे। वे सब सुबह उठकर मुख मार्जन के लिए आये थे। सालकटंकटी को देखते ही वे सब दूसरी ओर चल दिये। उसी ने एक नीम की टहनी तोड़कर उसके दो भाग करके एक भीम को दिया और दूसरे से स्वयं दाँत माँजने लगी। भीम को भीतर-ही-भीतर कसमसाहट हो रही थी।

दाँत माँजते हुए भीम ने पूछा, "तुम मेरे साथ आ गयी हो। तुम्हारा पति चुप रहेगा?"

"मेरा पति दूसरा कौन है?"

"यानी, विवाह नहीं किया? पर घटोत्कच ने तो ये चारों भाई मेरे हैं, कहा था।"

सालकटंकटी ने तुरंत उत्तर न दिया। नीम की दातुन फेंककर कुल्ला करके गला साफ करके मुँह धोकर उसके पास आकर उसकी दोनों बाँहें थाम कर उसके मुख की ओर देखती हुई बोली, "पिता यदि एक वर्ष तक नहीं आता तो उसे मरा मानकर दूसरी शादी कर लेना हमारी पद्धति है। क्या तुमने वापस आने की बात कही थी? फिर भी मैंने चार वर्ष प्रतीक्षा की। महारानी के यदि ढेर से बच्चे न हों तो राक्षस कुल चुप रह जाता? फिर भी मैंने किसी से शादी नहीं की। यों ही बुला लिया था। चार बच्चे हुए। बस इतना ही।"

भीम सिर झुकाए चुप खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद उससे हाथ छुड़ाकर मुँह की दातुन फेंककर उसने मुँह धोया, बाद में पानी में उतरकर तैरने लगा। उसकी ओर मुड़कर देखा तक नहीं। पानी काटते हुए बिना शब्द किए आगे चला। पानी में उतरने से ज़ोर से लहर उठी थी, बैठ गयी। अब यह निःशब्द ऊँची-नीची होती लहरों में अपने आप आगे बढ़ रहा था। सालकटंकटी ने आवाज़ दी, "ज़रा इधर मुड़ो तो!" वह भी तैरती आ रही थी। भीम ज़रा धीमा हो गया। पास आने के बाद वह बोली, "तुमने वापस लौटने का वचन तो नहीं दिया था। इसलिए तुम सरलता से यह कह सकते हो कि मैंने कोई वचन नहीं तोड़ा। मैंने सुना था कि जुए में हारने के बाद तुम पाँचों जंगल में थे। जब जंगल में ही रहना था तो वह बारह वर्ष यहाँ आकर तुम लोग रह ही नहीं सकते थे? क्या यह जंगल नहीं? क्यों नहीं आये? तुम्हारी माँ ने रोक लगायी? तुम्हारी माँ के सामने मैंने कभी जवाब नहीं दिया। उसकी मर्यादा को मैंने कभी ठेस नहीं पहुँचायी। फिर भी मैं उसे पसंद क्यों नहीं आयी?"

'ऐसा क्यों नहीं किया?' भीम का मन भी निःशब्द रूप से यही प्रश्न कर रहा था उतना ही निःशब्द जितना वह पानी था। माँ की ग़लती नहीं थी। पर यहाँ आने की बात मेरे दिमाग़ में एक बार भी क्यों नहीं आयी और क्यों नहीं सूझी?

क्या कृष्णा का साथ ही इसका कारण था ? क्यों नहीं सूझी ? तब भीम को ऐसा लगा मानो उसके सिर में कोई कीड़ा घुस गया हो। शरम लगी। वह भी बोली नहीं। भीम चुपचाप पानी में धीरे-धीरे हाथ-पैर चलाए जा रहा था। थोड़ी देर बाद वही बोली, "तुम थक गये हो। इतनी दूर से आये हो। कितने दिन का प्रयाण था ? ऐसा लगता है कि तुम में पाँव चलाने की भी शक्ति नहीं। किनारे पर चलो ज़रा शरीर मल देती हूँ।" कहते हुए पास आकर बाँह पकड़कर किनारे की ओर खींचा। भीम ने चुपचाप उसका अनुगमन किया। पत्थर पर बैठाकर शरीर को रगड़कर साफ़ करने के लिए ही चुनकर रखे पत्थर में से एक अच्छा पत्थर चुनकर छाती, भुजा, बाहें और पीठ, एक के बाद एक को रगड़-रगड़कर पानी डालकर धोने लगी। बाद में उसे खड़ा करके जाँघें, घुटने और पाँव रगड़कर धोए। उसका अपना शरीर इतना गंदा नहीं था। उसके साथ केवल डुबकी लगाकर गीले शरीर को सुखाती उसके साथ अपनी अमराई की ओर चल पड़ी।

अब सूर्य तीन हाथ ऊपर उठ आया था। तनों के बीच से साफ़ दिखायी दे रहा था। गीला शरीर सूखते-सूखते हल्का-हल्का काँपने लगा। वह उसकी पहले वाली झोंपड़ी के पास खड़ा हो गया जहाँ वह पहले सोया करता था। वह बोली, 'चढ़ो तो।' भीम चढ़ गया। तब ऐसा लगा कि सरलता से चढ़ पाने की आदत ही नहीं रह गयी। सालकटंकटी बिना किसी आयास के उसके साथ चढ़ गयी। लकड़ी की तीन सीढ़ी चढ़ने के बाद भीम झोंपड़ी का दरवाज़ा धकेलकर भीतर घुस गया। वही पहले जैसी लम्बी-चौड़ी बाँस की झोंपड़ी थी। कोमल घास की चटाई बिछी हुई थी। भीतर सरकंडे बुनकर सुन्दर-सुन्दर सजावट की गयी थी। एक कोने में एक बड़ी गोल नाँद ढँकी रखी थी। और साथ ही दो मटके रखे हुए थे। उसकी नज़र को उस ओर जाते देखकर वह बोली, "जंगली भैंसे का माँस पकाया है। साथ में उबली शकरकंदी भी है। तुम्हें पसन्द है। सोचकर बहू ने स्वयं पकाया है। तुम जब यहाँ थे तो ताड़ी की मद्य पसन्द करते थे। इसीलिए घटोत्कच ने अपने पीने के लिए सुरक्षित पेड़ से मद्य उतरवाकर मँगवाया है। हम जब नहाने गये थे, तब यहाँ मँगाकर तुम्हारे लिए रख दी है। तुम बृकोदर हो न ?" कहती हुई उसके पास आकर उसके पेट पर हाथ फेरते हुए बोली, "मेरा बृकोदर ! घटोत्कच को भी तुम्हारी जैसी ही भूख लगती है। दूसरे बच्चे बहुत साधारण हैं।"

"वे सब कहाँ हैं ?"

"सो रहे हैं। रात को गढ़ी तक भागते गये और तुम्हें उठाकर यहाँ तक भागते नहीं आये ? कामकटंकटी भी मेरे साथ रात-भर जागती रही। वह नींद को रोक नहीं सकती है। शाम को सब इकट्ठे होंगे। चलो, तुम खाना खा लो।" कहकर उसने मटके पर ढँके ताड़ के पत्ते को बिछाकर उस पर दोनों प्रकार का खाना हाथ भर-भरकर परोस दिया। पास रखी लकड़ी की हँडियों में सुबह की

निकाली गयी ताज़ी ताड़ी भरकर रख दी। भीम के 'तुम भी खाओ' कहने पर वह भी उसी पत्तल से लेकर खाती हुई बोली, "तुम हमारे राक्षस कुल से इतना द्वेष क्यों रखते हो?"

"तुमसे किसने कहा?"

"सुना है, यहाँ से जाने के बाद तुमने हमारे कुल के बक को मार डाला। उसके दस-बारह या तेरह वर्ष के बाद बक के भाई किम्मीर को भी मार डाला। अगर यह कहें कि मांस की रुचि के लिए ऐसा किया तो तुम मनुष्य का माँस तो खाते नहीं।"

"मनुष्य के मांस का स्वाद पड़ जाने से बक ने सारे राज्य को तंग कर रखा था। हमें खाना देने वालों का ऋण चुकाने के लिए उसे मारना पड़ा। जब हम जंगल में थे तो उसका बदला लेने के लिए उसका भाई किम्मीर हमें मारने की घात में था। ऐसे में उसे बिना मारे हम अपनी जान कैसे बचा सकते थे!"

वह कुछ न बोली। ज्यादा खाया भी नहीं। केवल अपने बड़े-बड़े हाथों से उसी को परोसती रही।

अन्त में बोली, "अब मालूम है, क्या हो गया है? तुम में और तुम्हारे शत्रुओं में लड़ाई होने वाली है। तब तुम्हें मार डालने को यहाँ-वहाँ बिखरे सभी राक्षस एक हो रहे हैं। अकेले तुम पर ही क्रोध है। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे कुल में राक्षसों पर टूट पड़ने वाला और कौन है? इस कारण सब का निशाना तुम्हीं हो। तुम्हारे भाई लोग नहीं। अलग-अलग जंगलों के राक्षस मुखिया यहाँ आये थे। उन्होंने हठ किया कि तुम्हारा दल सबसे बड़ा है। घटोत्कच में राक्षसों के नायक बनने के योग्य शक्ति है। तुम भी हमारे साथ मिल जाओ। यह तो जोश में आकर उनके साथ चलने को तैयार हो गया था। मैंने उसे अपने पेड़ पर इसी झोंपड़ी में बुलाकर समझाया। सारी बात बतायी। 'वह तुम्हारा पिता है। तुम्हारे भाई ज़रूर दूसरे से पैदा हुए हैं, पर मेरा पति अकेला वही है।' तब उसने पूछा, 'यदि वह मेरे पिता हैं, तो क्या उन्हें एक बार भी मुझे देखने नहीं आना चाहिए था?' उसका पूछना सही था या ग़लत? यह तुम्हीं बताओ।"

उसका मुंह देखते-देखते भीम ने अपनी नज़र झुका ली। खाना रुक गया। ऐसा लगा कि उसे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था। यह बात नहीं कि आने से खुशी न हुई हो, पर अलग-अलग ढंग से अपने ही मन में उठने वाले इन प्रश्नों का उत्तर वह क्या दे। पास के पेड़ से ही बच्चे का रोना सुनाई दिया। भीम के कान उसी ओर लग गये। मन भी उसी ओर चला गया। यह देखकर वह बोली, "वह तुम्हारा पोता है। उसे दूध पीने भर को ही माँ की ज़रूरत पड़ती है। नहीं तो मेरी गोद के अलावा कहीं भी अपना रोना बन्द नहीं करता।" तब भीम ने अपनी दृष्टि उसकी ओर उठायी।

"खाना क्यों बन्द कर दिया ? इतने से ही पेट भर गया क्या ? पकाये खाने को बचा दोगे तो बहू मेरा मज़ाक उड़ाए बिना रहेगी ? 'ओह हो ! तुम्हारा पति तो बड़ा बृक था, कहा करती थीं। बस, उसका पेट इतना ही है ?' यह कहती हुई वह मेरे मुँह के सामने हाथ मटकाकर पूछे तो ?"

उसने फिर से खाना शुरू किया। वह बोली, "अब राक्षसों के दो गुट हो गये हैं। उसी दिन वे कहने लगे थे, 'तुम हमारे शत्रु पैदा हुए हो। तुम्हें और तुम्हारी माँ को पहले निबटाएँगे। पर हमारे जंगल में आकर हमें मारना उनके लिए इतना आसान नहीं। 'उसने तुम्हें पैदा किया, पर कुल के प्रति निष्ठा प्रमुख है। धर्म को सही ढंग से समझो', कहकर उन्होंने घटोत्कच को बातों में बाँध लिया था। उनके जाने के बाद उसने मेरे पास आकर पूछा, 'माँ, अब मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि धर्म क्या है। अब तुम्हीं बताओ'।"

जब वह यह सब बता रही थी तब पास के पेड़ से बच्चे का रोना और तेज़ हो गया। अंडों की खातिर साँप घोंसले में चढ़ जाते थे। इस कारण ये लोग अपनी अमराई में पक्षियों को घोंसले ही नहीं बनाने देते थे। सुबह की निःशब्दता में वह चीखता स्वर आकाश को छूने लगा। तब दादा के मुँह में भरी शकरकंदी गले में अटक-सी गयी। "वह अपना रोना बन्द नहीं करेगा, यहीं उठाए लाती हूँ।" कहती हुई वह दरवाज़े के बाहर की सीढ़ियाँ सर्र-सर्र उतरने लगी।

प्रातः भीम के चलने से पूर्व कृष्णा उसके निवास पर गयी और उसे विदा करके आयी। यात्रा सात-आठ दिन की थी। इसी बीच उसे सब काम करके लौटना था। पर कृष्णा को तो ऐसी बेचैनी हो रही थी मानो वर्षों का बिछोह सहना हो। वह रोयी नहीं, मुंह भी नहीं लटकाया। स्वाभाविक रूप में रहने की अपेक्षा अधिक हँसी-खुशी व्यक्त करती हुई भीम के साथ परिहास करती रही। उसे छोड़ने के लिए वह भी गाँव के उत्तर में कुछ दूर तक गई। धर्म, कृष्णा, अर्जुन, नकुल, सहदेव और पाँचों बच्चों के सम्मुख ही उसका हाथ पकड़कर 'भीम, मेरे लिए तुम्हीं आधार हो। यह बात तुम्हें याद रहेगी न ?' कहकर मुसकरायी। उसकी ध्वनि में उसके मन की घुटन स्पष्ट हो रही थी।

भीम को घोड़े पर सवार होकर दूसरे लोगों के साथ, आँखों से ओझल हो जाने के बाद वह दासियों के साथ घर लौट गयी। पाँचों बच्चे भी साथ थे। अज्ञातवास के बीतने के बाद बच्चों को यहाँ बुला लेने के बाद से उसने उनको अलग भवन में नहीं रखा था, बल्कि अपने निवास में ही रख रखा था। साढ़े तेरह वर्ष के बाद वह उनको अपने हाथ से खाना परोसती। अपने पास बिठाकर उनके मामा धृष्टद्युम्न और नाना द्रुपद के बारे में पूछती। जंगल में उसने जो समय काटा और कष्ट उठाए, साथ ही बीच-बीच में घटित खुशी और सन्तोष के प्रसंग भी उन्हें बताती। वे पाँचों इकट्ठे रहते थे। वे माँ के पास बैठते समय अथवा प्रातः उठकर नगर के बाहर शस्त्र अथवा धनुष-बाण का अभ्यास करते समय, उनका अपना छोटा-सा दल पृथक् ही रहता। वहाँ दूसरों से अपना अधिक परिचय न होने से, अपने समवयस्क न होने से अथवा वहाँ के कार्य-कलापों को पूर्ण रूप से ग्रहण न कर पाने के कारण ही सम्भवतः वे ऐसे रहते थे। पिता लोग युद्ध की तैयारी में जुटे थे। वे लोग सैन्य सहायता के लिए दूर-दूर देशों के प्रयाण में संदेशवाहकों को भेजने या आपस में विचार-विनिमय आदि में लगे हुए थे। इनकी बराबरी का केवल उनका भाई अभिमन्यु ही था। बराबरी का अर्थ समवयस्क नहीं। वह इन पाँचों में सबसे छोटे श्रुतसेन से भी तीन वर्ष छोटा था। पर उनमें परस्पर मेल-जोल बहुत कम

था। साथ रहे नहीं, साथ पले नहीं। पिता लोग जब वनवास गये और जब ये अपने मामा के घर गये तब प्रतिविंध्य ग्यारह वर्ष का था और श्रुतसेन छः वर्ष का। तब अभिमन्यु केवल तीन का ही था। अभिमन्यु माँ-बाप के साथ अलग भवन में रहता था। केवल प्रतिविंध्य और श्रुतिसोम को ही उसकी याद थी। दूसरों को वह भी याद नहीं। तीन वर्ष के बच्चे अभिमन्यु को उन भाइयों की याद संभव न थी। इसलिए उन लोगों में वह घनिष्ठता नहीं थी। अब वनवास और अज्ञातवास खत्म होते ही उसका विराट की राजकन्या के साथ विवाह हो चुका था। वह सोलह वर्ष का था। और उसकी समवयस्क पत्नी भी आ चुकी थी। उपप्लाव्य नगर में ही वे दोनों दूसरे भवन में रहते थे। उसके पास ही उसकी माँ सुभद्रा और पिता अर्जुन रहते थे। धनुर्विद्या में वह इन सबसे तेज़ था। पिता की तरह ही उसकी उँगलियाँ तेज़ चलतीं और निशाना भी अचूक था। अब भी उसके पिता प्रातः अभ्यास के समय उसकी ओर विशेष ध्यान देकर धनुष पकड़ने का ढंग, निशाना लेने का ढंग और बाणों का उपयोग आदि बातें विस्तार से बताते। इन्हें भी पास रहने पर बताते हैं। पर जिस बात की जानकारी नहीं होती, उसे पूछने का साहस इन्हें नहीं होता। इसका कारण भी समझ में नहीं आता। यह सब बातें सबसे बड़ा प्रतिविंध्य अपने आप में सोचा करता।

पाँचों बच्चों को इकट्ठे बैठाकर स्वयं खाना परोसते समय कृष्णा सोचती, 'बड़ा चौबीस का हो गया है। दूसरा तेईस का, कम-से-कम इन दोनों का विवाह अब तक हो जाना चाहिए था। पत्नियाँ साथ होनी चाहिए थीं। आज के युग में कहीं स्वयंवर नहीं हो रहा। अथवा माता-पिता के वनवास में भटकते रहने पर कौन-सा राजा इन्हें बुलाकर अपनी बेटी देगा। 'बेटा प्रतिविंध्य, इतना कम क्यों खाते हो ? बच्चो, इतना कम खाते देखकर तुम्हारे पिता, भीम चुप रहेंगे ? देखते ही डाँटेंगे ? कितने कोमल हो गये हो ?' हमें राज्य जीतना है। बच्चों के ब्याह रचाने हैं। यहाँ भी सेवा के लिए इतनी दासियाँ हैं। किसी को भी आँख उठाकर नहीं देखते। इससे कृष्णा को संतोष था। उसे यह संतोष था कि और राजपुत्रों के समान मेरे पुत्र नहीं।

सबसे छोटा श्रुतसेन जिस दिन यहाँ आया था उस दिन वह मेरे पास तक नहीं आया। पहचान भी नहीं सका। जाकर हाथ पकड़कर उसे छाती से लगा लिया तो छुड़ाने के लिए अपने को सिकोड़ लिया था उसने। 'मैं तुम्हारी माँ हूँ।' तीन बार ऐसे प्रश्नों पर उसने 'मालूम है' कहा, 'तो पास क्यों नहीं आते ?' पूछने पर उसने उत्तर ही न दिया। बेकार में रूठा हुआ है। अब इन सबसे वही ठीक है। गोद के बच्चे की भाँति उन्नीस का हो जाने पर भी माँ-माँ करता आगे-पीछे घूमा करता है। पत्नी के आ जाने पर भी ऐसा ही रहेगा क्या ? इस बुद्धू को पत्नी से कोई सरोकार ही नहीं। बच्चा ही तो है। दूसरों में जितनी समझ है उतनी

इसमें नहीं। आज सुबह ही कितनी गर्मी पड़ रही है। भट्टी की तरह तपने लगा है। यह मत्स्य देश ही ऐसा है। पहाड़ी प्रदेश है। जंगल कम है, पानी कम, गर्मी बहुत है। गर्मी के दिनों में पर्वतीय प्रदेशों में चले जाना चाहिए। चार ग्रीष्म हमने हिमालय पर बिताए थे। वह बात याद आयी। तभी उसने 'ज्योतिषमती' कहकर पुकारा। दासी पास आयी। 'गर्मी अभी से जलाए डाल रही है। खस की टट्टियाँ लगाकर पानी छिड़को। एक पंखा पकड़ा दो।' तीस वर्षीय ज्योतिषमती ने दरवाज़े और खिड़कियों पर खस की टट्टियाँ लगाकर पानी छिड़कना आरम्भ किया। ज़रा चैन पड़ा, थोड़ी जान-में-जान आयी। फिर भी कमरा ठंडा होने को कुछ समय तो चाहिए ही। वन ही अच्छा रहता है। गर्मी होने पर भी लू नहीं चलती। अब तक चार कोस की यात्रा तो उन्होंने कर ही ली होगी। इतनी जल्दी चार कोस कौन-सा घोड़ा भाग सकता है? ऐड़ लगाकर भगाया जा सकता है। पहली पत्नी को मिलने की आतुरता में। यह सोचते-सोचते उसे हँसी आयी। मन में आया—ऐसा कह ही देना था। इस पर पता नहीं उन्हें कितना क्रोध आता! ज़रा लौट तो आयें। यही कहकर चिढ़ाऊँगी। 'ज्योतिषमती' बच्चे कहाँ हैं?'

"शस्त्राभ्यास के लिए गये थे न? अब रथ पर युद्धाभ्यास कर रहे हैं।"

"कितनी गर्मी है! बाहर कैसी धूप पड़ रही होगी?"

उसने उत्तर नहीं दिया। उत्तर देती भी क्या? युद्ध पास आ रहा है। हमारा ही युद्ध है। हमारे बच्चे कहीं गर्मी-धूप से डरकर बैठ सकते हैं! खैर जो भी हो इनमें कोई उत्तरकुमार नहीं। वैसे बेटे हों तो कोई सिर ऊँचा करके चल नहीं सकता। श्रुतसेन दूसरी बातों में बच्चा है पर धनुष हाथ में ले तो निशाना अचूक। उसकी बाँहों में इतनी शक्ति है कि बाण वायु वेग से निकलता है; आँख को भी नहीं दिखायी पड़ता। मेरा भाई कोई सामान्य धनुर्धर है? पांचाल देश का वीर है द्रुपद राज का पुत्र है, मेरा भाई। जब स्वयं उसी ने सिखाया है तो निशाना ही नहीं, धैर्य की भी कमी कैसे हो सकती है? इसके अतिरिक्त इनके पिताओं में कोई भी डरपोक नहीं। ज्येष्ठपिता भी डरपोक नहीं। अब तो एक कोस और आगे निकल गये होंगे।

पता नहीं रास्ते में मेरी याद भी आएगी या कृष्णा का भाग्य ही खराब है। मुझे किस बात का सुख मिला। जीवन भर कष्ट, आतंक, क्लेश ही रहे। इंद्रप्रस्थ का निर्माण और विकास करके राजसूय करते समय भी इस कृष्णा के मन का दुख किसकी समझ में आया? सास की भी समझ में नहीं आता। भीम को ही एकमात्र आधार समझा था। क्या अब उसके भी छूट जाने का समय आ गया? उसका मन छब्बीस वर्ष के दांपत्य जीवन को याद करने लगा। हाँ, अकेला भीम ही मेरे योग्य है। वही प्रेम कर सकता है और कोई नहीं। मेरा विश्वास अब तक वैसा का वैसा बना है। अब देखना है कि आगे भी वैसा ही बना रहेगा या नहीं। न बना रहा तो…'कृष्णा की आँखें भर आयीं। कृष्णा रोएगी नहीं। उसके सामने तो हरगिज़

नहीं रोएगी। उसने सोचा, मैं कह दूंगी मुझे अपना मुंह मत दिखाओ। वे जानते हैं। मेरा हठ उनके हठ से अधिक दृढ़ है। यह सोचते समय उसमें आत्म-विश्वास और बढ़ गया। गर्मी सहन करने की शक्ति आयी। खस पर छिड़के पानी की ठंडक धीरे-धीरे फैल रही थी। अट्ठाईस वर्ष पुराना संबंध है जो अकस्मात् हो गया था। वही इन पर मोहित होकर इनके पास आयी। उन लोगों में हम से कितनी अधिक स्वतंत्रता है। केवल एक ही वर्ष का संबंध है। पहला संबंध अट्ठाईस वर्ष पूर्व हुआ था। राक्षस कुल है। वहाँ कोई राजभवन या महल नहीं। साधारण घर-द्वार भी नहीं। यहाँ तक कि धरती पर पर्णकुटी तक नहीं। पेड़ों के तनों पर बनी बाँसों की बड़ी-बड़ी झोंपड़ियाँ हैं। यौवन, नहीं नवयौवन का उन्माद था। लेकिन छब्बीस वर्ष तक कृष्णा के साथ गृहस्थ रहने पर मन और आंखो से दूर उसके पुराने स्नेह का आकर्षण यदि अब फिर से पल्लवित हो उठे तो···। छिः ! भीम विश्वासपात्र है। यदि उनपर भी विश्वास टूट जाये तो संसार में हवा चलनी बंद हो जाएगी। मेघ बरसना बंद कर देगा। जब वह यह सोच ही रही थी कि बाहर से हवा का एक झोंका आया। खस के कारण भीतर ठंडक हुई। हवा में ठन-ठन का स्वर तैरता आया। इस गर्मी में भी भट्टी में लोहा तपाकर कूट रहे हैं। न जाने कितने लोग लगे हुए हैं। कम-से-कम दो तो पकड़ने को चाहिए ही। वहाँ दो गाड़ियाँ थीं। प्रातः भीम को जब छोड़ने गयी थी, तब पास एक स्त्री उल्टी कर रही थी। वह कितने वर्ष की रही होगी ? पच्चीस की हो सकती है···? यह याद आते ही उसे अपना अतीत याद आया। जब वह उल्टी किया करती थी। कितने वर्ष बीत गये। यह सोचती हुई जब वह दीवार से टेक लगाकर बैठी तो तनिक आराम महसूस हुआ। दीवार ठंडी थी। अब तक पता नही कितनी दूर चले गये होंगे। बाहर कड़ी धूप पड़ रही है। उनके सिर पर बाल भी उड़ते जा रहे हैं फिर भी पगड़ी नहीं चाहते। सिर पर पगड़ी और किरीट रखने का झंझट उन्हें पसन्द नहीं। आराम से रहना अच्छा लगता है। क्या कहना चाहिए, क्या नहीं कहना चाहिए। यह बारीकी भी वे जानते नहीं। पहले दिन उनके बड़े भइया के साथ विवाह हुआ। रात उन्हीं के साथ रही। दूसरे दिन इनके साथ वैसे ही शास्त्र और मंत्रोच्चार के साथ विवाह हुआ। फिर शयन। भाई के सामने कोई संकोच नहीं। अनजान होने से घबराहट का-सा व्यवहार भी नहीं था। सीधे शरीर पर हाथ डालकर बच्चे की भांति उठाकर गोद में लेकर छत पर ले गये। बाँहों में ले लिया। मेरी तो जान ही निकल गयी। क्या उन्होंने मुझे खिलौना समझा था। डर से चीख पड़ी तो छाती से कसकर पूछा "डर गयीं। क्यों ?"

"तुम ऐसे करो तो ?" मैंने ज़रा चिढ़ कर हीं कहा।

"सालकटंकटी, ऐसा करने पर प्रसन्न होती थी। खुशी से फूल कर 'फिर से करो, फिर से करो' कहती। वह तुम से ज्यादा भारी थी। मारने पर घूंसा उछलकर

वापस लौट आता था। इतनी दृढ़काय थी वह।"

"सालकटंकटी माने कौन ?"

"मेरी पत्नी। पहली वाली। राक्षस कुल की"— कहते हुए उसने सब कुछ बताया था। "वह कितनी शक्तिशाली है मालूम है ? हमारी कोई भी आर्य स्त्री ऐसी नहीं होती। यह देखो, मेरी बाँहें, कड़ी करने पर फूल उठती है न ? उसकी बाँहें भी ऐसी ही थीं। कसकर पकड़ लेने पर छुड़ाना मुश्किल था। मेरे जैसे पति को ही चाहे तो कंधे पर बिठाकर कोस भर ले जाने योग्य शक्ति उसके शरीर में थी। मेरे कंधे तक आती थी। यानी हमारे आर्य पुरुषों जितनी लंबी थी। तुम्हारी जैसी नहीं।"

बड़े ही उजड्ड हैं वे। स्त्री के मन के सूक्ष्म भाव को समझने की बुद्धि कभी नहीं आयी। उनकी समझ कैसी भी हो पर अंतःकरण को छू जाती है। उसी ढंग से उन्होंने कहा था न ? 'फिर भी देखो कृष्णा, तुम्हारा नाम कृष्णा है न ? मैं कृष्णा ही पुकारूँगा। पांचाली-वांचाली कहने की जरूरत नहीं। पत्नी को मायके के देश के नाम से पुकारना एक ढंग से ठीक है। पर पता नहीं क्यों, वह जरा पराया-सा लगता है। देखो कृष्णा सालकटंकटी को ही पहले मुझ पर मोह उत्पन्न हुआ था। मेरे मन में नहीं था। माँ के ज़ोर देने पर, उसके साथ रहने पर प्रेम हो जाने से उसे छोड़ पाना कठिन हो गया। पर तुम्हारी ऐसी बात नहीं। स्वयंवर के भवन में तुम्हें देखते ही मेरा मन ही मेरे वश में न रहा। ऐसा क्यों हुआ, यह अब भी समझ में नहीं आया ! तुम्हारे रूप के कारण या तुम्हारे रंग के कारण ! वैसे तुम बहुत गोरी भी नहीं। फिर भी क्यों ? यह मेरी समझ में नहीं आता।'

विवाह के शुरू-शुरू में पता नहीं कितने दिन तक सालकटंकटी का नाम लेते थे। यूँ ही बात-बात पर उसके साथ तुलना करते। तुलना भी केवल शारीरिक शक्ति की। इस मल्ल के लिए स्त्री में केवल शक्ति की आवश्यकता थी या फिर शारीरिक गठन की। किंतु मेरे लिए उसके मन में एक अनिर्वचनीय आकर्षण था और स्त्री से किस प्रकार की बात नहीं करनी चाहिए यह न समझ पाने वाला बुद्धूपन। बात करने में तो उनके भाई अर्जुन का कोई सानी नहीं। धनुष-बाण से निशाना लेने में भी वह उतना ही तेज़ है। उसकी एक-एक बात से मन उसकी ओर आकर्षित होता है और अनजाने में ही उससे मिल जाता है। कितना वाक्चातुर्य है उसमें ! आर्यावर्त के धनुर्धारियों में सर्वश्रेष्ठ है। स्वयंवर में जीत गया। ऐसे लोहे के धनुष को खींचते समय भी लक्ष्य नहीं चूका, कितना सधा हुआ हाथ है ! साथ ही कैसा आकर्षक रूप भी ! लंबी, तीखी नाक, तीखी ठुड्डी, श्वेत शुभ्र, नीली आँखें, शुभ्र गौरवर्ण, उनके सामने मैं भी काली हूँ। दृढ़ता से चलने पर भी पाँव से आहट नहीं होती। वे न केवल धनुष की प्रत्यंचा ही खेंच सकते हैं अपितु वाद्ययंत्र भी बजा सकने योग्य आकर्षक उँगलियाँ भी हैं। गुरुदक्षिणा चुकाने के लिए जब ये पिताजी पर सेना

लेकर चढ़ आये थे, तब इन्हें देख पिताजी ही इनके ललित सौंदर्य पर मंत्र-मुग्ध हो गये थे। इतना सुंदर शारीरिक गठन कि लंबाई-चौड़ाई में कहीं रत्ती भर भी असंतुलन नहीं। नपा-तुला सुगठित शरीर। तीसरी रात जब वे शयन-गृह में आये तब उनकी उँगलियों के स्पर्श से उत्पन्न वह मादक कंपन आज भी मुझे याद है। प्यारे काँपते हाथों से मेरे चिबुक को पकड़कर ऊँची करते हुए कहा था, 'अर्जुन तुम्हारा दास बनने आया है। कृपा करोगी, द्रुपद राजकुमारी ?' उनके यह कहने के ढंग से पहले से ही परास्त मैं बिल्कुल ही हार गयी। अर्जुन, तुम शुरू में ही मुझे पूरी तरह जीत गये। 'कृष्णा जैसी भाग्यशालिनी है ऐसी और कोई नहीं, यह भाव तुमने मुझमें जगा दिया।' उसी प्रसन्नता की शक्ति से मैं दूसरे चारों को सहन करती चली। वे भी कैसे दिन थे ! मेरे साथ रहने, शरीर से सटकर बैठकर बात करने और सहवास करने को पाँचों सदा आतुर रहते थे वे दिन। उन सब के लिए विवाह नयी चीज थी। यौवन किसी का भी कम न था। पत्नी के साथ रहने की भूख और आतुरता थी। एक के बाद एक, हर रात एक-एक की बारी थी। भूखे सिंह की-सी बाकी चार दिनों की भूख को अपनी बारी के दिन, एक ही रात में पूरा कर लेने की लालसा। सारी रात उस दिन के पति की शारीरिक क्षुधा तृप्त करने में सहयोग देकर मैं पूरा दिन सोया करती। 'तुम में सालकटंकटी जितनी शक्ति नहीं' कहने वाले भीम में समझ नहीं थी। इतने पतियों को सँभालने की शक्ति सुकुमारी कृष्णा में कैसे आ गयी ? मुझे स्वयं आश्चर्य होता था। ऐसा नहीं लगता था कि सभी स्त्रियों में ऐसी शक्ति होती है। मुझे गर्व होता। सखी कहा करती थी न, 'मालकिन, तुम्हारी शक्ति गज़ब की है।' पर प्रत्येक रात मन अर्जुन को ही चाहता था। मैं दूसरों में भी उसी को खोजती। बाकी चारों पांडव उसी के कारण मेरे मन को स्पर्श करते थे। मेरे अस्तित्व को छूते थे। उसकी बारी की रात की बाट जोहना ही मेरे जीवन का परम उद्देश्य था। उसकी प्रतीक्षा में ही बाकी चारों रातों का चक्र गुज़रता। बाहर हवा रुक गयी होगी। खस की टट्टियों से हवा नहीं आ रही। ठन-ठन की आवाज़ भी सुनायी नहीं दे रही है। हवा चौतरफ़ा बह रही होगी। ठीक सुनायी नहीं देता। भीतर उमस घट चली है। पर शरीर चिपचिपा रहा है।—"ज्योतिषमती, एक पंखा तो लाओ। खस का नहीं, उसमें भार ज़्यादा है और हवा कम। ताड़ के पत्तों का ही अच्छा है।" दासी पंखा ले आयी और हवा करती हुई पास बैठ गयी। ज़रा चैन पड़ा। ऊपर का वस्त्र उतारकर बैठने को मन हुआ। कपड़े ढीले करके बैठ गयी। ऐसी हवा ही चलती रहे तो अच्छा है। लगा मानो सारा कमरा खाली हो गया हो। दासी के पास आते ही यादें तुरंत कहीं खो गयीं। मैं क्या सोच रही थी ? किस बात की याद कर रही थी ? धत् बात यह नहीं, यह भी नहीं, क्या याद कर रही थी ? "ज्योतिषमती, मैं स्वयं ही पंखा झल लूंगी। मुझे दे जाओ। खस की टट्टियों पर खूब पानी छिड़क दिया है न। पानी चू रहा है।"

"कोई और काम नहीं है। मैं ही पंखा झलती हूँ।" वह बोली।

"नहीं, नहीं। मेरी बात मानो। तुम जाओ। मैं अकेली रहना चाहती हूँ"—कहते हुए उसने हाथ बढ़ाकर उसके हाथ से पंखा ले लिया। दासी उठकर दूसरे कमरे में चली गयी, कमरा खाली हो गया। निःशब्द, निर्जन। विचारमग्न मुद्रा में सिकोड़ी हुई आँखों को धीरे-धीरे खोला और निःशब्द, निर्जन कमरे को निहारा। अब तक कितनी दूर निकल गये होंगे? बाहर भयानक गर्मी पड़ रही है। क्या घोड़े लगातार चल पायेंगे? पापी दुर्योधन राह में हत्यारे पीछे लगा दे तो? लगा देने से क्या? पच्चीस अंगरक्षक साथ हैं, वैसे किसी अंगरक्षक की आवश्यकता नहीं। भीम को मारने वाला अभी जन्मा नहीं। भीम के हाथों मरना ही दुर्योधन के भाग्य में लिखा है, तो हत्यारे क्या कर सकेंगे? उन्होंने कितने राक्षसों को मारा है! जयद्रथ को बंदी बनाया। कीचक को मच्छर की तरह मसल दिया। पूर्व दिशा के राजाओं को हराकर राजसूय यज्ञ के लिए ढेर-सा चढ़ावा लाया। ऐसे भीम को मारना असंभव है। मुझे निरर्थक घबराहट हो रही है। कम-से-कम पाँच कोस तो तय कर ही लिये होंगे। चार-पाँच दिन की राह है। इसके बाद भीम कृष्णा को भूल जाएँगे। पर कृष्णा किसी के सहारे की आशा नहीं करेगी। उसे किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं। वह स्वतंत्र रहेगी। चाहे तो वह अपने बच्चों के सहारे रह लेगी। वे चाहें तो सालकटंकटी के साथ बने रहें। चाहें तो उसे साथ ही ले आयें। बाहर से हवा का एक झोंका आया। बड़ा अच्छा लगा। पंखे की आवश्यकता नहीं। छब्बीस वर्ष से जानती हूँ। वे कृष्णा का हाथ नहीं छोड़ेंगे। छोड़कर वे भी कैसे जी पाएँगे?

कृष्णा को छोड़कर कैसे जी पाएँगे? जरा आधार मिला। "भीम, तुम स्त्री के मन को कभी समझ नहीं पाए? कोई स्त्री इस प्रकार किसी अन्य स्त्री की चर्चा सुनकर प्रसन्न नहीं हो सकती। यह तुम कभी समझ नहीं सके—" जिस दिन मैंने यह कहा तो कैसे फीके मुँह से सिर झुका लिया था उसने। तभी मैंने पूछा, "इसमें दुखी होने की क्या बात है?" मेरी बात ऐसी लगी कि रात-भर न बोले। मुझे छुआ भी नहीं। वही आखिरी दिन था। फिर कभी उसकी चर्चा नहीं की। उसकी ही नहीं, पता नहीं भीम के मन में किसी और स्त्री की बात भी उठती है या नहीं। वे पूर्ण रूप से मेरे हो गये। प्रतिदिन जब एक को सँभालना मुश्किल हुआ तो यह निश्चय हुआ कि वर्ष में क्रम से एक रहेगा। इससे चार वर्ष तक उन्हें अकेले रहना पड़ता था। पर तब भी उन्होंने दूसरी स्त्री के बारे में नहीं सोचा। अपने लिए एक पत्नी नहीं लाए। राजसूय यज्ञ की भेंटों में पता नहीं कितनी दासियाँ लाये पर किसी को भी उन्होंने छुआ तक नहीं। उनकी निष्ठा एक में ही है। वे कृष्णा का हाथ छोड़ कर जी नहीं सकेंगे। पुरुषों की चतुरता पर स्त्रियाँ सर्वस्व अर्पित कर देती हैं। पर वे उन्ही शक्तियों से दूसरों को वश में कर सकता है, यह समझने का विवेक उसमें नही।

अर्जुन चतुर है। लगातार पाँच वर्ष तक मुझे फुसलाकर पागल बनाकर मेरे मन की एकनिष्ठा को जीत लिया। पर पाँचों में एक-एक वर्ष की बारी को सहन न कर पाकर क्रोध करके चले गये और पता नहीं कितनी स्त्रियों को भोग कर आये। आते हुए अपने लिए अलग से एक पत्नी ले आये न ? स्त्री को बहका लेना उनकी एक विशिष्टता है। वे निष्ठा से नहीं रहे। पर पाँचों पांडवों को हाथ की पाँचों उँगलियों की तरह बाँधकर रखना, यह इस कृष्णा की निष्ठा थी। इस निष्ठा को बचाए रखने में ही आज तक मैं जीती हूँ। पर अर्जुन, तुमने आमने-सामने सीधी बात करने की शक्ति को खो दिया। समस्त आर्यावर्त में तुम धनुर्विद्या में सबसे आगे हो। मेरा जीवन कैसे चलकर कैसे बदल गया। जब मेरे पिता ने यह घोषणा की कि समस्त आर्यावर्त में अत्यंत समर्थ धनुर्धारी को मैं अपनी बेटी दूँगा तब मुझे कितनी प्रसन्नता हुई थी ! वीर के अतिरिक्त क्षत्रिय कन्या किसी दूसरे को प्राप्त हो सकती है ! द्रुपदराज की कन्या कोई सुलभ वस्तु नहीं थी। अत्यंत कठिन धनुष को झुकाकर और अत्यंत कठिन निशाने को वेधे बिना यह मिलने वाली न थी। वीरता को पसंद करके सम्मान देकर पूजने वाले हैं मेरे पिता। चाहे वह बैरी ही क्यों न हो। धनुर्विद्या के चमत्कार का मन से अभिनंदन करने वाले शुद्ध क्षत्रिय हैं मेरे पिता। क्षत्रिय को कन्या जीतनी चाहिए। दान में नहीं माँगनी चाहिए। सदा यही पुलकित करने वाली बातें करते हैं। मैं भी अपने मन में उसी बात को दुहराती रहती हूँ।

ऐसा ही हुआ भी। अर्जुन जीत गया। धनुष झुकाकर लक्ष्य-भेद एक ही बार में कर डाला। कृष्णा भी पिता की शाख से टूटकर सीधी उसकी गोदी में गिरी। उस फल को तोड़ने आर्यावर्त के सभी राजा आये। खेल में हारने के बाद हँसते-हँसते लौट जाना किस क्षत्रिय के रक्त में होता है ? वह भी आर्यावर्त के क्षत्रिय रक्त में! जुआरी, जुए में जीत गये तो समझने लगते हैं मानो आकाश को ही जीत लिया। हार गये तो बेकार में झगड़ा शुरू करके खून बहाते हैं। खून भले ही अपना हो या जीतने वाले का। ऐसी स्पर्धा में ऐसा ही होगा। पहले से ही अनुमान लगाकर पिताजी यदि सुरक्षा की व्यवस्था न करते तो ये लोग केवल पाँच ही थे। अर्जुन ने फल गिराकर उस फल को अपनी पिटारी में धर लिया नहीं तो पता नहीं कोई छीनकर अपने दाँत लगा देता।

यह तो हो गया। अर्जुन जीत गया। घर ले गया। घर भी कैसा ? जीवन में पहले कभी मैंने ऐसी जगह पाँव नहीं रखा था। हमारे ही शहर के दक्षिणी भाग में एक कुम्हार के घर के पिछवाड़े वाली झोंपड़ी ! चारों ओर चाक से उतरकर सूखने को रखे बर्तन, घड़े, हँडियाँ आदि रखे। ज़मीन पर भी इधर-उधर चिकनी गुंधी हुई मिट्टी चिपकी हुई थी। झोंपड़ी के भीतर तो मिट्टी न थी। इन लोगों के निवास के लिए विशेष रूप से बनी झोंपड़ी थी। जीती हुई राजकुमारी को ले जाने के लिए एक रथ तक न था। पैदल ही ले गये। स्वयंवर के लिए चमचमाते वस्त्रा-

भूषण से अलंकृत राजकुमारी राजमार्ग पर पैदल चले तो क्या देखने को कम लोग जुड़ते ? घर-घर से भागकर रास्ते पर आ-आकर देखने वाले, धड़धड़ाते हुए सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर की मंज़िलों से झाँकने वाले स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सभी तो थे। मेरे पीछे-पीछे लोगों के झुंड-के-झुंड चले आ रहे थे। साथ में अर्जुन थे और अन्य चारों भी। वे मुझे कुम्हार के घर के पिछवाड़े की झोंपड़ी में ले आए। अर्जुन ने पुकारा 'माँ' और भीतर ले गया। कहा 'देख क्या जीत कर लाया हूँ।' बाद में पूछा। 'तुम तो कहा करती थीं कि तुम्हारी सुंदरता के जोड़ की संसार भर में कोई और स्त्री नहीं। देखो क्या यह सुंदर नहीं ?' उसकी माँ ने दोनों हाथों से मेरा मुख ऊँचा किया और निहारती रह गई। कितने बड़े-बड़े हाथ थे ! क्या डील-डौल ! बालों में सफेदी साफ़ झाँक रही थी। मुखमंडल पर असीम आत्म-विश्वास, श्वेत वस्त्र, शाल और आभूषण रहित गरीबी का वेश। मेरे मुख और बाँहों को सहलाती हुई 'सचमुच में सुंदर है। मेरे बेटे को बड़ा गर्व है कि वह बहुत सुंदर है। मेरा गर्व कम करने योग्य सुंदरी हो तुम।' कहते हुए उन्होंने मुझे गले से लगा लिया। माँ का मन बड़ा उदार था। सुंदर बहुओं को देखते ही सासों में एक जलन पैदा हो जाती है। पर इस सास ने मुझे क्षण-भर को अपनी प्रतिस्पर्धा करने वाली नहीं समझा, तब से अब तक। हमेशा 'मेरी कृष्णा, तुम अच्छी तरह खाओ-पिओ, अच्छी तरह पहनो-ओढ़ो', कहा करती थी।' राजसूय यज्ञ के लिए सभा में जाने को मैं जब सज-धजकर उन्हें नमस्कार करने गयी तब 'मेरी बच्ची, मेरे बेटों का समस्त अभ्युदय तुम्हारे ही कारण हुआ है।' कहकर गले लगाकर आँसू बहाए। उन्हें देखे साढ़े तेरह वर्ष हो गये। पता नहीं अब कैसी है ? कितनी थक गयी होगी, बेटे, बहू-पोतों और राज्य से वंचित होकर। तभी अर्जुन ने कहा, 'द्रुपदराज ने ऐसा धनुष बनवाकर रखा था कि आर्यावर्त का कोई भी क्षत्रिय उसे झुका न सके। मैंने उस धनुष को झुका दिया। इस लड़की को भी मैंने तुम्हारी इच्छानुसार झुकाया। अब उस राजा के आकर हमारा सम्मान करके, दान-दहेज देकर बेटी को घर ले जाकर विवाह कराने तक मैं प्रतीक्षा नहीं करूँगा। तुम्हीं आशीर्वाद देकर, विवाह हो गया कह दो।'

"माँ, इस अर्जुन ने भले ही धनुष को झुकाया होगा।" उसके पास खड़े उससे एक हाथ लंबे-चौड़े डील-डौल वाले भीम ने बीच में कहा। "ऐसे स्वयंवर में केवल शर्त जीत जाने से काम नहीं चलता। लड़की का जयमाला डाल देना ही काफ़ी नहीं होता। उसके वरमाला डाल देने पर भी चारों ओर एकत्र क्षत्रिय क्या छोड़ देंगे ? बल प्रयोग से उठाकर ले जाने पर टूट पड़ते हैं। आज भी ऐसा ही हुआ। दुर्योधन आदि भी स्वयंवर में आये थे। धनुष झुकाकर लक्ष्यभेद करने वाला अर्जुन ही है, यह पता चलते ही तुरंत इसे उठाकर ले जाने को घँस पड़े। धनुष झुकाकर लक्ष्यभेद करने की खुशी में अर्जुन यह भूल गया था कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है। वह तो इस खुशी में फूल उठा था कि सभी की सहस्रों आँखें उसे कैसे निहार

रही हैं। मैं तुरंत आगे बढ़ा और इस लड़की को बाँह पकड़कर अपने पीछे करके दुर्योधन पर टूट पड़ा। स्वयंवर मंडप का एक खंभा तोड़कर उसे और उसके साथी कर्ण, दुशासन पर प्रहार किया। खंभा उखाड़ते ही उस ओर का मंडप ढह गया। चारों ओर शोर मच गया। इतने में द्रुपद के सैनिक सचेत हो गये। वास्तव में बात यह रही कि लक्ष्यभेद करना कुछ और था और लड़की को जीतकर लाना कुछ और था। अर्जुन ने अपनी चतुराई से धनुष झुकाया होगा पर लड़की जीतकर लाने वाला मैं ही हूँ। इसकी बायीं बाँह को देखो। मैंने उसे पकड़कर पीछे खींच-कर रक्षा करने के लिए पकड़ने के समय का उँगलियों की लाल-लाल छाप अभी भी साफ़ दिखायी दे रही है। इसलिए इसे मेरी ही पत्नी बनना चाहिए।"

कोई न बोला। स्तब्धता छा गयी। कुछ क्षण बाद अर्जुन बोला, "तुम्हारी पत्नी बननी चाहिए? तुम्हारी? द्रुपदराज की शर्त थी धनुष तोड़ने वाले को मेरी बेटी मिलेगी। शर्त मैंने जीती। बीच में बदमाश घुस पड़े। बड़े भाई होने के नाते तुमने छोटे भाई की चीज़ की रक्षा की होगी। अब उस चीज़ को अपनी बता रहे हो, तुम्हारी ज़बान में कीड़े पड़ेंगे।"

"तुमने यह समझ लिया है कि समस्त धर्मशास्त्र तुम्हीं जानते हो? अगर मैं न होता तो यह अब तक हस्तिनापुर के रास्ते पर तीन-चार कोस पहुँच चुकी होती। दुर्योधन को मिल जाती तो तुम्हें खुशी होती। अपने सगे भाई को देने में तुझे जलन होती है!" यह भीम ने कहा था। मैंने गर्दन उठाकर उनका मुख भी नहीं देखा था। तब भी नहीं देखा, इतने लंबे थे। वह तो लाज-शर्म ने रोक लिया। इसके अति-रिक्त उस झगड़े के कारण मैं घबरा भी उठी थी।

"ईर्ष्या-वीर्ष्या की बात नहीं। जरा झोंपड़ी से बाहर निकल। तू अपना धनुष ले, मैं अपना लेता हूँ। अगर एक ही वार में मैं तुझे खतम कर दूँ तो यह मेरी, अगर तू मुझे खतम कर दे तो तेरी। साहस है तो तैयार हो जा।"

"अरे अर्जुन, बड़े भाई से ज़बान लड़ाने लायक बड़ा हो गया तू। कभी भी मेरी अवमानना करके बात करने का साहस तुझ में न था, तू तो द्वंद्व की बात कह रहा है। कोई भी धनुष-बाण लेकर द्वंद्व-युद्ध नहीं करता। यह तो मल्लयुद्ध की बात है। बाहर चल। एक ही झटके में तेरी हड्डियों का चूरा करके चूल्हे की लकड़ी की तरह तेरे टुकड़े-टुकड़े न कर दूँ…।" जब से वे दोनों यह कह ही रहे थे माँ ने हाथ उठाकर भीम की बाँह पर और अर्जुन के कंधे पर एक घूंसा जमाया। उस आयु के उतने शक्तिशाली बेटों को भी घूंसा जमा सकने वाली माँ मैंने नहीं देखी थी। यदि मेरी माँ जीवित होती तो क्या वे धृष्टद्युम्न को ऐसे मार सकती थी? मार पड़ते ही दोनों एकदम चुप हो गये। झोंपड़ी में निस्तब्धता छा गयी। "धनुष-बाण की लड़ाई, मल्लयुद्ध। मेरे ही पेट से पैदा, मेरी संतान, एक लड़की के मोह के कारण एक-दूसरे पर टूटे पड़ रहे हो! तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। ज़बान बंद करके खड़े रहो। ठहरो

मैं सोचती हूँ। धर्म ! तू झूठ नहीं बोलता। वहाँ क्या हुआ, यह सच-सच बता ?"

तब तक मैं समझ गयी थी कि ये पांडव हैं। धर्म बड़े थे। शांत मुख, शांत स्वभाव। उनमें भीम का डील-डौल और अर्जुन की-सी चतुरता न थी। पलकें धीरे-धीरे झपकाते थे। साधारण शरीर। वे आज भी वैसे-के-वैसे ही हैं। बिना कुछ बोले सिर नीचा करके खड़े हो गये। "धर्म, तू सच बता!" माँ ने आदेश दिया। तब तक मैंने भी संकोच त्यागकर धैर्य से सिर उठाकर देखा। असमंजस भरा मुख। स्वर ऐसा मानों गले में थूक अटका हो। उन्होंने कहा, "माँ, यदि इसका विवाह भीम या अर्जुन में किसी से हुआ तो अधर्म होगा। बड़े के रहते छोटों का विवाह होना, क्या यह आर्य पद्धति है ?"

"तो ?" चतुरबुद्धि अर्जुन बीच ही में बोला।

धर्म ने फिर बात न की। पर बीच-बीच में चोरी से मेरी ओर देखना उन्होंने रोका नहीं। रोक भी नहीं सकते थे। इतने में मेरी देह पसीना-पसीना हो उठी। पता नहीं घबराहट थी या थकान, अब प्रयास करने पर भी याद नही आता। कृष्णा ने हाथ का पंखा झलना रोककर छब्बीस वर्ष पुरानी उस स्मृति को क्षण-भर को बाँध रखना चाहा। यह तो याद आ रहा है कि किस-किस ने क्या कहा था, पर यह स्पष्ट याद नहीं आ रहा कि मुझे क्या हो रहा था ? जो भी हो, मेरे शरीर के बोझ को ढोने वाली दोनों टाँगें पसीने से चिपक-सी गयी थीं।

"तो इसका मतलब यह हुआ कि इससे ब्याह करने की इच्छा तुम्हारी भी है। भैया, मैंने अब तक यह समझा था कि तुम न्याय का मार्ग कभी नहीं छोड़ोगे। पर तुम यह कह रहे हो कि बड़े भाई के रहते छोटे का विवाह नहीं होना चाहिए, यह तुम्हारा अधिकार है। हिडिंब वन में तुम्हारे मन में यह इच्छा क्यों जागृत नहीं हुई ? वहाँ अपनी ज्येष्ठता के अधिकार को तुमने क्यों नहीं जताया ? यह डर था न कि कहीं वह राक्षस-कन्या तुम्हारी चोटी पकड़कर तुम्हें पटक न दे ?" विरोध में अर्जुन के यह कहने पर धर्म ने फिर से सिर नीचा कर लिया। उनका मुख छोटे बच्चे की भाँति आरक्त हो उठा। "धर्म, तुम्हारे कहने का अर्थ क्या है—?" माँ के स्वर में आश्चर्य और घबराहट थी। वे सुस्त होकर नीचे बैठ गईं। "—तू भी बैठ जा बेटी" कहते हुए उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर सामने बिठा लिया। झोंपड़ी का दरवाज़ा खुला हुआ था। कुम्हार के घर के सामने भीड़ का कोई ठिकाना न था। सब उसी नगर के थे। माँ बोली, "भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धर्म, तुम सब बाहर जाकर उन लोगों को डाँटो कि कोई भी झोंपड़ी के पास खड़ा न हो। यदि वे न माने तो कहना तीर चला देंगे। यह राजाज्ञा है।"

वे सब बाहर गये। मुझे पास खींचकर माँ बोली, "बेटी, तुम केवल सुंदरी ही नहीं हो। रंग ज़रा कम साफ़ होने पर भी तेरी आँखें, नाक, मुख और शरीर के गठन का आकर्षण अद्भुत है, नहीं तो मेरे बेटे ऐसे एक-दूसरे से झगड़ा न करते। मैं

तुझे तेरे पिता के पास भेज दूंगी। झगड़े को बहू के रूप में मैं क्यों अपनाऊँ?" तब मुझे वास्तव में क्रोध हो आया था। मेरे आकर्षण के बारे में सब सखियाँ बताया करती थीं। पिताजी और भैया गर्व करते थे। सखियों ने बताया था कि स्वयंवर में राजाओं के मुख से लार टपक रही है। पर ये मेरी निंदा कर रही हैं। मैंने उठकर उनकी ओर देखा। वृद्धा के मुख पर चिंता और निस्सहायता थी, पर मेरे प्रति प्रशंसा का भाव था। ऐसी आश्चर्यचकित-सी मेरी ओर देख रही थीं मानो अपने बेटों से भी अधिक मुझ पर मोहित हो गयी हों। उन्होंने मेरे दोनों हाथ ऐसे पकड़ लिये मानों उन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया हो। कैसी सुदृढ़ और प्यारी पकड़ थी! जोर से पकडकर बैठ गईं। कैसे बलिष्ठ हाथ थे! मैं चुपचाप सिर नीचा किए बैठी रही। बाहर वे कह रहे थे, 'कोई भी यहाँ खड़ा न रहे। आप लोग अपने-अपने घर जाओ। अपनी राजकुमारी को चाहो तो विवाह के मंडप में देख लेना। तुरंत चले जाओ। उधर देखो तुम लोगों के अपने ही राजभट आ रहे हैं। तुम लोगों को यहाँ से भगाने के लिए।' इसके थोड़ी देर बाद पाँचों एक-एक करके भीतर आए। मेरे और अपमी माँ के चारों ओर बैठ गये। मानो मुझ पर अपना-अपना अधिकार माँ को जताना चाहते हों। अथवा मुझे उठाकर ले जाने को तैयार हों। प्रत्येक के हाथ में धनुष-बाण था। भीम के अतिरिक्त। उसे यह घमंड था कि उसे इस खेल के लिए धनुष-बाण की क्या आवश्यकता है? माँ बोली, "सहदेव, झोंपड़ी का दरवाज़ा बंद कर दो।" मैंने कनखियों से देखकर ही समझ लिया कि दरवाज़ा बंद करने वाला ही सहदेव है। वह मेरी ही आयु का या मुझसे छोटी आयु का था। उसमें पुरुष के शरीरिक गठन के साथ स्त्री का मार्दव मिला रूप था। अभी दाढ़ी-मूंछ नहीं आयी थीं। वहाँ उसी के जैसा एक और भी था। एकदम वही आयु वही गठन। संध्या हो चुकी थी। झोंपड़ी का द्वार बंद करने से अँधेरा छा गया। मेरे अतिरिक्त वहाँ और भी छ आकृतियाँ थी। केवल आकार की अनुभूति हो रही थी। मेरे हाथ थामे उनकी माँ बोली, "सहदेव, धर्म भी इसके मोह में पड़ गया है। इससे उसके मन में न्याय की बात नहीं उठेगी। इसमें न्याय क्या होना चाहिए, तू ही बता दे। मैं निर्णय करूँगी। इन तीनों को वह मानना होगा। यदि ऐसा लगे कि इससे हमारे हित की हानि होगी तो इसे यहीं इसके पिता को सौंपकर इसी रात हमें यहाँ से चल देना चाहिए।"

सहदेव बोला नहीं। सब साँस रोके बैठे थे। जैसे पानी में डूबकर बैठते हैं। केवल उनकी माँ की साँस सुनाई दे रही थी। साथ में दिगभ्रांत मेरा रक्तचाप। माँ ने पूछा, "क्यों? चुप क्यों रह गये?"

बाहर राजभट डाँट रहे थे। "यदि तुम लोग नहीं गये तो तुम्हें कैद कर लिया जायेगा।" बेटा सहदेव, तुम कभी झूठ नहीं बोलते। ठीक से बताओ।" माँ की यह बात सुनकर सहदेव ने गला साफ़ किया। उसका गला मानों बंद हो गया

था। फिर भी वह काँपता हुआ बोला, "माँ, तुमने ध्यान दिया कि इस अँधेरे में भी नकुल किस ओर देख रहा है?" नकुल ने तुरंत कहा, "माँ, इसी प्रकार सहदेव का मन भी इसी तरफ है। तुम यह बात भी समझ लो।"

ऐसा लगा जैसे मेरी धमनियों में तेज़ी से दौड़ता हुआ रक्त एकदम रुक ही गया हो। उनकी माँ की साँसें भी अँधेरे में लुप्त-सी हो गयीं। भीतर केवल अँधेरा था। अस्पष्ट आकृतियाँ दीख रही थीं। उनकी माँ ने अपना हाथ पीछे हटा लिया। उस क्षण मैंने अपने को एकदम अकेली महसूस किया। वह मौन मेरी शक्ति से भी परे था। किसी के भी साथ न रहने का अकेलापन। पाँचों ओर से घिरे आकाश में स्थिर खड़ी पतंग का-सा एकाकीपन।

थोड़ी देर बाद माँ बोली : "कुम्हार की पत्नी ने थोड़ी-सी कनी दी है। उसी को पकाकर थोड़ा गुड़ डाल, खीर-सी बना दी है। आओ भोजन करें।"

सहदेव ने उठकर दिया जलाया। ढाक के दोनों में सबने भोजन किया। भोजन के बाद माँ बोलीं, "मैं और राजकुमारी दोनों भोजन करके भीतर सोएँगे। दुर्योधन के आदमी यदि रात को यहाँ घुसकर इसे उठा ले जायें तो क्या करेंगे? मेरे निर्णय करने तक इसके बारे में तुम लोग आपस में द्वेष को अवसर न दो। भीम, अर्जुन, तुम दोनों को मैं खबरदार किए देती हूँ।"

उस खीर का स्वाद किसे पता? झोंपड़ी का दरवाज़ा बंद करके दीप के मंद प्रकाश में पांडवों की माँ ने मेरे पास बैठकर दोनों हाथों से मुझे छाती से कस लिया। और बोली, "बेटी, तुमने अपने पड़ोस के कुरु प्रदेश के पांडु राजा के पुत्रों के बारे में सुना नहीं? लाख के भवन में बंद करके दुर्योधन ने आग लगा दी थी न, उससे बचकर आने वाले हम ही हैं। देखो मेरे तो केवल पुत्र ही है। तेरे जैसी बेटी पैदा नहीं हुई। अब तू ही मेरी बेटी बन जा।"

कितनी लंबी-लंबी बाँहें! दुर्बल होने पर भी चौड़ी भरी हुई छाती। अकेलापन दूर करके क्षेमभाव उत्पन्न करने वाला दृढ़ आलिंगन? मरने से पहले मेरी माँ ने भी मुझे ऐसे ही छाती से लगा लिया था। उसके बाद से कृष्णा को वैसा प्यारा आलिंगन कहाँ मिला? पांडवों की माँ ने मुझे जीत लिया। पांडवों के अर्जुन ने धनुष झुका कर मत्स्य-यंत्र का लक्ष्यभेद किया था। भीम ने ऊपर टूट पड़ने वालों को मार भगाया था। दूसरों ने भी यथाशक्ति रक्षा की थी। वह मुझे जीतकर लाने वाले पांडवों की माँ थी। रात को साथ ही लेटकर बायें हाथ से मेरे गाल सहलाते हुए कुरुओं की सारी कहानी बताई। पांडवों के साथ हुए समस्त अन्यायों का वर्णन किया। वह सब मैं जानती ही थी। कुरु वंश में होने वाली प्रत्येक बात का वर्णन पिताजी मुझसे और मेरे भाई से किया करते थे। उसमें घमंडी द्रोण को आश्रय देने वाले, पिता के अपमान में भाग लेने वाले भीष्म के घर की बातें भी थी।

फिर भी पिताजी को अर्जुन से कितना प्यार था ! पिता के मुख से सुनते-सुनते ही मुझे अर्जुन से प्रेम हो गया था।

आधी रात के बाद उन्होंने पूछा, "बेटी यह पता है कि दांपत्य का अर्थ क्या है ?"

मैं भी भला क्या जानती थी ? मेरी सखियाँ और विवाहित दासियों ने गुप्त रूप से जितना कहा था उतना ही पता था। उनकी बात ध्यान से सुनकर बाद में कल्पना में खो जाया करती थी। उन्हें मैं यह कैसे बताती कि मैंने इतना सुन रखा है !

"दांपत्य प्रेम पाने और देने की शक्ति स्त्री में पुरुष से पाँच गुनी अधिक होती है। एक बादल से कहीं भूमि तृप्त होती है। ऊपर से पानी की भले ही नदी बह जाये, बाढ़ आ जाये। अंदर नमी नहीं रहती। धरती फिर से दूसरे बादल की प्रतीक्षा में गर्मी के दाह के कारण मुंह बाए ही रहती है। बेटी, इस अट्ठारह-उन्नीस की आयु में तुम्हें ये बातें समझने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। तुम मेरे पाँचों पुत्रों से एक साथ विवाह कर लो। ये पाँचों वीर्यवान हैं। तुम्हें सुख-समृद्धि मिले। तुम्हारे समान दाम्पत्य-सुख पूरे आर्यावर्त की किसी और स्त्री को प्राप्त नहीं होगा। यह मेरा आशीर्वाद समझो।"

"आप कैसी बात कर रही हैं !" मैंने काँपते स्वर में पूछा। मैं क्यों काँप उठी यह अब तक समझ में नही आयी।

"क्यों, तुम्हें डर लग रहा है ? मैं अपने बच्चों को तुम्हारी इच्छानुसार चलने को कहूँगी। यह मत कहना कि ऐसी पद्धति कही नहीं है। हम हिमालय पर्वत पर थे। वहाँ यही पद्धति है। जिस किसी का एक भाई से विवाह होता है, वह अन्य सभी भाइयों की पत्नी बन जाती है। इसके अतिरिक्त हमारे आर्यों के मूल संप्रदाय पर चलने वाली देवता नाम की एक जाति हिमालय में रहती है। उसमें भी यह पद्धति है।"

तब मैंने कहा, "हमारे राज्य के आर्येतर लोगों में यह पद्धति है। राजभवन में लकड़ी, शिकार का मांस, चटाई और कंबल आदि सामान पहुँचाने वालों में यही पद्धति है। ऐसी कुछ स्त्रियाँ मेरी दासियाँ भी हैं। पर हम आर्य हैं। पांचाल का अर्थ आर्यों का श्रेष्ठ घराना है।"

"यह बात तुम्हारे पिता कह सकते हैं। राजा को यह प्रश्न पूछना ही चाहिए। इसका उत्तर धर्म दे देगा। तुम्हें तो जीतकर लाया गया है। हम जिस वस्तु को जीत चुके हैं, उसका जैसे चाहें उपयोग कर सकते हैं, बाँट सकते हैं, यह अधिकार हमारा है। तुम निरर्थक विरोध करके अपनी खुशी क्यों खोती हो ? जब अखंड खुशी अपने आप बही चली आ रही हो तो ना-ना करके उसे पीठ दिखाना बुद्धि-

मानी नहीं। मैं अपने पाँचों बच्चों को आज्ञा दूंगी कि वे तुम्हारी किसी भी इच्छा के विरुद्ध न जाएँ।"

अगले दिन पिताजी ने इन पाँचों को राजभवन में बुलाकर सत्कार करके राजपुत्रोचित वस्त्राभूषण पहनाकर राजोचित पीठ पर बिठाकर विवाह की बात चलाई तो धर्म ने वही बात कही, "पूज्य पांचालाधिपति, कल आपकी जिस कन्या को हमने जीता, उससे हम पाँचों विवाह करेंगे। हम जैसा चाहते हैं वैसा विवाह करने का मन हो तो कीजिए, नही तो हम अपनी सुविधानुसार कर लेंगे, क्योंकि आपने कहा था कि मत्स्य-यंत्र का लक्ष्यभेद करने वाले को अपनी पुत्री दूंगा। अब आपकी पुत्री हमारी निधि हो गयी है। अब उसमें बाधा पहुँचाने का अधिकार किसी को नहीं।"

पिताजी ने पूछा, "पर आप जो कुछ कह रहे हैं वह आर्येतर पद्धति है?"

"यदि वह अधर्म है तो आपने उस पर आर्येतरों को भी क्यों चलने दिया। इसके अतिरिक्त क्या ऐसे राजा नहीं हैं जिन्होंने आर्येतर कन्याओं से विवाह किया और उनसे उत्पन्न पुत्रों को राज्य सिंहासन पर बिठाया? ऐसी परिस्थिति में यदि हम इस पद्धति को अपना लें तो दोष क्या है?"

धर्म ने हस्तिनापुर के युवराज पद पर आसीन होकर राज्य संचालन किया था। वाद-विवाद में उससे जीतना संभव न था। "महाराज, जो भी हो, आप हमारे लिए बड़े हैं, पूज्य हैं। हम आपकी पुत्री को बुलाते हैं; आप ही उससे हम पाँचों का विवाह करा दीजिए। आपके आशीर्वाद के बिना हम कैसे रह सकते हैं? भविष्य में आपके आशीर्वाद का बल ही सदैव हमारी रक्षा करेगा।" यह कहकर इन्होंने उठकर पिताजी को नमस्कार किया। दूसरों ने भी नमस्कार किया। पिताजी हार गये। नहीं, कहना चाहिए, जीत गये। यह सोचकर प्रसन्न हुए कि कुरुओं के घराने की एक शाखा उनके आशीर्वाद की आकांक्षी बनी।

अगले दिन माँ कुन्ती को राजभवन में बुलाकर राजमाता के समान उनका सम्मान किया। मुझे अलग ले जाकर पिताजी ने पूछा, "बेटी, तुम्हारी क्या राय है?"

"मेरी राय क्यों पूछ रहे हैं? मेरे ना करने पर भी क्या इसे रोका जा सकता है? आपकी शर्त के अनुसार उन्होंने मुझे जीत लिया है। जीतने के बाद अपनी इच्छानुसार बाँट लेने का उन्हें अधिकार है। जीतने पर भी 'मैं धर्म-विरुद्ध अपनी बेटी का उपभोग नहीं करने दूंगा', क्या दृढ़ता से कहने की स्थिति में आप हैं?"

"तो उनमें सबसे बड़े धर्म यह भी कह रहे हैं न 'कि आपने अपने राज्य में तीन चौथाई से भी अधिक लोगों को इस पद्धति पर चलने की आज्ञा क्यों दे रखी है?' मैंने कहा, 'यह उनका कुलाचार है।' तो वह बोला, 'कुलाचार के नाम पर यदि जो जी चाहे करने को छोड़ दिया जाय तो क्या राजा भी उस पाप का भागी नहीं

बनता ? तुम्हारे राज्य में ही रहने वाले राक्षस भी अपना कुलाचार मानकर नर-भक्षण कर सकते हैं इसकी आपने स्वीकृति क्यों नहीं दी ?' बेटी, कल से धर्म की सूक्ष्मता के बारे में सोच-सोचकर मेरा सिर फटा जा रहा है। मेरा अतःकरण कहता है कि उनकी बात मान लेना ठीक होगा। यदि तुम एकदम मना कर दो तो मैं सेना की सहायता से उन्हें पांचाल से निकाल दूंगा।"

पिताजी ने दायित्व मुझ पर डाल दिया। मुझमें उत्साह उमड़ रहा था। पांच वीर्यवान पतियों पर राज्य करने का उत्साह। किसी भी आर्य स्त्री को अब तक अप्राप्त समृद्ध सुख-प्राप्ति का उत्साह। अब तक केवल कल्पना में ही अस्पष्ट रूप से दिखने वाला सुख। अब वास्तव में पाँच गुना होकर मुझे घेरने वाला उत्साह। उस पर यह भी समाधान था कि आर्यों के आदिपुरुष देवताओं की यह पद्धति है। मैं बोली, "पिताजी, आपकी इच्छा, वैसे जीत ले जाने वालों की आज्ञा मानना ही मेरा धर्म है।"

पिताजी बाहर जाकर वैवाहिक जीवन के विविध पक्षो पर उन पाँचों से विचार-विमर्श करके नियम बना रहे थे। मैं भीतर के द्वार के पास खड़ी उनकी बातें सुन रही थी। पिताजी ने कहा, "पद्धति का मूल भले ही आर्येतर हो, पर उसका अनुसरण हमारे धर्म के अनुसार होना चाहिए।" हमारे कुल पुरोहित भी उस चर्चा में उपस्थित थे। पहला नियम—राज्य सिंहासन ज्येष्ठ पुत्र को मिलने की भाँति मेरा कन्यादान केवल ज्येष्ठ पुत्र धर्म को ही मिलेगा। दूसरा—बड़े के सिंहासन पर बैठने पर भी जिस प्रकार शेष भाइयों को राज्य भोगने का अधिकार रहता है उसी प्रकार मुझ पर भी सबको समान अधिकार होगा। तीसरा—राज्य का विकास, विस्तार तथा अभिवृद्धि जिस प्रकार राजा के नाम पर होती है उसी प्रकार मुझसे उत्पन्न संतान का नामकरण ज्येष्ठ धर्म के नाम पर ही होगा। चौथा—बच्चे अन्य सभी को समान रूप से पिता मानेंगे। मरणोपरांत प्रत्येक का समान रूप से तर्पण करेंगे। पाँच—भविष्य में किसी स्वयंवर में दूसरी कोई कन्या भले ही पाँचों में से किसी भाई का वरण करे अथवा युद्ध में कोई राजा अपनी कन्या दे, वह इसी विधि के अनुसार बड़े के नाम से विवाहित होकर इन्हीं नियमों पर चलेगी। ऐसी पत्नी के गृहस्थ सुख भोग में भी नियमबद्धता होनी चाहिए। इस सबका नियंत्रण करने का अधिकार बड़े को होना चाहिए। अब किसे चाहिए उन सब विधि नियमों की स्मृतियाँ। कहते तो हैं यह सब आर्येतर बातें हैं। आर्य धर्म के अनुसार चलना चाहिए। जब अपना मन हुआ तब अर्जुन ने सब नियम तोड़ डाले; क्या केवल अपने लिए अलग स्त्री से विवाह नहीं कर लिया ? जहाँ मैं हूँ धर्म की पट्टरानी के रूप में, उसके राज्य के प्रतीक के रूप में, उनके जुए के दाँव के रूप में अपमानित होकर जंगलियों की भाँति केवल कंदमूल खाकर दूसरों के घर में सेवा करके जीवन बिताने को। बाक़ी किसी स्त्री को ऐसा दुर्भाग्य नहीं मिला। पाँचों से प्राप्त होने वाला

सुख। पता नहीं क्यों करते हैं ऐसी वीरता भरी-शर्तों वाले विवाह। शक्तिशाली जीतता है। जीतने के बाद जैसे चाहे उपभोग करता है। बाँट लेता है। जब इच्छा न रहे तो फेंक देता है। पता नहीं किसने इस क्षत्रिय पद्धति का आरम्भ किया !

ज्योतिष्मती पास आकर बोली, "मालिकिन, बच्चे आ रहे हैं। पाँचों एक ही रथ में हैं। बाहर कैसी कड़ी धूप है।"

कुछ देर में घर के सामने जरा शोर हुआ। सारे बच्चे उतरे। कृष्णा उठकर द्वार तक गयी। कैसी कड़ी धूप ? आँखों को चौंधिया देने वाली धूप। बच्चे पसीने से लथपथ हो चुके थे। उन पर धूल की तह जम गयी थी। सब भीतर आये। स्नान किया। दासियों ने भोजन लाकर रखना आरम्भ किया। ज्योतिषमती द्वारा लाया भोजन कृष्णा बच्चों के ना-ना करने पर भी परोसती गयी। उसने स्वयं उनके साथ बैठकर भोजन किया। पेट में अन्न पड़ने की देर थी कि बच्चों को जम्हाइयाँ आने लगीं। बाहर तपती धूप थी। खस की टट्टी लगे कमरे के भीतर पानी छिड़की चटाइयाँ बिछाकर ज्योतिष्मती ने लेटने का प्रबन्ध कर दिया। पाँचों सहोदर एक पंक्ति में लेट गये। पाँचों सिर एक ही पंक्ति में थे, टाँगें किसी की छोटी और किसी की लम्बी थीं। प्रतिविंध्य की लम्बाई तनिक कम थी। श्रुतसेन आयु में सबसे छोटा होने पर भी सबसे लम्बा है। पता नहीं किस पर गया है, बहुत बात करता है। कृष्णा उसी के बारे में सोचा करती। उसके लिए कुछ निश्चय करना कठिन था। एक-एक के शरीर के गठन को ध्यान से देखें तो किसी का माथा नकुल जैसा है तो नाक अर्जुन या सहदेव जैसी अथवा धर्म जैसी। किसी के बारे में निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। कुल मिलाकर सब पांडवों के बच्चे हैं। श्रुतसेन भी ऐसा ही है। यही सोचकर चुप रह जाती है। प्रतिविंध्य ज्यादा बात नहीं करता। मौन होकर किसी चिन्ता में डूबा रहता है। अब भी चुपचाप लेटा छत की कड़ियों की ओर देख रहा है। बाकी शत्रु जब दोनों ओर से घेर ले तो दो तरफ़ बाण कैसे चलाये जाएँ ? इस पर चर्चा करने लगे। सबसे पहले श्रुतसेन को नींद आ गयी। उसके बाद श्रुतसोम ने बातें बन्द करके आँखें मूंद लीं। श्रुतिकीर्ति और शतानीक दोनों ने जम्हाइयाँ लेकर करवट ली। बड़े ने चर्चा में भाग ही नहीं लिया। उसे नींद भी नहीं आ रही थी। कड़ियों की ओर देखता चुपचाप लेटा था। उनकी माँ, कृष्णा पंखा झलती हुई सिरहाने बैठ गयी और सबको हवा करते हुए बोली, "नींद नहीं आ रही, बेटा ?"

"मुझे पता नहीं नींद आएगी भी या नहीं।"

"धूप में शस्त्राभ्यास करके थके नहीं ?"

"कुछ ज्यादा नहीं।"

वह कम बोलता था। अपने मन की बात तो किसी से बहुत ही कम कहता था। यहाँ आने के पाँच महीने के बाद अब जाकर कभी-कभी जरा माँ से अपने

मन की बात कहता है। वह भी तब जब वह अकेली हो। माँ जब मौन होकर उसकी बात सुने तभी।

"पीठ पीछे से शत्रु दल आये तो क्या करना चाहिए ? यह किसने सिखाया ?"

"अभिमन्यु ने।"

"बेटा, अभी वह सोलह का हुआ है। तुम चौबीस के हो चुके। धनुर्विद्या में क्या तुम इतने पीछे हो कि उससे सीखना पड़े ? तुम्हारे मामा ने तुम्हें सिखाया नहीं ?"

"बताया है और अच्छी तरह से सिखाया भी है, पर अभिमन्यु को उसके पिताजी सिखा रहे हैं न। ऐसे युद्ध-कौशल में अभिमन्यु के पिता से बढ़कर कौन है।"

प्रतिविंध्य ने छत की कड़ियों की ओर देखते हुए सहज और साधारण ढंग से कहा। लेकिन वह उसकी माँ कृष्णा के मन में चुभ गयी। अर्जुन अपने पुत्र को युद्ध-कौशल सिखा रहे हैं। लेकिन यह पाँचों क्या उनके पुत्र नहीं ? अथवा क्या उनका यह विचार है कि ये पाँचों ज्येष्ठ धर्म के ही हैं ? अचानक उसे अर्जुन एक नये रूप में दिखायी दिया जो अब तक नहीं दिखायी दिया था। उसे लगा कि वह चतुर, रसिक, वीर, सुन्दर, अहंकारी, स्वार्थी, स्वसुखाकांक्षी है। अभिमन्यु के विवाह के समय में ही उसके अन्तरमन में यह भाव उठा था। अब उसका स्पष्ट रूप दिखने लगा। अतः उसके प्रति तिरस्कार की भावना उत्पन्न हुई। यह भाव भी मन में जम गया कि अब सामने आने पर वह बात करने योग्य भी नहीं। वह पाँचों पुत्रों को पंखा झलती हुई चुपचाप बैठी रही। प्रतिविंध्य छत की कड़ियाँ निहारता धीरे-धीरे पलकें झपकाता चुपचाप पड़ा था। 'इस हीन व्यक्ति में धर्म का भी डर नहीं,' कृष्णा को लगा। धर्म की सारी ज़िम्मेदारी मुझे पीसने की है। उसी के सेंक से मुझे तपना चाहिए। दूसरों को क्या ? वह भी अर्जुन के लिए। एक-एक रात एक-एक के साथ, कुल पाँच रातों में पाँच के साथ विवाह सम्पन्न होने के बाद। छठे दिन दोपहर को सासजी ने मुझे अकेले में बुलाकर दोनों हाथ पकड़कर कहा था, "बेटी, तुम पाँचों को बराबर मिलीं। अब मैं तुम्हें पत्नी का एक परम धर्म बताती हूँ, सुनो। तुम जानती ही हो कि पति के अभ्युदय के अनुकूल चलना आर्य स्त्री का एकमात्र धर्म है। तुम्हारे पाँचों पति एकता से रहें तो हम राज्य पुनः जीत सकते हैं। अपनी रक्षा भी कर सकते हैं। यदि उनमें किसी भी कारण दरार पड़ी, तो जैसे एक दरार से महल ढह जाता है वैसे ही इन पाँचों का नाश हो जाएगा। आपस में कभी न झगड़ने वाले ये भाई तुम्हारे रूप पर मोहित होकर आपस में झगड़ा करने लगे थे। अब सदा की भाँति भाइयों में प्यार है। यदि कभी यह भाव किसी के मन में उठा कि तुम्हारे कटाक्ष किसी एक के लिए

अधिक हैं, तो फिर दरार पैदा हो सकती है। इसलिए तुम्हें कर्म, मन और वचन से सबमें समान प्रेम दिखाना होगा। तुम्हारा यही व्रत होना चाहिए।"

उन्होंने तो अपनी बहू को सती धर्म का उपदेश दिया, अपने पुत्रों के अभ्युदय के लिए। इस धर्म को निभाने के लिए मैंने कितने कष्ट उठाए। पर क्या मन को समान रूप से बाँट पाना मेरे हाथ में था ? किसके हाथ में होता है ? सासजी कैसे जानेंगी मन की विवशता को ? किसी एक के साथ ज्यादा प्रेम की बात नहीं की। जिस प्रकार मैंने अपने आप को ज्येष्ठ धर्म को समर्पित किया उसी प्रकार छोटे नकुल-सहदेव को भी समर्पित किया। पर मन अर्जुन के अतिरिक्त और किसको समर्पित करना संभव था ? मन बात के रूप में बाहर आना चाहता था। प्रेम-कार्य ही में नहीं वह प्रेमालाप में भी चतुर था। अर्जुन मेरे अंतर्मन के समस्त भावों को बाहर निकाल लाता था। मन के साथ बातों में भेद हो जाता। इन दोनों के एक हो जाने के बाद शरीर भी उसका अनुसरण नहीं करेगा क्या ? अर्जुन की बारी वाली रात को ऐसा नहीं लगता था कि मैं इस लोक की हूँ। फिर भी कृष्णा ने दूसरों को धोखा नहीं दिया। अर्जुन को प्रयत्न के बिना ही सहज उल्लास से ज्यादा समर्पित किया होगा पर दूसरों को प्रयत्नपूर्वक ही दृढ़ निश्चय से बुलाकर उत्साह से यह ध्यान रखा कि उनके प्रति भेदभाव न हो।

नववधू द्रुपद-राजकुमारी ने विवाह के छठे दिन से ही अपने-आपको धर्म-संकट में फँसा लिया और अब तक फँसी ही हुई है। पाँचों पांडवों की एकता को भंग नहीं होने दिया। उसकी रक्षा करके उसे मुट्ठी में बाँधकर अलग होकर दूसरी राह पर चलने लगें तो मैं क्या कर सकती हूँ ? मेरा सारा परिश्रम निरर्थक हो गया। इस पर दुखी होने के सिवा और रास्ता ही क्या है ?

बाहर हवा बंद-सी है। दूर से लुहार के घन की आवाज़ उस धूप में भी आ रही थी। उस समय वह कोई पच्चीस की रही होगी। पता नहीं कौन-सा जाया ? एक के बाद एक पाँच बच्चे। केवल दो महीने की प्रसूति, फिर क्रम से रातों को भूखे शेर जैसे किसी एक के साथ गृहस्थ जीवन। ऋतुचक्र को अवकाश ही नहीं रहता था। तुरन्त गर्भ धारण हो जाता। बच्चा, प्रसूति और फिर गृहस्थ। सास की खुशी का ठिकाना न रहता। एक के बाद एक लड़के ही होते चले गये। खांडववन कृषि की भूमि बन गया। खांडवप्रस्थ समस्त आर्यावर्त में एक सुन्दर नगर बन गया। उसे नया नाम इंद्रप्रस्थ दिया गया। अट्ठारह वर्ष की नवयौवना के स्त्रीत्व का उत्साह चौबीस तक पहुँचते-पहुँचते उतर गया। हारी गाय जैसी स्थिति हो गयी थी। पाँच-पाँच दृढ़काय पति। प्रत्येक को पाँच दिन की शारीरिक भूख एक ही रात में मिटा लेने की ललक। उनकी भूख मिटाकर और बच्चे पैदा कर-कर के थकी हुई मैं। तब यह समझ में आने लगा कि एक स्त्री में पाँच पतियों को सँभाल सकने की शक्ति नहीं होती है। सास जी की कही यह बात ग़लत है। पुरुष

ऋतुस्राव के बिना गर्भ, जापा, स्तनपान के रूप में बच्चे को शक्ति प्रदान करना, इन सबसे मुक्त रहता है। महीने में तीसों दिन तैयार रहने वाले एक ही पुरुष को एक स्त्री नहीं सँभाल सकती। तब पाँच-पाँच को कैसे सँभाल सकती है ? सासजी ने मुझसे झूठ कहा था। उन्होंने मुझ अनजान अट्ठारह वर्ष की तरुणी में उत्साह पैदा किया। उन्हें तो अपने बेटों की एकता और उनके अभ्युदय से मतलब था। उनके यह सोचने का कारण कि 'स्त्री की इच्छा पाँच पतियों की शक्ति के बराबर होती है' कहीं यह तो नहीं कि उन्होंने स्वयं अखंड दांपत्य के सुख के अभाव में यौवन बिताया था। कहीं उन्हें यह भ्रम तो नहीं रहा है ? मैं जब हारी गाय की तरह या रसहीन ईख के छिलके की तरह हो गयी तब मैंने उनसे ही प्रश्न पूछा तो उन्होंने यह नया क्रम सुझाकर अपने बेटों को समझाया था—'अब से रोज़ की बारी नहीं रहेगी। प्रतिवर्ष एक की बारी रहेगी। प्रत्येक को एक वर्ष का गृहस्थ जीवन और चार वर्ष का ब्रह्मचर्य निभाना होगा।' तब जाकर मैं एक स्त्री एक पुरुष के बराबर हुई न ? मेरी काया बच गयी। उससे जान भी बच गयी। अपनी बारी के बिना कोई पत्नी के पास नहीं जाएगा। मुझे भी बिना बारी के किसी को पास आने नहीं देना होगा, निष्ठुर और निष्पक्ष होना होगा। 'बेटी, इस क्रम में भी कोई भेदभाव न हो। तुम्हें ऐसी समानता से व्यवहार करना होगा कि किसी को भी बुरा न लगे। यही तुम्हारा व्रत होगा।'

नये क्रम ने शरीर को विश्राम दिया पर मन को कितनी यंत्रणा दी। कृष्णा के मन की बात सास कैसे जानतीं ? सभी पुरुषों का एक-सा होना कैसे संभव है ? पहले वर्ष धर्म की बारी थी; उन्होंने कभी मेरे मन को नहीं जीता, परन्तु राज्य को दक्षतापूर्वक और न्याय से चलाते थे। उनमें कोई लालित्यपूर्ण बात न थी। और न मन को छू सकने वाली ही कोई बात थी। राजगांभीर्य, राज्य में कृषि, पशु और संपत्ति के विकास होने से उसमें गांभीर्य और अभिमान बढ़ा। वह कभी सरस न हुआ; पत्नी के साथ ही नही भाई और माँ के साथ भी। मैं दूसरों से बात कर सकती थी, पर शयन नहीं। सहवास उसी के साथ कर सकती थी जिसकी बारी होती। साथ में बच्चों के रहने से आराम था। लेकिन मन तो अर्जुन पर ही टिका रहता। उसके आलिंगन की कल्पना करती, उसकी स्नेहसिक्त बातें याद किया करती, खोयी रहती। यह कैसा क्रम कि अब दो वर्ष तक अर्जुन का स्पर्श नहीं। उसके बाद चार वर्ष पश्चात् पुनः प्राप्त होगा।

एक दिन अर्जुन मेरे अंतःपुर में आया। धर्म सभागार में सदा की भाँति न्याय कार्य में लगा था। दोपहर का समय था। दासियाँ उठकर वहाँ खेलते बच्चों को गोद में लेकर बाहर चली गयीं। अर्जुन आया। मेरे सामने बैठ गया। मैं सिर झुकाए बैठी थी। कोई कुछ न बोला, क्या हम दोनों के बीच बातों की ज़रूरत थी ? सब कुछ समझ में आ गया। अंत में उसने ही कहा, "पांचाली !" मैंने मुख उठाकर

उसकी ओर देखा। मेरी साँसें काँप रही थीं। माथे पर पसीना आ गया। वह पास खिसक आये। मेरा मुख हाथों की अंजलि में थाम लिया। "सुना ?" कहते हुए उसने साँस ली। मैंने सिर झुका लिया। दरवाज़ा बंद करके तुरन्त मुझे उठाकर पास ही के धर्म के पलँग पर ले गया। मैंने मना किया पर विरोध नहीं। उसके सहज ही बिना किसी कला का प्रयोग किए, बिना कविता का संसार निर्माण किये, बिना ही मेरी प्रशंसा करके, अप्सरा का रूप दिये बिना ही, धन्यता के आँसू गिराए बिना ही, आतुरता से, निषिद्ध स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले की भाँति भागने वाले की तरह काम निबटा कर भाग गया। उसके जाने के बाद मेरे मन में भी व्यभिचार करने की-सी भावना पैदा हुई। स्वतः स्वीकार किये नियमों को तोड़ने का दोषी भाव।

राजमुकुट धारण किए हुए ही न्याय की सुनवायी निबटा कर दोपहर बाद भीतर आये धर्म ने केवल इतना ही पूछा, "अर्जुन आया था ?" मुझे डर लगा। मन में अपराधी भाव भी था। पता नहीं क्यों वे मुझे पति की अपेक्षा न्यायधीश ही लगते थे। यह भाव शुरू से ही मेरे मन में जमा हुआ था। मैंने चुपचाप 'हाँ' कह दिया। उन्होंने दुबारा कुछ नहीं पूछा। भीतर जो हुआ था, वह उन्हें पता नहीं लग सकता था। कहने वाला कौन था ? मेरी दासियों में मेरे विरोध में जाने वाली कोई न थी। फिर भी मैंने निश्चय कर लिया कि आगे से कभी भी ऐसे व्यभिचार को अवसर नहीं देना चाहिए। कृष्णा को व्रतभ्रष्ट नहीं होना चाहिए। अर्जुन अगर फिर आये तो समझाना चाहिए। दूसरे दिन फिर वह उसी समय आया। दासियाँ बच्चों को लेकर कमरे से बाहर चली गयीं। जो कुछ कहना था वह मैंने उससे विनयपूर्वक स्पष्ट और नरम शब्दों में कहा। उसके साथ कड़ाई से बात करना क्या मेरे लिए संभव था ? वह माना नहीं। उसने सोचा मैं उसकी उपेक्षा कर रही हूँ। वह क्रोधित हो उठा, गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया। "मैं तुम्हारे लिए उपेक्षा की चीज हूँ ?" कहकर गुस्से से लौट गया। तीन दिन बाद फिर आया। मैंने भी मन पक्का कर लिया। इस बार मारा नहीं। केवल डाँट-फटकार कर चला गया। फिर एक सप्ताह तक नहीं आया। तब कठोर शब्द कहकर गया था। उसने कहा था, "शर्त में धनुष झुकाकर तुम्हें जीतने वाला मैं ही हूँ।"

"अर्जुन, आपको अपने भाइयों के बारे में ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। बाकी चारों को जो विशेष अधिकार नहीं उसकी इच्छा तुम्हें भी नहीं करनी चाहिए। तुम्हारी एकता बनाए रखने के लिए मैंने तुम्हारी माँ को वचन देकर व्रत लिया है। उसी रूप में पत्नी बनकर मैं चल रही हूँ। जब मैं अपने वचन का पालन पत्नी के रूप में किए जा रही हूँ तब अकेले 'मैंने तुम्हें जीता' कहकर एकता को तोड़ने वाली अहंकार की बात भाई होकर भी तुम्हारे मन में कैसे आयी ?" यह बात मैंने बड़ी नरमी से कही। हाँ, अब भी मुझे यह अच्छी तरह याद है। उसने मुझ

से याचना के स्वर में कहा, 'नहीं प्रार्थना की थी।' थोड़ी देर खड़ा भी रहा। सिर झुकाकर चला गया। बैठो कहने पर भी मुड़कर नहीं देखा।

गया तो दुबारा लौटा नहीं। दिन, सप्ताह, पखवाड़े और मास बीत गये। वह नगर में ही नही था। यहाँ तक कि राज्य में भी नहीं। उसके साथ के उसके प्रिय पचास धनुर्धारी और पचास घोड़े भी नहीं थे। 'वह कहाँ चला गया? पांचाली, वह यहाँ आया था न?' धर्मराज ने मुझसे पूछा। सास ने भी पूछा। मैं अनजान-सी रह गयी। पर वास्तविकता मेरे अतिरिक्त किसे पता थी? मैं मन-ही-मन, 'अर्जुन, मुझ पर क्रोध करके तुम कहाँ चले गये? पांचाली का मन दुखाने के सिवा कोई दूसरा उद्देश्य है तुम्हारा? तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो गया। तुम्हारे बिना मैं दुखी हूँ। आ जाओ। जल्दी आ जाओ। सास जी से कहकर नियम बदलवाएंगे। पर कैसे बदलेंगे? पहले की भाँति एक रात को एक की बारी तो मैं सह नहीं सकूंगी। साल-भर की बारी हो तो मैं प्रतीक्षा नहीं कर पाऊँगी। नहीं, महीने-महीने की बारी ठीक रहेगी। मेरे मन को भी तसल्ली रहेगी। मैं ही सास जी से बात करूँगी।' इस प्रकार प्रार्थना कर रही थी। 'तुम्हें सुनाई नही पड़ता था। तुम्हारा अंतर्मन इतना निर्मोही हो गया था क्या?' मैं जवीन में पहली बार तड़प-तड़प कर सुलगने लगी। तुम देश-देश घूमे और तुमने नाग-कन्याओं से विवाह किया। उनसे दो पुत्र उत्पन्न किए। और दोनों को वहीं छोड़कर द्वारका जाकर कृष्ण की बहन पर अनुरक्त होकर विवाह कर लिया। तुम अपने लिए एक पत्नी अलग से लेकर तीन साल बाद देश लौटे।

अर्जुन, तुम चतुर हो। सुन्दर हो। स्त्रियों को लुभा लेने वाली वाक्चातुरी है तुम में। अर्जुन, तुमने मुझे भी लुभाया, उसके बाद तीन को लुभाकर विवाह कर लिया। बिना विवाह के भी मोहित हो जाने वाली क्या कम थी? अर्जुन, तुम घमंडी हो, तुम्हारे लिए स्त्री अहंकार का आवरण है। पर यह पांचाली तुम अकेले का आवरण न बन सकी। अर्जुन, व्रत में तुम हारे, तुम जब कामातुर थे तब मैंने तुम्हें पास नहीं आने दिया। केवल इस कारण तुम पांचाली के मन को कुचल-कर दूर चले गये। पर समस्त आर्यावर्त के वीर महान धनुर्धर होने पर भी सुभद्रा को लाने के बाद, तुम मुझसे आँख मिलाने का साहस भी खो बैठे!

प्रतिविंध्य करवट लेकर लेट गया। उसने पलकें मूंद लीं पर, उसे नींद नहीं आयी। केवल आँखें मूंद लेने और सो जाने में अंतर पता नहीं चलता क्या? इसकी बुद्धि सूक्ष्म है। हर बात को मन में तोलता है। इस तरह बात तोलने वालों को नींद जल्दी नहीं आती। किससे कहूँ ये सब बातें? बेटों से कह नहीं सकती। बेटियाँ हुईं नहीं। पाँच के बाद संतानोत्पत्ति का क्रम बंद हो गया। हर रात की बारी बदल कर वर्ष की बारी आरंभ होते ही बच्चे होने बंद हो गये। बेटियाँ कहाँ से होतीं? किससे कहूं कि मैंने इन पांडवों के घराने की एकता बनाए रखने के लिए कितने

कष्ट उठाये हैं! सुभद्रा चतुर है। वह मेरी तरह बिना माँ की बच्ची नहीं। उसके विवाह के समय एकता की बात कहने वाली, माँ का स्थान लेकर मन को बंधन में डाल देने वाली कुन्ती न थी। मेरी तरह पाँचों पर राज्य करने का स्वप्न देखने वाली पागल लड़की भी वह नहीं। वह अर्जुन की बातों और रूप पर मोहित तो अवश्य हो गयी, पर अपने व्यावहारिक ज्ञान को न खोकर ही उसे आगे कदम बढ़ाने का अवसर दिया। "कुरुवीर, मैं यह मानती हूँ कि तुम्हारा हाथ थामना मेरे लिए सौभाग्य का विषय है। पर मैं केवल तुम्हारा ही हाथ थाम रही हूँ।" उसने इस भूमिका से अपनी बात शुरू की।

तब अर्जुन ने पूछा, "इस बात का क्या मतलब है वार्ष्णेयी ?"

"मैंने सुना है कि चाहे किसी का किसी से भी विवाह हो, बड़े के नाम से ही विवाह सम्पन्न होगा। बाकी सब भाइयों का समान रूप से उपभोग का अधिकार होगा। आप भाइयों में यह नियम है। मैं इस प्रकार पाँचों का संस्पर्श नहीं कर सकती। आर्य-स्त्रियों का एक ही पति होता है।"

यह सुनकर इसे खुशी ही हुई होगी ? क्यों न होती ? इसने कह दिया, "यादवी, तुम्हारी शर्त मुझे मान्य है।"

"केवल आपका मान लेना ही मुख्य नहीं। यदि आपके बड़े भाई यह कहें कि हमारे घर आकर हमारे नियम को मानना होगा, तो मैं क्या कर पाऊँगी ? पहले आपके बड़े भाई ने द्रुपद से यही कहा था न ?"

तब उसने पूछा, "तब क्या करें, बताओ ?"

"आपके बड़े भाई को राजा होने के नाते यह कहना होगा कि इसने अर्जुन से विवाह किया है। यह केवल अर्जुन की ही पत्नी होगी। बाकी भाइयों को इस बात का समर्थन करना होगा। आपकी माँ को भी यह बात स्वीकार करनी होगी।"

यह सुनकर ये बिना कुछ बोले सिर नीचा करके बैठ गये। उसने एक और शर्त जोड़ी—"यदि मैं आपसे विवाह करती हूँ तो मैं ही आपकी आजीवन पत्नी रहूँगी। मेरे जीवित रहते आप दूसरी पत्नी ला नहीं सकते। किसी भी स्वयंवर में भाग नहीं ले सकते। भेंटस्वरूप किसी राजा से उसकी कन्या स्वीकार नहीं कर सकते।"

उसने सब ओर से अपनी रक्षा के लिए कैसी शर्तें लगा दी थीं ! उसे वह सब अपने आप सूझा या उसके भाई कृष्ण ने सुझाया होगा। अथवा जब पुरुष अपने आप आगे बढ़कर याचना करता है तब ऐसी शर्तें रखनी चाहिएँ, यह उसकी सखियों ने या माँ ने समझाया होगा। वह चतुर है, मुझसे चतुर। प्यारे मुखड़े वाली और अपने सुख का ध्यान रखने वाली सुभद्रा सचमुच चतुर है। पति का बड़ा भाई जब जुए में राज्य हार गया और उसका पति भी राज्यहीन हुआ। तब नियमानुसार हम सबको वनवास जाना पड़ा, तब सुभद्रा तीन वर्ष के बच्चे को गोद में लेकर मायके

नहीं चली गयी ! मेरी तरह काँटे-पत्थर पर चलती, जंगली पशुओं से डरती रात-भर चींटी, चींटों, मच्छरों और कीड़े-मकोड़ों ने उसे नहीं काटा और उपवास ही जीवन का क्रम है, यह मानकर उसे दिन नहीं काटने पड़े। सुभद्रा चतुर है। तेरह वर्ष बिताकर लौटने के बाद उसने अपने सोलह वर्ष के पुत्र से विराट की पुत्री का विवाह करा लिया। जबकि कृष्णा का चौबीस वर्ष का पुत्र अभी कुँवारा ही है। सुना है स्वयं अर्जुन ने ही विराट से उत्तरा को अपने बेटे अभिमन्यु के लिए सुभद्रा के आने से पहले ही माँगा था। 'यादवी, जहाँ मैं हारी वहाँ तुम जीत गयी। पति को अपनी उँगलियों पर नचाने में तुम सफल रहीं।'

सुभद्रा जीत गयी। यहाँ कुंती ने मेरा साथ छोड़ दिया। 'यदि आप लोग यह मानने को तैयार नही कि सुभद्रा मुझ अकेले की ही पत्नी रहेगी तो मैं इन्द्रप्रस्थ नही लौटूंगा। समझ लीजिए कि पांडव पाँच नहीं चार ही हैं।' दूत के हाथ अर्जुन के इस संदेश को सुनते ही जननी का मन उसी की ओर हो गया। बिना कुछ कहे-सुने अर्जुन चला गया था। उसके साथी अश्वारोही दो वर्ष बाद लौटकर आये और जब उन्होंने यह बताया कि वह किसी और देश चला गया है, तो माँ यह सोच-सोचकर रोती थी कि वह सदा के लिए चला गया है। भाई भी दुखी थे। वे इस चिन्ता में थे कि वह किसी प्रकार से वापस आ जाय, बस, यही बहुत है। अब मानते नहीं तो क्या करते ? सुभद्रा क्या समस्त आर्यावर्त को विचलित करने वाली द्रुपद राजकुमारी जैसी सुन्दरी थी ? उसे इनमें से किसी ने देखा भी न था। आठ वर्ष बीत गये थे। इस कृष्णा को निःसत्व करके प्रबुद्ध बन चुके थे। मेरे विवाह के समय का उफनता यौवन अब नहीं था। अतः मान गये। कुन्ती को आतुरता थी कि पुत्र फिर से घर लौट आये, यही बहुत है। सुभद्रा भी तो उसके मायके की ओर की बेटी थी न ? मायके की एक लता फिर से मिलने वाली थी। ऐसा अवसर भला वह क्यों छोड़ती ? जब ये भिक्षुओं के रूप में कुम्हार के पिछवाड़े वाली झोंपड़ी में थे, तब उनका हाथ थामकर उनकी एकता की रक्षा का व्रत मैंने ही तो लिया था। मेरी वजह से ही मेरे पिता के सैन्य बल के कारण धृतराष्ट्र ने इन्हें बुलाकर राज्य दिया। बड़ी बहू के मन को इन्द्रप्रस्थ की राजमाता के शिखर पर पहुँच जाने वाली कुंती कैसे समझ पाती ? अर्जुन ने ऐसे कहला भेजा है। क्या उत्तर दिया जाय ? उन्होंने क्या मुझसे यह पूछा ? धर्मराज ने पूछा ? किसने पूछा ? पंखा झलता हुआ हाथ रुक गया। सोए हुए पाँचों बच्चों की गर्दनों पर पसीना बह रहा था। ज्योतिष्मती ने खस की टट्टियों पर इतना पानी छिड़का है कि टपक रहा है। पर बाहर कैसी धूप पड़ रही है। भट्टी-सी सुलग रही होगी। घन की आवाज बराबर आ रही है। यह धूप केवल यहीं पड़ रही है या कुरुप्रदेश में भी ऐसी ही आग लगी है! दावाग्नि लगने के भी यही दिन हैं। गाँवों में पुआलों में, झोंपड़ियों में, यहाँ तक कि समूचे गाँव में आग लग जाने के यही दिन हैं। हस्तिनापुर में एक चिंगारी लग जाय और

समस्त नगर, महल और आस-पास के भवन, अंधा-अंधी और उनकी संतान सब-के-सब जलकर भस्म हो जाएँ। और केवल यह समाचार ही मिल जाय तो बहुत है। तभी यह गर्मी कम होगी। तब खस की ज़रूरत नहीं रहेगी। पंखे की भी नहीं। तब पसीना पोंछने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। सारा संसार शीतल हो जाएगा। हाथ फिर अपने आप पंखा झलने लगा। पाँचों के साथ विवाह कर लेने से ही सबकी आँखों में मेरा मान घट गया। जुए की सभा के बीच दुर्योधन ने 'आ, आ री, मेरी जाँघ पर बैठ' कहा था न? 'दुर्योधन! अपनी भाभी से ऐसी बातें करने वाला तू आर्य नहीं।' भीष्म ने ऐसा कहकर डाँटा था न? भीष्म था या विदुर! पर उसने तुरन्त पलटकर कहा था, 'धर्म, भीम, अर्जुन आदि के समान क्या मैं भाई नहीं? मैं भी अपना भ्रातृत्व सिद्ध कर रहा हूँ। बस, इतना ही है।' दुशासन ने भी तुरन्त कहा था, 'हम तो चौदह भाई हैं।' तो क्या इसे चौदह भाइयों के साथ नहीं सोना चाहिए था—इस द्रुपद राजकुमारी को एक-एक रात, एक-एक के साथ? उन्होंने क्या मुझे सैनिकों के शिविर में जाने वाली वेश्या समझा था। पर सुभद्रा के बारे में किसी ने ऐसी बात नहीं कही।

प्रतिविंध्य चित्त लेटा था। उसने आँखें खोलीं, फिर बन्द कर लीं। थोड़ी देर बाद उठकर बैठ गया। अपने उत्तरीय के छोर से मुँह, गर्दन, छाती और पीठ पोंछी। 'कितनी गर्मी है?' पंखा झलती हुई माँ ने कहा। हाथ बढ़ाकर माँ के हाथ से पंखा लेकर 'उफ' कहकर सर्र-सर्र अपनी छाती और पेट पर आठ-दस बार पंखा झल कर बाद में माँ को हवा करते हुए वह बोला, "तब से बराबर पंखा झले जा रही हो माँ? यहाँ आकर बैठो। तुम्हें और सोए हुए इन सब भाइयों पर मैं हवा करता हूँ।"

"इधर दे। लड़के के हाथ से मैं पंखा कराऊँगी?" कहते हुए उसने पंखा लेने के लिए हाथ बढ़ाया।

बेटे ने पंखा माँ को नहीं दिया। वह माँ पर और भाइयों पर पंखे से हवा करने लगा। पंखे की हवा से माँ को भी ठंडक पहुँची। गर्मी कम होती लगी। उसे लगा, वह झलती है तो केवल हवा आती है, पर पुत्र झलता है तो उससे ठंडी हवा निकलती है। लड़का है, उसका हाथ धनुष-बाण पकड़ता है। पंखा तो स्त्री को ही शोभा देता है। बाँहें, कंधे सुदृढ़ हैं। मेरे भइया ने व्यायाम कराके बड़ा किया है।

वह जब यह सोच ही रही थी कि बीच में एक बात का ध्यान आया। इसका गठन तो मेरे भाई जैसा है। यानी मामा जैसा है। केवल इसी का ही नहीं। तभी

आँखें एक पंक्ति में सोए अन्य चारों पर गयीं। उसे ध्यान आया। मुख, आँख, नाक आदि में इनके अन्दर पांचालों के लक्षण हैं। यह ध्यान आने से एक विशेष अपनत्व पैदा हुआ। और ध्यान से देखने से ऐसा लगा कि उसके सारे पुत्र अपने नाना से मिलते हैं। बिना माँ की बच्ची सोचकर पिताजी ने अपना सारा प्यार उस पर उँड़ेल दिया था। यह ध्यान आते ही मन चालीस वर्ष पूर्व के समय में पहुँच गया।

'मामाजी ने एक संदेश भेजा है। आज प्रातः संदेशवाहक आया था। वह मामा जी का बड़ा विश्वासपात्र है।"

"क्या बात है ? तुम्हारे नाना स्वस्थ तो हैं ?"

"अच्छे हैं। दुर्योधन ने आजकल वेद-पाठियों और पुरोहितों को भेजकर एक नया प्रचार आरम्भ किया है : पांचाल अनार्य हैं। एक पत्नी को सारे भाई बाँट लेते हैं। यह आर्येतर पद्धति है। द्रुपद राजा ने इसे अपनाना शुरू कर दिया। पांडवों का तो जन्म और लालन-पालन पर्वतीय प्रदेश में ही हुआ है। अपनी इस अनार्य पद्धति को समस्त आर्यावर्त पर लादने के लिए ससुर और दामादों ने युद्ध शुरू कर दिया है। आप लोग किस पद्धति को अपनाएँगे। आप आर्य हैं या अनार्य ? इस प्रकार ये पंडित लोग समस्त राजाओं की राजसभाओं में जा-जाकर कह रहे हैं।"

अल्पभाषी इस पुत्र ने मेरे सम्मुख बैठकर इतनी बात की। दुर्योधन के ऐसा प्रचार करने में कोई आश्चर्य नहीं। युद्ध के समय में झूठ-सच बोलकर सहायता प्राप्त करना सामान्य बात है। दुर्योधन तो बीज के बिना ही झूठ की खेती उगा सकता है। इसका सही प्रतिकारात्मक प्रचार हमारे लोगों को करना चाहिए। पर उस बात ने उसे दूसरी दिशाओं से कोंचना शुरू कर दिया। "इसलिए अब जो होने जा रहा है वह धर्मयुद्ध है। यदि आप हमारी ओर से नहीं लड़ेंगे तो धर्म नष्ट हो जाएगा। आपके पितरों को नरक मिलेगा।" इस प्रकार पुरोहित उन्हें डरा रहे हैं।

"बेटा, उनको डराने दो। इसका सच्चा धर्म मुझे पता है। यदि धर्म की ही विजय होनी है तो हम ही जीतेंगे। किन्तु अधर्म नहीं जीत सकता। यह भी कैसे कहा जा सकता है ? यह बात जाने दो। बता, तुझे यह सब कैसा लगता है ?"

"कौन-सा ?"

'कौन-सा' यह स्पष्ट रूप से बताने में उसे लगा कि भीतर से किसी ने पकड़ लिया हो। पर इससे यह बात कहने को चार महीने से मैं छटपटा रही थी। अब यह बात उठी है। पूछ डालने का निश्चय करके वह बोली, "वही तुम्हारे नाना का पाँच आदमियों से मेरा विवाह कराना ?"

उसने कोई उत्तर न दिया। सोते हुए अपने चारों भाइयों और माँ पर वह ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगा। ज्योतिष्मती वहाँ आयी। पानी से भरा घड़ा लाकर रखा और लकड़ी के पात्र से भर-भरकर खस पर छिड़कने लगी। कितनी जल्दी यह पानी सोख जाती है। एक बड़ा घड़ा पानी पी गयी। उसके जाने के बाद भी

बेटा बैठा रहा। बराबर पंखा झले जा रहा था। इस बात का उत्तर देने में इतनी देर चाहिए अथवा उत्तर देने में इसे कोई मानसिक कठिनाई महसूस हो रही है? सिर उठाकर उसकी ओर ताकते हुए पूछा, "तुझे कैसा लगता है?"

"काम्पिल्य में रहते समय इसमें कोई असहज बात दिखायी नहीं दे रही थी, माँ। मामाजी की ढेरों प्रजा हम पाँचों को कितना प्यार करती थी, पता है? आर्येतर हमें इतने प्रेम से क्यों देखते थे? यह अब मेरी समझ में आया। अपनी पद्धति पर चलने वाले राजा को प्रजा सदा बहुत प्यार करती है। वहाँ हमारे आर्य संबंधी भी कभी व्यंग्य से बात नहीं करते थे। जो भी हो, राजभवन में उस पद्धति को अपना लिया था। पर यहाँ आने के चार महीने में सारी प्रजा हमें एक अजीब ढंग से देखती है। ऐसा नहीं लगता कि हम यहाँ की जनता के सहज सहोदर और राजकुमार हैं। एक दिन श्रुतसेन के रथ की धुरी टूट गयी थी। उसे ठीक करने जो बढ़ई आया था वह उससे पूछ रहा था। श्रुतसेन बहुत बात करता है, इसलिए बढ़ई को भी साहस हुआ होगा, 'राजकुमार, तुम सब पाँचों को पिता कहते हो अथवा केवल बड़े धर्मराज को? दूसरों से क्या चाचा कहते हो?'

इसने उसे बताया, 'सबको पिताजी कहते हैं।'

'सबके साथ पिता कहने की भावना तुम में अपने आप पैदा हुई अथवा···?' यह पूछ ही रहा था, इतने में गर्दन मोड़कर मुझे खड़े देखकर ज़बान काट ली और अपने काम में लग गया। काम्पिल्य में ऐसी बात कोई नहीं पूछता था।'

यह बात मेरे मन में भी उठी थी, पर किसी ने मुझसे पूछी नहीं। जब यह प्रकट हुआ कि हम पांडव हैं तो विराट के परिवार वाले हमें भय और गौरव से देखने लगे। राजसूय करने वाले, उनके सेनापति प्रसिद्ध मल्ल कीचक को मसल देने वाले। उन्होंने गायों को लूटने के लिए आये कौरवों को मार भगाया था। सुदेष्णा ने तुरन्त हाथ जोड़कर मुझसे क्षमा माँगी थी। ऐसी-वैसी बातें पूछने का साहस सेवकों में भला कैसे हो सकता था? बच्चे का कहना ठीक है। हमारे पांचालों में ऐसी बात असंगत नहीं लगती। वह बोला, "माँ, कई दिन से आपसे एक प्रश्न पूछने की सोच रहा था पर हो नहीं सका।"

"पूछो, मुझसे पूछने में तुम्हें कौन-सी बाधा थी, बेटा?"

उसने अपनी बात मन में ही रहने दी। माँ ने उसके पास जाकर दायें हाथ से माथा सहलाते हुए कहा, "तुम वैसे ही बहुत कम बात करते हो, क्या मेरे साथ ऐसे रहना चाहिए? तुम्हारे सिवा मुझसे बात करने वाला और है ही कौन?"

माँ की बाँह बीच में आ जाने से उसने पंखा झलना रोक दिया था। माँ के सिर सहलाने के कारण उसका सिर झुक गया था। अतः उसकी दृष्टि केवल उस तकिये पर जिस पर वह सोया हुआ था, उसके पास की चटाई के हिस्से तथा श्रुतसेन के सिर और माँ के पाँवों पर ही टिकी थी।

"माँ, तुमने बहुत कष्ट झेले हैं। बारह वर्ष वन में रही हो। वहाँ ऋषि-मुनि आया करते थे। इसलिए तुम्हें ज़रूर पता होगा।"

"क्या बात है बेटा ? पूछो न ?"

"सच्चा धर्म और आर्य धर्म क्या है ?"

दो क्षण निमिष पंखा रुक जाने से शरीर पसीने से लथपथ हो उठा। सोए हुए चारों बच्चों के माथे और गर्दनों से पसीना बह उठा और अकुलाहट के साथ साँसें लेते हुए उन्होंने करवटें लीं। शतानीक और श्रुतसेन ने ऐसे मुँह बनाये मानो मुँह में निबौली गिर पड़ी हो। उन्होंने आँखें खोलीं और फिर से मूंद लीं। माँ ने प्रतिविंध्य के हाथ से पंखा ले लिया और चारों ओर ज़ोर-ज़ोर से हवा करने लगी। श्रुतसेन ने हल्के खर्राटे बन्द करके करवट ली, और फिर से चित लेट गया। इसके बाद फिर से खर्राटे लेने लगा। मैं स्वयं सोचने लगी, 'सच्चा धर्म क्या है ?' यह बात मैंने कभी सोची ही नहीं। पर धर्म की बात सुनते-सुनते कान पक गये हैं। धर्मराज तो प्रातः उठते ही यही बात शुरू कर देते हैं। अरण्य में जहाँ हम थे वहाँ आने वाले ऋषि-मुनियों की भी यही बात थी। भीम और अर्जुन भी कभी-कभी उस पर बात करते हैं। मैंने यह प्रश्न वृद्ध भीष्म से पूछा था। द्रोण, कृप और अंधे से भी पूछा था : 'आर्य धर्म के माने क्या है ?' जब मैं यह सोच रही थी, उसी समय प्रतिविंध्य निरंतर मेरी ओर देखे जा रहा था। वन में रहते हुए बीच-बीच में मैं धर्म को जिस बात से चिढ़ाया करती थी, वह याद आई। याद के साथ हँसी भी आई। खिलखिलाकर हँस पड़ी। बिना कारण जाने ही प्रतिविंध्य भी हँस पड़ा। श्रुतकीर्ति और शतानीक की आँख खुल गयी। आँख खुलते ही उठकर बैठने के चक्कर में बाँहें टकरा जाने से श्रुतसोम और श्रुतसेन की भी आँखें खुल गयीं।

श्रुतकीर्ति ने पूछा, "आप लोग क्यों हँस रहे हैं ?"

"आर्य धर्म क्या है। यह बड़े भइया ने पूछा है। मेरे मन में आया कि शिकार, शराब, स्त्री की लत और जुआ, यही बस। इसीलिए हँसी आ गयी।"

नींद से जागे चारों ज़ोर से हँस पड़े। प्रतिविंध्य का भी मुख ज़रा-सा खुला पर वह हँसा नहीं। माँ बोली, "वन में रहने वाले पेट की खातिर शिकार करते हैं। यह स्वाभाविक है। जंगली जानवरों की बहुतायत हो जाने से जब एक से दूसरे गाँव पहुँचना ही कठिन हो जाय, खेती-बाड़ी, गाय-बैल, घोड़े नष्ट होने लगें तो शिकार करना सही भी है। समय बिताने को धनुष-बाण, भाले और जाल लेकर वन में घुस पड़ने की लत केवल आर्यों में है। वन के निवासियों में नहीं, अब मद्यपान का तो कहना ही क्या ? जंगली लोग कुछ पेड़ों में जिनसे रस निकलता है, छेद करके बाँस या लकड़ी के बर्तन छेद के पास बाँध देते हैं और रस निकालकर पीते हैं। वन में रहते मैंने यह देखा है। उसे पीने पर नशा नहीं चढ़ता, स्फूर्ति आती है। स्वास्थ्य अच्छा हो उठता है। पर इन आर्य लोगों को तो देखो : यज्ञ के नाम पर भी मद्य,

तीज-त्योहार पर भी वही। उसके बिना कोई समारोह नहीं होता। बिना पिए युद्ध भी नहीं करते। ऐसा कोई देवता नहीं जो पीकर मस्त न हो जाता हो। चावल से, गुड़ से, सोमलता से पता नहीं कैसे-कैसे पदार्थ मिलाने से अधिक नशा आता है। इन सबके परीक्षण और प्रयोग करके पूजा, होम में मद्य को अनिवार्य कर दिया है। अब स्त्री की बात कहें। विवाह में केवल बेटी देने से काम नहीं चलता। साथ में कम-से-कम दसेक सुन्दर नवयुवती दासियाँ होनी चाहिएँ। यदि राजा बड़ा हो तो सौ। उनसे उत्पन्न संतानों द्वारा सूत कुल की वृद्धि होती है।"

माँ जब यह कह रही थी तब प्रतिविंध्य ने कहा, "यह पद्धति केवल क्षत्रियों में है न? वे ही तो हैं न आर्य धर्म के प्रवर्तक। उनकी करनी को कौन पुरोहित ग़लत कह सकता है?"

माँ की सारी बात सच है यह सोचकर वह चुप हो गया। मुख गंभीर हो उठा और अंतर्मुखी हो उठा। माँ ने बात आगे बढ़ाई: "और जुए की बात का तो कहना ही क्या है? दुर्योधन ने सोचा कि वह जुए के अतिरिक्त और किसी ढंग से हम लोगों को हराया नहीं जा सकता। हमने उस जरासंध को हराया, जिसने सैकड़ों राजाओं को कारागार में डाल रखा था। चारों दिशा में दिग्विजय करके हमने राजसूय यज्ञ किया। अतः उसे पता था कि हमें युद्ध में हराना असंभव है। भाइयों में फूट डालने का प्रयत्न किया पर सफल न हुआ। जुआ ही एकमात्र रास्ता था। न्याय में सूक्ष्मबुद्धि के लिए प्रसिद्ध तुम्हारे बड़े पिता को जुए की लत तो थी ही। भाई तो राज-काल सँभालते थे। राजसिंहासन का सुख भोग करने वाले इनका समय कैसे बीतता? पंडितों के साथ धर्म और न्याय संबंधी चर्चा हुआ करती। राजसभा के सभासद जीतें तो भी क्या राजा को हरा सकते हैं? हरा देने पर सिंहासनारूढ़ राजा का अहंकार भड़क नहीं उठता? इस कारण ये सदा जीता करते। इसलिए इन्हें यह भ्रम हो गया था कि ये बड़े दक्ष खिलाड़ी हैं। दुर्योधन को यह कमज़ोरी मालूम थी। उसने जुए का स्पष्ट निमंत्रण भेजा। न्याय नीति की इतनी बातें करने वाले इन्होंने उस निमंत्रण को अस्वीकार क्यों नहीं किया? जुए का व्यसन और अहंकार यही दो कारण हो सकते हैं। कहते हैं युद्ध और जुए के लिए कोई आमंत्रित करे तो उसे अस्वीकार करना आर्य धर्म के विरुद्ध है। वहाँ जाकर ये जुए के फड़ पर बैठ गये। कौरवों ने खेल देखने को बड़े-बूढ़े लोगों को बुलाया था। चारों ओर के कुछ देशों के राजा भी उपस्थित थे। ये एक-एक करके हारते गये। वहाँ बैठे बूढ़े लोगों ने गिड़गिड़ाकर कहा, "दुर्योधन, उसे और खेलने को मत कहो। जुए को ललकारो मत।' उन्होंने उसे डाँटा भी; पर जुआ खेलना अधर्म है, तुम उठ जाओ यह क्यों नहीं कहा? सारा राज्य हारा, भाइयों को हारा, अपने को हारा, मुझे भी दाँव पर लगाकर हार गया। मैं रजस्वला थी। एक-वस्त्रा थी, तब भी वह धूर्त मुझे सभा में खींचकर लाया। इधर-से-उधर और उधर-से-इधर धक्के दिये। 'अब तू हमारी

दासी है। आ, हमारे साथ सो। कहा। तब सब ऐसे बैठे थे मानो उसे यह सब करने का धर्म ने अधिकार दिया हो। किसी के मुंह से यह न निकला कि धर्मराज का जुआ खेलना ही ग़लत था।" यह बताते हुए उसकी आँखें भर आई थीं और गला भर्रा गया था। बोलना बंद करके उसने आँचल से दोनों आँखें पोंछी। सब बच्चे दुखी हुए। सबसे छोटे श्रुतसेन की आँखों में आंसू भर आये⋯"धर्म का वास्तविक अर्थ जानने वाला लगभग दो मास बाद द्वारका से दौड़ा आया। आते ही उसने धर्मराज को आड़े हाथों लिया। अपने आप को बड़ा धर्म-मर्मज्ञ और उसका आचरण करने वाला आदर्श प्रभु समझकर इतराने वाले धर्मराज का पानी उतार दिया। उसने पूछा, 'युद्ध के समय जुए का निमंत्रण अस्वीकार करना अधर्म कैसे होता है ? शक्तिशाली शेर जब युद्ध के लिए ललकारे तो हरिण को तुरन्त चला जाना चाहिए ? हरिण अपनी चातुरी से, अवसर का लाभ उठाकर शेर को भी पराजित कर सकता है। बलिष्ठ जरासंघ को मैंने अपनी अंतिम सीमा तक सहा। जब सहने की सीमा पार हो गयी और वह चढ़ भी आया तब भी मैं चालाकी से सिर छिपाकर भाग निकला। यहाँ के आर्यों ने यह कहा कि यादवों का कृष्ण कायर है, अनार्य है, पर अवसर पाकर मैंने जरासंघ को तुम्हारे ही हाथों खत्म नही करा दिया ? युद्ध की बात कुछ और है। ललकारने पर न भी जाएँ और शत्रु ऊपर चढ़ आये तब मुक़ाबले के अतिरिक्त कोई और चारा नहीं रहता। जुआ खेलने से इंकार करने पर वह कैसे खेलने को विवश कर सकता था ? क्या अपना सारा जीवन इन पासों के अंधे दाँव पर रख देना चाहिए ? इससे बढ़कर नीचता और बुद्धिहीनता का कार्य और कोई नही धर्मराज। तुमने यह समझ रखा है कि रूढ़ि को मानना ही धर्म है। दुर्योधन ने जुए का निमंत्रण भेजा और तुम हस्तिनापुर चले गये। यह समाचार मुझे देर से मिला। तभी मुझे यह लगा कि कुछ अनर्थ अवश्य होगा। तुम्हारी समृद्धि देखकर दुर्योधन जैसे व्यक्ति का मस्तिष्क कैसे चलेगा, यह समझने के लिए बहुत बुद्धि की आवश्यकता नहीं। क्या इतनी बुद्धि भी तुम्हारे पास नहीं थी ? मैं तुरन्त चलना चाहता परंतु उसी समय शाल्व ने द्वारका को घेर लिया। उसकी विशाल सेना आयी थी। अपने लोगों को एकत्र करके उसे हराकर, उसे मारकर तथा उसकी ओर से सब प्रकार से निश्चित होकर चलने तक तुम हार चुके थे। बच्चे को लेकर सुभद्रा द्वारका पहुँची और मैं तुरंत वहाँ से चलकर यहाँ पहुँचा। यदि मैं जुए के समय पहुँच जाता तो तुम्हें और दुर्योधन दोनों को यह समझाता कि जुआ खेलना अधर्म है। अगर नहीं सुनते तो दोनों के हाथ काट डालता। जुआरियों के लिए यही दण्ड है। पहले मैं तुम्हारे हाथ काटता, बाद में दुर्योधन के'।"

"बड़े पिताजी ने क्या जवाब दिया ?"

"वह क्या कहता ? इस गर्मी में जैसे तुम लोगों के मुंह पर पसीना आ रहा है न ! वैसे ही कँपा देने वाली सर्दी में शरीर पर ओढ़ने को कंबल न होने पर भी

इससे ज्यादा पसीना छूट रहा था। सिर नीचा किए बैठा रहा।"

"माँ, जुआ खेलना अधर्म है। तुमने क्यों नहीं कहा ?"

"पुरुष ग़लती करते हैं। यह कहने का साहस तब कहाँ था मुझमें! दूसरी बार जुआ खेलने मत जाओ कहकर मैंने रोका, गिड़गिड़ाई, आँसू बहाए। कृष्ण द्वारा इस प्रकार विस्तार से बताने तक धर्म का अर्थ मुझे ही कहाँ पता था ? अगर जानती तो उसे तर्क देकर रोक लेती। मान जाता या हठ करता यह तो निश्चित रूप से नहीं कह सकती, पर यह सब सोचने की बुद्धि तभी से मुझमें पैदा हुई।"

"तो तुममें साहस कब आया ?" श्रुतिसेन ने बीच ही में पूछा।

"साहस की पूछते हो !" वह याद करने लगी। विवाह के बाद धर्म और कुन्ती के साथ उसने भय-भक्ति से जो समय बिताया वह सब याद करते समय ज्योतिष्मती ने पास आकर पूछा, "खस पर पानी छिड़क दूं या आप लोग उद्यान में जाएँगे ? दिन ढल गया है। सेवकों ने उद्यान के पेड़-पौधों को पानी देकर धरती पर भी पानी छिड़क दिया है। अतः वहाँ ठंडक हो गई है।"

"यहाँ तो बहुत पसीना आ रहा है। वहीं चलें !" कहता श्रुतसेन उठ खड़ा हुआ।

उसे भी हाथ-पाँव में चिपचिपाहट लग रही थी। दूसरे लड़के तो माँ का उत्तर सुनने को आतुर थे, पर वह अभी तक स्पष्ट रूप से निश्चय नहीं कर पायी थी कि उसमें कब से साहस आया। स्मृति के तंतुओं को पकड़कर याद करते-करते वह उठ खड़ी हुई। उसके साथ सब उठ खड़े हुए। स्नान करने की इच्छा हुई। "बड़े मटकों में ठंडा पानी तैयार है।" कहकर ज्योतिष्मती उसे स्नानागार में ले गयी। शरीर पर पानी डाल-डालकर खूब मैल उतारा, बाद में शरीर पर पत्थर रगड़-रगड़ कर पीठ, पाँव, हाथ आदि का मैल साफ़ करके फिर से ठंडा पानी उँड़ेला। उद्यान ठंडा था। बच्चे भी स्नान करके आ गये। उसमें बात करने की लहर घट गयी। इसके अतिरिक्त अभी भी वह निश्चय नहीं कर पाई थी कि उसमें साहस कब आया। ठंडी धरती पर मोटी-सी चटाई पर वह आकाश को निहारती हुई चित लेट गई। आस-पास पाँचों बच्चे बैठ गये। प्रतिविंध्य पंखा हाथ में लिये हुए ही आया। पानी छिड़कने से पेड़-पौधे, लताएँ सब ठंडी हो जाने से वातावरण ठंडा हो गया था। फिर भी वह लेटी हुई माँ को धीमे-धीमे पंखा झल रहा था। उसकी आँखें मुंदने लगी। वह सो गयी।

रात को बड़े पति के भवन की छत पर उसके पास सोने गयी तो उसे नींद न आयी। सारी छत पर चार बार पानी छिड़ककर ठंडी करके सोने को मोटी चटाइयाँ डाली गई थीं। आँखों के सम्मुख छाए नीले अम्बर में शीतल नक्षत्र टिमटिमा रहे थे। पास में पति। बड़ा पति। उसे नींद आयी या नहीं, यह पता ही नहीं चलता था। चुप-चाप लेटा रहता है। बिना कुछ बोले-चाले। पहले से ही वह ऐसा है। जुए में राज्य हार जाने के बाद से मुझसे आँख से आँख मिलाकर बात करने का साहस नहीं रहा। इससे पहले उसके प्रति मेरे मन में डर था। अब उसके मन में मेरे प्रति डर है। लेकिन अज्ञातवास के बाद से मैं उसके पास सोने लगी हूँ। एक वर्ष की बारी फिर से शुरू हुई है। केवल सो भर रही हूँ। उसकी इच्छा भी नहीं, मेरी भी नहीं। रात-भर सोने के बाद प्रातः उठकर अपने भवन में चली जाती हूँ। बच्चों के साथ रहने। धर्म का अर्थ क्या है? मुझमें साहस कब आया? फिर से स्मृतियों को टटोलने लगी। इस ठंडी बेला में अब भी वह यात्रा कर रहा होगा या कहीं ठहर गया होगा? दिन-भर कड़ी धूप में घुड़सवारी की होगी। ऐसे धूप, वर्षा और सर्दी से हार मान जाने वाला शरीर और मन उसका नहीं है। मर्द का शरीर और मर्द का ही मन है। उस अकेले को मुझे मुँह खोलकर संभवतः यह नहीं कहना चाहिए था कि 'तुम्हीं मेरे आधार हो।' कहने की क्या आवश्यकता थी? जो बात अपने-आप अंतःकरण को छू जाती है उसे मुँह से कहने की क्या ज़रूरत है? कभी-कभी मुझे अनावश्यक चिंता हो उठती है। उसका चिंता करने का स्वभाव ही नहीं। रात को कीचक को मारने का निश्चय कर लेने के बाद भी दोपहर को अच्छी तरह खा-पीकर सुख से नींद लेने वाला आदमी है, वह महाराजा। नींद तो ऐसी आती है जैसे एक चट्टान पड़ी रहती है। तभी पास लेटे धर्म ने करवट ली। 'गर्मी लग रही है। सिरहाने पंखा रखा है। झल दूँ?' मैंने पूछा। उसने 'हूँ' तक न कहा। स्वयं पंखा निकालकर झलने लगा। भरी सभा थी। समस्त आर्यावर्त में जिसके जोड़ का धर्मज्ञ नहीं, वह भीष्म! मेरे पिता के समवयस्क द्रोण, कृप और दूसरे राजाओं को भी 'धर्म क्या है?' इस प्रश्न का उत्तर न सूझा। सूझा नहीं या स्पष्ट बताने का साहस न होने के कारण सब सिर नीचा किए बैठे रहे। जुए का निमंत्रण पाते ही यह चल पड़ा। मुझे भी साथ चलने को कहा। पीछे भाई थे। हमने कितना बड़ा यज्ञ किया है, यह दिखाने के गर्व से मैं चली। देश-देशांतरों के राजाओं ने भेंट में जो आभूषण दिये थे, उनमें से सबसे आकर्षक छाँटकर पहनकर गयी थी। दायादियों की पत्नियों के सम्मुख अपने वैभव के प्रदर्शन की इच्छा मुझमें भी थी न? हस्तिनापुर का ऐश्वर्य लोक-प्रसिद्ध था। दुर्योधन और दुःशासन की पत्नियाँ जब राजसूय यज्ञ में आयी थीं तब उन्होंने कहा था, 'हमारे यहाँ जैसे आभूषण और किसी छोटे-मोटे राजा के पास नहीं।' जब मैं वहाँ गयी तो उन्होंने भी मुझे हाथों-हाथ लिया। मुझे देखने को हस्तिनापुर की स्त्रियों की

भीड़ लग गयी थी । पता नहीं इस दृष्टि से कि मैं राजसूय करने वालों की पत्नी हूँ या पाँच पतियों की पत्नी हूँ । वृद्धा गांधारी ने भी कितना स्नेह दिखाया था ।

"बेटी, तुम बहुत सुन्दर हो । मेरे बेटों की आँखें भली नहीं । तुम जल्दी से अपने पतियों के साथ खांडवप्रस्थ चली जाओ ।" कहकर उसने दस-ग्यारह वर्ष पूर्व भेज दिया था न ? अब उसने ऐसी बात नहीं की । क्या वे जानती थीं कि चार-पाँच दिन बाद इस पांचाली के वस्त्राभूषण उन्हीं के हो जायेंगे? पता नहीं उस वृद्धा को मालूम था या नहीं; पर क्या बहुओं को भी पता नहीं होगा ? या पता होने पर भी उन्होंने स्वागत का स्वाँग किया होगा ? अथवा पुरुष लोग बाहर क्या करते हैं, उन्हें कैसे मालूम हो ? वास्तव में पता नहीं रहा होगा, पुरुष तो दायाद होते हैं । मुझे लगता है कि दूसरे घरों से आयी हुई हम लोग क्यों लड़ें, यह भाव उनमें था । हस्तिनापुर के ऐश्वर्य के दर्प में भागीदार होना कुछ और बात है । वह तो स्त्री स्वभाव है, पर उससे संबंधित द्वेष और षड्यंत्र में उनका हाथ न था । रजस्वला होने के कारण जब मैं एकवस्त्रा थी तब दुःशासन के आकर मुझे घसीटकर जुआ खेलने वालों के बीच ले जाते समय वे कैसी भयभीत खड़ी हो गयी थीं! कुराह पर चलने वाले पुरुष को रोकने का साहस किस आर्य स्त्री में है! सुना है वे सब गांधारी के पास भागीं और गिड़गिड़ायीं, "आपके बेटे दुःशासन ने पांचाली के साथ ऐसा किया है । इससे सर्वनाश हो जाएगा । आप जाकर रोकिये ।"

उसकी बात से डरकर जब मैं एकवस्त्रा देवरानियों के पीछे छिपने को भागी तो उसने पीछे से आकर मेरे केश-पकड़ लिये । आँचल खींचकर शरीर पर हाथ डालकर "एक ही कपड़े में हो ! कंचुकी नहीं ? रजस्वला हो ! पूर्ण नग्न हो तो भी कुछ नहीं । दासी को कैसे कपड़े ?" कहते विरोध करने का भी अवकाश न देकर बाँह से लपेटकर घसीट ले गया न, उस भरी सभा में । उसने मुझे स्वयंवर के मंडप में भी देखा था । तब से ही मन में इच्छा रही होगी । अब बहाने से छूकर ही पूरी कर ली होगी । सब-के-सब गर्दनें नीची किये बैठे थे । भीष्म, द्रोण, पंच पांडव । गर्दन ऊँची किये केवल तीन व्यक्ति थे । दुर्योधन, कर्ण और शकुनि । कर्ण ने तो 'शाबाश दुःशासन' कहकर कहकहे लगाये । शकुनि ने भी उस हँसी में योग दिया था । हाँ अब याद आ रहा है । सबसे पहले मुझमें साहस उस समय आया था । जब तक पुरुषों की सभ्यता पर विश्वास रहता है स्त्री को साहस की आवश्यकता नहीं । उस समय सभा में उपस्थित किसी व्यक्ति में भी सभ्यता न थी, धर्म की प्रज्ञा न थी, किसी में भी नहीं—भीष्म, द्रोण, विदुर, किसी में नहीं । "धर्मराज का मुझे इस प्रकार जुए के दाँव पर लगाना क्या धर्म था?" मैंने यह प्रश्न सीधे भीष्म से पूछा था । कुरु पितामह, समस्त आर्यों में वयोवृद्ध और अत्यंत धर्मज्ञ के नाम से प्रसिद्ध वह ब्रह्मचारी क्या बड़बड़ाया था ।

"यह सत्य है कि जो व्यक्ति स्वयं स्वतंत्र न हो उसे किसी भी चीज़ को दाँव पर लगाने का अधिकार नहीं। परन्तु स्त्री सदा पति के अधीन होती है। धर्म का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म है। इस कारण मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। इस पापी शकुनि ने क्रीड़ा-धर्म का दुरुपयोग करके धर्मराज में जुए का नशा चढ़ा दिया।" कहकर शकुनि को धिक्कारा। बस इतना ही था, उस बूढ़े का धर्मज्ञान।

वास्तविक धर्म की बात भीम के मन में उठी। तब तक मैं भीम को समझी ही नहीं थी। साहसी, शक्तिशाली, क्रोधी, बच्चों से बहुत प्रेम करने वाला—मैं उसके इतने ही गुण समझ पायी थी। गुस्से से भन्नाया बैठा था। बूढ़े भीष्म ने "धर्म का स्वरूप बड़ा सूक्ष्म है, इस कारण मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता।" कहकर आँखें मूंद लीं। तभी वहाँ बैठा भीम गरजा, "अरे धर्म ! तुम जानते हो साधारणतः जुआघरों में वेश्याएँ होती हैं। वेश्याओं के घरों में ही अधिकतर जुआ होता है। जुआरी शरीर के वस्त्र तक दाँव पर लगाकर जुआ खेलता है, पर वह कभी वेश्या को दाँव पर नहीं लगाता। लगा दे तो वह भी हाथ में जूता उठा लेती है। पर तुमने धर्मपत्नी को, पट्टमहिषी को दाँव पर रखकर जुआ खेला। अब तक रथ, घोड़े, आभरण आदि जो हारे हैं, मालूम है कहाँ से आये थे ? वे सब राजसूय के लिए पूर्व देशों से मैं जीतकर लाया था। इन्द्रप्रस्थ नगरी हम सबके पसीने से बनी थी। बड़े भाई के सम्मुख बोलना नहीं चाहिए। इस धर्म संकट के कारण मैं चुप रहा, परन्तु तुमने जब पत्नी को वेश्या से भी क्षुद्र मानकर उसे दाँव पर रख दिया, और इन कायरों ने उसे दासी कहा। पहले तुम्हें दण्ड मिलना चाहिए। सहदेव उठो, जाकर ज़रा आग लाओ। पहले इसके दोनों हाथो की उँगलियाँ और हथेलियाँ पूरी तरह जलाकर राख कर देने के बाद इन लोगों की खबर लूंगा।"

तोला, माशा, रत्ती में कहीं धर्म तोला जा सकता है ! धर्म को तो उसके सही स्थान पर पहचानना और पकड़ना होता है। चतुर अर्जुन को धर्म का क्या पता चल सकता है। तुरन्त बीच ही में बोला, "भीम, बड़े भैया को गाली देकर अपमानित मत करो। युद्ध और जुए पर आमंत्रित करने पर न जाना कायरता है। यह क्षत्रिय को शोभा नहीं देता। बड़े भाई का कोई दोष नहीं।" कहते हुए उसने भीम के दोनों हाथ पकड़ लिये। पर भीम इतने पर ही चुप क्यों हो गया। क्योंकि उसने जो कुछ कहा था वह केवल गुस्से की बात थी ? अथवा धर्म के बारे में उसकी समझ इतनी स्पष्ट नहीं थी ? स्पष्ट होने की इसमें क्या बात थी ? पत्नी को कोई दूसरा छुए उसे देखते हुए बैठे रहना क्या कायरता नहीं ? आगे बढ़कर उसे खत्म कर देने अथवा स्वयं खत्म हो जाने का साहस न हो, तो फिर समझ चाहे जितनी हो, उससे लाभ ? अर्जुन ने भीम के मन पर धर्म का आवरण डालकर बिठा दिया। उसने स्वामिभक्त की भाँति भाई के कार्य का समर्थन किया। तभी वहाँ बैठा कर्ण बोला था : "अपने आपको और राज्य को हारकर दास बन जाने के बाद राजो-

चित आभूषण धारण किये रहे तो यहां बैठे समस्त राजाओं का अपमान होगा। नीचे के स्तर के लोग यदि ऊपर के स्तर के लोगों जैसी वेशभूषा धारण करें तो ऊपरवालों का अपमान है। इन सबसे कहो कि वे अपने किरीट, भुजबंद, अनंत, कंठहार आदि उतार कर साधारण वस्त्र पहनें।"

उसके यह कहते ही धर्मराज ने कैसे अपने किरीट को उतारकर पासो के सामने रख दिया। किरीट उतरने सिर से कंठहार उतारना भी सरल हो गया। भुजबंद, अनंत आदि उतारकर सामान्य व्यक्ति का वेश धारण कर लिया। दास हो गया। पहले की भांति, सिर नीचा करके बैठ गया। अर्जुन ने बड़े भाई का अनुसरण किया। भाई का अनुगामी बनने में ही उसने अपनी वीरता दिखायी। नकुल, सहदेव ने भी सब कुछ उतार दिया। पर मुझे तब आग-सी लगी जब भीम ने अपने किरीट आदि पर हाथ डाला। भीम में वास्तव में सही ज्ञान न था। दुर्योधन को उस वेश के अन्तर का भेद सूझा नहीं था। वह कर्ण को सूझा, और उसने ऐसा करा लेने तक दम न लिया अथवा उसके मन में इस बहाने मेरे घुटने और जांघें देखने की अश्लील कामना थी? क्या दु.शासन छोड़ देता? पास जाकर सीधा चीर पकड़कर खींच ही लिया। मुझे नंगी करने के सिवा और कौन-सा उद्देश्य रहा होगा? मैं रजस्वला थी, भीतरी वस्त्र भी न थे। पाँचों की पत्नी हूँ, यह इन्होंने कभी नहीं माना था। मैं पांचों की वेश्या हो सकती थी इसलिए उसके मन में यह बात थी कि मैं सबकी हो सकती थी। भरी सभा में होने से क्या हुआ? अवसर पर साहस अपने आप उमड़ आया। मैं द्रुपद-राज की पुत्री थी। मैं प्रति-दिन अग्नि-पूजा करती थी। तब भी करती थी। अज भी करती हूँ। क्या अग्नि का अंश समय पर उत्पन्न नहीं होगा? 'अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम्। अग्निं भ्रातरं-सद्मित सखायाम्।' भूल ही गयी। बाएँ हाथ से पंखा झले ही जा रही हूँ। बाँह दुखने लगी। पास ही यह सुख से सो रहा है। अच्छी नींद आ गयी है। आएगी क्यों नहीं? भरी सभा में जब दायादि पत्नी का आंचल खींच रहे थे, तब सिर नीचा किए बैठे रहने वाले को नींद नहीं आएगी तो क्या होगा? पंखा धरती पर रख दिया। बांह दुख रही है। सीधे हाथ की कोहनी दबाती रही। आकाश पर हल्की चांदनी फैल गयी है। इतनी साफ़ कि स्मृतियां स्पष्ट देखी जा सकती हैं। अच्छी तरह याद है; तब तुरन्त सूझा था "अरे स्वान! मैं केवल इन कायरों की पत्नी नहीं हूँ। मैं द्रुपदराज की बेटी भी हूँ। धृष्टद्युम्न की बहिन हूँ। खबरदार! वे अपनी सैना सहित आकर अपनी बेटी को दासी बनाने वाले महलों को धराशायी करके उन पर हल चलवाकर, जंगल बनाकर चले जाएँगे। मेरे पिता और भाई!"

"तेरे बाप के हाथ-पांव बांधकर अपने आचार्य के पलंग से बांध दिया था। पता है, ज्यादा प्रलाप करने की आवश्यकता नहीं। मैं तुझे दासी नहीं पुकारूँगा, रानी ही कहूँगा। आ मेरी गोद में बैठ जा।"

"बाँधने वाला तू नहीं था रे, अर्जुन था। वही अर्जुन जो अब तेरा शत्रु है। तब मेरा भाई छोटा था। अब मेरा भाई सेनापति है। युवराज है। इतना समझ ले।"

हाँ, उस समय दु शासन ने ही कहा था, "भैया, यह पांचाल सदा से कुरुओं को डराते आ रहे हैं। हम लोगो के शक्तिशाली हो जाने के बाद से उनका धमकाना कम हो गया है। अब यह अपने पिता के घराने की पुरानी धमकी देकर डरा रही है। इससे क्या डरना ?"

तब कर्ण भी बोला था : "डरना क्या है? खींच ले। मैं देख लूंगा।" मुझे लगा, घर के कुत्ते की मदद गली का कुत्ता भी करता है।

आगे की बात मुझे तुरन्तु सूझ गयी : "केवल मेरे पिता और भाई की ही बात मत सोचना अरे कुत्तो ! हमारे राजसूय यज्ञ में जिसे सबने सर्वसम्मति से प्रथम स्थान दिया था और उसका विरोध करने के कारण जिसने शिशुपाल की गर्दन ही उड़ा दी थी। उसे जानते हो न, कौन है ? उसे भी खबर पहुँच जाएगी। वह भी आ जाएगा तुम्हारी खबर लेने। मैं समझ गयी हूँ। ये पाँचों पति केवल षंड है। पर मेरे पिता, भाई षंड नहीं। यादवों का कृष्ण भी मेरा भाई है। तुम सबका मान मर्दन करने की शक्ति रखता है। वह द्वारका की सेना लेकर चढ़ आएगा। दक्षिण से पांचाल सेना आएगी। इस हस्तिनापुर को खोदकर यहाँ गंगा का पानी बहाकर जंगल उगा देगा। होश में रहो।"

बाद में सब डर गये। तभी दुर्योधन का मुख काला पड़ गया। तत्क्षण भीम उठकर गरज पड़ा, "हे दुःशासन, तूने मेरी पत्नी को छुआ है। तुझे पछाड़कर चित करके तेरी पसलियाँ तोड़कर तेरा खून न पिऊँ तो मेरा नाम भीम नहीं। मेरे पिता और दादा को स्वर्ग न मिले।" भीम का साहस कभी घटता नही। कभी-कभी बुद्धि मंद पड़ जाती है। सारी सभा काँप उठी। वह कैसा रौद्र कंठस्वर था ! सभा के भीतर, बाहर, औरतों के कान तक पहुँचा। तब दुःशासन की माँ दौड़ी आयी थी न सभा में। आँखें रहने पर भी अंधी बनी वह दासियों का हाथ थामकर आ ही पहुँची थी। नेत्रहीन अंधे पति का हाथ पकड़कर भीतर ले गयी। भीम के गर्जन से वहाँ की हवा ही बदल गयी। हतप्रभ ऊँघते बूढ़ों की मन्द बुद्धि भी ठिकाने पर आ गई। विदुर ने दुर्योधन को नीति का उपदेश देना शुरू कर दिया। वह भी कैसी नीति? "जुआ क्षत्रिय के लिए उचित है, पर उसकी अति नहीं होनी चाहिए। छल से खेलना अधर्म है।" यह उपदेश न इधर का था न उधर का। कृष्ण की भाँति उसमें दृढ़ता नहीं थी। वैसे तो विदुर बड़ा धर्मात्मा था। पर उसी के हाथ तो जुए का आमंत्रण इंद्रप्रस्थ आया था। दुर्योधन और उसके साथियों का निहित उद्देश्य वह नहीं जानता था। उसमें दोष को दोष समझने का ज्ञान न था। परन्तु बूढ़ा भले स्वभाव का है !

दुर्योधन डर गया था, यह सच है। किंतु इस प्रकार स्वीकार करके तुरंत पीछे हट जाने से उसका सम्मान क्या बचा रहता? उसने बड़ी चतुरता से मुझसे कहा, "सुन्दरी, तुम्हारा अपमान करना मेरा उद्देश्य नहीं। पर यह बताओ कि दासी को दासी के रूप में रहना चाहिए या नहीं? तुम्हारे महल में तुम्हारी दासियाँ तुम्हारी तरह पाँव की नीचाई तक अधोवस्त्र धारण करें और उत्तरीय भी ओढ़ें तो तुम चुप रहोगी? धर्मराज भाइयों को तो दाँव पर लगाकर हार गया। तुम्हें इस प्रकार दाँव पर लगाने का अधिकार उसे है कि नहीं यह तुम्हीं बताओ। अगर 'हाँ' कहती तो तुम हमारी दासी हो, यदि 'नहीं' कहती हो तो तुम स्वतंत्र हो। और कोई दूसरी बात नहीं। तुम जहाँ चाहो, जैसे चाहो रह सकती हो। मैंने निर्णय तुम्हीं पर छोड़ दिया है।"

उसकी बात का मतलब क्या था? भाइयों को दाँव पर लगाने का अधिकार है पर मुझे दाँव पर लगाने का नहीं, कहूँ तो मैं परायी हुई न? तो मेरे-उसके बीच के सम्बन्ध का क्या अर्थ हुआ? वह तर्क में चतुर था। उसे भेद कर धर्म की सूक्ष्मता को पहचानने की क्षमता किसमें आ सकती थी ऐसे अवसर पर!

उसकी बात का मर्म समझने में मुझे तनिक देर लगी। यदि मैं कहूँ कि यह मेरा पति नहीं तो पांडवों को पांचालों की सहायता नहीं रहेगी। साथ ही दास बन चुके उन लोगों की स्वतंत्रता की सम्भावना भी न रहेगी। यदि इनकी सहायता न रहे तो सेना लेकर पांचालों को भी समाप्त कर सकते हैं। मुझे कैसी दुविधा में डाल दिया था। दु:शासन मेरा आँचल छोड़कर खड़ा था—पूर्ण रूप से जाल में फँसे हरिण की गर्दन पकड़ने की आवश्यकता नहीं होती।

धर्मनिष्ठा के गर्व में दुर्योधन इन पाँचों की ओर मुड़कर बोला, "भीम, खाकर मुटिया कर चिल्लाने से क्या धर्म की सूक्ष्मता समझ में आ जाती है? जैसे द्रौपदी से पूछा है वैसे ही तुमसे भी पूछता हूँ। उत्तर दो। तुम्हें दाँव पर लगाने का अधिकार तुम्हारे बड़े भाई को था या नहीं? यदि 'हाँ' तो दास को स्वामी के सम्मुख चिल्लाने का अधिकार नहीं। यदि नहीं कहते हो तो तुम इसी क्षण से स्वतंत्र हो। तुम जहाँ चाहे जाओ। तुम जिसे दर्प से इंद्रप्रस्थ कहते हो वह खांडवप्रस्थ भी मेरा ही है। क्योंकि उसे दाँव पर लगाने के बारे में किसी धर्म-संकट की समस्या नहीं।"

भीम को मानो बन्धन में डाल दिया गया हो। वीर की भाँति खड़े भीम ने फिर से गर्दन झुका ली। "अर्जुन, तुमसे भी मैं यही प्रश्न पूछता हूँ। तुम यह कह दो कि तुम्हें दाँव पर लगाने का अधिकार तुम्हारे बड़े भाई को नहीं। फिर तुम स्वतंत्र होकर जहाँ चाहो चले जाओ। नकुल और सहदेव के लिए भी यही बात है। अपने आप को दाँव पर लगाने वाले धर्म के लिए यह छूट नहीं। उसे दास बन-कर रहना ही होगा। मैंने अपने राज्य में कभी किसी दास को खाने और कपड़े की कमी नहीं होने दी। किसी से निर्दयता नहीं की। दुर्बल से काम नहीं कराया।

आहार, निद्रा और मैथुन किसी में बाधा नहीं पहुँचायी। कुरुराज्य छोड़कर जाने की स्वतंत्रता होने पर भी कोई दास आज तक हमें छोड़कर नहीं गया। हमारे राज्य में दास केवल नाम भर को दास हैं। सुख की कोई कमी नहीं।"

अर्जुन मुह खोलेगा इसकी आशा मुझे नहीं थी। नकुल, सहदेव की बात तो छोड़ ही दो। दुर्योधन ने बाद में धर्म से कहा था, "धर्म, तुम हारे हो। राजा जब दास हो जाए तब अपना राजवैभव और राजसी वेश उतारकर सिर नीचा करके बैठ जाए तो सभासदों और बड़े-बूढ़ों के मन में दया की भावना जागृत होना सम्भव है। उनका मन पिघल जाने से यह मत समझ लेना कि धर्म तुम्हारी ओर हो गया। हम दोनों ने जुआ खेला है। यदि मैं हार जाता और तुम जीत जाते तो वह धर्म हो जाता? क्योंकि बड़े-बूढ़ों की सहानुभूति तुम्हारी ओर है। तुम एक धर्मात्मा हो। इसके अतिरिक्त राजसूय यज्ञ किया है और अपनी कीर्ति को आकाश तक पहुँचाया है। 'अन्न जायाम् परिमृशंत्वस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः' दूसरों के धन पर आँख रखने वाले जुआरी की पत्नी के दूसरे जुआरी वस्त्र केशादि पकड़ खींचते हैं। क्या वेद के इस मंत्र का अर्थ तुम नहीं जानते? हम दोनों ने साथ-ही-साथ अध्ययन किया था न? हस्तिनापुर वालों की संपत्ति को जीतने की इच्छा के बिना ही क्या तुम पाँसे लेकर खेलने चले गये थे? हारे हुए से कर्ज़ न वसूल होने की स्थिति में उसकी पत्नी के कपड़े-लत्ते खेंचने की पद्धति बहुत पहले से चली आयी है। इस कारण तुम और तुम्हारे हितैषी यह न समझें कि मेरे भाई दुःशासन ने कोई महापाप किया है।"

धर्म की गर्दन तक न हिली। दुर्योधन ही बोला, "भीम, अर्जुन और माद्री के पुत्रो 'पितामाताभ्रातर रानमाहुः न जानीवो नयता बद्धमेतम्' जुए में सब कुछ हारने वाले से उसके माता-पिता और भाई 'हम नहीं जानते यह कौन है। इसे जहाँ चाहे पकड़कर ले जाओ?' कह देते हैं। यह भी वेद की बात है। अतः अब मैंने आप लोगों को अवसर दिया है। उससे लाभ उठाकर अपने सहोदरों को ही दाँव पर रखकर दास बना देने वाले इसे धर्मानुसार 'हम नहीं जानते यह कौन है' कहकर स्वतंत्र हो जाओ। तुम लोग वीर हो ही। तुम्हारे लिए नए राज्य की स्थापना करना कोई कठिन बात नहीं।"

अब भाई क्या कहते? भीम क्या कहता? पता नहीं अर्जुन का मन क्या सोच रहा था? चारों भाइयों का स्वतंत्र होकर पांचाल की सेना की सहायता लेकर इंद्रप्रस्थ जीत लेना संभव न था? अथवा वे यदि 'हम स्वतंत्र हो गये' कह देते हैं तो मालूम नहीं दुर्योधन क्या युक्ति सोचता? इतने में ही अंधा राजा दासी का हाथ थामे धड़धड़ाता हुआ सभा में पहुँचा। आकर सीधा मेरे सामने खड़ा हो गया। पीछे गांधारी थी। जब पति जन्मांध है तो क्यों चक्षुसुख भोगूँ सोचकर आँखों पर पट्टी बाँध ली थी उस साध्वी ने। खड़े-खड़े मेरे पाँव अकड़ गये थे।

रजस्वला होने के कारण पहले ही दो-तीन दिन से शरीर में दर्द था। यदि वैसे ही थोड़ी देर और सभा में खड़ी रही और भरी सभा में स्राव हो जाता तो ! अब तक जो अपमान हुआ वही क्या कम है ? किन्तु स्त्री की मर्यादा ?

"बेटी"—हाथ से टटोलते हुए अंधे ने प्यार से कहा था। तब तक कभी ऐसा प्यार नहीं दिखाया था। "तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हारी आँखों से आँसू गिरे तो वंश का भला न होगा। तुम जो चाहे वर माँगो। तुम जो माँगोगी वह देने का अधिकार मुझे है। मेरा बेटा दुर्योधन राजा तो है पर राज्य का परमाधिकार मेरे पास है। माँगो।"

कैसा आश्चर्य ? इस परिवर्तन का क्या कारण है ? यह सब सोचने के लिए तब समय कहाँ था ?

"आर्य, माँ को बच्चों से अधिक प्यारी वस्तु और कौन-सी चीज है ! इन्हें दाँव पर रखकर अभी हारा नहीं गया। यह सच है न ?"

"हाँ-हाँ, तुम्हारा कहना सच है।" केवल धृतराष्ट्र ही नहीं आधी सभा ने ही यह बात कही। "उन निष्पाप बच्चों पर दास-पुत्र कहलाने का कलंक नहीं लगना चाहिए। उनके पाँचों पिताओं को उनके आयुध समेत स्वतंत्र कर दें। मैंने अपने को कभी दासी नहीं माना। आपके पुत्र दुर्योधन और उसके मित्र कर्ण की न्यायविरोधी बात के केवल विरोध के लिए यह बात मैं नहीं कह रही। मैं तो स्वतंत्र ही हूँ।"

"ठीक है। अपने पति द्वारा खोयी संपत्ति और राज्य को भी माँग ले बेटी।"

"नहीं, मैं नहीं माँगूंगी।"

"क्यों, क्यों नहीं माँगोगी ?" वह आतंक महसूस कर रहा था।

"महाराज, मैं एक राजा की पुत्री हूँ। विवाह करा देने से मेरे पिता ने मुझे सदा के लिए पूर्ण रूप से छोड़ नहीं दिया। इसके अतिरिक्त अभी मेरे पति अपने आयुध समेत स्वतंत्र हो गये हैं। भिक्षा क्षत्रियोचित नहीं।"

"मेरी रानी बहू, मेरी बात सुनो। राज्य के लिए मेरे बेटे और पांडव लड़ाई करें इसका अवसर मैं कभी देना नहीं चाहूँगा। धर्मराज ने द्यूत में जो कुछ खोया है, वह सब मैंने अभी लौटा दिया। तुम छःहों अभी इंद्रप्रस्थ चले जाओ। एक क्षण भी विलंब न करो। पांचाल राजकुमारी, आज तुम्हारा बहुत अपमान हुआ है। अब मैंने तुम्हें जो वर दिया उसके प्रतिदान में मैं केवल इतना ही माँगता हूँ कि तुम शांत हो जाओ। यह सब भूल जाओ बेटी।" तभी पुत्र ने ऊँचे स्वर में 'पिता जी' कहा। इस पर पिता ने डाँटा, "पिता जी भी नहीं, माता जी भी नहीं। चुपचाप मुँह बंद करके बैठे रहो।" फिर भी सभा छोड़ते समय दुर्योधन और उसके पीछे जाने वाला कर्ण दोनों ओर से यह कहते हुए चले गये, "स्त्री के कारण बचने की नौबत आ गयी।"

"जुए में जीत गये तो पित्त बढ़ जाता है और हार गये तो पागल हो जाता है।" कृष्ण का यह कथन सत्य था।

नगर से जाते समय बराबर सिर नीचा किए बैठा, यह आधे रास्ते में रात को डेरे में सोया था कि अचानक उठकर बैठ गया और कहने लगा : "मैं अभी वापस जाता हूँ। फिर से खेलने को ललकार कर मैं उसे हराता हूँ। हस्तिनापुर को दाँव पर रखवाकर उसे जीत लूँगा।" पास ही के शिविर में सोये अर्जुन को भी इसने पागल बना दिया। राजसूय करने वाले हम लोगों को यह अपमान सहना होगा ? यदि हम उसे जाकर फिर से न हराएँ तो हमारा पांडु-पुत्र होने के गौरव की क्या गति बनेगी। अब मुझे समझ में आया उसने हमें पाँसों में ही धोखा दिया। उन पाँसों में ऐसे छेद किए कि वे ठीक से पड़ते ही न थे। मैं कहूँगा वे पाँसे नहीं चाहिएँ, दूसरे मँगवाओ। अथवा मेरे लाये पाँसों से खेलो। देखता हूँ वह कैसे जीतता है।" इसकी ऐसी पौरुष भरी बात को अर्जुन भी मान गया। पता नहीं भीम कहाँ जाकर सो रहा था। इतने में धृतराष्ट्र द्वारा दुबारा जुआ खेलने को भेजा निमंत्रण लेकर दूत आ पहुँचा। यह भी कैसे धड़धड़ाता हुआ चल पड़ा। पीछे-पीछे अर्जुन उसके पीछे-पीछे रथ में भीम के साथ मैं भी।

भीम की भी बुद्धि क्यों भ्रष्ट हो गई थी ? उसे इस बात का ज्ञान न था कि जुए के बुलावे पर जाना ठीक था या नहीं। यह समझने की क्या उसमें बुद्धि नहीं थी ? जैसे युद्ध में वीरता दिखाई जाती है, उसी प्रकार जुए में भी शौर्य न दिखाया जाए तो अपयश ही मिलता है। यह बात न केवल उसके मन के कोने में बैठी थी अपितु तब तक मेरे मन में भी थी, जब तक कृष्ण ने सतर्क करके उसका मर्म नहीं बताया। उसके पागलपन में क्या छिपा था ? क्या मुझे भी खेलना आता है यह दिखाने का घमंड था ? अथवा स्त्री के कारण बच गया इस नाते से बचने के लिए, स्वयं खेलकर जीता हूँ यह कहलवाने का अहम् उसमें रहा होगा ? अब तक उसने किसी से भी मुंह खोलकर कहा नहीं। वनवास के बारह वर्ष में भीम ने उसे कितनी ही बार कड़वी बातें नही सुनाईं ? कृष्ण ने तो सीधा ही पूछा था। उसे भी उत्तर नहीं दिया। मौन एकदम मौन, यहाँ तक कि पास लेटकर ज़ोर से साँस भी नहीं ले रहा है। ऐसा मौन। सभी में अपने भाइयों का, अपनी पत्नी का जो अपमान हुआ उसकी तुलना में पत्नी के द्वारा बच गया कहलाना क्या अधिक अपमानजनक बात थी ? 'यह कैसा धर्मज्ञ है ?' कहकर उसने अपनी आँखें मूंद लीं। जम्हाई आयी। अब मुझे सो जाना चाहिए। कितने दिन से यही सोच-विचार और चिंता उमड़ती चली आ रही है। यही मेरी परछाईं बन गयी है। बेकार की बातें मन में उठती हैं। सोचकर उसने आँखें बंद कर लीं। वन जाने के बाद जब कृष्ण हमसे मिलने आया था। तब उसने कहा था—वह वेद की बात थी। जुए में हारने वाला संसार को संबोधित करता हुआ कहता है :

अक्षैर्मादीव्यः कृषभित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कि तव तत्र जायातस्मे विचेष्टे सवितायभर्यः॥

पाँसे से जुआ मत खेल, खेती कर, कृषि से प्राप्त धन को सबसे बड़ा मानकर प्रसन्न रह, उसी से गाय, उसी से पत्नी मिलेगी। यह बात मुझे स्वयं सविता देव ने बतायी है। दुर्योधन की सभा में यदि कृष्ण होता तो उसे सही उत्तर देता। प्रातः आँख खोलने के समय से ही वेदविदों के साथ समय व्यतीत करने वाले धर्मराज को क्या कृष्ण की कही वेद की बात मालूम न थी ? कृष्ण ही ठीक है। सदा धर्म की दुहाई नहीं देता। पर उसे वेद का जितना ज्ञान है उतना इनमें से किसी को नहीं। उसकी भाँति इनमें से कोई भी वेद की व्याख्या नहीं कर सकता। उसके समान विवेक इनमें नही। प्रातः उसके यहाँ जाना है। फिर से जुए की याद आ गयी। मन भीम और अर्जुन की तुलना करने लगा। "इस सभा में हमें इतना अपमानित करने वाले कर्ण और उसके अनुयायियों का वध करूँगा। युद्ध में मैं इन्हें अवश्य मारूँगा। चाहे यह अचल हिमाचल ही विचलित क्यों न हो जाए, चन्द्र अपनी शीतलता खो दे, सूर्य की प्रभा नष्ट हो जाय, पर आज से चौदह वर्ष बाद दुर्योधन यदि हमारा राज्य वापस नहीं करता तो मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके रहूँगा।"

"अर्जुन, लात खाए कुत्ते की भाँति प्रतिज्ञा मत कर, सिंह की भाँति कर। यह राज्य वापस करे या न करे। मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं इनका वध निश्चय ही करूँगा। दुर्योधन की जाँघ चीर डालूंगा। दुःशासन की अंतड़ियाँ बाहर निकालकर उसका रक्त पी जाऊँगा। तू भी ऐसी ही प्रतिज्ञा कर।"

"पर भीम, अगर ये अपनी जुए की शर्त न तोड़े तो ?"

"वे कुत्ते जैसी बुद्धि वाले है या कुतिया जैसी बुद्धि वाले ! मैं वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता। मेरी प्रतिज्ञा, मेरी है।"

"अरे ओ शकुनि ! मेरी पत्नी का तूने अपमान किया। तू युद्ध में यदि मेरे सामने पड़ गया तो तुझे बिना मारे नहीं छोड़ूँगा।" यह बात सहदेव ने कही थी। तभी नकुल ने भी कहा था : "अगर धर्मराज की अनुमति मिल जाय तो द्रौपदी की प्रसन्नता के लिए मैं धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार करने में पूरा सहयोग दूँगा।"

अर्जुन तुम कुशल धनुर्धारी हो, वाक्पटु भी हो, पर कायर हो। तुम्हारी धनुर्विद्या का कौशल पिता के मुख से सुन-सुनकर मैं तुम्हें प्यार करने लगी थी। बाद में तुम्हारी वाक्पटुता पर मुग्ध हो गयी। कैसे व्यक्ति से प्रेम करना चाहिए, यह बात स्त्री को प्रौढ़ा होने तक समझ में नहीं आती। कष्ट में फँसकर जब तक अंतःकरण हिल नहीं जाता तब तक अपने प्रिय को तौलकर नहीं देखती। भीम, मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था। तुम्हारे साथ कर्तव्यबद्ध पत्नी-सा व्यवहार करती

रही। पूर्ण मनसा एक प्रेमिका के रूप में मैं अपने आप तुम्हारे पास कभी नहीं आयी। तुम नम्रता से और वाक्चातुर्य से अनजान, सरल स्वभाव वाले हो। मैं तुम्हें समझ न सकी। पर उन दिनों को मैं कैसे भूल सकती हूँ जब मेरा मन और अंतःकरण एकदम तुम्हारी ओर उमड़ पड़ा था। हस्तिनापुर से निकलकर तीन रातें तीन दिन चलते-चलते मेरे पाँव थक गये थे। शरद की ठंडी हवा से बिवाइयाँ फट गयी थीं। मुझे सांत्वना देने की ओर तुम्हारा ध्यान ही कहाँ था? स्त्री के साथ कुशल व्यवहार की बातें करने का तुम्हें ज्ञान ही न था। तुम अपने गुस्से में ही डूबे थे। वन में जब धर्म और अर्जुन एक पर्णकुटी बनाने की बात कर रहे थे तभी तो किमीर राक्षस का सामना हुआ था। उसका गर्जन सुनकर मैं चक्कर खाकर गिर पड़ी थी न? जब होश आया तब सहदेव हवा कर रहा था।

"तुम कौन हो?" पूछते हुए धर्म का स्वर सुनायी दिया।

तभी उसका स्वर सुनायी पड़ा, "तुम कौन हो?"

"हम पांडव हैं। मैं धर्मराज हूँ। मेरा भाई भीम यहीं कहीं पानी खोजने गया है। यह अर्जुन है। ये दोनों मेरे छोटे भाई नकुल और सहदेव हैं। दुर्योधन से जुए में हार जाने के कारण बारह वर्ष इस वन में बिताने आये हैं।"

'मेरे वन में आने का साहस कैसे हुआ तुम्हें? तुमने अपना नाम क्या बताया? तुम्हारे भाई का नाम क्या है?"

"मैं धर्म हूँ। मुझसे छोटा भीम है। उससे छोटा···।"

"बस, बस, मेरे भाई बकासुर का वध करने वाला भीम वही है न? तुम पाँचों को मार डालूँ तब ही हमारा पर्व मनेगा। मेरे भाई की आत्मा को शांति मिलेगी।" कहते हुए उसने पास पड़ा एक बड़ा-सा गोल पत्थर उठा लिया। उसकी तेजी देखकर युधिष्ठिर का मुँह खुला-का-खुला ही रह गया। अर्जुन ने उसके हाथ पर तीर चलाया भी पर जंगली हाथी जैसे व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता। तभी पीछे से एक पेड़ का तना तोड़ने का शब्द हुआ। वह तुम्हारी आवाज़ थी। आँधी के-से वेग से आकर तुमने उसके पत्थर फेंकने से पूर्व ही उसे तने से मारा। तुम्हारी स्फूर्ति शेर या सिंह के बराबर थी। जान की परवाह किये बिना आगे बढ़ने का क्रोध था। यह स्फूर्ति, युद्ध-चतुर और बाण चलाने में दक्ष लोगों में कहाँ से आएगी? तुमने कितनी जल्दी उसे शेर की भाँति पकड़ लिया। बिना गरजे तुमने उसकी बगल में हाथ डालकर उसकी बाँहें मरोड़ डालीं। वह दर्द से चिल्ला पड़ा। छुड़ाकर उठते ही गरज पड़ा। जब वह फिर से तुम पर टूटा तो तुमने किस फुर्ती से उसे पकड़ लिया। धरती पर पटककर गिराया और कमर पर घुटना रखकर दबा दिया। उसने तुम्हारी कोहनी को चबाना शुरू कर दिया। रक्त और मांस बाहर बहने लगा। फिर भी तुमने अपनी बाँह से उसकी गर्दन दबा दी। उसकी साँस रुक गयी। ऐसे वन्य शेर की तरह की लड़ाई मैंने

पहले कभी नहीं देखी थी। तुम मल्ल हो, मैं यह जानती थी, पर तुम शेर हो, यह मैं नहीं जानती थी। तुमने बक और हिडिंब को मारा था, यह मैंने सुन रखा था। पर राक्षसों को, उनके स्वभाव को अपनी आँखों से नहीं देखा था। साँस रुकने पर जब उसके हाथ-पाँव ढीले पड़ गये तब उसे चित करके तुमने क्यों उसकी छाती पर प्रहार करके उसकी पसलियाँ तोड़ दीं। पसलियाँ टूटने के बाद उसकी छाती क्यों फाड़ डाली ? क्या तुम नहीं जानते थे कि वह मर चुका था ? "भीम, छोड़ दो, छोड़ दो। वह मर गया है।" अर्जुन का यह कहना गुस्से में भरे तुम्हारे कान क्या नहीं सुन सके ? यह सब करना भी तुम्हें याद नहीं रहा। बाद में मेरे याद दिलाने पर भी तुम्हें याद न आया। मैं जानती थी कि तुमने ऐसा क्यों किया। तब से कृष्ण का सम्पूर्ण हृदय तुम्हारी ओर उमड़ पड़ा। अर्जुन के सुभद्रा को लाने के बाद मेरा हृदय शून्य हो उठा था। वह एक अंधी गुहा बन गया था जिसमें न कोई बैठने वाला था और न पूछने वाला। वहाँ से अर्जुन की मूर्ति के विसर्जित हो जाने के बाद मैं यह कल्पना भी न कर सकी थी कि किसी दूसरे को वहाँ प्रतिस्थापित किया जा सकता है। मैं यह सोचकर दुख में डूबी थी कि द्रौपदी हतभाग्या है, पति से परित्यक्ता है। जब ऐसी बेहाल थी कि तुम्हारा जैसा योग्य भी मेरे लिए है या नहीं, यह भी मैं नही जानती थी।

यह तुम्हें कैसे बताऊँ ? इस कृष्णा के लिए कर्तव्य का बंधन था, व्रत का बंधन था, धर्म का बंधन था। वन भेजने को आई सास ने पेड़ के पीछे ले जाकर अपने झुके शरीर की छाती से मुझे लगाकर आँसू गिराते हुए फिर से कहा था : "बेटी, धर्म ने जुआ खेलकर अविवेक का कार्य किया है। यह समझकर उसका तिरस्कार मत करना। अब तेरे मन में भीम के प्रति अधिक आसक्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। पर पाँचों पर समान रूप से प्रेम दिखाने का व्रत मत भूलना। पाँचों उँगलियों की रक्षा करना।" तभी पीछे-पीछे आए विदुर ने भी चारों भाइयों से यही बात कही न? "कोई भी धर्म से कठोर बात न कहना। तुम सबकी एकता का केन्द्र वही है।"

मैंने अर्जुन को सर्वस्व समर्पित किया था। पर उससे मुँह खोलकर नहीं कहा था। चार रातों के बाद उससे मिलते ही सारी रात मेरा शरीर, हाथ, बाँहें, मुख, आँखें आदि मौन रहकर भी सब कुछ कह देते थे। पर वनवास में कठोर ब्रह्मचर्य था। तुम्हारे लिए और सबके लिए। वनवास का वह अनिवार्य अंग था। द्रौपदी को और द्रौपदी के हाथ थामने वाले इन पांडवों को ऐसे बुरे दिन दिखाना ही दुर्योधन का उद्देश्य रहा होगा। तेरह वर्ष बीतते-बीतते पांडवों का यौवन ढल जाएगा और द्रौपदी की सामर्थ्य समाप्त होकर जीवन निरर्थक हो जाएगा। क्या दुर्योधन की यही योजना रही होगी ? पाँच वर्ष की अपार समृद्धि। बाद में, प्रणयहीन बारी के दिन। काम को प्रौढ़ता से स्वाद लेकर उपभोग करने के सही दिनों में, मध्यपूर्व आयु में वनवास और अभाव। तभी इस कृष्णा में सच्चा प्रेम अंकुरित

हुआ। यह उसे बता पाना संभव न था, वह अनाड़ी वैसे समझ पाने वाला भी न था। परंतु कृष्णा विकसित होते प्रेम के लिए बंजर भूमि न थी। राज्य रहते समय भीम की सेवा को दास-दासियाँ थीं। वही भीम मेरी सेवा को मिला। उसी के शिकार करके लाये मांस को पकाकर, उसके लाये कंदमूल पकाकर उसे खूब भरपेट खिलाकर मैंने अपने हाथों को धन्य किया। दोपहर की गर्मी में पेड़ की घनी शीतल छाया में अपनी गोद में उसका सिर रखकर सुलाकर इन जंघाओं को सार्थक किया। 'भीम, कहीं से सौगंधिक, पुष्प की सुगंध आ रही है।' कहते ही, 'कृष्णा, तुम्हें वह पुष्प पहनने की इच्छा हो रही है? ठहरो, मैं लाता हूँ।' कहकर उस ओर की बहती हवा की ओर काँटे-झाड़ियाँ लाँघता, सामने आते साँप और कृमिकीटों से बचता चार-चार ढाक के पत्ते भर-भरकर लाकर देता था न! वह फूल पहनकर यह केश गर्वित हुए हैं न? प्रेम की सूक्ष्मता को न समझ पाने वाला भीम! मेरे इशारे को उसके अतिरिक्त और कौन-कौन समझ सकता है? चलते हुए मेरे पाँवों में दर्द होने लगे या काम करते-करते मैं थक जाती, दुख उमड़ने से म्लान हो जाती तो जैसे वह समझ जाता था, वैसे और कौन समझ सकता है? वनवास के पूरे बारह वर्ष मैंने केवल उसी के साथ काटे। हमारी सभी दुर्गतियों के मूल कारण इस धर्म ने मुझसे आँख-से-आँख मिलाकर बात करना तक बद कर दिया। उसका मन रखने को यदि मैं स्वयं बात करने का प्रयास करती तो भी वह वैसा ही बना रहता। सुभद्रा को लाने के बाद से अर्जुन ने जब प्रेम का नाटक जारी रखा तो मैंने स्पष्ट कह दिया कि यह केवल नाटक भर है और अपना मुंह मोड़ लिया। तब से अर्जुन का व्यवहार मेरे साथ केवल नाममात्र को रह गया। नकुल, सहदेव मुझसे सेवा कराने में हिचकिचाते थे। मेरी सारी सेवा केवल भीम तक रह गयी। मैंने सास के सम्मुख लिये व्रत का भी उल्लंघन किया। अन्य चारों पांडव जान गये थे कि पांचाली का प्रेम समान नहीं रहा। जब तक इच्छा समान न हो, तब प्रेम का समान रहना कैसे संभव है? राज्य दे दें या न दें पर इनका वध करना है। मेरे हृदय की यह इच्छा पूर्ण करने को केवल भीम ने ही प्रतिज्ञा की थी। दूसरे किसके हृदय में यह दृढ़ निश्चय था। जब दूसरा कोई पत्नी पर हाथ रखे तब बिना मीन-मेष के, मन में बिना सोचे-विचारे, सहज रूप से क्रोधित होने वाले का प्रेम कितना गहरा हो सकता है? स्वयं अपमानित होने पर भी क्रोधित न होने वाला भीम पत्नी का किंचित् अगौरव सहन नहीं कर सकता। भार्या प्रेम का इससे बढ़कर और कौन-सा साक्ष्य चाहिए? जब जयद्रथ मुझे उठाकर ले जा रहा था; कीचक ने जब जबरन मुझे पकड़कर बलात्कार करने का डर दिखाया, तब भीम में कैसा सहज क्रोध भड़क उठा था? भविष्य के परिणामों की चिंता किये बिना वीर-क्रोध और किसी में तो दिखायी नहीं पड़ा। जो हुआ वह अपना अपमान मानकर भड़का नहीं। छियालीस वर्ष का जयद्रथ किसी स्वयंवर में जा रहा था। साथ में दो-तीन राजा भी थे। जंगल की

सीमा तक रथ और घोड़े भी साथ थे। चौंतीस वर्ष की पत्नी वाले को भी स्वयंवर में जाने की चाह थी। सुभद्रा का अर्जुन के सामने यह शर्त रखना ठीक ही था, 'मेरे साथ विवाह के बाद तुम किसी स्वयंवर में नहीं जा सकोगे। हारे हुए राजा से भेंटस्वरूप लड़कियाँ स्वीकार नहीं कर सकते।' समस्त आर्य राजाओं पर यह बंधन लगाना चाहिए। वह अवश्य राह भूलकर नहीं आया था। उसने मेरे रूप की गाथा सुन रखी थी। तब तक उसने मुझे देखा न था। जंगल में जहाँ रथ चलना संभव न हो पाया वहीं रथ छोड़कर अपने कुछ अंगरक्षक साथ लेकर वहाँ आया, जहाँ हम थे। संबंधी तो था ही। गांधारी की अंतिम पुत्री दुश्शला का पति। क्या वह नहीं जानता था कि कुशलक्षेम पूछने आने पर धर्म अच्छी तरह ही उसका सत्कार करेगा? उसने पहले अपने मित्र कोटिकास्य के हाथ कहलवा भेजा। जीजा आया है। पांडव आकर उसका स्वागत करें। पाँचों पांडव शिकार पर जा चुके थे। पर्ण-कुटी में मैं अकेली थी। यह पता चलते ही वह अकेला ही आ गया। मुझे देखते ही वह पागल हो उठा होगा। पैंतालीस को पहुँचने वाली स्त्री के रूप पर चालीस के राजा का मन वश से बाहर हो गया? इसके डेढ़ वर्ष बाद की ही तो बात है? विराट-नगर में कीचक प्रणयोन्मत्त होकर गिड़गिड़ाकर याचना करने पर असफल होकर बलात्कार करने आया था न? मुझे लगा यह कैसा सत्यानाशी रूप है। आज भी पच्चीस वर्ष का पुत्र है कहने पर कोई विश्वास नहीं करता। लोग कसम खाकर कहते हैं कि अभी तीस की भी नहीं। कृष्णा के शारीरिक गठन और मुखाकृति में कोई ढलाव नहीं आया! चंद्रमा के समान एक पक्ष में घटकर दूसरे पक्ष में पूर्ण हो जाने की शक्ति है कृष्णा में! यह सोचकर उसने आँखें खोलीं। इधर-उधर आकाश में फैले नक्षत्रों के बीच बुढ़ापे से अपरिचित चंद्र! धूल-भरे आकाश में भी तनिक भी धूमिल न होने वाला सौंदर्य! अब वर्षा के बाद चारों ओर से स्वच्छ आकाश में यह सौंदर्य कितना बढ़ सकता है? चित लेट-कर टिकटिकी बाँधकर देखे तो आभास होता है कि चंद्रमा उतरता नहीं और वह स्वयं आकाश में जाकर उसके सौंदर्य में एकाकार हो गयी है। जयद्रथ सभ्यता भूलकर मुँह निहारता खड़ा हो गया था।

पल्लू ऊँचा करके मैं झोंपड़ी की ओर मुड़ी ही थी कि स्पर्श सुख पाने की भूख के लंपट ने उठा लिया। उसकी लंबाई के अनुसार उसका शारीरिक गठन न था। मज़बूत हड्डियों का ढाँचा था। मेरे चिल्लाने पर भी उसने छोड़ा नहीं। लिटाकर हाथ-पैर बाँधकर कंधे पर लादकर ले चला। पीठ के स्पर्श से जो सुख मिलेगा उसका स्वाद लेने को ही वह स्वयं उठाकर चला होगा। वह लंबा बाँस सरीखा चोर। याद करके हँसी आयी, खिस् से हँस पड़ी। कहीं इससे धर्म की नींद तो नहीं खुल गयी? यह सोचकर उसने बगल की ओर मुड़कर देखा। नहीं, सो रहा है, निःशब्द होकर। चिल्लाते-चिल्लाते उस दिन मेरा गला सूख गया था। वह

इतना कामातुर था कि उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। वह यदि तुरंत मुँह में कपड़ा ठूंस दिया जाता तो चिल्ला नहीं सकती थी और वहीं नाले के पास दूर्वा के परे पुरोहित धौम्य को मेरी चीख सुनायी न देती। वह चिल्लाता हुआ शिकार पर गये इन लोगों की ओर न भागता। तब तक जयद्रथ मुझे जंगल से बाहर ले जाकर और रथ में डालकर सैनिकों के रक्षावरण में भाग लेता तो क्या होता ? वह लंपट था। सूचना पाते ही उसे अपनी बहन ब्याहने वाले दुर्योधन और दु.शासन शायद दौड़े आते, अपनी बहुत दिनों की इच्छा पूरी करने। कृष्णा का भाग्य ख़राब होने पर भी इतना ख़राब नहीं था कि रसातल को ले जाता। अंत में जंगल की सीमा पार करते-करते मैं बच गयी। भीम ने मुझे बचा लिया।

"भीम, तुम मेरी बात नहीं मानते, यह जानते हुए भी तुम्हें रोक रहा हूँ। यह सच है कि यह पापी है। इसने परस्त्री पर आँख उठाई है। पर यह हमारी बहिन का पति है। इसे जान से मारना पाप है। इसके अतिरिक्त माँ गांधारी का हृदय दुख से फट नहीं जाएगा ?"

"भैया, अपनी पत्नी कृष्णा का पातिव्रत्य यदि नष्ट हो जाता तो हमारी माँ कुंती का हृदय दुख से फट नहीं जाता ?"

तब अर्जुन बोला, "भीम, तुम में और मुझ में एक ही रक्त है। नहीं तो मेरे मन में उठी बात तुम्हारे मन में अपने आप कैसे उठ आती ? इसे जीवित पकड़ लाने के प्रयास में देखो यहाँ कितने घाव लगे। इसके साथ के पाँच-छः आदमियों के हाथ-पाँव तोड़कर जान से मार डाला। शेष भाग गये। अगर इसका वहीं वध कर देते तो ये घाव भी नही लगते।" भीम उसे मार डालना चाहता था। और यह दोनों उसे बचा लेना चाहते थे। बाद में निश्चय हुआ कि उसका सिर मुँड़ा देना चाहिए। अर्जुन के तेज़ बाणों से भीम ने ही पाँच अंगुल छोड़कर उसका मुंडन कर दिया न ? धर्म ने तो जीजा जयद्रथ के लिए धर्मोपदेश झाड़े न ? अपने पुराण पर पुराण सुना डाले। वह हाथ जोड़कर क्षमा माँगकर जान बचाकर जंगल से बाहर निकला, रथ में बैठकर सिर पर कपड़ा बाँध लिया और सीधा हस्तिनापुर पहुँचा। उसने पांडवों के द्वारा किये गये अपमान का प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा अपने साले दुर्योधन को गले लगाकर की। आगामी युद्ध के लिए अपने देश की प्रसिद्ध जाति के एक सहस्र घोड़ों को स्वयं प्रशिक्षित करना शुरू किया है। अब तो वह अपनी सेना और घोड़ों सहित हस्तिनापुर पहुँच गया है। बेटे को सहायता देने आये दामाद को देखकर माँ गांधारी खुशी से फूली नहीं समाती होगी। भाई की सहायता के लिए जाने वाले पति को देखकर दुश्शाला ने उसे बहुत प्यार किया होगा। भीम के कंधे, बाँहें, माथे पर हुए घावों के निशान अभी भी शेष हैं, यह सोचते हुए कृष्णा ने करवट ली।

धूल-भरे आकाश में चंद्रमा स्थिर-सा दीख रहा है। विचार मन में घुमड़ने लगें तो नींद नहीं आती। दिन में गर्मी के कारण नींद नही आती। रात में यह क्रम चलता

है। यह रात तो ऐसे ही बीतेगी। भीम के चले जाने के बाद से दिन-रात पुरानी स्मृतियाँ ही घेरे रहती हैं। स्मृतियाँ नहीं विचार 'धत्!' कहकर उसने फिर करवट ली। उस ओर मुँह करके सोया धर्म धड़ाक से उठ बैठा, मानो कोई स्वप्न देखा हो। इसने पूछा, "क्या है?" वह बोला नहीं। इसने स्वयं उठकर सिरहाने की ओर रेत पर रखे घड़े से एक लोटे में पानी लेकर उसे दिया। गटागट पानी पीकर मुँह पोंछकर वह फिर लेट गया। गर्मी ऐसे ही होती है। शरीर का सारा द्रव्य पसीने के रूप में भाप बनकर निकल जाय तो नींद एकदम उचट जाती है। यह सोचकर इसने स्वयं भी एक लोटा पानी उँड़ेलकर पिया। 'ओह! बड़ा ठंडा है।' फिर लेट गयी। पानी पीकर लेटने के बाद धर्म को भी नींद नहीं आयी। वह मुझे स्पष्ट पता है। इससे क्यों न कोई बात की जाय। पर इससे बात करना संभव नहीं। युद्ध रोकने का प्रयत्न सफल हो जाएगा, अब भी दुर्योधन हमारे हिस्से का राज्य वापस कर देगा। 'पूरा राज्य भले ही न दे, पांच गाँव ही दे दे तो बहुत हैं।' यह कहला भेजने का इसने निश्चय कर लिया है। पर अपना और अपने भाइयों का बदला कैसे चुकेगा? राज्य न भी दे पर हमें युद्ध नहीं चाहिए। पाँच गाँव पर्याप्त हैं। उन्होने राज्य छीनकर जो अन्याय किया है, उसका भी प्रतिकार नहीं करना चाहिए। जिसे बदलना ही कठिन है उससे क्या बात की जाय? उसे मालूम है मैं क्या कहूँगी। उसका मुँह खुलते ही उसके मुँह से केवल धर्म की बदबू आएगी। बात करते ही मुझे उसपर गुस्सा आ जाता है। चिढ़ जाती हूँ। आँसू आ जाते हैं। इससे लाभ? इस जन्म में इसमें विवेक नहीं आएगा। भाग्य से भीम ने छिपकर ही कीचक का काम तमाम कर दिया। अगर इसे पता चल जाता तो आड़े आ जाता। बाद में भी कहता, 'तुम लोगों ने अपनी पत्नी को मेरे पास क्यों नहीं भेजा? तुम हमारे शत्रु हो। मैं तुम्हारे शत्रु-पक्ष को सहयोग दूंगा।' यह कहकर वह भी दुर्योधन के पक्ष में चला जाता। जहाँ काम वासना बढ़ जाती है वहाँ अंत द्वेष में होता है। कीचक ने पहले आँसू बहाते हुए प्रार्थना नहीं की थी? गिड़गिड़ाकर प्रेम की भिक्षा नहीं माँगी थी? मेरे मना करने पर उसने लात मारकर मुझे विवश नहीं किया था? इसमें मेरा दोष भी क्या था? बुढ़ापे की ओर न झुकने वाला शारीरिक गठन और मुखाकृति? वह मुझ से आयु में छोटा था। रिश्ते में सुदेषना का भाई था। लगभग चालीस-पैंतालीस के बीच का रहा होगा। मुझे देखकर किस पुरुष का मन चंचल नहीं हो उठा, कृष्ण को छोड़कर? दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक सभी तो ऐसे हैं। सुंदर स्त्री को कभी पुरुषों के सामने आना ही नहीं चाहिए। सदा अंत:पुर की चहारदीवारी में बंद रहना चाहिए। स्त्री के मना करने पर पुरुष को चुप नहीं रहना चाहिए? लगता है केवल कृष्ण का मन अपने वश में रहता है। उसके सामने बैठकर मैं अकेली कितनी ही बार बात कर चुकी हूँ। उसकी आँखें, मन और ध्वनि में कभी अस्वाभाविकता नहीं लगी, कभी लड़खड़ाई नहीं। मेरे स्वयंवर में भी आया था, पर

धनुष उठाने के लिए उठा ही नहीं। वह अर्जुन की भाँति धनुर्विद्या में निपुण है। अर्जुन का समवयस्क है। फिर भी उसमें मुझे जीतने का मन क्यों नहीं हुआ ? ऐसा नहीं लगता कि उसे भय था कि इतने लोगों के सम्मुख धनुष झुका न पाने पर अपमान होगा ? कुछ प्रसंगों में हार जाना अपमान नहीं। कहता है कि हार शांति से स्वीकार कर लेनी चाहिए। फिर भी स्वयंवर में इस कृष्णा को जीतने के लिए सामने न आने वाला एकमात्र क्षत्रिय वही था। आजकल यहीं है। कल उसे बुलाकर बात करनी चाहिए। मन को थोड़ा-बहुत धीरज मिलेगा। यह सोचकर उसने करवट ली तो फिर वही यादें।

दूसरों के घर में दासी बनकर मैंने कितने कष्ट झेले। मेरे रूप पर मोहित होकर कीचक ने तंग करना शुरू किया। उमड़ते हुए प्रवाह के सामने बाँध बाँधने से प्रवाह बाँध को तोड़कर बहने लगता है। यादों का भी स्वभाव ऐसा ही है। अज्ञातवास से वनवास अच्छा था। नागरिक भोजन, वस्त्र और आवास न होने पर भी स्वतंत्रता तो थी। कभी दासता न करने वाली मुझको जब दासी बनना पड़ा तो इससे बढ़कर और क्या दुख हो सकता है ! सुदेषणा, क्रूर स्वामिनी न थी। स्वामिनी की क्रूरता से अधिक उसकी दया मेरे मन में हीनता उपजाती। जन्म से दास बने सहस्रों के हृदयों में पता नहीं क्या भावनाएँ रहती हैं। प्रत्येक राजा की सेवा में लगी सुन्दरी दासियाँ सोचती रहती हैं कि उस राजा का कटाक्ष हम पर हो तो हमारा भाग्य बदल जाएगा। उनके मन भी कैसे होंगे ? अज्ञातवास तो दूसरा ही जन्म था। अपना पुराना जीवन, वृत्ति, सम्बन्ध, इन सबको—यहाँ तक नामों को छोड़कर नये नाम धारण करके जीवन आरम्भ करना पड़ा। महारानी कृष्णा मालिन सैरंध्री बनी। हाथी को पछाड़ने वाला भीम क्षत्रिय के घर में रसोइया बना और अपना नाम बल्लव रख लिया। शिखंडी का वेश धारण कर अर्जुन लड़कियों को नृत्य सिखाने के लिए वृहन्नला बना। नकुल विराट के घोड़ों का काम सँभालकर ग्रंथिक बना। सहदेव गोपालक बना और तंत्रिपाल नाम रखा। नये नामों से सभी दास बने। खैर, दुर्योधन ने सबको दास बना दिया। धर्म तो कंक नाम रखकर ब्राह्मण के वेश में विराट की सभा में धर्म और नीति बताने वाला कथावाचक बन गया। इसके भाग्य के क्या कहने ! विराट को भी पाँसे और जुए की लत थी। इसे तो पहले से ही थी। वनवास के बारह वर्ष में जुए से सम्पर्क था ही नहीं। मेरा यह समझना ग़लत था कि इसकी आदत छूट गयी। पहले-पहल इसने विराट के सहायक के रूप में शुरू किया। बाद में साथ खेलना शुरू कर दिया। सुबह, दोपहर, रात का ध्यान ही न था। उसे भी खेल का नशा चढ़ा दिया। मैंने यह सुना अवश्य था कि जुआरी, शराबी, व्यभिचारी चाहे कहीं से, किसी भी देश में चले जाएँ, तीन घड़ी में समान लत के लोगों का पता चलाकर मित्र बन जाते हैं। अज्ञातवास के दिन थे। मुझे ऐसा दिखाना था मानो इससे

कोई सम्बन्ध न हो। इसमें यह ढाढस भी रहा होगा कि इसे फटकारूँगी नहीं। पर यह विराट का आश्रित था। आश्रयदाता चाहे जितना भी जीते वह अपना ही जीतता है। यह जो जीतता वही कमाई थी। जुए में राज्य खोने वाला यह चार पैसे जीतकर फूला नहीं समाता होगा। भीम ने मुझसे पहले ही कह दिया था, अज्ञातवास बीतने पर हमारा राज्य वापस मिल जाने के बाद यदि यह अपनी इस लत को फिर से शुरू करेगा तो मैं इसके दोनों हाथ और दसों उँगलियाँ काट डालूंगा। इसके परिणामस्वरूप यह अंगहीन होकर सिंहासन पर बैठने के हक से वंचित हो जाएगा, तब मैं प्रतिविंध्य को सिंहासन पर बिठाऊँगा। अन्त में कहीं इसकी दशा ऐसी ही तो नहीं हो जाएगी। अपनी दुर्गत भूलकर उसने एक वर्ष जुए के सुख का भोग किया। सदा बड़ी-बड़ी नीति की बातें बघारता था। इसके सामने कीचक ने मुझे लात से मारा तो भी यह मुझे शांति का उपदेश देता रहा। उसने कितनी ज़ोर से लात मारी थी! कामोद्रेक का शमन न होने पर मनुष्य को जितना क्रोध आता है उतना शायद ही कभी आता होगा।

"सैरंध्री, ज़रा शांति से रहो, अब अपनी स्वामिनी के पास जाओ, उतावली मत बनो।" कहकर किनारे हो गया था न? क्रोध में आकर अपने अज्ञातवास का रहस्य खोलना नहीं चाहिए। किंतु पत्नी के सम्मान पर ऐसी आँच आई देखकर भी केवल इतना कहकर पाँसे खेलने गया न? यदि भीम कीचक और उसके दस भाइयों का वध न करता तो कृष्णा का मान-मर्यादा का क्या होता? जिस रात भीम ने उन सबको मारा उसके दूसरे दिन ही सुबह, सुदेषणा और विराट कितने डर गये थे! और उसने कहा था, "बहन, हाथ जोड़ती हूँ। तुम हमारा घर छोड़कर चली जाओ। हाँ, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध हम तुम्हें जाने को नहीं कह रहे हैं। तुम जब चाहे जा सकती हो। पर मेरा, मेरे पति और बच्चों का कुछ न बिगड़े, इतनी दया रखना।" छोटी आयु की कई दासियों ने, "उसने हमारा तो नाक में दम कर रखा था। तुम्हारे मायावी पति के कारण हमारी भी जान से बला टली।" कहकर हाथ जोड़कर अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। भीम, इतने लोगों के आशीर्वाद का बल तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम वास्तव में बलवान हो। जब वह यह सोच रही थी तभी झुर्र-झुर्र के स्वर होने लगे। उसने यों ही आँखें मूँद लीं। एक बार फिर से झुर्र-झुर्र सुनायी दी। मुर्गे के बाँग देने से पहले ही ये उड़ने लगते हैं। 'अब आधे घंटे में पौ फट जाएगी और साथ ही धूप पड़ने लगेगी।' कहती हुई उठ बैठी। दुबारा से एक लोटा पानी पीकर जब सीढ़ियों से नीचे उतर रही थी तब नीचे आँगन में ज्योतिष्मती चटाई पर सोयी दिखायी पड़ी। उसे न जगाकर वह स्नान-घर में चली गयी और नीम की दातुन चबाकर दाँत माँजने लगी। तभी विचार उठा, 'भीम, तुमने मेरे लिए निरंतर कष्ट उठाये। जंगल में मुझे कंधे पर लिये-लिये घूमे हो। मुझे अपमानित करने वाले सभी व्यक्तियों को तुमने मार डाला।

कौरवों का वध करने पर ही प्रतिकार की अंतिम किस्त चुक जाएगी। उसी के लिए राक्षसों से सहायता माँगने गये हो।' तभी उसके मन में और एक विचार उठा। उसके साथ यदि उसकी पहली पत्नी आ जाये तो ? तभी याद आया। अर्जुन जब बड़ी इच्छा से मेरे पास आया तो मैंने 'व्रत है' कहकर वापस कर दिया। गुस्से में जाकर नाग और अप्सरा कन्याओं का भोग करके आया और अंत में सुभद्रा को स्थायी रूप में लेकर लौटा। अब साढ़े तेरह वर्ष के पूरे वनवास के बाद कल रात भीम ने मुझसे अपने भवन में ठहरने को कहा। उससे भी मैंने व्रत की बात कह-कर मना कर दिया। इस ठूंठ धर्म की बारी चल रही है। फिर भी मेरे लिए व्रत है। भीम गुस्सा कर गया होगा। वह यदि अपनी सही जोड़ी की और बराबरी की शक्ति वाली तथा डील-डौल वाली सालकटंकटी को साथ ले आये तो ? नहीं, भीम अर्जुन जैसा नहीं। यह सोचकर उसने अपने को दिलासा दिया। मुंह धोने पर भी थकान नहीं मिटी। एक चटाई बिछाकर पड़े रहने का मन हुआ। बहुत जम्हाइयाँ आ रही थीं। पास ही वाले अपने बच्चों के भवन में गयी। सारे बच्चे छत पर सोए थ। वहाँ भी मक्खियाँ भिनभिनानी शुरू हो गयी होंगी। फिर भी सीढ़ियाँ चढ़ गयी। सभी एक पंक्ति मे प्रगाढ़ निद्रा में सोये थे। उनकी चटाई के एक सिरे पर वह भी लेट गई। ठंडी हवा बहने लगी। धूप फैलने को थी। थकान के कारण उसे ऊँघ आ रही थी। उस ऊँघ में भी भीम की याद सता रही थी। अस्पष्ट रूप में मन बह रहा था, चाहे पहली पत्नी को ले आये या चाहे और दस को ले आये, परंतु उसकी जाँघ तोड़ डाले और उसकी छाती फाड़ डाले। बस मुझे इतना ही चाहिए। चाहे तो मैं अपने बच्चों के साथ जंगल चली जाऊँगी। यह सोचते समय नीचे से ? कहाँ से ? रास्ते में या उसके भवन के पास से ? अर्जुन का स्वर सुनाई दिया।

"क्या कहा ?"

"वे रातों-रात दो गाड़ियाँ जोतकर चले गये।" यह सेवक या सारथी का उत्तर था।

"तुमने ही तो बताया था कि वह मान गया था।"

"वे कहते थे, हमें बाणों की नोकें बनाना आता नहीं, केवल कुंडियाँ, हल की फाल, गाड़ियों की कीलें और जुए की पट्टियाँ बनाते हैं। तब मैंने कहा था कि तुम इतने निपुण हो, क्या बाण की नोकें नहीं बना पाओगे ? बनाओ न। मेरे ज़ोर देकर कहने पर उन्होंने विनयपूर्वक 'हाँ' कह दिया। तभी मैंने तुम्हें लौटकर बता दिया था।"

"जबान देकर फिरने वालों को क्या अश्वारोहियों को भेजकर पकड़ा नहीं जा सकता ? इस पाँच-छः कोस के भीतर ?"

"अर्जुन भैया, वैसे ही वे लोग तो बनजारे हैं। सच में उन्हें भी यह काम

आता न होगा अथवा यह सोचकर भाग गये हों कि हम बिना मज़दूरी दिये ही उनसे काम लेना चाहते हैं। अब उन्हें पकड़ लाने को भेजने के लिए हमारे पास इतने घुड़सवार कहाँ हैं ? और भी कितने ही देशों को दूत भेजने हैं।" यह नकुल का स्वर था।

इसके बाद निस्तब्धता छा गयी। कुछ देर बाद जूतों की चर्र-चर्र की आवाज़ सुनाई दी। लोग स्नान के लिए तालाब जा रहे होंगे सोचते-सोचते द्रौपदी को नींद आ गयी। गहरी नींद। उस गहरी नींद में भी भट्टियों के घनों की ठन्-ठन् की आवाज़। उसने करवट ली और सो गयी।

समाचार मिला कि यादवों की सेना की सहायता माँगने दुर्योधन द्वारका गया है। उपप्लाव्य में कृष्ण, धर्म और अर्जुन आदि इससे आतंकित हुए। कृष्ण तुरन्त समझ गया कि वह केवल सेना की सहायता माँगने नहीं गया अपितु वह यादवों की एकता को फोड़कर उनमें से कुछ प्रमुखों को अपनी ओर कर लेने के उद्देश्य से ही वहाँ गया होगा। प्रात:काल ही समाचार मिला था। दोपहर तक सोच-विचार कर कृष्ण ने निश्चय कर लिया।

अज्ञातवास की अवधि समाप्त होने के बाद विराट की पुत्री का उसके भांजे अभिमन्यु से विवाह पक्का होने का सन्देश मिलते ही वह सुभद्रा और अभिमन्यु के साथ चला आया था। इस बात को चार मास बीत गये थे। अब यह बात सताने लगी कि इतने दिन यहाँ क्यों ठहर गया। बड़े भैया बलराम के मन में क्रोध है। अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का ढंग बलराम अभी तक भूला नहीं। उस विवाह के अतिरिक्त जो कुछ मैंने किया है, उसका विरोध वह न करे तो उसे अपना बड़प्पन दिखाने का सन्तोष नहीं मिलता। इसलिए यदि वह जानबूझ कर शत्रुपक्ष की ओर झुक जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। कृष्ण को यह एक क्षण में सूझ गया कि इस बारीकी को जानकर ही दुर्योधन वहाँ गया है। इसलिए उसने धर्म और अर्जुन से कहा कि द्वारका जाकर उसे स्वत:अपने कुल की सारी सहायता इस ओर कर लेनी चाहिए। यह निश्चय हुआ कि संध्या को धूप ढलने के बाद यात्रा आरंभ करनी चाहिए। यात्रा के लिए कृष्ण के ही रथ थे। इसके अतिरिक्त उसके अंगरक्षकों को मिलाकर कुल बीस रथ और थे। जहाँ कहीं कृष्ण जाता, उसके साथ धनुष-बाण, भाले, बरछी आदि से सज्जित अंगरक्षक भी चलते। प्रयाण की आवश्यक वस्तुओं को रथों में भरने की उसने आज्ञा दे दी।

नगर के उत्तर की ओर तालाब तक जाकर विदा करने के उपरान्त धर्म के मन में एक और बात उठी। सुभद्रा के विवाह के बारे में बलराम को असन्तोष हो सकता है, परन्तु यदि सुभद्रा स्वयं आकर भाई के समक्ष दो बूंद आँसू गिराए तो उसका मन बदल सकता है। वैसे भी इस घटना को सत्रह वर्ष बीत चुके हैं।

इसलिए सुभद्रा भी कृष्ण के साथ जाती तो अच्छा रहता। यह सोचते-सोचते रात हो गयी। वह बहुत देर यही सोचता रहा और रात होते-होते उसने निश्चय कर लिया कि प्रातः अर्जुन ही उसे लेकर द्वारका चला जाय। कड़ी गर्मी पड़ रही है। घोड़े भी थक जाएँगे। पाँव जला देने वाला पहाड़ी रास्ता। बीच-बीच में पानी का भी कष्ट है। यात्रा में कम-से-कम बीस दिन तो लग ही जाएँगे। फिर भी उनका हो आना ही ठीक है। यह सोचता हुआ वह आधी रात को ही छत से उतर आया और दासी को जगाकर अर्जुन को बुलवाया। अर्जुन, भीम जैसा नहीं। जब चाहे वह जाग जाता है। जितने दिन चाहे बिना नींद के रह सकता है। अपने भवन में वह छत पर सुभद्रा के पास सोया था। भाई का बुलावा सुनकर उतर आया। दोनों भाइयों ने धर्म के भवन के पिछवाड़े के उद्यान में बैठकर बात की। अगले दिन सवेरे जाने का भी निश्चय हो गया। रथ, घोड़े और अंगरक्षकों को तैयारी करने का आदेश देने चला गया।

जम्हाई लेते हुए धर्म ने कहा, "मैंने उस ओर के तो वे देश देखे नहीं पर बहुत दूर है। तुमने ही बताया था कि राह में आभीरों का प्रदेश मिलता है। साथ सुभद्रा भी जा रही है। सावधानी से जाना। अंगरक्षक घोड़े ज्यादा रहें। कम-से-कम पचास अवश्य ले जाओ।"

"जब 'विजय' साथ रहेगा तो कोई क्या कर सकेगा? आर्य स्त्री पर आँख उठा कर देखने वाले किसी को भी मैं जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

"वह तो स्वतः सिद्ध सत्य है फिर भी अंगरक्षक रहें। जितना आटा था वह सारा कृष्ण की यात्रा के लिए भेज दिया गया। ऐसा लगता है कि अब पर्याप्त आटा नहीं है। पिसवाना होगा। प्रातः से ही तैयारी शुरू कर दें तो संध्या को प्रयाण कर सकते हैं।"

"तुम जाकर सो जाओ। मैं सब व्यवस्था देख लेता हूँ," कहकर अर्जुन उठ खड़ा हुआ।

धर्म अपनी छत पर जाकर पानी पीकर लेट गया। उसे पता नहीं चला कि द्रौपदी को नींद आ रही थी या नहीं। वह पास ही सो रही थी। उसे तुरंत भीम की याद हो आयी। वह परसों गया था न? नहीं तरसों। कल तक हिडिंबा के वन पहुँच जाएगा। पता नहीं काम का क्या होगा? यह सोचते-सोचते एक और जम्हाई ऐसे आयी कि बरबस पूरा मुँह खुल गया।

प्रातः की धूल-धूसरित हवा, धूप और गर्मी में आगे छः रथ और पीछे छः रथों के बीच अर्जुन और सुभद्रा का रथ पश्चिम की पहाड़ी के बीच चला जा रहा था। प्रत्येक रथ में एक सारथी और अन्दर तीन सवारियाँ थीं। प्रत्येक रथ में दो-दो घोड़े जुते थे। अर्जुन दम्पति के रथ में तो एक ही आकार, ऊँचाई और लक्षणों वाले पाँच घोड़े जुते थे। उसमें धूप रोकने के लिए और आसानी से घूम जाने वाले खस

के पर्दे लगे थे। अगले छ: जोड़ी घोड़ों के सुमों और रथ चक्रों से उड़ी धूल में सफ़ेद घोड़ों और रथों को चलना था।

चुपचाप बैठा अर्जुन बोला : "कृष्ण ने मुझसे ठीक एक दिन पूर्व यात्रा शुरू की। तेज़ी से चलकर उसे पकड़ लें तो अपने अंगरक्षकों में से तीन-चौथाई को वापस भेजा जा सकता है। पता नहीं कहाँ-कहाँ आदमियों को भेजना है। बारह रथ और इतने सैनिक हम ही ले जा रहे हैं तो वहाँ कितनी कठिनाई हो सकती है?"

उसी समय सुभद्रा बोली : "द्वारका में यहाँ से अधिक पसीना आता है लेकिन गर्मी कम है। संध्या होते-होते ही समुद्र की ओर की हवा चलने से गर्मी कम हो जाती है। वहाँ इस देश की भाँति पंखा तवे के समान गर्म नहीं होता।"

अर्जुन ने दायीं ओर मुड़कर उसका मुख देखा। कान, गर्दन, गालों पर पसीना बह रहा था। वह बोली : "धूल तो वहाँ होती ही नहीं।" वह बायी ओर मुड़ा। पहाड़ और पर्वत श्रेणियाँ ऐसी दिखाई दे रही थी मानों गर्म राख से ढँकी हों। पहुँचने में बीस दिन लग जाएँगे। वहाँ दो-तीन दिन तो ठहरना ही होगा। घोड़ों को विश्राम चाहिए। सैनिक मेरे सामने तो हाथ-पाँव में दर्द की बात नहीं कहेंगे। यह डेढ़ मास नष्ट हो जाएगा। जब वह यह सोच रहा था तभी सुभद्रा बोली : "द्वारका में यहाँ से पहले वर्षा शुरू हो जाती है, यह सौभाग्य की बात है।" यह सुनते ही अर्जुन को ध्यान आया कि कही वर्षा आरंभ हो जाने से रास्ते खराब हो जाएँ तो यात्रा में और अड़चन आएगी। इससे डेढ़ महीने से भी पता नहीं और कितने दिन लग जाएँ। यकायक याद आया, तब वर्षा ऋतु बीत गयी थी न? सत्रह, नही-नहीं, अट्ठारह वर्ष पूर्व इसी रास्ते से इसी सुभद्रा को दायीं ओर बिठाकर इक्कीस दिन में द्वारका से इंद्रप्रस्थ की यात्रा की थी। दोनों ओर यही फैली हुई पर्वत-श्रेणियाँ थीं। तब गर्मी न थी हरियाली, फूल-पत्ते, लताएँ रास्ते पर दिखायी पड़ रहे थे। मन उत्साह से भरा था। यह दायो ओर बैठी थी। अब ज़रा स्थूल हो गयी है। तब सुभद्रा अट्ठारह वर्ष की थी, लावण्यमय मुख था। इंद्रप्रस्थ पहुँचाने तक रास्ते भर उत्साह भरा रहा। इसे लेकर आने तक मैं उसकी शक्ति नही जानता था। इसी प्रकार अट्ठारह वर्ष बीत गये। अब पहुँचाने के लिए सबके साथ सबकी तरह वह भी आयी थी। धर्म, नकुल, सहदेव, पाँचों पुत्र, अभिमन्यु और उत्तरा भी थे। उसने कहा भी था, "काम में सफलता मिले, यात्रा सुखद हो, वन्य-जन्तु, चोर-चकार, धूप, वर्षा आदि से आपकी यात्रा में कोई बाधा न आए।" बस इतना ही। आँख में आँसू नहीं आया। मुख पर चिन्ता दिखायी नहीं पड़ी। किसी दूर के संबंधी के भेजने के समान निर्विकार। बायीं ओर एक पहाड़ी खत्म होकर दूसरी दिखाई देने लगी। उसके बाद और जलती हुई नंगी पर्वत-श्रृंखलाएँ थीं। अब दस-बारह दिन की यात्रा में यही सूखा, उजाड़ दृश्य रहेगा। उसकी दृष्टि एकदम रथ के भीतरी भाग की ओर गयी। उसके चार धनुष

वहाँ रखे थे। वे लोहे के धनुष इतने बड़े थे कि अगर यह पूरे हाथ उठाकर खड़ा हो जाए तो उनकी ऊँचाई को पहुँचे। पिछले हिस्से में बरछे और बाण भरे हुए थे। इतने क्या कम हैं। आगे-पीछे छः-छः रथ और उनमें चार-चार सैनिकों की क्या आवश्यकता थी ? चाहे आभीर हो, नाग हो या राक्षस हो, उन सबके लिए क्या अर्जुन का धनुष पर्याप्त नहीं, तभी बायीं ओर की पहाड़ी के पास से कोई चीज़ भागती-सी लगी। तत्क्षण उसने धनुष चढ़ाकर भागते रथ से एक बाण छोड़ दिया। "क्या है ?" सुभद्रा ने पूछा। सारथी ने मुड़ कर देखा। "वहाँ एक खरगोश गिरा है। रथ रोककर उसे उठा ला, मेरा तीर भी लेते आना," अर्जुन ने कहा। रथ रुका। पिछले छः वाहन भी एक के बाद एक रुक गये। सारथी उस ओर गया। पिछले रथों से चार सैनिक भी उधर गये। अर्जुन की दिखायी जगह पर ही, हाँ, एक ख़रगोश गिरकर तड़प रहा था। पेट में लगा बाण वहीं अटका हुआ था। "पंजे पकड़कर लाते हुए इसके प्राण निकल गये महाराज ! भागते हुए रथ से एक भागते खरगोश पर लक्ष्य-भेदना मैंने न कभी देखा था और न सुना था। यह बड़ा चंचल प्राणी होता है। बारह रथों की गड़गड़ाहट में चुप रहता क्या ?" सारथी ने आश्चर्य से पूछा।

"उसके नज़र आते ही धनुष उठाकर छाती तक खींचकर बाण से मार दिया था। निशाना बाँधने बैठा नहीं था। बाण कहाँ लगा था ?"

"ठीक पेट पर, वह भाग रहा था ?"

"भागता नहीं तो क्या बैठा रहता ? बैठे या सोये किसी प्राणी पर विजय कभी तीर चलाएगा क्या ?"

पिछले रथ वाले ने उस ख़रगोश को भोज्य-सामग्री में ही नहीं रखा बल्कि उसकी खाल भी उतारनी आरंभ कर दी थी। लोहे की नोक से रक्त साफ़ करके उसने बाण वापस दे दिया। अर्जुन के सारथी ने रथ पर बैठकर पाँचों घोड़ों को इशारा किया। गाड़ी चल पड़ी। ज़रा वेग पकड़ने पर उसने पूछा, "विजय माने कौन है, स्वामी ?"

अर्जुन ने उत्तर न दिया। बाण से लगे रक्त के दाग़ को हथेली से साफ़ करता हुआ थोड़ी देर ऐसे बैठा रहा मानों उसने सुना ही न हो। बाद में उसने ही पूछा, "तुम किस समूह के हो ?"

"सूत हूँ। पूर्णतः सूत। दादा भी सूत था। रथ चलाना ही हमारे घराने का व्यवसाय है।"

"तुम्हारे मत्स्य देश के सूतों का केवल एकमात्र यही व्यवसाय है ?"

"मैं भी मूलतः मत्स्य देश का नहीं हूँ कैकेय देश का हूँ।"

"तो रानी के साथ आये हो ? अथवा···?"

"जी हाँ। महाराज कीचक के साथ···।" कहते हुए उसने अपनी बात बीच

ही में रोक ली।

अर्जुन उसका कारण तुरन्त समझ गया। बाएँ पहिये के नीचे एक पत्थर आ जाने से रथ झटका खा गया तो वह दायीं ओर झुका। सुन्दरी सुभद्रा को संभवतः इसका अर्थ समझ में नहीं आया। अर्जुन को लगा कि केवल उसकी मुखाकृति सुन्दर है। उसने उससे बात नहीं की। कैकेय देश में राज्य सूतों के हाथ में आ गया है। सुदेष्णा उसी वर्ग की राजकुमारी है। बूढ़े विराट को ऐसी लड़की के अतिरिक्त और कैसी मिलती? वहाँ के राजा ही ऐसे होते हैं। पूर्ण क्षत्रिय नहीं। अब सूत और कोई व्यवसाय अपनाएँगे? "रथ चलाना ही एकमात्र व्यवसाय है? तुम्हारी ओर के सूतों का?"

"नहीं महाराज, रथ बनाना, मरम्मत करना, युद्ध करना। हम में और क्षत्रियों में कोई अंतर नहीं है। हमारी ओर राजा भी रथ चलाते हैं। इस ओर की भाँति नहीं।"

"मैंने यह बात नहीं पूछी थी। रथ निर्माण, मरम्मत, युद्ध यह सब तो सूत के कार्य हैं ही। राज्य करना धर्म-विरुद्ध है। सूत का एक और भी मुख्य कार्य है। अपने आश्रयदाता राजा की विरुद, उसकी वीरता, और पराक्रम का काव्य रूप में गाकर प्रचार करना। उसे कंठस्थ करके आगे आने वाले सूतों को कंठस्थ करा देना।"

सारथी ने मुख घुमाकर अर्जुन को बड़े गौरव से देखा बाद में घोड़ों की ओर मुड़ गया। कैकेय देश के घोड़े तेज़ी से चल रहे थे। तब तक रास्ते की धूल उड़-उड़ कर उनके घुटने तक भूरे हो चुके थे। चलने से पहले उन्हें खूब नहलाया गया था। पेट और पीठ शुभ्र श्वेत चमक रहे थे। उसने सोचा आगे पानी मिलते ही घोड़ों को रगड़कर नहला देना चाहिए। अर्जुन बोला, "विजय के माने कौन हैं पूछा था न तुमने? तुम्हें पता होना चाहिए कि तुम जिस स्वामी की सेवा करते हो उसकी विरुदावली कब और कैसे आयी? सारथी का अर्थ केवल रथ चलाने वाला नहीं।"

सूर्य डूबकर अँधेरा होने को था फिर भी गर्मी कम नहीं हुई थी। पहाड़ों की आकृतियाँ अस्पष्ट होने लगी थीं। अर्जुन ने सोचा कि ऐसा पहाड़ी प्रदेश चोर-उचक्के, और डाकुओं के लिए बहुत ही अनुकूल स्थान है। तभी उसने कनखियों से दायीं ओर देखा। हिचकोले खाते रथ में सुभद्रा चुपचाप बैठी थी। गोरा रंग परन्तु वन में हवा, धूप, शीत और गर्मी के कारण सँवला जाने से वह मेरे जितनी भी गोरी नहीं लग रही। यह हिमालय के राजा का प्रदत्त रंग है। यह सोचकर उसे गर्व हुआ। एकदम से उसके मन में एक विचार आया। तब वह मन को उचित ही नहीं लगा अपितु लगा कि यदि ऐसा न किया गया तो उसमें एक कमी रह जाएगी। आगे टेढ़े रास्ते पर चलते हुए रथ सर्पाकृति के लगे। पीछे मुड़कर देखने पर पिछले रथ सर्पपुच्छ की आकृति के से लगे। यह दृश्य केवल थोड़ी देर रहा। आगे रास्ता सीधा हो गया था। यह ठीक नहीं। उसे लगा कि उसका पांच सफ़ेद

घोड़ों वाला यह राजरथ यदि सबसे आगे हो जाये और बाकी सारे पीछे रहें तो यह दृश्य पाँच फनों वाले महासर्प जैसा लगेगा। परन्तु जो विचार पहले उठा था वही बलवान हो रहा था।

"सूत, तुमने अपना नाम नहीं बताया ?"

"मेरा नाम तुष्ट है महाराज—" सारथी ने मुड़कर कहा।

"बारह रथ और अड़तालीस सैनिकों को ले आने के लिए भैया ने विवश किया। मैंने उस बारे में सोचा ही नहीं। इस अर्जुन के रहते अगरक्षकों की क्या आवश्यकता है ? अब तुम एक काम करो। मेरे इस रथ के साथ दो रथ पर्याप्त हैं। यानी कुल आठ आदमी बहुत हैं। वह भी राह में भोजन और शिविर आदि के लिए। इतने लोगों के लिए आवश्यक सामान छोड़कर शेष सामान और रथों को लौट जाने को कह दो। दो घोड़े अतिरिक्त रहें।"

"पर स्वामी, सुना है राह में तरह-तरह के लोग मिलेंगे। आर्य-स्त्री को देखते ही वे छोड़ते नहीं।"

"विजय के रहते, और विजय के हाथ में धनुष-बाण रहते, किसी के लिए संभव नहीं होगा। रथ रोककर, दूसरों से जाने को कह दो।"

"ऐसा न कीजिए, साथ रहने दीजिए—" सुभद्रा बीच में ही बोली।

"डर लगता है क्या ?" अर्जुन ने पूछा।

"केवल भय की बात नहीं। साथ में केवल दो रथ लेकर मायके जाने में कौन-सा राजगौरव है ? आर्य-पुत्र का ध्यान उस ओर गया ही नहीं था।"

अर्जुन ने उसकी ओर मुड़कर देखा। सुभद्रा के घने काले बाल चमक रहे थे। यह कितने वर्ष की होगी ? पेंतीस की हो गयी न ? विवाह के समय अठारह की थी। तब मैं चौंतीस का था, उसे याद आया। सारथी की समझ में न आया कि क्या करे ? इशारा समझकर घोड़े रुक गये। पिछले छः रथों के रुकने की आवाज़ सुनकर अगले सारथियों को आवाज़ दी। रासें खिचने के स्वर सुनायी दिये। तुष्ट ने अर्जुन के मुँह की ओर देखा। अपने धैर्य के आड़े आने वाली पत्नी से असंतोष हुआ, पर उसे लगा कि उसे असंतुष्ट करना भी ठीक नहीं। वह बोला, "ठीक है। सब चलो।" सारथी का संकेत पाते ही सब घोड़े चल पड़े। यह देखकर अगले रथ भी चलने लगे। पिछले वालों ने भी उनका अनुकरण किया।

"देखो, कल जो हमारे द्वारका के संबंधी चले थे। वे हमसे एक दिन आगे हैं। दो-तीन दिन में हम यदि उन्हें पकड़ लें तो उनके साथ जा सकते हैं। अगले रथों को ज़रा तेज़ी से चलने को कहो। उन्हें रास्ता ठीक से मालूम है न ?"

"अब अँधेरा हो चुका है। और दो घड़ी में वृक्षस्थान पहुँच जाएँगे। वह हमारे मत्स्य राज्य का अंतिम गाँव है। आगे आधे दिन की यात्रा में केवल पहाड़ और

झाड़ियों से भरा प्रदेश है। चीते भी मिलते हैं। रात को 'वृक्षस्थान' में ठहरेंगे। पौ फटते ही चाँदनी में तेज़ी से जा सकते हैं।"

"वृक्षस्थान जाकर भोजन करेंगे। मश्कों में पानी भर लेंगे। यात्रा रात-भर जारी रहे। मेरे रहते किसी का डर नहीं। बस रास्ता ठीक से मालूम रहना चाहिए। अगले रथ वाले को मशाल जलाने को कहो।"

सुभद्रा ने कुछ कहने को मुंह खोला लेकिन उसका स्वर निकलने से पहले अर्जुन ने उसकी ओर मुड़कर कहा, "डरो मत। निश्चित होकर सो जाओ। इस रथ में पर्याप्त स्थान है। दस दिन तक मैं बिना पलक झपकाए रह सकता हूँ।"

तुष्ट ने अपने से अगले रथवान से कहा कि वह अपने से अगले रथ वाले से मशाल जलाकर तेजी से चलने को कह दे। अगले रथवान को संदेश दे दिया गया। अर्जुन ने धनुष उठाकर अपनी जाँघ के सहारे रख लिया।

वृक्षस्थान पहुँचकर सबने भोजन किया। घोड़ों को चारा दिया। पेट-भर पानी पिलाया। और सुबह खिलाने को गेहूँ का दलिया भिगो दिया। अगले और पिछले रथवालों ने मशालें ठीक कीं। अंत में पहियों की धुरियों को तेल देकर सब चल पड़े। मार्ग दर्शाने के लिए उस गाँव के दो तरुण अपने-अपने घोड़ों पर उनके साथ हो लिये। ग्रामपालकों ने उन्हें आज्ञा दी थी कि वे रात का रास्ता पार कराकर वापस आयें। गाँव पार होते ही अँधेरा छा गया। पहाड़ों की अस्पष्ट आकृतियाँ महसूस हो रही थी। धूल भरे आकाश में चमकते तारे मद्धम-मद्धम टिमटिमा रहे थे। यह भाग अच्छा है। झाड़ियों के साथ-साथ छोटे-छोटे पेड़ भी हैं। दिन में हरियाली दिखायी देती है। रात को तो चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दीखता है। रथों की गति तीव्र हो गयी। हिचकोले लगने लगे पर राह में बड़े-बड़े पत्थर न थे। पहियों के जाने के निशान दिखायी दे रहे थे। सुभद्रा ऊँघने लगी। बाद में बायीं ओर झुककर उसकी बाँह पर टेक लगा ली। थोड़ी देर में उसके दायीं जाँघ पर सिर रखकर घुटने सिकोड़कर लेट गयी। सामने रखे धनुष आदि को उठाकर अर्जुन ने उसे लिटा दिया। वह आराम से पांव पसारकर सो गयी। हिचकोले नींद में सहायक हुए। अर्जुन एक बड़ा धनुष लेकर वीरासन पर बैठ गया। पास ही अर्जुन के तेज़ बाण रखे थे। उसने धनुष चढ़ाया नहीं। पलक झपकते ही जो काम हो सकता हो, उसके लिए धनुष को ढीला क्यों किया जाय? इसके अतिरिक्त और कौन आक्रमण कर सकता है? शेर, चीता, रीछ दिखायी दे तो एक शिकार मिला समझो। पर इतने रथों की गड़गड़ाहट के बीच वह भी पास नहीं फटकेंगे। कान से जो सुनाई दे अगर उस पर अचूक निशाना न लगा सके वह कैसा धनुर्धारी? मूर्खों ने समझ रखा है कि मत्स्य-यंत्र को भेदकर पांचाली को जीतना केवल आँखों के ही द्वारा किया गया लक्ष्यभेद था। नीचे पानी था। पानी में प्रतिबिंबित काठ की मछली की आकृति पर नीचे घूमते चक्र के बीच की धुरियों के बीच से बाण जाना था। पानी में बिंब तो

दिखायी दिया परन्तु घूमने वाले चक्र की ध्वनि यदि सहायक न होती तो निशाना ठीक से लगता ? शब्दबेधी का चमत्कार जब तक नहीं आता तब तक धनुर्विद्या अपूर्ण है, गुरुजी का यह कथन सत्य है। रात्रि के भोजन के समय यदि दीया न बुझ जाता तो संभवतः वह मुझे सूझता भी या नहीं ? अँधेरे में भी बिना चूके हाथ अपने-आप मुंह तक कैसे चले जाते हैं ? केवल अभ्यास के बल पर ही। लक्ष्य दिखायी दे तो उसके अनुसार बाण मारना, धनुष खींचना, दिशा का निर्धारण, बाण संचालन, लक्ष्यभेद यह सब एक क्षण मात्र में हो जाता है। घटनांश और कालक्रम एक ही क्रिया के समान होने चाहिएँ। दृष्टि, बाँहें, कलाइयाँ, उँगलियाँ जब तक एकरस न हों तब तक धनुर्विद्या में सफलता नहीं मिलती। यह बात गुरुजी सबसे कहा करते थे। सफलता केवल अर्जुन को मिली, केवल इस अर्जुन को। कितना ऊँचा पेड़ था वह। आकाश को छूने वाली ऊँचाई। सौ वर्ष से भी पुराना, पितामह के समान। उसके चोटी के तने पर पत्तों के बीच रखी लकड़ी की चिड़िया ! ध्यान से न देखने पर आँखें धोखा खा जातीं। आँखें चौंधिया देने वाली सूर्य की किरणें थीं। "राजकुमारो, तुम लोग अपने-अपने धनुष तानकर निशाना बाँधकर खड़े हो जाओ। मैं जिसका नाम लूँगा केवल वही वाण छोड़े। जिससे चिड़िया गिर गयी वही विजयी होगा। 'हूँ।' अर्जुन में एकाग्रता ही एकाग्रता थी। अभ्यास में, साधना में। यदि गुरुजी एक अंश बताते तो साधना से मैं सौ गुना प्राप्त करता था। दृष्टि, बाँहें, कलाइयाँ, उँगलियाँ सब समरस होकर एक ही क्रिया रूप में परिवर्तित हो जातीं। उठते-बैठते, सपने में भी मैं साधना किया करता। सोलह वर्ष पूरे करने से पहले ही अर्जुन की पूरी बाँह, बायाँ कंधा, दायीं ओर की छाती से निरंतर अभ्यास के कारण, कट-फटकर खून बहता, सूख जाता, फिर नया घाव बन जाता। अब तो वह सूखे चमड़े-सा कड़ा हो गया था सो आज भी वैसा ही है। यह कहते हुए उसने अपने बायें हाथ की हथेली से दायीं ओर की छाती, कंधे और बाँह को सहलाकर देखा। सूखे चमड़े के समान इतना कड़ा हो चुका है कि स्पर्श का अनुभव भी खो चुका। एकचक्रानगरी में ब्राह्मण वेश में रहते समय इन सब चिह्नों को छिपाने में कितना कष्ट हुआ। 'बेटा अर्जुन, जैसे शिष्य गुरु को खोजता है उसी तरह गुरु भी ऐसे शिष्य को खोजता है जो उसकी कीर्ति फैलावे। द्रोण के नाम को सार्थक करने वाले तुम अकेले हो। तुम और अधिक एकाग्र चित्त बनो। और अधिक साधना करो। बार-बार निशाना लगाओ। बड़े-बड़े धनुषों को झुकाओ। धनुष चलाने का इतना अभ्यास करो कि बाण चलने पर वह किसी को दिखाई तक न दे। बाण चलाने का अर्थ केवल यह नहीं कि वह लक्ष्यभेद ही करे। उसे तो कुल्हाड़े के फाल के समान काट देने वाला होना चाहिए। भविष्य में वह अर्जुन के बाण के नाम से प्रसिद्ध होना चाहिए।' यह कहकर उन्होंने मुझे गले लगाया था। उन्होंने किसी अन्य शिष्य को गले नहीं लगाया। उन्होंने कहा था, 'भविष्य में मैं धनुष चलाकर सिखा न सकूँगा। इस

प्रकार चलाने पर ऐसा होगा, बस यह बता ही सकूंगा। साधना करके तुम्हें उन सब चमत्कारों का पूर्ण अभ्यास कर लेना चाहिए।' उन्हें देखे साढ़े तेरह वर्ष बीत गये। सुना है कि स्वस्थ तो हैं पर दुर्बल हो गये हैं। उन्हें इस बात की चिंता रहती है कि बेटा क्षत्रिय स्वभाव का है। उसका मन वश में नहीं रहता है। गौ अपहरण में आये थे। उन्होंने मुझे देखा था। मैं उन्हें ठीक तरह देख नहीं सका। जैसे भी हो, द्वारका से लौटने के बाद उनके दर्शन अवश्य करने हैं। चरण स्पर्श करना है।

ऐसा लगा था कि ढलान शुरू हो गई। सूत ने घोड़ों की लगाम कसकर थामी। और रथ को धीरे-धीरे छोटे-छोटे पत्थरों पर लुढ़कने दिया। थोड़ी देर बाद समतल भूमि फिर आ गयी। रथ पहले वाली गति से चलने लगा। खस की टट्टियाँ उतारकर रख दी गयीं। चारों ओर से आकाश और बीच-बीच में पहाड़ों से अवरुद्ध दिशाएँ स्पष्ट नही थी। धूल-धूसरित आकाश के कारण नक्षत्र स्थान भी ठीक तरह नहीं दीख रहे थे। वह अपनी दायीं ओर मंद-मंद चमकते तारों को निहार रहा था। अचानक उसके मन में आया—युद्ध होने दो। उसमें ऐसा कौशल दिखाऊँगा कि समस्त आर्यावर्त में कभी किसी ने भी ऐसा कौशल नहीं दिखाया होगा। यह जानने से पहले कि अर्जुन कहाँ है, उसके बाण को वहाँ हाहाकार मचा देना चाहिए। दूर से अर्जुन के दस बाण जाकर गिरते ही समस्त सेना घबराकर अपनी जान बचाने के लिए भागती दिखायी देनी चाहिए। हाहाकार मच जाना चाहिए। सेनाएँ दिशाएँ भूलकर भागती दीखनी चाहिएँ। अर्जुन के उस कौशल को देखकर भाटों को उसकी प्रशंसा में कवित्त रचने चाहिएँ ताकि आगे आने वाली पीढ़ियाँ उसका यशगान सुन सकें। अर्जुन का नाम अमर हो जाए। आकाश में चमकने वाला अमर नक्षत्र बन जाना चाहिए : युद्ध के बाद आचार्य द्रोण को आकर मुझे गले लगाकर कहना चाहिए : तुमने मेरी कल्पना से बढ़कर अपना अस्त्र-कौशल दिखाया। जिस प्रकार वेदों में प्राचीन काल के इंद्र की प्रशंसा की गयी है, उसी प्रकार भविष्य में तुम्हारी प्रशंसा की जाए। इसके लिए ऐसे चार सूत्र बताकर मैं वेदों में जोड़ दूंगा। इंद्र से बड़ा वीर और कौन है ? 'यस्मादिंद्राबृहतः किंचनेमृते विश्वान्यस्मिन् संभृताधि वीर्या।' इंद्र का स्मरण करके ही तो योद्धा युद्ध-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इंद्र के भक्त की पराजय नहीं हो सकती। मृत्यु पास नहीं फटकती, 'कस्तं इंद्र त्वावसुमामर्त्यो दधर्षित' दाशराज्ञ के युद्ध में राजा सुदास को जय दिलाने वाले तुम्हीं हो न ? जिसुकी स्तुति से प्रसन्न होकर तुमने सुदास के शत्रुओं को परषुनी नदी में डुबो दिया था ? आगे होने वाले धृतराष्ट्रों के साथ युद्ध में जय दिलाने का श्रेय मुझे मिले। पता नहीं कितनी तरफ़ के राजा और सेनाएँ इस युद्ध में लड़ने आएँगी ? पता नहीं समस्त आर्यकुल में इससे बड़ा समर पहले कभी हुआ भी या नहीं ? ऐसे महायुद्ध की विजय यदि मेरे कारण प्राप्त हो जाए तो, इंद्र—देवकुल के इंद्र के वीर्य से मैंने जन्म लिया। जन्म से मैंने तुम्हारा नाम पाया है। इतनी कृपा करना कि यह

नाम तुम्हारे समकक्ष रहे। मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। कम-से-कम मेरी कार्ति के लिए ही यह युद्ध हो जाए। भीषण-सा महायुद्ध। ऐसी आकांक्षा करते हुए अर्जुन ने भावुक होकर आँखें पोंछी। पर्वत की ओर से सुनायी देने वाली सियार की आवाज़ और दायी ओर के ढाक के झुरमुट और पहियों की गड़गड़ाहट, घोड़ों की टापें आदि सब मिलकर भी उसकी एकाग्रता की परिधि से बाहर थे।

थोड़ी देर में चंद्रमा निकल आया। दिन की धूप में तपी पहाड़ियाँ अब अपनी गर्मी उगल रही थीं। फिर भी चाँदनी के कारण कुछ शीतलता अनुभव हो रही थी। अँधेरे में देह की चिपचिपाहट मन को अखर रही थी। अब ध्यान बाहर की मोहक प्रकृति पर लग गया। वीरासन की मुद्रा बदलकर अर्जुन अब जरा आराम से बैठ गया। धनुष को हाथ में लेकर बैठने की आवश्यकता अब महसूस नही हो रही थी। घोड़ों की शुभ्रता स्पष्ट दिखाई देने योग्य चाँदनी फैल जाने पर सूत ने मुड़कर कहा : "महाराज मेरे रहते आपको जागने की क्या आवश्यकता है? हवा में शीतलता है। तनिक सो लीजिए।"

धूल के कारण चंद्रमा कुछ फीका हो रहा है। वर्षा पड़े बिना वह स्वच्छ दिखायी नहीं पडेगा यह सोचते-सोचते ही, अर्जुन ने कहा : "मैं आठ-आठ, दस-दस दिन तक लगातार बिना सोए रह सकता हूँ। तनिक भी जड़ता महसूस नही होती।"

सारथी फिर न बोला। घोड़ो की ओर मुड़कर बैठ गया। वे भी अगले रथों के पीछे-पीछे चुपचाप चले जा रहे थे। सारथी ऊँघने लगा। अर्जुन को वह पीछे से दिखाई पड़ा। उसने उस ओर ध्यान न दिया। पाचाली के स्वयंवर में मत्स्य-यत्र को बेधने पर ही तो समस्त आर्यावर्त में यह ख्याति फैली थी कि अर्जुन जैसा धनुर्धारी और कोई नही। इस बात को कितने वर्ष बीत गये? छब्बीस वर्ष तो हो ही गये। नाम भी पुराना हो गया। पुराने लोग भूल गये होगे। नयो को इसका बोध नही। इस युद्ध में अर्जुन का बाहुबल और अस्त्रबल कितना अमोघ है, यह दिखा दूंगा। गुरुजी ने जो नीव रखी और उस पर मैंने जो साधना की उसे वे भी नहीं जानते। उन्हें दिखा पाने का प्रसंग ही नहीं आया। पहले छः वर्ष तो जंगली जानवरो के आखेट ही में बीत गये। उड़ती चिड़ियाँ, कुलाचें भरता हरिण, कभी-कभार दिखाई पड़ने वाला चीता, इन सबको मारने में कौन-सी बडी साधना हो गयी?

"अर्जुन, भविष्य में यदि युद्ध हुआ तो हम तुम्हारे कारण ही जीत सकते हैं। आचार्य से तुमने जो सीखा वह अगाध है पर संख्याबल को गुणबल से जीतने का मौक़ा हमारे सम्मुख आ सकता है। यहाँ से हिमालय पर्वत चढ़कर चले जाओ। तुम जानते हो वहाँ किरात नाम की जाति है। वे सोये सिंह को छेड़कर जगाते हैं और तीर से मारकर वहीं लिटा देते हैं। उनमें से किसी से मित्रता करके और अभ्यास करो। वैसे ही हम सबको जन्म देने वाले देवताओ के लोक को भी देख

आओ। उनके इंद्र ने तुम्हें जन्म दिया है। उनके धर्मगुरु मेरे जनक हैं। उनके सेना-पति भीम के जनक हैं। माँ बताती थी न ? यदि तुम अपना सम्बन्ध बता दोगे तो वे बड़े प्रेम से तुम्हें विद्या सिखाएँगे। हमारे आर्यों का समस्त प्राचीन ज्ञान देवगण जानते हैं। पर्वत की चोटी पर खड़े होकर नीचे नक्षत्र के समान दीखने वाले लक्ष्य को बिना चूके बेध करने की शक्ति उनमें है। उनकी बाणशक्ति दूर तक मार करने वाली है।"

जुए की लत की बात छोड़ दें तो बड़े भैया जितना विवेक किसी और में नहीं। यह सच है, गुरुजी ने मुझे सिखाया था। पर क्या वह विद्या अगाध थी ? मेरी साधना के बिना गुरुजी का प्रयत्न सार्थक होता ? यह विचार आते ही मन शिक्षा और साधना की तुलना करने लगा। वही गुरुजी थे और मेरे साथ उनके बहुत-से शिष्य थे। पर मेरे जितना बाण-कौशल किसी दूसरे को क्यों नहीं मिला ? क्योंकि उनमें अर्जुन जितनी साधना न थी। किसी ने अर्जुन जितनी साधना नहीं की। मन साधना के महत्त्व से फूल उठा। फिर ध्यान आया। अपने पर प्रेम दिखाने वाले गुरु के प्रति भक्ति होनी चाहिए। किरातों में, और देवलोक जाकर मुझे और अभ्यास करना चाहिए, यह विचार भैया के मन में ही उठा था। ऐसी दूरदृष्टि और किसमें है ? मुझे अकेले को बुलाकर उस नाले के पास बिठाकर समझाया था न ? "धैर्य, शौर्य और धर्मज्ञान तुम्हारे जितना और किसी में नहीं। नकुल और सहदेव अभी छोटे हैं और छोटे दिखते भी हैं। कोई भी काम स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकते। तुम अकेले ही मेरे भाई हो। दुर्योधन यदि राज्य लौटा सकता है तो केवल तुम अकेले के भय से। भीम ऊपर चढ़कर मार सकता है। पर वह पशु स्तर का युद्ध है। दूर से बाण के द्वारा शत्रुओं को निस्सहाय कर देने में धनुष-बाण ही सर्वोत्तम अस्त्र है। शस्त्र से अस्त्र उत्तम हैं।" धनुष-बाण का महत्त्व भैया समझते हैं। पेड़ के तने और पत्थर आदि स्थूल उपकरणों का प्रयोग करने वाला भीम यह कैसे जान सकता है ? हाथ में गदा थामकर प्रतिदिन 'धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों को कुचल डालूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करने वाला भीम युद्ध-तंत्र नहीं समझता। सामने से बाणों की वर्षा हो रही हो तो गदा लेकर समीप पहुँचना कैसे संभव है ? मोटे स्थूल शस्त्र और जंगली बातें ! युद्ध के माने कुचल डालना, जैसे वे केवल केले के तने हों ? वह तो एक ऐसा कौशल है कि देखने-सुनने वाले दाँतों तले उँगली दबा लें।

चाँदनी अच्छी फैल गयी थी। थोड़ी दूर पर पहाड़ियाँ थीं। चारों ओर घिरी पहाड़ियों के बीच एक मैदान था। उसमें पड़ती चाँदनी ऐसी दिख रही थी मानो चाँदनी एक थाली में भर गयी हो। अर्जुन के मन में अनायास यह भाव उठा कि धूल उड़ाने वाले रथों की पंक्ति चाँदनी को मैला करके नष्ट कर देगी। मन हुआ कि रथों को थोड़ी देर के लिए रोक देने को कहे। पर उनके पूछने पर क्या बताया जाए ? पूछेंगे तो नहीं पर यह अवश्य कहेंगे कि यह कैसा पागल है। यह ध्यान आते

ही वह मौन बैठा चारों ओर देखने लगा। यहाँ गर्मी भी कम है। शीतल चाँदनी के प्रकाश के कारण गर्मी कम हो गयी है। इससे नींद और जागरण से भी बढ़कर मन को शांति मिल रही है। उसे एकदम याद आया। उसने पुकारा, "सारथी तुष्ट !" वह ऊँघ रहा था। अर्जुन ने अपने स्थान से उठकर बाण का पिछला सिरा उसकी गर्दन से छुआया। उसने घबराकर सिर पीछे घुमाकर देखा तो इसने पूछा, "कोई सोमरस है क्या ?"

"शुद्ध सोमलता का नहीं, ताड़ का है। उन्होंने वृक्षस्थल में एक मश्क भरकर दिया था। गर्मी में खटास आ गयी होगी।"

"उसमें मिलाने को दूध भी तो नहीं होगा न ?"

"नहीं महाराज।"

"ठीक है। वही थोड़ा-सा लाओ।"

तुष्ट ने रथ रोका नहीं। अगले रथवाले को पुकारकर कहा। उसने अपने से अगले से कहा। चौथे रथ में लायी गयी सस्य सुरा उन्होंने रात को पी डाली थी। बची हुई थोड़ी-सी सुरा को लकड़ी के बर्तन में डालकर एक व्यक्ति भागते रथ से उतरा और इस सारथी के हाथ में पकड़ाकर दौड़ता हुआ वापस अपने रथ में जा बैठा। सारथी तुष्ट ने सम्मानपूर्वक दोनों हाथों से उसे महाराज के सामने रख दिया। सुरा पात्र का ढक्कन हटाकर दो घूंट पीने के बाद सामने ही लेटी पत्नी की याद आयी। जगाकर उसे भी देने का मन हुआ। सुरा वह भी पसंद करती है। मेरी तरह। द्वारका के लोग ही ऐसे हैं। केवल द्वारका के ही नहीं, सारे-के-सारे यादव सुराप्रेमी हैं। बैठे-बैठे झुककर उसका कंधा पकड़कर हिलाया। उसकी नींद न खुली। दुबारा उसे कोंचा। उसकी आधी नींद खुली होगी। उसने आँखें मिचमिचाईं। करवट ली। हिलते रथ में करवट लेकर फिर से सो गयी। अर्जुन को बुरा लगा। गुस्सा आया अर्जुन को। अब जगाकर दे भी दूं तो नीद ही में पीकर सो जाएगी। उसे लगा, पीना अपने को भूलकर सो जाने के लिए नहीं। बाद में स्वयं दो बड़े-बड़े घूंट लिये। खटास ज़्यादा थी। ताज़ी ताड़ी पेड़ से उतरी हो और उसमें दूध और शहद मिलाया गया हो, वही श्रेष्ठ ताड़ी होती है। यह ध्यान आने पर उसे और पीने की इच्छा नहीं हुई। बिना सही मित्रों के सुरा-पान भी कैसा ? यह बात भूलने को उसने रथ से बाहर देखा। दूर पहाड़ों की संधि से चन्द्रमा भी मौन होकर अपने साथ यात्रा करता दिखायी पड़ा। एक पहाड़ के पीछे से दूसरे पहाड़ की ओट में मृदुता के साथ चुपचाप तैरता जा रहा था। घोड़ों के सुम और रथों के पहिये भी निःशब्द चलना सीख गये थे। चाँदनी निःशब्द फैल रही थी। दो घूंट और पीने के बाद पात्र का ढक्कन बंद करके जाँघ पर रख लिया। ध्यान आया कि सखा चाहिए और साथी। इतनी देर में वह पता नहीं और कितनी दूर चला गया होगा। वह सदा वेग से प्रयाण करता है। उसे थकान नहीं लगती, रात-दिन, गर्मी-सर्दी की

परवाह न करते हुए वह सदा काम में जुटा रहता है। वह दूसरों के आँख खोलने से पहले ही अपना काम निबटा देता है। यदि वह साथ होता तो एक ही रथ में और एक ही पात्र में, चाँदनी में घूंट-घूंट करके पी सकते थे। बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास में अकेला पड़ गया था। उसके उपरांत उपप्लाव्य आया। कृष्ण कल साँझ तक मेरे साथ ही था। धर्म भैया यदि पहले ही कह देते तो हम दोनों एक ही रथ में जा सकते थे। तब यह गर्मी, यह धूप, यह पसीना कुछ भी महसूस न होता। बिना कुछ बोले यदि चुपचाप भी बैठे रहते तो भी अच्छा लगता। फिर उसके हाथ ने यंत्रवत् पात्र का ढक्कन खोला। किन्तु मन न होने से बंद करके रख दिया। पहाड़ों की ओट से निकला चाँद एक बड़े पेड़ के तनों के बीच फँस-सा गया। बाहर न आया। साथ बैठकर, सुरा, मधु या सोमरस पान कर सकने वाली वह अकेली है। वह पाँच वर्ष तक करती रही न ? हर पाँचवें दिन बाहर की सर्दी, गर्मी और धूप-अंधेरे को भुलाकर सब ओर चाँदनी-सी फैला देती। मुझे बातों में बाँध देती, हरा देती फिर जीत का भाव भी उत्पन्न कर देती। मेरे सब स्वप्नों को रात के उस समय में पूरा कर देती, फिर चार रातों के विरह में उन स्वप्नों की याद करने को मेरी वह सखी छोड़ देती। मुझे विवश कर देती। उसके रहते हुए मेरी सभी आशाएँ साकार हो उठती। उसके दूर हो जाने के बाद आशाएँ, आकांक्षाएँ सूखने लगी। स्वप्न-विहीन नीरस जागरण ही मेरा संगी बन गया। किसने मेरी सखी को मुझसे छीन लिया। पाँचवें दिन के आमंत्रण के लिए चार दिन की भूख सही जा सकती है, पर पाँचवें वर्ष के वसन्त की कटाई के लिए क्या चार वर्ष उपवास किया जा सकता है ? उसने इसे समझा नहीं। उसके घर की सदा तैयार दासियों की सेवा लेना अर्जुन के लिए संभव न था। बचपन से हम पाँचों से माँ कहा करती थी, 'दासियों के पीछे-पीछे मत घूमना। जो अपने बराबर के नहीं उनके साथ कैसी मित्रता!' दूसरी पत्नी लाये बिना यह अर्जुन चार साल की लंबी अवधि को कैसे काट सकता था ? अथवा एक-एक वर्ष की बारी के ऐसे कठिन नियम को उसने व्रत के रूप में क्यों मान लिया ? यदि वह मेरी इच्छा पूरी कर देती तो भैया आड़े नहीं आता। भीम भी कोई आक्षेप न करता। सदा धर्म-जिज्ञासा में डूबे भैया को यह इच्छा इतना पागल नहीं करती। अंग-साधना में रात-दिन एक करने वाले भीम की इच्छा पसीने के साथ धुल जाती है। नकुल-सहदेव ने कभी भी अधिक इच्छा नहीं दिखायी। मेरे सम्मुख खड़े होकर मन की इच्छा दिखाने का साहस भी उनमें न था। क्या वह नहीं जानती थी कि इस अर्जुन के देह-धर्म और मनोधर्म दूसरी ही प्रकार के हैं। व्रत के नाम पर उसने मेरी उपेक्षा की ? उसके मन में क्या था यह अब तक स्पष्ट नहीं हो सका। समझने का उसने अवकाश भी नहीं दिया। सखी, तुम हठीली हो, अपने हठ से ही तुम मुझे तड़पा रही हो। हम दोनों मिलकर उस हठ का निराकरण नहीं कर पाये। सुभद्रा के साथ

द्वारका से चलते समय जो उल्लास था वह इंद्रप्रस्थ पहुँचने में जब केवल दो दिन का रास्ता बचा था तभी से उड़ गया। जहाँ तुम्हारी शक्ति का क्षेत्र हो, वहाँ दूसरे का अस्तित्व कैसे प्रवेश पा सकेगा? थोड़ा शिथिल मन से ही नगर में प्रवेश करने के बाद जब इसे तुम्हारे सम्मुख लाकर यह कहा कि यह तुम्हारी बहन है। स्वीकार करो। तब तुमने कितने गर्व और शांत भाव से इसका आलिंगन किया। रोई नहीं। क्रोधित नहीं हुई। उदासीनता नहीं दिखायी। इस विवाह से और इसके कारण तुम्हें कुछ भी महसूस नहीं हुआ यह भाव तुमने बड़ी सफलता से व्यक्त किया। तुम्हारा अभिमान बड़ा है। हे सखी, इसीलिए तुमने मुझे और विनीत कर दिया। मुझे अब समझ में आ रहा है। अगले दिन तुम जब अकेली मिलीं तब तुमने कितनी शांति से कहा, "तो अपना हठ पूरा कर ही लिया न? तुम सुखी रहो।" तुम शांत थीं। तुम्हारी ध्वनि शांत थी, पर आँखें गीली हो गयी थीं। क्या मैं समझ नहीं सकता? 'नहीं' कहकर झूठ मत बोलना? लक्ष्यभेद से मैंने तुम्हें जीता था। इसलिए मुझमें यह अहंकार था कि मुझे तुम पर विशेष अधिकार है। 'अहंकार से हठ उत्पन्न होता है।' यह कहकर मानो तुम निर्णय देकर भीतर चली गयीं। क्या वास्तव में मुझमें अहंकार था? घर-बार छोड़कर चले जाना क्या किसी हठ के कारण था?

स्वयंवर में एकत्रित समस्त लोगों को विचलित कर डालने वाला तुम्हारा रूप, नहीं केवल रूप नहीं, किसी के लिए भी रूप-रेखा लक्षण और आत्म-विश्वास! दुर्लभ धनुष को जीत लेने का विजयी भाव। बाद में ऊपर टूट पड़े कुछ क्षत्रियों को मार भगाने के बाद कांपिल्य के मार्ग पर तुम्हारे साथ चलते समय कैसे गर्व का अनुभव। कुम्हार के पिछवाड़े वाली झोपड़ी में पहुँचने तक बाकी ये चारों भी उस पर आसक्त हो गये थे। मुझ अकेले को बुलाकर माँ ने कहा, "बेटा, स्पर्द्धा में तुमने लक्ष्यभेद किया है, पर जिस प्रकार तुम युद्ध में जीतने का फल आपस में बाँट लेते हो, उसी प्रकार इसे भी बाँट नही लोगे तो आपस की एकता नष्ट हो जाएगी। तुम लोगों की भलाई के लिए ही कह रही हूँ। उसे सब बाँट लो।" तब तुरन्त मैंने कहा, "मुझे उस पर कोई अधिकार नहीं। इच्छा भी नही। उन चारों को ही उसे रख लेने दो। मैं ब्रह्मचारी ही रहूँगा।" मन की निराशा को दबाकर मैंने हठ नहीं किया था? तब माँ ने कहा, "बेटा, यदि तुम ऐसा कहोगे तो एकता नहीं बचेगी। एकदम मना नहीं करना चाहिए। आपस में बराबर बाँट लेना चाहिए। ज्यादा या कम नहीं।" इस प्रकार माँ कितनी देर तक बैठी समझाती रहीं।

इस तरह दूर रहने का निश्चय करने वाला मैं अहंकारी हूँ। यह सोच ही रहा था कि दो घूंट और लेने की इच्छा हुई। ढक्कन खोलकर दो घूंट पीकर होंठ पोंछते समय याद आयी। किसी में कोई दोष न हो फिर भी यदि उसे डाँटा जाए तो क्या उसे गुस्सा नहीं आएगा? इसीलिए उसके मुझे घमंडी कहते ही मुझे क्रोध आ गया। जो बात है नहीं वह बात उसने मुझसे क्यों कही? तुम पर मुझे किसी

प्रकार का विशेष अधिकार नहीं चाहिए। जो थोड़ा-बहुत अधिकार है वह भी स्वेच्छा से समष्टि को अर्पित करके चला जाता हूँ। इसी विचार से मैं राज्य छोड़-कर चला गया था? क्यों गया? यह सच है, मैं क्रोध में था। यह त्याग-भावना तो अवश्य थी कि इसकी मुझे आवश्यकता नहीं। बीस वर्ष पूर्व जो भावों का संघर्ष हुआ था उसका स्पष्ट चित्र अब ठीक उभर नहीं रहा। मैं राज्य छोड़कर क्यों गया, यह बात अब स्पष्ट याद नहीं। साथ में कुछ अंगरक्षक थे। कुछ घोड़े थे। साथ में अर्जुन का धनुष—अजेय धनुष—था। इकत्तीस वर्ष का उफनता यौवन, आर्यावर्त के चाहे जिस कोने में स्वयंवर हो, चाहे कैसी भी कठिन स्पर्धा क्यों न हो? द्रुपद ने जैसे धनुष रखे थे, वैसे सैकड़ों धनुषों को झुका कर जीतने की कल्पना थी। चाहे स्पर्धाहीन स्वयंवर ही क्यों न हो। हज़ारों राजकुमारों में स्पष्ट दीख पड़ने वाला सौंदर्य मेरे पास था। मेरे होते कोई भी समझदार राजकुमारी किसी दूसरे को खोज कर कैसे माला डाल सकती है? यह आत्मविश्वास भी था। मन में यह बात भी थी कि अकस्मात् यदि वह किसी दूसरे को छाँटे तो मूर्ख ही होगी। बेटे के चले जाने से माँ और वीर भाई के जाने से भाई मन में कितने दुखी होंगे। यह भाव भी मन में था। याद करने पर उसे कुछ समझ में नहीं आया। अथवा नये-नये नगर, पहाड़, पर्वत, जंगल, नदी और अलग-अलग प्रकार की भाषाएँ और लोगों को देखने का चाव मन में था? इस अर्जुन ने कितने देश देखे हैं? सम्पूर्ण आर्यावर्त का चित्र खींचकर दिखा सकता हूँ? मैं इतना ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ। यह सोचते हुए उसने सुरापात्र का ढक्कन बंद करके उसे पाँव के समीप कोने में धर दिया। उस पात्र का पेंदा इतना चौड़ा था कि रथ के हिचकोले खाने पर भी वह हिलता नहीं था। चंद्रमा रथ के सिर पर आ पहुँचा था, ऐसा लगता था मानो वह भी विधेय होकर उनके साथ चल रहा है जैसे कोई स्वान अनुसरण करता है। अब वह किसी पेड़ या किसी पहाड़ की ओट में फँसकर पीछे छूट नहीं रहा था।

चलते समय मन में यह निश्चय ही नहीं था कि किधर जाना चाहिए, फिर मैं इंद्रप्रस्थ से उत्तर की ही ओर क्यों चल पड़ा? हिमालय से उतरकर जहाँ गंगा मैदानी इलाक़े में आती है उस गंगाद्वार के पास ही मैंने क्यों डेरा डाला? क्या वहाँ से हिमालय चढ़कर उस जगह जाने की इच्छा से जहाँ मेरा जन्म हुआ था? जहाँ मैं खेल-कूदकर बड़ा हुआ? जब बहुत ऊब जाता हूँ तो उस घाटी की याद आती है जो गर्मी में लहलहाती हरियाली से भर जाती है। सर्दी में सफ़ेद चमचमाती बर्फ़ से सारा प्रदेश ढँक जाता। पर्वत के पार्श्व में एक-दो घर बनाकर सब भाइयों के बीच बराबर बाँटकर दो-तीन पतियों के साथ लोग रहते हैं। वहाँ किसी राजा का राज्य नहीं, कोई संघर्ष नहीं। क्या वहीं जाने का मन हुआ था? पर गया नहीं। घोड़े की सवारी की थकान मिटाने को और शरीर का धूल और पसीना धो डालने को छाती-भर गंगा के शीतल पानी में खड़ा जब उत्तर

की पहाड़ियों की श्रेणी को निहार रहा था तब एकदम सीधे आकर उलूपी ने पूछा, "हे सुदर्शन, देखने में राजकुमार-से दिखते हो, तुमने किस देश को सौभाग्यशाली बनाया है ? क्या तुम मेरे सौभाग्य से ही यहाँ पहुँचे हो ?"

उन नाग-कन्याओं की स्वतंत्रता का क्या कहना ! तिस पर पर्वतीय प्रांतो के नागों का ! उसके पिता ने तो आर्यों की भाँति घर में अग्निपूजा आरभ कर दी है। पर लड़की की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं डाली। उस ओर के नाग आर्यों के-से जीवन के नियम अपना रहे हैं। पर आपस में स्वतत्रता भी है। उनकी स्त्रियाँ यदि बाहर वालों से मिलें तो अपमान मानते हैं। पर अब तक किसी आर्य कन्या ने नाग पुरुष से विवाह नहीं किया है। उनमें ऐसी कौन-सी बड़ी बात है जिसे पसन्द करके विवाह करें ? यदि करना भी चाहें तो उनकी गर्दन क्या बची रहेगी ? अर्जुन को गर्व महसूस हुआ। रथ के हिचकोलों के साथ वह बैठा सिर हिला रहा था। इतनी देर सीधा बैठे रहने पर भी पीठ झुकी न थी। रीढ़ की हड्डी मे दर्द और थकान भी अनुभव नहीं हुई थी। वह हाथी सधाने वाली नाग जाति के प्रमुख की पुत्री थी। उनका घर केवल बाँसों से बनाया गया था। बाँसों के टट्टर की दीवारे। बाँसो की ही चटाइयाँ। बाँसों की ही छतें। दस-सेरे की आकृति के बाँसों के बर्तन में ही स्वादिष्ट सुरा रखी जाती है। वे अपने को ऐरावत के कुल का कहते हैं। बेटी द्वारा मुझे पसद किए जाने पर उसके पिता कौरव्य ने मेरा कितना आदर-सत्कार किया। गंगा में मुझे स्नान के लिए उतरते देखते ही उलूपी के मन में इच्छा जागृत हो गई। बिना किसी लुकाव-छिपाव और नाज़-नखरे के उसकी मुक्त इच्छा। देखने पर कुलटा-सी नहीं लगी। ऐसा नही लगा कि वह बिना किसी नियम या प्रतिबंध के स्वतंत्र हो। जंगल में स्वच्छंद खेलने वाले हरिण को देखकर जैसा प्रेम उमड़ आता है वैसा ही प्रेम मुझ में उसके लिए उमड़ आया। कामकेलि कला में उसकी अभिरुचि कम थी। स्वतंत्रता ही उसका जीवन थी। मेरी कामकला में भी उसकी पुक्तता ही अधिक थी। वह मेरी वशवर्ती हो गयी मानों जन्म-जन्मांतर की दासी हो। तब भी वह हरिणी-सी स्वच्छंद थी। आत्म-सम्मान से भरी थी। एक ही साँस में पहाड़ की चोटी पर चढ़कर उतर आने योग्य फुर्तीली। दमकता स्वास्थ्य। छः मास का गर्भ होने तक मेरे साथ मुझसे भी अधिक फुर्ती से पहाड़ों पर दौड़ती-भागती आखेट करती रही। पिता द्वारा प्रज्वलित अग्नि के सम्मुख खड़े होकर उसने मुझसे विवाह किया। मुझसे मिलने के बाद से ऋतुस्राव नहीं हुआ। मुझसे उसे कितना लगाव हो गया था ! साथ में अंगरक्षक बनकर आये सभी लोग ऊब चले थे। देश-देशान्तर घूमने की ललक लेकर निकले उन लोगों से उस पर्वतीय तल की उन नाग-कन्याओं के साथ रमकर कितने दिन बिता पाना संभव था। उन्होंने अपने देश लौटने का राग अलापना शुरू किया। "इन जंगली लड़कियों का शारीरिक गठन आकर्षक है पर विवाह करके साथ रखने के लिए आर्य स्त्रियाँ ही अच्छी हैं, महाराज!

पर आपके तो यहाँ से जाने के लक्षण ही नहीं दिखायी पड़ते। यहाँ बस तो नहीं जाइएगा ?" मुझे बहुत क्रोध आया। पर मेरे भीतर जो कुछ बीत रहा था वह मैं ही जानता था। इन वन-कन्याओं के साथ की तृप्ति हो सकती है पर ऊब नहीं मिट सकती। फिर पांचाली के व्रत की तीव्र स्मृति झकझोरने लगती। काम का वेग शान्त होने के बाद भी उसके सामीप्य में ऊब नहीं लगती थी। उसके पास चुपचाप सोये रहने पर उसकी काया से अर्थपूर्ण-भाव धारा बहा करती थी। पांचाली केवल काम का रूप नहीं थी। सखी थी। काम का उद्वेग कम होने पर भी वह प्रिय सखी के रूप में रह सकती थी। तब यह सब मेरी समझ में नहीं आया था। उलूपी और पांचाली का अंतर बाद में समझ में आया। उलूपी की सीमा समझ में आ गयी, पर पांचाली की विशेषता समझ से बाहर थी।

जब मैं वहाँ से चलने को हुआ तो वह कितनी रोयी ! जिसको मन न चाहे उसके साथ रहना कठिन है। छुड़ाकर जाना और भी कठिन है। अगर उसके बच्चा हो जाने के बाद निकलता तो और भी कठिन होता। अंगरक्षक यदि स्पष्ट न कह देते तो संभवतः मैं वहीं रह जाता। पर उसे कितना दुःख हुआ। मुझे भी चलते समय दुख हुआ पर वहाँ रह जाना असाध्य था। विचित्र परिस्थिति पैदा हो गयी थी। निकलने के बाद खेद हुआ साथ ही उससे छुटकारे का संतोष भी। दिशाहीन यात्रा फिर से आरम्भ हुई। छः मास में मैंने क्या पाया ? केवल काम-तृप्ति ? क्या काम छः मास में तपकर समाप्त हो जाने वाली चीज़ है ? इस प्रकार उद्देश्यहीन भटकने की अपेक्षा इन्द्रप्रस्थ लौटकर दासियों में से सुन्दर दासियों को छाँटकर और भी कुछ सुंदरियाँ नियुक्त करके वहाँ क्यों न रहा जाय ! अर्जुन की सेवा के लिए स्वयं आगे आने वाली दासियों की कोई कमी न थी। पांचाली के साथ आयी सखियाँ थी। दूसरे राजाओं के द्वारा स्नेहसूचक रूप में भेंट की गयी सुन्दरियाँ न थीं क्या ? केवल स्त्री के लिए अर्जुन को अपना देश छोड़कर भटकने की क्या आवश्यकता थी ? इन्द्रप्रस्थ में रहकर दासियों का भोगना संभव न था। माँ की सतर्क दृष्टि सदा पहरेदारी करती। इसके अतिरिक्त दासियों का संपर्क घटिया है, यह भावना यौवन आने से पूर्व ही हमारे मन की गहराइयों में बिठा दी गयी थी। इस बारे में तो हमारी माँ ने हमें समस्त आर्य राजाओं में शुद्ध बनाकर रखा था। विवाह से पूर्व काम-तृप्ति ग़लत है। विवाह के उपरान्त दासियों से खेलना ग़लत है, यह माँ का दृढ़ विश्वास था। तो बेटियों के साथ सुन्दर दासियाँ क्यों भेजते हैं ? भेंट में सुन्दरियाँ क्यों दी जाती हैं ? एक बार मैंने जब माँ से यह तर्क किया तो वह उत्तर देने से पूर्व रो दी। माँ के आँसू आने पर तर्क और चर्चा कैसे संभव थी ? उसे देखे तेरह वर्ष बीत गये। वह सब बच्चों को समान रूप से देखती है। भीम से ज्यादा प्यार है। मुझ ही से कौन कम प्यार करती है ! उसने कहला भेजा है, 'राज्य जीतकर मुझे आकर ले जाओ।

फिर से उस एकचक्रानगरी जैसे नगर में ब्राह्मण वेष धारण करके भिक्षाटन करके पेट पालना हो तो मैं तुम्हारे साथ आने को तैयार नहीं। ऐसा अन्न नहीं ग्रहण करूँगी।" हठ हो तो माँ जैसा। तभी मार्ग दायीं ओर मुड़ा। चाँदनी सीधे मुख पर पड़ने लगी। चन्द्रमा काफ़ी बड़ा दीखने पर भी विषादपूर्ण लगा। चाँदनी घोड़ों के मुख पर पड़ने से उन्हें घबराहट हुई। दूर से चलते आने के कारण उनकी चाल धीमी पड़ चुकी थी। अब वे और भी धीरे चलने लगे। सोयी हुई सुभद्रा झटके से उठ बैठी। एक मिनट को दिग्भ्रांत-सी होकर चारों ओर देखा। कपड़े और मुखादि सब धूल से सन चुके थे। उसने कुछ याद-सा करते हुए 'पानी' कहा। अर्जुन ने रथ के एक कोने में ढँककर रखे काठ के पात्र से एक लोटा भरकर उसे दिया। वह गटागट पी गयी। मुख, गर्दन और छाती पर बहता पसीना पोंछकर वह फिर पहले की भाँति लेट गयी। अर्जुन को भी पानी पीने की याद आयी। उसने भी उसी लोटे से पानी लेकर पेट-भर पानी पिया। तब तक वह फिर सो गयी थी। अर्जुन फिर वीरासन में बैठ गया। आधी रात की ऊँघ के बाद चेतन होकर सारथी ने पूछा, "महाराज, आपने तो पलक भी नहीं झपकायी। मुझे शर्म आती है।"

"राजा को ऊँघना नहीं चाहिए।"

थोड़ी देर बाद सारथी फिर बोला, "मैं महाराज से एक वर माँग सकता हूँ?"

"अपना राज्य अपने अधिकार में आने से पूर्व हम कौन-सा वर दे सकते हैं?"

"कोई बड़ी बात नहीं। अब युद्ध होने को है। उसमें आप मुझे किसी महारथी का सारथी बना सकेंगे? यह सुना है कि रथ-युद्ध का संचालन आपके ही हाथ में होगा।"

"यात्रा का रथ चलाना और बात है। क्या युद्ध में तुम रथ चला सकोगे?"

"मैं वही करना चाहता हूँ। पर हमारा मत्स्य देश पहाड़ी प्रदेश है न! वहाँ रथ-युद्ध कम होते हैं। इसी कारण अब तक अवसर नहीं मिला। धनुष-बाण का अभ्यास है। भागते घोड़े से निशाना साध सकता हूँ।"

अर्जुन ने 'अच्छी बात है, देखेंगे।' कहकर आश्वासन दिया। थोड़ी देर में चन्द्रमा और नीचा हो गया और चाँदनी सीधे मुख पर पड़ने लगी। उसने कुछ और पूछने को दो बार मुड़कर देखा। अर्जुन के 'क्या बात है?' पूछने पर उसने कहा, "एक और वर है?"

"हो सके तो अवश्य पूरा करूँगा।"

"महाराज, जब आप अपने देश जाइएगा तो मुझे भी साथ ले चलिएगा। मैं घोड़ों की देखभाल बहुत अच्छी तरह कर लेता हूँ। रथ का काम भी जानता हूँ। दूसरे लकड़ी के काम भी कर लेता हूँ। जीविका चलाने भर को आप दे दीजिएगा।"

"मत्स्य देश में तुम्हें किस बात का कष्ट है?"

"स्पष्ट बता दूं ?"

"बताओ, बताओ।"

इस बात से अर्जुन को एक प्रकार से समय काटने का अवसर मिला। उसका मन रथ, घोड़े, पहाड़, पेड़, पौधों की ओर गया। वहाँ आकाश में धूल कम थी।

"मैंने बताया था न कि मैं कैकेय देश का हूँ। यहाँ आने के बाद मेरा विवाह हुआ। पत्नी, सास, ससुर कैकेय से ही आये हैं। उनका कोई बेटा नहीं। और कोई दूसरी बेटी भी नहीं। वही इकलौती बेटी है। हम सब एक साथ हैं। पत्नी को पति से अधिक माँ-बाप का ध्यान है। मुझे तो उसने घर में रहने वाला एक बलिष्ठ पुरुष-मात्र समझ रखा है।"

"अगर घर बसाकर उसे अपने साथ ले जाओ।"

"प्रयत्न किया। पर मेरी सास और महारानी सुदेष्णा में बड़ी घनिष्ठता है। यदि अलग रहना भी चाहूँ तो राजघराना मुझे ऐसा नहीं करने देगा। जब आप उनके समधी बनकर उपप्लाव्य नगर में रहने आये तब आपकी सेवा के बहाने उनसे दूर रहने के लिए आपके भाई नकुल महाराज से विनती करके यहाँ आ गया। लौटकर वापस गया ही नहीं। आपके देश पहुँच जाने के बाद उसे आकर साथ रहने को कहूँगा। आये तो ठीक नहीं तो मेरा रास्ता अलग है।"

अर्जुन को उस पर दया आयी। उसने पूछा, "तुम्हारा नाम तुष्ट है न ?"

"जी हाँ, महाराज।"

"याद रखूँगा। अगर मैं भूल भी गया तो तुम याद दिलाना। अपने देश लौटने के बाद तुम्हें ही अपना सारथी नियुक्त करूँगा। इस बीच विराट नगर वाले तुम्हें बुला भेजें तो कह दूंगा कि तुष्ट हमारी सेवा में रहेगा। ठीक है !"

उसने वहीं से बैठे-ही-बैठे मुड़कर नमस्कार किया। बाद में ठीक बैठकर घोड़ों को चुस्त किया। अगले रथों के आराम से चलने के कारण केवल उसके सफ़ेद पाँच घोड़े-भर चुस्ती से चलने लगे पर वेग न पकड़ सके। घोड़े लगातार काफ़ी दूर चल चुके थे। रथ धीमे चल रहे थे। अर्जुन को लगा, अब अधिक तेज़ी से चलना संभव नहीं। पता नहीं कृष्ण अब तक कितना आगे जा चुका होगा। उससे जा मिलना संभव होगा या और शेष बीस दिन की यात्रा अकेले ही करनी पड़ेगी ? मन में जब यह विचार उठ ही रहा था तभी अगला रथ रुकता दिखायी दिया। उससे पिछला भी रुका। सारे रथ रुक गये। आगे घोड़ों पर आये मार्गदर्शकों में से एक अर्जुन के रथ के पास आया। उसने घोड़े से उतरकर झुककर नमस्कार करके कहा, "महाराज, आगे एक अमराई दीख रही है। उसके बायीं ओर एक गाँव है। उसका नाम जलस्थान है। नाम के अनुरूप वहाँ बहुत पानी है। पास ही पहाड़ी जल-स्रोत हैं। पानी चाहे जितना भी निकाला जाय, घटता नहीं। ठंडे जल का सरोवर है। सुना है उस सरोवर का जल कभी नहीं सूखा। यह मत्स्य की पश्चिमी गढ़ी है। हम

लोग यहाँ थोड़ा विश्राम करके वापस जाएँगे। आप भी यहाँ अमराई की छाँव में दिन बिताकर संध्या से यात्रा आरंभ करें तो सुविधा रहेगी।"

गाँव वालों ने पर्याप्त मात्रा में दूध, दही और घी दिया। फल, फूल और मांस भी पहुँचाया। सूर्योदय तक अर्जुन ने स्नान और होमादि निबटाकर दूध में पका चावल, और पका मांस खाया। भोजन के बाद घने पेड़ों की ठंडी छाँव में सो गया। कुछ देर बाद सुभद्रा को भी नीद आ गयी। अन्य लोगों ने घोड़ों को नहलाने के बाद रथ साफ़ किये और भोजन करके पेड़ों के तले कुछ देर लेटे रहे। चार व्यक्ति चारों ओर धनुष-बाण लेकर पहरा देने लगे।

सबने नींद पूरी करके फिर से स्नान करके दुबारा भोजन किया। रथों में राह के लिए पानी भरकर रखा और चल पड़े। सूर्य डूबने में अभी चार घड़ी समय बाकी था। चलने से पहले अर्जुन ने गाँव के प्रमुखों से पूछा तो उन्होंने बताया, कल कोई भी इस गाँव में नहीं ठहरा। इसी मार्ग से पुष्कर की ओर बीस रथ आधी रात के कुछ समय बाद गये। यह बात हमारे पहरेदारों ने हमें बतायी थी। अर्जुन समझ गया। पुष्कर का अभी तीन दिन का मार्ग है वे रथ कृष्ण के ही होंगे। दूर की द्वारका का नाम बताने की अपेक्षा उसने समीप का पुष्कर नाम बताया होगा। पर वे लोग हमसे अधिक वेग से गये हैं। अर्जुन ने आगे का मार्ग जानने वाला और वेगवान एकरथ आगे रखकर उसके पीछे अपना रथ लगाया। शेष रथों को अपने पीछे तेज़ी से आने की आज्ञा दी। धूप भी कल से अधिक तेज़ थी। असहनीय गर्मी थी। आगे से आँखों को चौंधियाने वाली सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। सुभद्रा ने खस की टट्टिओं की ओट कर ली। अर्जुन अपने भाग को खुला रखकर चारों ओर देखता हुआ बैठा रहा। धूप की परवाह न करके सीधा बैठा सारथी तुष्ट कल से अधिक प्रसन्न दीख रहा था। अर्जुन के मन में उसके प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न हुआ। दोपहर की नींद के समय भी तुष्ट दो बार दिखायी पड़ा था। याद ठीक से नहीं आ रहा था। पर वह तुष्ट ही था। यह बात याद आ रही थी। अर्जुन को लगा कि उसकी स्थिति को जितनी अच्छी तरह वह समझ चुका था, उतना और कोई नहीं समझ पाया था। माता-पिता को न छोड़ पाने वाली पुत्री और उसके साथ सास-ससुर के हाथ में चलने वाली गृहस्थी। वे लोग इसे दास के रूप में नहीं मानते थे। किन्तु यह दिन बीतते-बीतते अपने को दास-सा महसूस करने लगा था, यह बात मेरे अतिरिक्त और कौन अच्छी तरह समझ सकता है। उलूपी को छोड़कर मैं पूर्व दिशा की ओर चल पड़ा और अंत में मणलूर में जा फँसा। राजा चित्रवाहन के यहाँ पहुँच-

कर 'हस्तिनापुर के कुरुकुल का पांडव राजकुमार हूँ,' यह परिचय देने के बाद उसका अतिथि बनकर रहा। यह बात अकस्मात् ही नहीं हुई थी। जान-बूझकर हुई थी। उसने जानबूझकर ही अपनी पुत्री को मेरे सम्मुख आने दिया। उसका उद्देश्य था कि मैं उसके जाल में फँस जाऊँ। उसे अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली। वह मेरे मन में बैठ गयी। क्या चित्रांगदा सुंदर थी? याद बीस वर्ष पीछे लौट गयी थी। चित्रवाहन तो आर्य राजा था। किंतु चित्रांगदा में आर्यों के साथ-साथ गंधर्वों के भी लक्षण थे। स्वच्छ और निर्मल आँखें, पतली भौंहें, लाल और हल्का सुनहरा गौर वर्ण। यदि वह सुंदर न होती तो मैं कैसे उसे देखते ही अपना मन खो देता? अथवा उस भूख के समय जो भी कुछ आँख के सामने आया वही पकवान-सा लगा और उसी के लिए हार बैठा? भूख मिटने के बाद भी मन से उसका मोह घटा नहीं।

"पांडु कुमार, तुम जैसे सत्कुल-प्रसूत, बाण-विद्या में चतुर, मनमोहक, सुंदर मेरी बेटी पर मोहित होकर उसे माँग रहे हो। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। परन्तु तुम ज़रा मेरी परिस्थिति को समझो। मेरी यह इकलौती बेटी है। मेरा कोई बेटा नहीं है। इस प्रसिद्ध प्रभंजन वंश को आगे बढ़ना चाहिए। यह राज्य बनना चाहिए। इसलिए इस बेटी को ही बेटा मानकर अर्थात् इस वंश की वृद्धि होनी चाहिए। यही सोचकर मैंने इसका पालन-पोषण किया है।"

"यानी आप उसका विवाह नहीं करेंगे?"

"विवाह किए बिना वंश आगे बढ़ सकता है? इस राज्य की उत्तराधिकारिणी बनकर वह यहीं रहेगी। उससे जन्म लेने वाला मेरा दोहिता इस सिंहासन पर बैठेगा। यदि तुम इस बात को मानने को तैयार हो तो मेरी बेटी का पाणिग्रहण करने योग्य तुमसे अच्छा वर नहीं मिल सकता। तुम जैसा वीर सेनापति बन जाए तो राज्य और भी सुरक्षित हो जाएगा। मैं बूढ़ा होता जा रहा हूँ। अब मुझमें युद्ध करने की अधिक शक्ति नहीं रही। उत्तर की ओर से गंधर्व लोग बीच-बीच में तंग करते हैं। तुम जैसा वीर इस देश का दामाद है, यह पता चलते ही उनका घमंड टूट जाएगा।"

उस क्षण तो सब कुछ ठीक ही लगा। इस तुष्ट को भी शुरू में उस क्षण सब कुछ ठीक ही लगा होगा। अपना देश छोड़कर, पेट के लिए यहाँ आया होगा। सास और ससुर राजघराने में काम करते हैं। उनके पास अपनी संपत्ति भी होगी: इकलौती पुत्री है। इसे यह भ्रम हुआ होगा कि इकलौती पुत्री होने के कारण वह इसे मिल जाएगी। पर मुझे तो ऐसा कोई भ्रम नहीं था। सिंहासन की भी आवश्यकता न थी। तो उस प्रस्ताव को स्वीकार करने में ऐसी कौन-सी बात थी? किस बात ने मेरे मन पर प्रभाव डाला? बीस वर्ष बीत गये; तब सोचा न था। अब मुझे स्पष्ट याद नहीं। पांचाली पर क्रोध था? भाइयों से अलग हटने की इच्छा? या माँ से दूर होकर उसे दुखी करने का भाव? या यौवन का कोई और आकर्षण? चित्रांगदा

तो मेरी पत्नी बन गयी। मेरे सुंदर शारीरिक गठन और लक्ष्यभेद के चमत्कार देख-देखकर वह मुस्करा देती थी। पर उसने कभी मेरे लिए अपना सब कुछ छोड़कर साथ आने की इच्छा प्रकट नहीं की। तुष्ट का कष्ट भी यही है। माता-पिता के पास बेटे की भाँति बढ़ने वाली बेटी को सर्वस्व अर्पित करने की बात समझ में नहीं आती। समझाने पर समझने की बात नहीं है यह। उसका स्वभाव प्राप्त करने का था, देने का नहीं। बिना दिये प्राप्त कैसे किया जा सकता है ? चित्रांगदा में कोई भी दोष नहीं था, पर ऐसी कोई विशेष बात भी न थी कि जिसे पसंद किया जाता। वह गर्भवती हुई। अर्जुन के वीर्य से गर्भवती हुई। उलूपी के समान ही संगम होने के बाद ऋतु व्यर्थ नहीं गया। अर्जुन का वीर्य व्यर्थ कैसे हो सकता है? उसका गर्भ ज्यों-ज्यों बढ़ता चला, मैं अकेलापन अनुभव करने लगा। मुझ में उससे दूर होने की भावना जन्म लेने लगी। चित्रवाहन का दोहता जन्म लेने जा रहा था। मणलूर राज्य का उत्तराधिकारी अंकुरित होकर पल रहा था। बस केवल इतना ही। अब वहाँ अर्जुन का क्या बच रहा था ? प्रसिद्ध कुरुकुल के नाम के लिए वहाँ कोई स्थान न था, फिर भी अर्जुन के वीर्य का शिशु बढ़ रहा था। चित्रांगदा प्रसन्न थी। चित्र-वाहन भी प्रसन्न था। उसकी पत्नी भी बहुत प्रसन्न थी। पर इस अर्जुन का मन तो संकुचित होता जा रहा था। प्रसन्न होने वाले वे लोग इसे कैसे समझ पाते? चित्र-वाहन का भाग्य अच्छा था। बेटी के पेट से पहली ही संतान पुत्र हुई। समूचे राज-महल में खुशी का ठिकाना न था। नाना खुशी से नाच उठा। बेटी के गर्व का कोई ठिकाना न था। 'तुम क्यों ऐसे मन मारे बैठे हो ?' यह पूछने या जानने का उसके पास अवकाश ही न था। यदि यह समाचार न मिलता कि गंधर्वों ने उत्तर की सीमा पार के गाँवों में घुसकर धनधान्य लूट लिया है, तो उनका ध्यान क्या मेरी ओर आता ? कैसी भी म्लानता क्यों न हो, उससे छुटकारा पाने के लिए संभवतः युद्ध ही मेरे लिए एक साधन होगा। मेरे साथ थे मेरे साथी और साथ में चित्र-वाहन की दुर्बल सेना। पर्वत की ओट लेकर बाण चलाने वाले उन चोरों से कैसा युद्ध ? जो भी उनके हाथ लगा उसे पकड़ कर गाँवों और घरों में आग लगाकर पर्वतों के पास वाले मैदानी प्रदेश में आकर लूटमार करके चले जाते थे। क्या मेरे अंगरक्षकों को तो गंधर्व स्त्रियाँ ढेरों में मिलीं। वे स्त्रियाँ शरीर पर रंगबिरंगे रसों का लेप लगाकर जूड़े, अलकों और बाँहों में रंगबिरंगे सुगंधित फूल पहने रहती थीं। हमारी स्त्रियों को यह सहज कला क्यों नहीं आती ? मोर पंख, तोतों के पंख और भी पता नहीं किन-किन पक्षियों के रंग-बिरंगे पंख सुंदर ढंग से सजाकर गर्दन, छाती, कमर पर बाँधतीं। बाँसुरी बजातीं और छोटे-छोटे ढोल बजाकर नाचा करतीं। उनको देखकर कौन अपने को भूल नहीं जाएगा ? केवल अन्न नहीं उपजता। नहीं तो वह प्रदेश उन लोगों के लिए स्वर्ग समान है। नीचे आकर कृषि योग्य भूमि पर वे जंगल साफ़ करके खेती क्यों नहीं करते ?

सामने वाले पर्वत पीछे से डूबते सूर्य की किरणें, शरीर के रंध्रों के लिए आग की चिंगारी-सी चुभ रही थीं। सारी भूमि दग्ध होकर तवे की भाँति लग रही थी। धूल चारों ओर भर गयी थी। गाड़ी के पहियों की धुरियों से टपकने वाले तेल से भी अधिक असह्य पसीना बह रहा था। रथ के गुंबद से भी ऊपर धूल उड़ रही थी। ऐसा लग रहा था मानो सुभद्रा ने लाल रंग का तेल लगा रखा हो। उसका शरीर चिपचिपा रहा था। वह गले और कंधे से कपड़े ढीले करके खस के पंखे से हवा कर रही थी। उसके पंखे की थोड़ी हवा मुझे भी लग रही थी। पसीने से भीगी उसकी बाँहें, कोहनियाँ, घुटनों पर घने काले रोये चमक रहे थे। गंधर्व स्त्रियों के शरीर कितने शुभ्र और रोम रहित होते है ! रोमश स्त्री का ध्यान उसे बुरा-सा लगा। गंधर्व पुरुषों के शरीर पर भी कम रोम होते हैं, फिर स्त्रियों के तो और भी कम होने ही चाहिएँ। चित्रवाहन ने तब तक एक बार भी इस प्रकार उनके पर्वत पर चढ़कर उन पर आक्रमण नहीं किया था। उसके सैनिक डरते थे। धैर्य से आगे बढ़ने वाले मेरे ही लोग थे। घुसकर मज़ा लूटने वाले लोग भी मेरे ही थे। मौज हो तो ऐसी। पर्वत से जहाँ झरना फूटता है वहीं तो उन पाँचों से मेरा सामना हुआ था। स्त्रियाँ होने पर भी उनके हाथों में धनुष थे। चिड़ियों को मारने योग्य धनुष लेकर वे अर्जुन का सामना करने चली थीं। मेरे धनुष की लंबाई-चौड़ाई देखकर उनके रंग उड़ गये। ऐसी स्त्रियों पर क्या अर्जुन हाथ उठाता ? अर्जुन कोई जंगली था ? फिर भी उनमें कैसा आत्म-विश्वास था। उन्होने कहा था न ? "हे सुंदरांग, हम पाँचों ने तुम्हें कैद कर लिया है। धनुष नीचे रखकर शरणागत हो जाओ।"

"हम पाँचों को पकड़ो—" कहकर पाँचों ने कितनी चतुरता से मुझे घेर लिया।

"तुम लोगों को इस प्रकार भेजकर मुझे धोखे से मारने की तरकीब की है तुम्हारे पुरुषों ने ? यहाँ तुम्हारे पुरुषों का यह दुष्चक्र नहीं चलेगा।"

"सुदर्शन, हमें किसी ने नहीं भेजा। इतना बड़ा धनुष थामे जब तुम इस सारे पर्वत को छानते फिर रहे थे, तब हमने तुम्हें छिपकर देखा। बाद में सीधे तुमसे मिलने का निश्चय करके यहाँ आयीं। हम पाँचों सखियाँ हैं। पाँचों साथ ही पली और बढ़ी हैं।" वे भी उलूपी के समान साफ़ बात कर रही थीं। उनकी बात पर विश्वास कैसे न करता ? पर सतर्क रहना चाहिए सोचकर अंगरक्षकों को पुकारा। पर वे कहाँ थे ? गंधर्व स्त्रियों को पकड़कर पेड़ों और पहाड़ों की ओटों में। उसे हँसी आयी।

सुभद्रा ने पूछा, "क्या बात है ? आप अपने-आप हँसे जा रहे हैं ?" उसने दायीं ओर उसकी ओर मुड़कर देखा। हँसी गायब हो गयी। वह गंभीर हो उठा। वह पंखा झल रही थी। वह फिर से बायीं ओर मुड़ गया। पहाड़ियाँ, पर्वत, घास सूखकर राख के रंग के हो गये। "वहाँ तो आँखों की जलन को शांति देने वाले

हरे-भरे वृक्ष, बड़े-बड़े नरम पत्तों वाले पौधे और उन पर रंग-बिरंगे फूल दिखायी पड़ते थे। धीमे से गिरते ठंडे पानी की ध्वनि थी। पसीने का नाम-निशान न था। असह्य दीखने वाले रोम भरे शरीर न थे। पतली कमान-सी भौंहें। शुभ्र स्वच्छ आँखों वाली वे पाँच तरुणियाँ। "हे सुदर्शन, सब गंधर्व डर के मारे दूर-दूर के पर्वतों की ओट में जा छिपे हैं। यहाँ हाथ आयी हमारी स्त्रियों के साथ आपके सैनिकों को ऐसा यातनापूर्ण रूखा व्यवहार करना चाहिए क्या? तुम अपने सैनिकों की भाँति जंगली तो नहीं हो न?" जंगल की उन सुंदरियों ने जंगली पुरुषों के साथ हमारी तुलना करके मुझे लज्जित कर दिया न? मेरा तभी अपने आदमियों को बुलाकर उन्हें काम-कला के प्रथम पाठ की ओर संकेत करने का मन हो आया।

"तुम हम पाँचों को हरा सकते हो? अथवा हमसे कोई भाग्यशाली अकेली ही तुम्हारी शक्ति के लिए पर्याप्त है?" कैसा प्रश्न? और कैसा आकर्षण? हृदय की तंत्रियों को झंकृत कर देने वाला आकर्षण। गर्व। "यदि तुम हार गये?" कहती हुई खिलखिलाकर हँस दी। "घबराओ नहीं, हम पाँचों पहले ही तुमसे हार चुकी हैं। हारी हुई स्त्रियों के पास जाने वाला पुरुष कभी नहीं हारता।"

लकड़ी का घर। नर्म कंबल। उत्साह उत्पन्न करने वाली खट्टी-मीठी सुरा जिसमें खूब शहद मिलाया गया था। तीन रात, तीन दिन। अर्जुन नींद को जीत चुका था। एक के बाद दूसरी। पाँचों के बाद फिर पहली। पाँचों हार गयीं। पाँचों में इस सुंदर अर्जुन को जिताने की श्रद्धा थी। इसलिए मृदुविलासों से अठखेलियाँ करके जिताया। एक अक्षय सुख का स्रोत ही बहा दिया था उन्होंने। उस केलि-कला का क्या कहना! इस अर्जुन की कल्पना यदि सहस्र वर्ष तपस्या करती तब भी उन अनुभवों का साक्षात्कार संभव न था। नयी-नयी मुद्राएँ, नयी-नयी भंगिमाएँ। तभी सुभद्रा ने पूछा, "क्या बात है? मुस्कराए जा रहे हैं।"

उसने मुड़कर एक क्षण को उसकी ओर देखा। "यह क्या? अकेली अपने को ही पंखा किए जा रही हो?" उसने घबराकर देखा और बोली, "इतनी गर्मी पड़ रही है तो क्या करूँ?" अर्जुन ने फिर कुछ नहीं कहा। कोने में रखे मिट्टी के बर्तन से लोटे में पानी लेकर गटागट पी गया। सुभद्रा बोली, "मुझे भी थोड़ा पानी दे दो।" उसका दिया पूरा लोटा पानी पीकर होंठ पोंछते हुए पंखे से ज़ोर से हवा करने लगी। आग का गोला पहाड़ियों की संधि की ओर लुढ़क रहा था। पर्वत का समूह भी गर्म होकर उस गोले को और भी गर्मी दे रहा था। सुस्ती! कैसी थकान! समस्त शक्ति का स्रोत मानों एकदम बह गया हो। एकदम थकान लगने लगी। रीढ़ की हड्डी में उठकर बैठने की शक्ति भी मानो जाती रही। एक के बाद एक लंबी साँसें आ रही थीं। "सुंदरांग, तुम्हारी तरफ के लोग कल से बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भीतर भेज दें?" भीतर आने वालों से बात करने की भी शक्ति न थी। ऐसी थकान। श्रवण केवल आप्त ही नहीं बुद्धिमान भी था। वह

तुरंत समझ गया। यदि वह लकड़ियों की पट्टियों से पालकी बनाकर उसमें मुझे सुला कर मैदानी प्रदेश में न ले आता तो पता नहीं क्या होता ! उसी समय यदि गंधर्व लोग लौट आते और ऐसे थके शत्रु को देख लेते तो पता नहीं क्या करते ? मैदान में घोड़े पर बैठकर उसके दचके भी सहने की शक्ति न थी। आगे मिलने वाले हमारी सीमा के गाँव में आठ दिन सोमरस, दूध, दही, सत्तू, मधु, घी के पके चावल खाता रहा। खूब मालिश कराकर नहाता रहा। खूब विश्राम किया। तब जाकर वहीं होश आया। इस अर्जुन को क्या चाहिए था ? काम-केलि की सामर्थ्य की परीक्षा करके सुख के समुद्र में डुबोकर निचोड़ लेने वाली पाँचों तरुणियाँ ? या अपने पिता के लिए दोहते को जन्म देकर सार्थक अनुभव करने वाली पत्नी का प्रेम ?

"श्रवण, इस चित्रवाहन के राज्य में निवास काफ़ी हो गया। चलो, यहाँ से चलें।"

"महाराज, मैंने पहले ही कहा था। आप जैसे व्यक्ति को क्या इस प्रकार ससुर के घर की रखवाली पर लगे रहना चाहिए ? चल पड़िए।"

तब यह समझ में नहीं आया था कि कहाँ जायें ? मैं जा रहा हूँ कहने पर चित्रांगदा दुखी हुई। उसने रोका पर रोयी नहीं। गिड़गिड़ाई नहीं। 'तुम चले जाओगे तो गंधर्वों से राज्य की रक्षा कौन करेगा ?तुम्हारे पुत्र के लिए राज्य कैसे सुरक्षित रहेगा ?' चित्रवाहन ने केवल यही चिंता प्रकट की।

"तुम्हारे लिए मैंने तुम्हारी बेटी से एक पुत्र उत्पन्न कर दिया। उसका और इस सबका दायित्व तुम्हारा है।" उसने इस बात का कोई उत्तर न दिया।

उस एक वर्ष में मेरे कुछ साथी वहाँ की स्त्रियों के साथ रहने लगे थे। वे वहीं रह गये। शेष लोगों को साथ लेकर मैं निकल पड़ा। लेकिन यह समझ में न आया कि किस दिशा में जाना चाहिए। परंतु चलते समय मन में एक प्रकार की शांति थी। एकदम अकेले जाने की इच्छा। अंगरक्षकों को भी साथ लेने की इच्छा न थी। किसी को साथ लेने की इच्छा न थी। कुछ लोगों ने देश लौटने की इच्छा प्रकट की। अच्छा ही है सोचकर सबको श्रवण के साथ भेज दिया। मैं अकेला रह गया। श्रवण ने पास आकर समझाया। "महाराज, अब और किसी स्त्री से संबंध मत जोड़िएगा। आपके सुन्दर शरीर को कोई भी स्त्री निचोड़कर निःसत्व कर देगी।"

तब तक अँधेरा होने लगा था। पिछले दिन की भाँति धुँधली दीख पड़ने वाले पहाड़ों की श्रेणियाँ। पसीने से शरीर पर कपड़े चिपचिपा रहे थे। पास के किसी पेड़ से चमगादड़ों के चिचियाने का स्वर। अगले रथवाले ने अभी मशाल जलायी न थी। अर्जुन के मन में दिग्मूढ़ता छा गयी। अँधेरा भी ऐसा था कि यह समझ में न आ रहा था कि यह स्मृति है या वास्तविकता। वह मार्ग ही ऐसा था, एकदम नंगे पहाड़, कँटीले पौधे, कँटीली झाड़ियाँ, काँटेदार वृक्ष। शेर और चीता अभी

एक भी दृष्टि में नहीं पड़ा था। बारह रथ थे। उन सब में काफ़ी लोग थे। जब यह सोच ही रहा था कि रथों की गड़गड़ाहट से पशु प्राणी भाग जाते हैं तभी सामने एक अमराई दिखायी दी। उससे पहले एक घर था। दीपक का प्रकाश भी दिखायी पड़ा। आगे रथ वाले ने रथ रोका। उसके अनुमान के अनुसार वह एक गाँव ही निकला। अमराई के पास एक कुआँ था। रस्सी से पानी निकालना था। सब रथ रुक गये। गाँव वालों ने रस्सियाँ और मटके दिये। इन्होंने पानी खींच-खींचकर घोड़ों को पानी पिलाया और उनकी पीठ पर एक-एक घड़ा पानी डाला। टाँगों और खुरों पर भी पानी डाला। पिछले पड़ाव जलस्थान से पकाकर जो भोजन लाये थे उसे खाया और पानी पिया। साथ ही सिर, पीठ और छाती को भी पानी से भिगोया। कुएँ के पास के पहरेदार से अर्जुन ने पूछा, "कल लगभग इसी समय कोई बीसेक रथ यहाँ से गुज़रे?"

"इसी समय नहीं कल सुबह गये थे। वे तेज़ी से भागते गये। पानी पीने को भी नहीं रुके।" उन्होंने बताया था कि अनर्त देश जा रहे थे।

तो उसका और हमारा अंतर एक दिन से डेढ़ दिन का हो गया। अब तो और भी अधिक हो गया होगा। वह अब नहीं मिलेगा। द्वारका तक इसी प्रकार अकेले ही जाना पड़ेगा। यह सोचते हुए उसका उत्साह कम हो गया। घोड़े रथ खींचते जाएँगे और मुझे अब चुपचाप बैठे जाना होगा। कृष्ण पर भूख और प्यास का प्रभाव नहीं होता। सर्दी-गर्मी उसे सुस्त नहीं बना सकती। पर घोड़े, रथ और बाक़ी लोग? उसने अपना दल अपने वेग के अनुकूल ही रखा है। वह दल धरती पर चलता नहीं। हवा को भेदकर उड़ता चला जाता है। भैया ज़रा धीरे सोचते हैं। मुझे भी उसके साथ जाने को पहले ही कहते तो रास्ता साथ ही कट जाता। रास्ता इतना लम्बा है। मैं इस रास्ते से एक ही बार आया था। तभी जब इससे विवाह करके आया था। अर्जुन यह सोच ही रहा था कि रथ एक पंक्ति में चल पड़े। रास्ते से परिचित रथ वाला आगे चल पड़ा। दूसरा बड़ा और पाँच सफ़ेद घोड़ों वाला रथ स्वयं अर्जुन का था। कल से आज अँधेरा है। अकेला घोड़े पर चढ़कर आता तो कृष्ण को अब तक पकड़ सकता था। यह सब तो व्यर्थ की पूँछ है। क्या पहली बार द्वारका घोड़े पर अकेला नहीं गया था? वह भी मणलूर से गया था। किस दिशा से किस दिशा तक? कहाँ से कहाँ? बीच में कितने देश हैं? जान-बूझकर कुरु प्रदेश और पांचाल को न छूते हुए कोशल दशरण से होता हुआ गया था। बीच में किसी के ग़लत मार्ग बता देने से कंतुल की ओर चला गया था। उसमें छः दिन नष्ट हो गये। फिर लौट कर निषाध और अवंती से होता हुआ गया था। अब वे सब नाम भूल चले हैं। तब मुझे किस बात की आवश्यकता थी? घर छोड़कर निकलने वाले को उलूपी, चित्रांगदा और बाद में एकदम पाँच कन्याएँ मेरी थीं। जब निरुद्देश्य भटक रहा था, तब सूझा था न? जो सूझा था वह ठीक भी निकला। "जीवन में एक मित्र चाहिए।

अकेले अर्जुन को एक सखा चाहिए। जिसे देखकर स्त्रियों की लार टपकती हो और पुरुषों को डाह होती है, ऐसे अर्जुन को सखा चाहिए। ऐसे चतुर धनुर्धारी को जिसे गुरु बार-बार गले लगाते हैं। ऐसे भाग्यहीन को, जिसकी पूर्णरूप से अपनी पत्नी नहीं है; जिसे अपने शैशव के बाद मित्रता करने की आयु से पहले ही हिमपर्वत की घाटी छोड़नी पड़ी। वहाँ कोई मित्र नहीं बना। दायादियों में समान आयु का कोई मित्र नहीं मिला। एकचक्रानगरी में भी किसी से मित्रता न हो सकी। इंद्रप्रस्थ के निर्माण के समय अपने आप प्रचुर मात्रा में रथ, घोड़े, बर्तन, कपड़े-लत्ते, स्वर्णादि देकर वन को नगर बनाने में स्वेच्छा से हमारी सहायता करने वाले उस एक को छोड़कर अर्जुन और कहाँ गया ? घर छोड़कर परदेसी बनने की अपनी अनाथ स्थिति किससे जाकर बताए ? देश-देश घूमकर ठीक रास्ता न जानने के कारण प्रभास पहुँचा। वहाँ से कहला भेजते ही वह घोड़े पर चढ़कर भागा आया। कितने प्रेम से गले मिला। इतना कसकर कि दोनों का पसीना एकरस होकर बह निकला। तब लगा कि एक ठोस आधार मिला। देश छोड़ने के बाद मैं कहाँ-कहाँ गया ? आर्यावर्त की पूर्व दिशा से पश्चिम की सीमा तक अकेला पहाड़, पर्वत, जंगल, मैदान को पार करता कितने देश घूमा। वह इन सब बातों को शांति से सुनकर समझ गया। और बोला, "अर्जुन द्वारका चलो। अब और कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं। कुछ दिन मेरे साथ रहो। सब बातें भूल जाओ। बाद में मैं तुम्हें समझाऊँगा। आत्म-भर्त्सना तुम जैसों को शोभा नहीं देती। पूरी द्वारका तुम्हारी है। तुम अपने को परदेसी क्यों समझते हो ?" "क्या कहा ?" द्वारका में तुमसे कोई यह नहीं पूछेगा कि बिना कारण यह क्यों आ गया। अगर कोई पूछेगा तो मैं कह दूंगा कि हमें तंग करने वाले शाल्व के लोगों से युद्ध करने के लिए इस पांडव वीर को मैंने बुलाया है। वीर जहाँ भी हो उपयोगी होता है। संकोच न करो।"

संकोच को मिटा देने वाली आत्मीयता, मन में क्षेमभाव पैदा करने वाला साहस।

कृष्ण ने कितनी सुन्दर नगरी का निर्माण किया है : सदा लहरों से गूँजते समुद्र के तट पर उसका भवन है। उठती-गिरती लहरें। सफ़ेद-नीले और अंत में हरित रंग के अनंत सागर को निहारता बैठ जाता तो मैं अपने आप को भूल जाता। कृष्ण कहा करता था, "अर्जुन, मैं जैसे अपनी सुधबुध खोकर सागर को निहारता बैठा रहता हूँ वैसे ही तुम भी उतनी ही तन्मयता से साथ बैठने वाले सखा हो।" आँखों से स्वयं देख लेने तक मुझे सागर की कल्पना ही न थी। इंद्रप्रस्थ के निर्माण के समय जब वह आया था तब उसने सागर की अनंतता, उसकी लहरें, उसकी गूंज, उसका विस्तार, उसका आक्रमण, उसका तट को छूकर विलीन हो जाना आदि का वर्णन किया था। वह सब याद करके वह अंतर्मुखी हो उठता। सागर की अनंत जल-राशि में उठने वाली, गरजने वाली, आक्रमण करने वाली और तट

को छूकर विलीन होने वाली लहरों का वर्णन उसी के मुख से सुनना चाहिए। वह उसका इतना सुन्दर वर्णन करता, मानो उसमें कोई विशेष अर्थ निहित हो।

वहाँ जाने के तीन मास बाद जब मैं सागर को देख रहा था, उस दिन चन्द्रमा पूरा था और सागर की लहरें उमड़ी पड़ रही थीं। ठाठें मार रही थीं। तभी उसने कहा था, "पार्थ, घर से भागने के कुछ दिन बाद घर की याद सताने लगती है, किन्तु अभिमान आड़े आता है। यह भाव पाँव रोक देता है कि घर से भागना ग़लत हुआ है। तुम्हारे बड़े भाइया को मैं कहला भेजूंगा। यदि वे ही आकर तुम्हें लिवा ले जायें तो अच्छा रहेगा न ?"

मेरे मन की बात को कितनी सूक्ष्मता से समझ गया था। उस विषय में बात ही नहीं उठी, फिर भी वह मेरे अंतर्मन को समझ गया। भले ही शत्रु हो या मित्र दूसरे के मन की बात को ठीक से समझने में उसकी जैसी शक्ति किस में है ? अब तक द्वारका में दुर्योधन ने क्या-क्या कहा होगा ? किस प्रकार की बातें की होंगी ? बलराम का मन किस ओर गया होगा ? शेष यादव प्रमुखों के मन पर दुर्योधन ने क्या-क्या जादू किया होगा ? यह सब सुनते ही कि दुर्योधन द्वारका गया है, वह सब कुछ अपनी कल्पना से समझ गया। वहाँ जाकर पता लगाये तो सब बातें उसके अनुमान के अनुसार ही निकलेंगी। जिस दिन पूर्णिमा का चाँद था और समुद्र-ठाठें मार रहा था, हम तट पर बैठे थे तभी उसने मेरे मन की एक और बात समझ कर पूछा था न :

"अब तुम्हारे मन को जिस लड़की ने घेर रखा है, वह मेरी बहिन है। वह मेरे पिता की दूसरी पत्नी की पुत्री है। उसका नाम सुभद्रा है।"

यह उसकी बहिन थी। क्या मैं यह नहीं जानता था ? मुझे यह मालूम था। क्या वह नहीं जानता था ? फिर भी नये ढंग से परिचय की बात क्यों कही ? मैं क्यों इस पर मोहित हो गया ? रूप पर, चतुरता पर अथवा उसकी किस बात पर मोहित हो गया ? उसने दायीं ओर कनखियों से देखा। अगले रथ में जलती मशाल की रोशनी पड़ रही थी। वह सोयी नहीं थी, चुपचाप बैठी हाथ में पंखा लिये थी। प्यारा-सा मुखड़ा, काले बाल। सत्रह-अठारह वर्ष में तनिक भारी हो गयी है। अभी बुढ़ापे ने नहीं घेरा है। बाल उतने ही काले और घने हैं। अगले रथ की मशाल का प्रकाश न भी होता तो भी आस-पास के पहाड़ियों-पर्वतों, पेड़-पौधों की धुंधली आकृतियाँ दिखायी पड़ रही हैं। हम चाहे जितना भी तेज़ चलें कृष्ण को नहीं पकड़ पायेंगे। "तुष्ट, तुम एक ओर हो जाओ और पाँच रथ आगे जाने दो। इस रथ को बीच में कर लो, मशाल का तेज़ प्रकाश तंग कर रहा है।"

"जी, यह ठीक है। बहुत गर्मी है।" सुभद्रा के मुंह से यह शब्द निकले तभी उसने ज़ोर से साँस छोड़ी।

अँधेरा कुछ कम हुआ।

आकृतियाँ स्पष्ट हो उठीं।

शांत अँधेरे में स्मृतियाँ स्पष्ट हो उठती हैं।

मैं इस पर क्यों मोहित हो उठा ? पत्थर नहीं रेतीला मार्ग था। हिचकोले नहीं लग रहे। रथ झूमता हुआ जा रहा है। हाँ पता चला। मन में कृष्ण ही समाया हुआ था। उसकी आत्मीयता, मेरे प्रति आदर भाव। समुद्र तट की रेत पर साथ बैठकर साथ स्वप्न देखने वाली मित्रता। कितनी ही रातें, वह पत्नी को भीतर छोडकर मेरे साथ समुद्र तट पर घंटों चुपचाप बैठा रहता था। इसकी भौंहें भी उस सखा जैसी ही हैं। वैसे ही गाल। घने काले बाल। उसी जैसे गुण और भाव-शक्ति। तब मैं स्वप्न देख रहा था कि इसका हाथ थामने से मेरे मन की आकांक्षा पूरी हो जाएगी। हाँ, अब समझ में आ रहा है। बहिन में भाई को देखा। तेतीस वर्ष की आयु में मुझे यह समझ में नहीं आया था। वासुदेव की इतनी पत्नियों के इतने बच्चों में कोई भी कृष्ण जैसा नहीं था। दूसरों से मेरी घनिष्ठता भी नहीं हुई। इसे देखते ही इसमें कृष्ण के सभी गुण आरोपित करके इसके स्वप्न लेने लगा। "कृष्ण, इसका हाथ मुझे दिला दो! तब मैं समझूँगा कि जीवन का परमपद मिल गया।"

"पार्थ, उस एक लड़की से परमपद कैसे प्राप्त हो जाएगा।" कहकर वह हँस पड़ा था।

"मैं स्पष्ट तो नहीं कर सकता, पर मैंने जो सत्य देखा वह तुम देख नहीं पा रहे हो ? उसको पाने का कोई उपाय सुझाओ। अगर स्वयंवर भी रखा जाए तो वह मुझे चुन सकती है न ? द्रुपदराज ने जिस प्रकार का बहुत ही कठिन लक्ष्य-भेद रखा था और उसमें अपने बाण-कौशल से मैं जीत गया था, उसी प्रकार की शर्त यदि रखी जाए तो मैं अवश्य जीत जाऊँगा। जो भी हो···।"

दो दिन बाद उसी ने कहा, "पार्थ, मैंने सुभद्रा का मन जानने का थोड़ा-बहुत प्रयास किया, पर यह निश्चित नहीं कि स्वयंवर में तुम्हें ही चुनेगी। यदि कोई शर्त रखी जाए तो उसमें तुम्हीं जीतोगे यह भी कौन जाने ? यह कैसे कहा जाए कि तुमको हरा सकने वाले वीर आर्यावर्त में पैदा नहीं हुए ? तुम्हारे शर्त में भाग लेने को उठने से पहले वह तुम्हारे लिए इंकार कर दे तो, तुम उसमें भाग भी नहीं ले सकोगे। कर्ण के लिए पांचाली ने पहले स्तर पर ही मना नहीं कर दिया था ?"

"वंश से मैं कोई सूत नहीं। उच्च क्षत्रिय हूँ। शुद्ध आर्य हूँ।"

"पर आयु में तो तरुण नहीं। तुम मेरी ही आयु के हो। इसके अतिरिक्त तुम पाँचों ने एक पत्नी से विवाह किया। तुम समष्टि के हो। यदि वे सब बातें उसके मन में हों तो ?"

"कृष्ण तुम्हारी सौगंध। वह समष्टि का विवाह काफ़ी हो गया। मुझे तो एक अलग पत्नी चाहिए। इस बारे में तुम्हारी बहिन को संदेह करने की आवश्यकता

नहीं। वह अकेली ही मेरी पत्नी होगी।"

इसे पसंद करके इसके लिए मैं कृष्ण के पीछे पड़ गया। यह किस प्रकार मुझे प्राप्त हो सकती है? यह सुझाने वाला वही था और वह स्वयं भाई बलराम की निंदा का पात्र बन गया। उसने बताया, "परसों वह रथ में बैठकर रैवतक पर्वत जाएगी। तुमने वह देखा भी है। पूर्णिमा के दिन वह प्रदक्षिणा करने जाती है। आखेट के बहाने मेरे शक्तिशाली घोड़ों वाले मजबूत रथ में तुम अकेले जाओ। ठीक बीच में चार बाण चलाना, दास, सारथी और अंगरक्षकों को डराकर इस अकेली को उठाकर रथ में डालकर इंद्रप्रस्थ भाग जाना, पर जाना बड़े वेग से। राह में इसकी रक्षा करना तुम्हारा दायित्व रहा। इसके लिए बहुत साहस चाहिए। कर सकोगे?"

वह रथ ऐसा ही मजबूत रथ था। ऐसे ही चार बड़े धनुष भी थे। एकदम तेज और चौड़े मुख वाले बाण थे। घोड़े भी ऐसे ही थे, जिन्हें मैंने साध रखा था। अर्जुन ने घूमकर दायीं ओर देखा। सुभद्रा बैठी-बैठी ऊँघ रही थी। अनर्त देश की सीमा तक मैं रास्ता जानता था। आगे रास्ते को पूछ-पूछकर जाना था। "एक दिन बिता दो। हम ही आकर तुम दोनों से मिलेंगे और विवाह के लिए मना कर वापस ले जाएँगे।" कृष्ण ने यह भरोसा भी दिया। अकस्मात् उसकी योजना सफल न हुई तो मुझे पीछे की ओर मुँह करके बाण चलाने थे और आगे घोड़े दौड़ने थे। अकस्मात् यह रथ से भागने का प्रयास करती तो इसके हाथ-पाँव बाँधकर लिटा देना था। अब यह बैठी-बैठी ऊँघ रही है। कोई दिन ऐसा नहीं जब कि यह सोयी न हो। दिवास्वप्न देखने वालों को ही नींद नहीं आती। वे ही करवटें लेते हैं। वे उठकर बैठकर चंद्रमा या नक्षत्रों को निहारा करते हैं। पांचाली ठीक है। गर्मी में ऊँची अट्टालिका की छत पर जब दोनों सटकर बैठते तब ऊपर नक्षत्र या चाँदनी होती थी। नीचे सफ़ेद विस्तृत धीरे-धीरे बहती यमुना। बाँहों से टिककर स्वप्न देखने वाली सखी। पाँच रात में एक बार। ठिठुरने वाली ठंड में भी कभी-कभी मुझे जगाकर छत पर ले जाती थी। वह धवल चंद्र को अकेला नहीं छोड़ना चाहती थी। दूसरे चारों के साथ वह कभी छत पर नहीं गयी। सारी रात जागी भी नहीं। इसे लाने के बाद से सारी रात स्वप्न देखने का अवसर ही नहीं मिला। कल रात यह सोयी है। आज दोपहर को भी अमराई में खर्राटे लेती रही। अब इतनी जल्दी फिर सो गयी। सारथी रथ चला रहा है। इसलिए कोई काम भी नहीं मेरे लिए। तुष्ट भी अपनी जगह पर आँखें मूँदे बैठा है। घोड़े अपने-आप रथ खींचते हैं। दूसरे रथों के पीछे-पीछे जा रहे हैं।

'सुभद्रा-सुभद्रा' पुकारते हुए उसका बायाँ कंधा हाथ से हिलाया।

एक बार लंबी साँस छोड़कर उसने 'हूँ' कहा।

'तुम्हें कितनी नहीं आती है?" कहते हुए अर्जुन ने फिर उसे हिलाया।

"क्या है ?" कहते हुए उसने अँगड़ाई ली। उसकी आँख बंद थी। अर्जुन को यह अँधेरे में भी दिखायी दे गया। दोनों बाँहें ऊँची करके अँगड़ाई लेती हुई बोली, "जरा नीचे सो रहती हूँ। धनुषों को सरका दो।" "अब बाद में सोना, बैठकर ज़रा बात करो।" जब वह यह कह ही रहा था तब तक वह अँगड़ाई ले चुकी। "क्या बात करूँ ?" कहकर उसने आँखें खोलीं। अर्जुन को समझ में न आया कि उससे क्या कहे ? वह दूर आकाश की ओर देखने लगा। रेतीली जमीन वाले मार्ग पर धूल कुछ अधिक ही उड़ रही थी। रथ ज्यादा हिचकोले नहीं खा रहा था। लहरों पर तैरती नाव की भाँति झूल रहा था।

"आपने क्या कहा ?" सुभद्रा ने पूछा।

"कृष्ण के यहाँ रहते दुर्योधन वहाँ चला गया था। वहाँ क्या-क्या हुआ होगा ?"

सुभद्रा को बात समझ में आ गयी। उसकी नींद पूरी तरह खुल गयी। अर्जुन ने ही फिर से बात आगे बढ़ाई। "पिछले तेरह वर्ष से तुम वहीं थीं, किस-किस का मन कैसा है, यह तुम अच्छी तरह जानती हो।"

"किस-किस के माने ? कृष्ण तो अधिकतर बाहर ही रहते हैं। अब भी उपप्लाव्य नगर आकर हमारे काम के लिए ठहर नहीं गये थे ? इसी प्रकार किसी-न-किसी के काम से जाते ही रहते हैं। कभी भी देश छोड़कर बाहर न जाने वाले बड़े भइया के वश में सेना रहती है। आप मुझे उठाकर ले आये थे। वह अपमान अभी बड़े भइया भूले नहीं हैं।"

इसे पाने के लिए उठाकर ले आने के सिवा और कोई चारा न था। वह क्षत्रिय समाज के अनुकूल ही विवाह था न ? अर्जुन ने कभी समाज के नियम को तोड़ा नहीं। इतने बुद्धिमान बलराम को क्या यह समझना नहीं चाहिए था ? यह सोचते हुए अर्जुन को पुरानी बातें याद हो आयीं। मेरे धनुष-बाण से डरकर सुभद्रा की दासी और अंगरक्षक रैवतक पर्वत से द्वारका भागे। मैंने उनके रथ के एक चक्र को निकाल दिया था। धुरी तोड़ डाली थी; और एक घोड़े को लँगड़ा कर दिया। यह समाचार पाते ही बलराम आपे से बाहर हो गया। नगर में संकट-सूचक दुंदुभि बजवा दी; और सब योद्धाओं को एकत्रित किया। युद्ध के रथ कसवाये और बोला, "अपनी ध्वजाएँ चढ़ाकर धनुष-बाण भर लो। अब बलराम के नेतृत्व में युद्ध होगा। सब सभा-सदन में एकत्र हो जाओ।" कहकर उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया। सभा-भवन वीरों से भर गया। बाहर युद्ध के रथों की पंक्तियाँ लग गयीं। श्वेत रंग की बलराम की आँखें लाल होकर जल उठीं। "यादव वीरो, ऐसा काम करने वाला अर्जुन कृष्ण का मित्र है। इतने दिन हमारे घर में रहा। हमारा नमक खाया और हमारी ही बेटी को उठा ले गया। हमारी बेटी को दूसरे आदमी को उठा ले जाने का अर्थ क्या है ? हमारे सम्मान और हमारे पौरुष

को एक चुनौती। उस बदमाश का पीछा करके उसे मारकर उसका मांस और हड्डियाँ कुत्तों को न खिला दिया गया तो यादवों का क्या सम्मान बचा रहेगा?"

उद्धव या सात्यकि ने कहा, "वह कृष्ण का मित्र है न? अब कृष्ण को बुलाइये।" कृष्ण धीरे-धीरे वहाँ पहुँचा। बातों में उससे कौन जीत सकता है? वह बोला, "भइया, यदि वह इस घर की लड़की से इतना प्यार करता है तो ज़रा सोचिये कि इस घर के बारे में उसके मन में कितना आदर होगा। अर्जुन के कारण हमारा अपमान नहीं हुआ बल्कि सम्मान हुआ है।"

"चोरी करना बड़े आदमी का लक्षण है क्या?"

"भइया, जब उसने निश्चय ही कर लिया कि इसे पाना है तो क्या करना चाहिए था? जब स्वयंवर में आते हैं तो यह अपेक्षा रहती है कि मिले तो मिले नहीं तो न सही। उनमें अर्जुन के मन जैसा उत्कट भाव नहीं रहता। वैसे आपने देखा ही है कि द्रुपद की रखी स्पर्धा उसने कैसे जीती? यदि ऐसी स्पर्धा हम रखते तो वह अवश्य जीत लेता। अब भी चाहें तो उसे वापस बुलाइए। शस्त्र और शास्त्र की जैसी चाहे परीक्षा लीजिए। उसके बाद उसका विवाह करा दीजिए। उस जैसा वीर और कौन मिलेगा?"

"पांच लोग मिलकर एक पत्नी रखने वाला घराना है वह।"

"वापस बुलाकर यह शर्त रखेंगे कि हमारी बहन केवल तुम्हारी ही पत्नी बनेगी। यदि वह मान जाए तो उससे विवाह कर देंगे।"

यह सच है कि कृष्ण ने बातों से बाँधकर उसे मना तो लिया, परन्तु उसका मन नहीं बदला। "यह सब हुए अठारह वर्ष बीत गये। तब भी वे भूले नहीं?" अर्जुन ने पूछा।

"अठारह वर्ष ही क्या, वे जन्म-भर भूलने वाले स्वभाव के नहीं। उनका प्रेम भी ऐसा ही है और क्रोध भी। आपको खांडवप्रस्थ देने के बाद कृष्ण दो-तीन वर्ष आपके साथ रहे न? तब मैं बारह-तेरह वर्ष की लड़की थी। दूसरे घर में रहती थी। सब बातें मुझे क्या मालूम? सुना है कि तभी दुर्योधन द्वारका आया था और उसने भैया से गदायुद्ध सीखा। 'बलभद्र, आप जैसा गदा चलाने वाला आर्यावर्त में पहले कभी नहीं रहा? आगे की कौन जाने? मैं यह जानकर आया हूँ कि द्रोण से सीखने के उपरांत भी यदि मैं आपसे नहीं सीखूंगा तो विद्या अपूर्ण रह जाएगी। आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार करके सिखाइए।' उसने यह कहकर सीखने की इच्छा प्रकट की। उन्हें उस समय उसके प्रति जो प्रेम हुआ उसका किसी भी तरह मिटाना संभव नहीं, उसके अनुसार ही वह उनकी बार-बार प्रशंसा करता और अपने स्नेह को दृढ़ बनाता जाता है।"

"लेकिन क्या वे अपनी सगी बहिन के अभ्युदय का विरोध करेंगे?"

"कैसे कहूँ? बहिन तो हूँ पर सौतेली हूँ न? आयु में भी बहुत अंतर है। एक

साथ बढ़े भी नहीं। पिताजी की प्रत्येक पत्नी का अलग-अलग भवन था न ? चाहे कितनी ही दूर का संबंध क्यों न हो, उसमें स्नेह रखना कृष्ण का स्वभाव है। जब आप तेरह वर्ष को बनवास के लिए गये, तब मेरी देख-भाल करने वाले कृष्ण ही तो थे। बड़े भइया तो यही ताना देते थे, 'बड़ा भाई तो जुए में हार गया। इसने पत्नी को मायके भेज दिया। नपुंसक कहीं का ?' उन्होने एक दिन भी अपने घर बुलाकर प्यार से बात नहीं की। सत्कार नहीं किया। इतनी अच्छी गदा जानने वाले को क्या एक दिन भी अभिमन्यु को बुलाकर सिखाना नहीं चाहिए था ? भांजे को विद्याभ्यास और शास्त्राभ्यास कराने वाले कृष्ण ही थे और अनुशासन से शिक्षा देने वाले सात्यकि थे।"

यादवों का सैन्यबल कितना होगा, यह प्रश्न अर्जुन के मन में उठा। सुभद्रा उस बारे में विशेष नहीं जानती। जहाँ तक मेरी जानकारी है, कोई बहुत बढ़िया सेना नहीं है उनकी। यादव सारे-के-सारे एक ही कुल और एक ही मत के भी नहीं। द्वारका, प्रभास और समुद्र तीर पर फैले, वृष्णि, भोज, अंधक और शनि आदि वंशों के लोग हैं थे। प्रत्येक के अपने-अपने रजवाड़े हैं और प्रत्येक की अपनी-अपनी छोटी-छोटी सेना है। सेना की अपेक्षा वीरों की संख्या कुछ ज्यादा है; सत्यक, सात्यकि, कृतवर्म प्रद्युम्न, सांब, निशठ, शंकु और शंकु के बाद चारुदेष्ण, विपृथु, सारण, गद। सेना के बिना इनमें बलराम के पक्ष में कितने लोग हैं ? और कृष्ण के प्रति निष्ठा रखने वाले कितने हैं ? सत्यक बूढ़ा हो चुका है। सात्यकि पहले से ही कृष्ण के प्रति निष्ठावान है। प्रद्युम्न और सांब कृष्ण के ही पुत्र हैं। सांब के साथ तो दुर्योधन की पुत्री लक्षणा का विवाह हुआ है। परंतु युद्ध में वह पिता के विरोध में ससुर के साथ लड़ने वाला पुत्र है क्या ? जब वह लक्षणा का अपहरण करने गया था तब पकड़ा गया। दुर्योधन ने उसे पकड़कर बाँध दिया था। बलराम ने जाकर डरा-धमकाकर लड़की देने को विवश किया। ससुर दुर्योधन पर सांब को अब भी गुस्सा हो सकता है। अधिक-से-अधिक वह किसी के भी पक्ष में नहीं जाएगा और द्वारका में बना रहेगा। कृतवर्म तो बलराम का बहुत विश्वस्त है, पहले से ही। अब पता नहीं। गद और बलराम एक ही माँ के पुत्र हैं। फिर भी वह सदा कृष्ण की बात का अनुमोदन करता है। दुर्योधन सफल भी हो जाए तो भी समस्त यादवों को अपनी ओर नहीं मिला सकता। यादवों की कुछ संपत्ति तो बलराम उदारता से उन्हें दे सकता है। चंद्रमा धीरे-धीरे उदय होने लगा। उसने मुड़कर देखा। सिर के ऊपर भूरे रंग के आकाश में प्रकाशहीन चंद्रमा दिखायी दिया। उसे टिकटिकी बाँधकर देखने का कोई आकर्षण महसूस नहीं हुआ। गर्दन मोड़ते हुए फिर से सुभद्रा पर दृष्टि गयी तो देखा वह बैठी-बैठी ऊँघ रही है, या सो रही है। इसने अपने-आप झुककर आड़े रखे धनुष हटाकर उसे सोने को कहा। वह फिर लुढ़क गयी मानो और किसी ओर ध्यान ही न हो। उसने घुटने मोड़कर हाथ का सिरहाना

बना लिया।

चंद्रमा धीरे-धीरे स्वच्छ होता जा रहा था। मार्ग थोड़ा ऊबड़-खाबड़ था। अर्जुन को लेटने की इच्छा हुई।

तभी तुष्ट बोला : "विराट की सारी सेना आपकी ओर है।"

अर्जुन को उसमें कोई नयी बात न लगी। विराट अभी-अभी समधी बना है। इसके अतिरिक्त वह दुर्योधन से बहुत क्षुब्ध है। हमारे युद्ध की तैयारी के लिए उसने एक गाँव ही छोड़ रखा है। हमारे लिए इच्छानुसार सेना, रथ, घोड़े, सैनिक आहार और वस्त्रादि दे रखे हैं। "यह तो पता है ही।" तुष्ट फिर न बोला। अर्जुन ने पूछा भी नहीं। थोड़ी देर बाद तुष्ट ही पुनः बोला, "केवल राजा के आदेश से ही नहीं। हमारे सारे सैनिक विशेषकर सूत आपके बड़े भाई भीम महाराज के लिए जान देने को तैयार हैं। युद्ध में उनके गुल्म में मिलकर युद्ध करने की सलाह कर रहे हैं।" अर्जुन को आश्चर्य हुआ। इन लोगों को भीम पर इतना प्रेम क्यों? वह क्या धनुर्विद्या जानता है? आकर्षक रूप है क्या? वह सुंदर तो है किंतु आकर्षण की सीमा लाँघ जाने वाला आकार है। रसोइया बनकर उसने अज्ञात-वास बिताया। इन सैनिकों के साथ कैसे मित्रता हो गयी? स्पष्ट पूछने का मन न हुआ। पता नहीं क्यों उत्साह न हुआ। रास्ते में आड़े आये पत्थर पर चढ़कर उतरता रथ ज्यादा हिचकोले ले रहा था। तुष्ट ने अपनी बात आगे बढ़ाई : "अकेले ही भीम महाराज ने हमारे सेनापति कीचक और उसके दस भाइयों का काम तमाम कर दिया। तब से हमारे सूत स्त्री-पुरुषों ने उनका नाम जपना शुरू कर दिया। हमारे यहाँ के सारे सूत भीम महाराज को साक्षात् देवता मानते हैं।"

अर्जुन को कुछ सूझा नहीं। बैठे-बैठे ही वह झटका-सा खा गया। तुष्ट ने आगे कुछ न कहा। अर्जुन का मन खाली हो गया। थोड़ी देर बाद बैठे-बैठे ऊब लगने लगी तो सुभद्रा को ज़रा कोंचकर हट कर सोने को कहा और बराबर में स्वयं लेट गया। जम्हाई आयी पर आँख न लगीं। कीचक ने द्रौपदी पर आँख गड़ाई, जब वह उसके भवन से भागने लगी तब उसका पीछा करके विराट के सामने ही लात जमाई थी। यह मुझे भी पता चला था। तब मेरा मन भी उबल उठा था। पर क्या किया जा सकता था? हमने अपने अस्त्र बाँधकर नगर से दो कोस दूर के शमी वृक्ष के कोटर में छिपा दिये थे। वहाँ से धनुष-बाण लाकर···। पर क्या धनुष-बाण लेकर अकेले कीचक को मारा जा सकता था? तब वे क्या यह न जान जाते कि हम कौन हैं? उस संध्या मैंने भइया से मिलकर बात की थी। 'अज्ञात की अवधि समाप्त होने तक चुप रहना चाहिए। मैंने यह संकेत पांचाली को दे दिया है।' भइया ने यह बताया था। इस पर मैं मन मारकर चुप रह गया था। भीम ने गुस्से में आकर कीचक को मार डाला। दुर्योधन को यह समाचार मिला। यह पांडवों की ही करतूत होगी, सोचकर उसने विराट का पशुधन पकड़

लिया। अज्ञात की अवधि में पहचाने जायें तो फिर बारह वर्ष का बनवासऔर एक वर्ष का अज्ञातवास भुगतना पड़ता। भीम में विवेक नहीं। यह सोच ही रहा था कि व्यथित मन को तनिक धीरज बँधा। अपना अपमान होने पर भी मेरे पास नहीं आयी। जाकर भीम से कहा। यह बात उसे चुभने लगी। क्या पांचाली ने यह सोचा कि अर्जुन जीवित ही नहीं? पार्श्व में दर्द हो जाने से करवट लेने का मन हुआ। "ज़रा हट कर सो" कहकर सुभद्रा को कोंचा और जगह बनाकर करवट ली। 'पहचाने जाने पर भी फिर से बनवास जाने की आवश्यकता नहीं।' यह भीम ने कहा था न? पांचाली का भी यही उत्तर था। वे दोनों धर्म की अवहेलना करने में बराबर हैं। पहले से ही देखता चला आ रहा हूँ। भीम को धर्म में श्रद्धा ही नहीं। पांचाली पूरी तरह से उसी की ओर हो गयी है। वही भीम विराट की समस्त सेना के लिए साक्षात देवता बन गया है। धर्म के लिए आत्म-निग्रह करने वाले बड़े भइया का सम्मान करने वाले प्रचंड धनुर्विद अर्जुन को···। वन में बार-बार भीम कहा करता था, 'तुम्हारे जुए की बात को ही हम माने लेते हैं। पर उसका क्या मतलब है? यही न कि हमें बारह वर्ष बनवास करना चाहिए। क्या इस अवधि में दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनि का वध नहीं करना चाहिए? उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिए, उस करार में ऐसी कोई शर्त है? कृष्ण की थोड़ी-सी सेना, ससुर द्रुपद की सेना, हमारे प्रति पहले निष्ठा रखने वाली इंद्रप्रस्थ की हमारी अपनी सेना—ये तीनों मिल जाएँ तो पर्याप्त हैं। मैं जाकर दुर्योधन की गर्दन मरोड़कर बाएँ पाँव से लात न मारूँ, दुःशासन की छाती न फाड़ूँ, कर्ण और शकुनि का मांस जंगली कुत्तों को न खिला दूँ तभी धर्म देवता प्रसन्न होंगे। नहीं तो पांडवो का यह वंश बचेगा नहीं।' अपने दिये वचन के विरोध में धर्म की व्याख्या करने वाला भीम, आर्य-धर्म के विरुद्ध बड़े भइया का तिरस्कार करने वाला भीम, वही भीम अब साक्षात् भगवान बन गया। कापिल्य में रहते हमें समाचार मिला था न? एकचक्रानगरी में बकासुर को मारने के कारण उस नगर वाले, केवल नगरवासी ही नहीं वेत्रवती गृह का सारा जनपद भीम को भगवान मानकर पूजा करने लगा था। पर तब तक हम एकचक्रा नगरी छोड़कर चल पड़े थे। जरासंध को मार डालने से कारागृह से मुक्त हुए सारे राजा लोगों ने उसको भगवान का रूप मानकर नमस्कार किया न? इसीलिए राजसूय में भेंट लाने के लिए कृष्ण ने उसी को पूर्व दिशा की ओर भेजा था। बिना युद्ध के ही, पूर्व के समस्त राजाओं ने उसका स्वागत करके गाड़ियाँ भर-भरकर भेंटें दीं। भाग्यशाली अधर्म करने पर भी यशस्वी हो जाते हैं। ऐ भीम! तुम मेरे बड़े भाई हो। तुमसे मुझे द्वेष नहीं। पर धर्म का तिरस्कार करने वाले को पूजने वाले ये लोग कैसे हैं? फिर से करवट लेने का मन हुआ। भागते रथ में सोने की इच्छा न थी। यह जानते हुए भी कि उस मार्ग में पहाड़ और कँटीली झाड़ियों के अतिरिक्त

और कुछ नहीं, उसे लगा कि नींद आ जाने से वह सब आँख से ओझल हो जाएँगे। नींद न भी आये तो भी लेटे रहने पर वे दिखायी नहीं पड़ेंगे। इसलिए वह उठकर बैठ गया। आर्य होकर अपने से बड़े को धिक्कारने वाला भी कोई श्रेष्ठ होता है ? उसने कभी धृतराष्ट्र को पूज्य नहीं माना। ताऊ नहीं कहा। सदा उसे अंधा और गांधारी को अंधी ही कहता है। अपने बच्चों का पक्ष लेकर न बोलने वाली माँ कौन-सी होती है ? पति के अंधे होने के कारण जब संसार के दृश्य-सुख से वंचित हैं और वह आँखों से लाभ उठाकर सुख प्राप्त करे तो धर्म स्वीकार नहीं करेगा। यह सोचकर उसने सत्प्रेरणा से अपनी दोनों आँखों पर पट्टी बाँधकर अंधत्व स्वीकार किया। उस देवी माँ को अंधी कहने वाले भीम को धर्म का कोई बोध है ? क्या वह कुरुवंश को उज्ज्वल करने वाली साध्वी नहीं ? उसे माता गांधारी कहते ही वह मज़ाक करता है। धीरे से मुस्कराकर उस मज़ाक को और भी तीखा कर देती है यह पांचाली ! दोनों एक ही जैसे निम्न कोटि के हैं। इन धर्म-विरोधियों को नरक मिलेगा। रौरव नरक। अधर्मी परस्पर मिल जाते हैं। पाँचों के साथ समभाव से रहने का वह चाहे जितना बहाना करे, अब वह भीम के पीछे पड़ी है। मन से व्रत को तोड़ डाला है। धर्म का विरोध करती है, पाप की भागी बनेगी। क्या धर्म अपने सुख से बड़ा होता है, धर्म कीर्ति से बड़ा होता है ? जिस घर में पिता न हो वहाँ बड़ा भाई पिता के स्थान पर होता है। उसका जुआ खेलना ग़लत हो सकता है। परन्तु जब विरोधी जुआ खेलने को ललकारें तब उसमें भाग न लेना एक आर्य के लिए—वह भी ऐसे आर्य के लिए जिसने राजसूय करके अपनी कीर्ति चारों ओर फैलाई हो, मना करना कैसे संभव है ? उसे कायर नहीं कहते ? खेल में हारना नहीं चाहिए, जीतना ही चाहिए। यह कौन-सा न्याय है ? उसकी हार देखकर उस राजसूय करने वाले हाथ को आग से जला देने की बात भरी सभा में भीम ने कही थी ! बड़ों के प्रति कोई सम्मान नहीं। गोद में खिलानेवाले पितामह, विद्या देने वाले आचार्य—इन सबको 'टुकड़खोर' कहकर ग़ुस्से में आने पर एक-एक की धज्जी उड़ा देता है। केवल प्रतिकार ही एकमात्र आर्य का धर्म है। केवल प्रतिकार की बुद्धि से ही कीचक और उप-कीचकों को मार तो डाला यदि उसमें कुछ कमोबेश हो जाता तो हम पर अज्ञातवास का नियम तोड़ने का आरोप लग जाता। छोटी जाति के दस-पाँच सूतों से प्रशंसा भले ही मिली हो, लेकिन क्या पुनः वनवास और अज्ञातवास से बच सकते थे ? नियम तोडने का दोष न लगता ?

तत्काल प्रतिकार की अपेक्षा दूरदृष्टि अच्छी होती है। कुलधर्म का पालन उत्तम है। धर्म की मूर्ति बड़े भइया हैं। उनकी बात को समझकर चलने वाला केवल अर्जुन है। गंधर्वों को हराकर दुर्योधन को छुड़ाने वाला भी यह 'विजय' ही है। ऐसे अवसर पर शत्रु का मरना ही लाभदायक है, सोचकर संकुचित बुद्धि से भीम खुशी से फूला नहीं समा रहा था। बाहर चारागाहों और जंगल के किनारे चरने

वाली गौओं का स्वयं परीक्षण करना, उनकी पीठ पर राजचिह्न अंकित करना, उनकी संख्या का ध्यान रखना, कितना दूध देती हैं और कितनी सूख गयी हैं, नर कितने हैं और मादा कितनी हैं, कितनी मांस के लिए उपयोगी; यह सब प्रत्येक वर्ष जाँचना प्रत्येक राजा का कर्त्तव्य है। राजमहल और अंतःपुर में बैठे-बैठे ऊब जाने वाली रानियों और राजपुत्रियों को साथ ले जाने की प्रथा कोई नयी नहीं।

भीम का यह कहना क्या ठीक था कि हम जंगल में जब हीनावस्था में थे, बेचारी पांचाली फटे-पुराने कपड़ों में थी। राजमहल में खूब खा-पीकर मौज मना-कर, चर्बी चढ़ाकर वह सब दिखाने और अपने आभूषणों का प्रदर्शन करने आये थे वे सब। यह पूर्ण रूप से झूठ भी नहीं हो सकता। दुर्योधन ऐसा ही आदमी है। मत्सर ही उसके रक्त का पहला गुण है। उसमें नमक नहीं। पर भीम की भी क्षुद्र बुद्धि है। दुर्योधन और गंधर्वों में झगड़ा कैसे शुरू हुआ? द्वैतवन कुरुओं का है या गंधर्वों का है? ऐसी ही गर्मी के दिन थे। दो वर्ष पूर्व की ही बात है। हिमालय की तलहटी में गर्मी कम होती है। इसी कारण तो हम द्वैतवन गये थे। उसी वन के किनारे हस्तिनापुर की गौवें चर रही थीं। यह भी परिवार सहित वहाँ गया। कुरुओं की उत्तर सीमा की गढ़ी कहाँ तक है? द्वैतवन कुरु वंश के अधिकार में है या नहीं, यह भी देखने गया होगा। तभी गंधर्वों ने इससे पूछा, 'हमारे अधिकार-क्षेत्र के वन में तुम्हारी गौवें क्यों आयीं? तुम रथ, तुरंग और परिवार सहित शोर-गुल करने क्यों आये?' इस पर उसने उत्तर दिया, 'यह वन हमारा है। तुम हमें पूछने वाले होते कौन हो? द्वैतवन उतरायी-चढ़ायी का प्रदेश है। हिमालय के आरंभ का प्रदेश है। इसकी सीमा कहाँ से आरंभ होती है, यह निश्चय करके वहाँ किसी ने चिह्न नहीं लगाया था।' दुर्योधन का उत्तर ही ठीक होगा। हाँ, भइया का विवेक ही अब समझ में आता है। यदि कल युद्ध हो जाए और दुर्योधन आदि मारे जाएँ और अकस्मात् हम ही हस्तिनापुर के राजा बने, तो उत्तर दिशा की सीमा तो निश्चित हो ही चुकी है। उसी ने गंधर्वों के चित्रसेन को बुलाकर कहा था, 'देखो, तुम पहले भी द्वैतवन पर अधिकार जमाने के लिए आकर हार चुके हो, तुम अपनी सीमा में रहो।' राज्य संचालन की ऐसी सूक्ष्म बातें मंद-बुद्धि भीम को कहाँ समझ में आएँगी। मुझे भी यह बात समझ में नहीं आयी थी। पर भइया समझ गये थे। उनकी बात का अर्थ यही रहा होगा। रहे या न रहे जो भी हो, भइया हमसे कहीं अधिक विवेकी हैं। धर्मज्ञ हैं। आर्य-धर्म उनसे अधिक कोई नहीं जानता। हमारे प्राचीन आर्यों की कितनी कहानियाँ उन्हें मालूम हैं। कितने ऋषि। उनके विचित्र प्रकार के जन्म। कितने राजा। उनके यज्ञों का विवरण, किस-किस यज्ञ के लिए किस-किस प्रकार का सामान चाहिए और किसका अनु-करण करना चाहिए। कितनी दक्षिणा देनी चाहिए। अतिथियों का कैसे सत्कार करना चाहिए आदि आचार-परंपराओं को उनके समान जानने वाला कोई नहीं।

इक्कीस-बाईस वर्ष की आयु में ही उन्हें पितामह ने युवराज-पद पर आसीन करके राज्यासन और न्याय-संचालन का दायित्व उन पर डाल दिया। भइया ही आचार-पद्धतियाँ समझकर प्रजा से न्याय करके धर्मपूर्वक निर्णय दिया करते थे न? उसे पितामह ने भी स्वीकार किया था न? प्रजा के बड़े-बूढ़ों ने यह कहना आरंभ कर दिया था कि इसका धर्म नाम सार्थक हुआ। इंद्रप्रस्थ में राज्य करते समय भी उन्होंने वही नाम कमाया। विराट के दरबार में कंकभट्ट के नाम से ब्राह्मण वेश में रहे। राज दरबार के पुरोहितों को भी आचार-विचार सिखाते थे। वनवास में कितने ऋषि लोग आया करते थे। उनके चरणों में बैठकर रात-दिन कितनी भक्ति से उनके वचन सुना करते थे। ऐसे को अविवेकी कहकर क्षुद्रता से बात करने वाले भीम को धर्मदेवता शाप नहीं देगा? स्वतः देवलोक के धर्माधिकारी के वीर्य से जन्मा है, हमारा भाई! धर्मज्ञान रक्तगुण से मिला है उन्हें। यह सोचते हुए अर्जुन का मन भक्ति से भर उठा। परन्तु देवलोक के और हमारे आर्यावर्त के आचरण में भेद क्यों है? यह प्रश्न उसके मन के एक कोने में झाँक उठा।

फिर से दुर्योधन और गंधर्वों के युद्ध की स्मृति ने घेर लिया। दुर्योधन कैसे उनके हाथों में पड़ गया। वास्तव में क्या हुआ, यह पूछने का अवकाश ही नहीं मिला। भागकर आये उसके सैनिकों ने आँखों में आँसू भरकर कहा, 'वे उन्हें उठा-कर ले गये, दुर्योधन महाराज के हाथ-पाँव बाँधकर उठा ले गये। सारी स्त्रियों को उन्हीं के कपड़ों से हाथ-पाँव बाँधकर पीठ पर लादकर ले गये।' मैंने बस इतना ही सुना था। वह गौवों के निरीक्षण के लिए आया था। यह हमारा प्रदेश है। इस बात पर कहा-सुनी हुई थी। केवल इतना ही पता चला। मैं तत्काल उसे छुड़ाकर लाया। दुर्योधन सिर नीचा किये वहाँ से चला गया। मारे शर्म के एक क्षण भी ठहरा नहीं। युद्ध का विवरण कैसे पता चलता? पूछने पर वह बता देता क्या? वे तो पर्वत सीमा के लोग थे। वानर के समान एकदम चढ़कर उतर सकते हैं। वे चाहे कितनी ही बार उतरें-चढ़ें, उनकी साँस नहीं फूलती। इसकी तो खूब चर्बी बढ़ी हुई थी। मैदानी प्रदेश का राजा था। सुख से पला था। सेना भी पर्वत प्रदेश से अपरिचित थी। वे भी पहले हारने का बहाना करके ऊपर को भागे। ये उनका पीछा करते-करते थक गये होंगे। तब उन्होंने इन्हें घर पकड़ा होगा अथवा पीछे से आकर पाँच-छः स्त्रियों को उठा ले गये होंगे। जो भी हो, ये उन्हें छुड़ाने गये होंगे और पहाड़ चढ़ते-चढ़ते जब सुस्त पड़ गये होंगे, तब वे इन पर टूट पड़े होंगे और जंगली लताओं से इनके हाथ-पाँव बाँध डाले होंगे। पर्वतीय लोगों का युद्ध बड़ा खतरनाक होता है। वे मैदानी लोगों के समान आमने-सामने खड़े होकर रथ, घोड़े, हाथी का प्रदर्शन करके जलूस निकालकर भाटों से बिरुद गवाकर युद्ध नहीं करते। पेड़ों, पहाड़ों की ओट से पत्तों और डालियों से अपने को ढाँककर उसी रंग में छिपकर आते हैं, बाण लेकर। ओट से ही एक माया का-सा निर्माण कर देते हैं।

यह समझ में नहीं आता कि उनके बाण कहाँ से आते हैं और किस तेज़ी से आते हैं। मैदानी योद्धाओं के समान रथ, घोड़े आदि वाहनों पर नहीं आते। पहाड़ पर उन्हें कोई हरा नहीं सकता। वे सरलता से नीचे आकर युद्ध भी नहीं करते। हर एक व्यक्ति को हर प्रकार से बाण चलाना सीखते रहना चाहिए। किरातों में और देवलोक में जाकर नये ढंग से बाण-विद्या सीखकर यदि मैं न आता तो मुझे भी उनसे युद्ध करने में कठिनाई होती। मणलूर के उत्तर के गंधर्वों का पहले एक बार मैंने पीछा किया था न ? तब कोई पुरुष मेरे हाथ न पड़ा। पर वे गंधर्व साहसी हैं। उनकी संख्या भी अधिक थी। दुर्योधन के हारे सैनिक जब भइया के सामने आकर खड़े रो रहे थे तब भइया की धर्म-बुद्धि कितनी जल्दी जाग्रत हो गयी। उन्होंने सामने खड़े भीम से कहा, "तुमने सुना भीम, इन हारे सैनिकों को सांत्वना देकर तुरंत जाओ और चित्रसेन पर टूट पडो। हमारे भाइयों और उनकी स्त्रियों को छुड़ा लाओ।" यह सुनकर वह कितनी ज़ोर से हँस पड़ा था। वह कैसा तिरस्कार था ? 'मुँह में उँगली रखें तो तुम्हें काटना आएगा या नहीं ?' उसने ऐसे स्वर में भइया के मुँह पर कैसा मुँहतोड़ जवाब दिया। 'जंगल में रहकर गर्मी, सर्दी और उपवास से सूखकर काँटा हो चुके हो। तुम दुर्योधन को मार सकते हो ? धर्म देवता ने ही उन गंधर्वों से यह काम करवाकर उसे कैद कर दिया है। अब उसे छुड़ाकर लाना चाहिए ! जुए के पाँसे पकड़ने को ही तुम्हें बुद्धि मिली होगी ?'

"भीम, ऐसे मत कहो। हम आपस में झगड़ सकते हैं। जब बाहर वाले लड़ने आयें, तब हम सब भाई हैं।"

"तुमने यह समझा है कि मैं यह तोता-रटन्त नहीं जानता ? कोई दाढ़ी वाला आया हो तो जाओ उससे पुण्य, पुराण की कथा सुनो।" दुर्योधन के सैनिकों के सामने ही यह बात कहनी चाहिए थी क्या ? क्या वे जाकर यह न कहते कि पांडवों में एकता नहीं। सिंहासन पर बैठने वाले बड़े भाई को लोग सम्मान नहीं देते। क्या अब तक उन्होंने यह बात कही नहीं होगी ?

"अर्जुन, इस भीम को धर्म की सूक्ष्मता समझ में नहीं आती। हमारी आर्य स्त्रियों को, और वह भी हमारी कुरुकुल की बहुओं को बाहर के लोग जब उठा ले गये हों तब भी द्वेष-साधना, धर्म स्वीकार करेगा ? बड़े-बूढ़े स्वीकार करेंगे ?"

भइया का विवेक कितना ऊँचा है ! मेरा खून तुरंत खौल उठा। हमारी स्त्रियों को दूसरे उठा ले गये हैं और पता नहीं अब तक कुछ कर दिया हो तो ? तुरंत मेरे अनुभव ने सावधान किया। गंधर्वों में स्त्री-पुरुष के बीच अधिक प्रतिबंध नहीं होते। अतः स्त्री को देखते ही भूखे की तरह टूट नहीं पड़ते ! फूल, रंग, बाँसुरी, गीत, नृत्यादि से उनके मन को जीतने का प्रयास करते हैं। अकस्मात् मेरे मन में आया, अब तक यदि वे हमारे कुरुकुल की बहुओं को दुर्गम स्थानों पर ले जाकर, उन्हें बंधन-मुक्त करके, रंगादि पोतकर, फूल पहनाकर, इन्हें फूलों के गुच्छ और मालादि

पहनाकर उनके चारों ओर गीत गाकर, नृत्य करके उनके मन को अनुरक्त कर लिया हो तो ? उनके बीच गंधर्व स्त्रियों ने भी मिलकर उनके मन को कोमल कर लिया हो तो ? जल्दी जाना चाहिए। आर्यकुल और कुरुकुल की स्त्रियों की पवित्रता की रक्षा करके कुरु पितरों की संतृप्ति करनी चाहिए। नहीं तो कुरुवंश का अर्जुन घोर नरक से बच नहीं पाएगा।

"तो भीम, इसी कुरुकुल की बहू बनकर आयी अपनी पत्नी के अंगांगों की भरी सभा में कामना करने वाले तुम्हारे भाई ही थे। तब कुल-गौरव खंडित नहीं हुआ।" पांचाली के बीच में बोलने तक मुझे उसके अस्तित्व का ध्यान नहीं था।

"मेरा जो अपमान हुआ वैसा उनकी पत्नियों का न हो। तुम जल्दी जाओ, मेरी देवरानियों को छुड़ा लाओ। दुर्योधन और दुशासन को तुम्हें ही मारना है, इस हठ की आवश्यकता नहीं। वह काम गंधर्वों के लिए छोड़ दो।"

"अर्जुन, स्त्री की बुद्धि इससे अधिक विशाल नहीं हो सकती। तुम जाओ।" कभी भी कठोर बात न करने वाले भइया की ध्वनि में कितनी दृढ़ता थी।

मैंने चार वर्ष इस गंधर्व लोक से भी अधिक ऊँचे प्रदेश में बिताये थे। वे मेरी क्या बराबरी करते? 'विजय' का विरुद देवेन्द्र ने क्या मुझे यूं ही दे दिया था ? एक पूरा आदमी सीधा हाथ ऊँचे करके खड़ा हो जाय, इतने बड़े धनुष को बिना आयास झुका देने की शक्ति किस धनुर्धारी में है ? पर्वतों में, पेड़-पौधे, पत्थरों की ओट में भी तनिक से शब्द को पहचान लेने की तेज़ श्रवण शक्ति और किसमें संभव है ? अर्जुन जैसा महा पराक्रमी चला आयेगा, यह संभवतः बेचारे चित्रसेन ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मेरे बाणों की नोक कुल्हाड़ी जितनी तेज़ और चौड़ी होगी यह बात जंगली गंधर्व कैसे जान सकते थे ? जंगली गंधर्व ही नहीं सुसंस्कृत आर्यों में भी किसके बाण पेड़, पौधे और तने काट डालने योग्य तीक्ष्ण होते हैं ? दुर्योधन के हाथ-पाँव बाँधकर उसके चारों ओर विजय का नृत्य करने वाले चित्रसेन ने ही अंत में पूछा न, "पांडव मध्यम, अपने शत्रु को छुड़ा ले जाने के अविवेकी कार्य के लिए तुम क्यों आये ?"

"हममें परस्पर कुछ भी विवाद क्यों न रहे। जब बाहरी कोई व्यक्ति सिर उठाए तो दुर्योधन मेरा बड़ा भाई है।" वह मेरी कैसी आर्योचित बात थी ? मेरे दुर्योधन और दुशासन को उठवाकर लाने तक भीम ने कुरुकुल की बहुओं को लाकर पंक्ति में बिठा दिया था। वह ख्याति अर्जुन को न मिल जाए इस कारण वह तेजी से गया था या पांचाली की आज्ञा पूरी करने गया था ? वह स्त्री की बात मानता है।

इन दिनों तो भइया की अपेक्षा उसे पत्नी की बात अधिक मान्य है। ऐसा व्यक्ति धर्म की प्राप्ति करेगा ? देवत्व साध सकेगा ?

अर्जुन ने एकदम अपने में श्रेष्ठता का भाव महसूस किया। इस 'विजय' ने

कभी किसी बड़े-बूढ़े के विरोध में बात नहीं की, कभी असम्मान व्यक्त नहीं किया। बड़े भइया धर्म के प्रति ही नहीं, आचार्य द्रोण के प्रति ही नहीं, पितामह, कृपाचार्य, ताऊ धृतराष्ट्र, माता गांधारी किसी के प्रति भी। बड़ों के आशीर्वाद के बिना जीवन में कौन-सी उन्नति साध्य है ? यह सोचते हुए उसने सिर उठाकर देखा। चंद्रमा रथ के ठीक ऊपर था। धूमिल आकाश में जहाँ-तहाँ एकाध नक्षत्र टिमटिमा रहा था। दृष्टि वहाँ लगी। मन आकाश के उस धुंधलेपन को भेदकर किसी नक्षत्र के अनन्त में स्थिर हो गया। कभी समाप्त न होने वाला निर्मल प्रकाश। एक नक्षत्र एक नाम प्राप्त करके तीनों लोक की जनता को प्रकाशमान करता है। वह सिर उठाकर आकाश की ओर निहारता बैठा रहा। रथ हिचकोले खाता आगे बढ़ रहा था।

बहुत देर बाद अर्जुन का ध्यान आकाश से नीचे उतरा। भूमि एकदम बंजर-सी लगी। मन में एकदम ऊब भर उठी। जम्हाई आयी पर वह भी ऊब भरी। उसने अनुभव किया, नींद नहीं आ रही है। तुष्ट की पीठ की ओर देखा। वह भी सो नहीं रहा था। उसने 'तुष्ट' कहकर पुकारा। तुष्ट ने तुरन्त इसकी ओर गर्दन मोड़कर देखा। 'ज़रा सुरा है क्या ?' उसने तुरन्त उत्तर न दिया। थोड़ी देर बाद बोला, 'वह आपके पीने योग्य नहीं, केवल चावल की है।' अर्जुन ने कहा, 'ज़रा ले आओ।' चलते रथ से तुष्ट नीचे उतरकर पिछले रथ की ओर भागा गया और वहाँ से सुरापात्र लेकर भागा आया। अर्जुन को हाथ में थमाकर रथ पर चढ़ गया। लगाम थामकर अपने स्थान पर बैठ गया। खूब खट्टी सुरा अर्जुन को रुचिकर न लगी। पर उस लम्बे ऊजड़ रास्ते की ऊब मिटाने को उसे छोड़ने का भी मन न हुआ। एक-एक घूंट भरकर डकार लेता चुपचाप बैठा रहा। तब तुष्ट ने पूछा, "महाराज, आपको यह 'विजय' का विरुद कैसे प्राप्त हुआ ? यह आप बता सकेंगे ?"

" 'विरुद' की बात पूछते हो ?" कहकर अर्जुन ने लोटे में बची सुरा घटकते हुए पात्र ख़ाली कर दिया। खटास कम हुई। सुरापात्र का ढक्कन लगाकर अपना मुँह पोंछा। ज़रा देर याद करके फिर से पूछा, "क्या तुमने 'विरुद' के बारे में पूछा था ?"

"यह तो हम जैसे लोगों की सुरा है। याद नहीं तो कोई बात नहीं। जाने दीजिए। कल बता दीजिएगा।"

"मूर्ख ! मैंने कैसे-कैसे देशों में कैसी-कैसी सुरा पान की है, तुम्हें क्या पता ? अर्जुन की स्मृति और बुद्धि विचलित कर देने वाली सुरा साक्षात सोमदेव ने अभी तक बनायी नहीं।" कह उसने आसन बदलकर सीधे बैठकर पूछा, "तुम्हें पता है, हम बारह वर्ष तक वन में थे ?"

"वह सब मुझे पता है। आप लोगों ने राजसूय यज्ञ किया था। जुआ खेलकर वन गये थे।"

"वन में छः-सात वर्ष बीत चुके थे। मेरे बड़े भइया बहुत विवेकी हैं। बहुत सोच-विचारकर उन्होंने मुझसे कहा था, 'अर्जुन, यदि भविष्य में युद्ध हुआ तो हम केवल तुम्हारे धनुष के कौशल से ही जीत पाएँगे। अब भी तुम्हारे समान कोई धनुर्धारी नहीं है। फिर भी अलग-अलग लोगों से अलग-अलग प्रकार का शस्त्राभ्यास सीखना अच्छा है। देवलोक जाकर उनसे उनका कौशल सीखकर आओ।'"

"महाराज, आकाश में उड़कर, सूर्य और चंद्रलोक के पार उस देवलोक में आप गये थे? किस तप के प्रभाव से आप वहाँ पहुँचे थे? उसके लिए आपने कितने वर्ष तपस्या की थी?" तुष्ट एकदम मुड़कर बैठ गया। उसके हाथ अपने आप जुड़ गये।

"उस देवलोक में नहीं। हिमालय पर्वत है न, गंगा-यमुना जहाँ से निकलकर आगे बहती है। उन्हें चढ़कर जायें तो एक कुल मिलता है। उसका नाम देवकुल है। वे लोग बड़े साहसी हैं। हम वहीं पैदा हुए। बचपन में वहीं बड़े हुए हैं। वह हिमालय की तलहटी है। वह बात तुम्हें मालूम है न? तब हमारा उनसे परिचय था। उनके देश को देवलोक कहते हैं। जैसे नाग लोगों के प्रदेश को नागलोक, गंधर्वों के प्रदेश को गंधर्वलोक कहते हैं। पता है, वह कैसा लोक है? इतना ऊँचा है कि चढ़ते-चढ़ते पाँव, एड़ी, जाँघें, पिंडलियों में मारे दर्द के गुठलियाँ बँध जाती हैं। सूर्य भी अपनी गर्मी वहाँ खो बैठता है। मारे सर्दी के सब कुछ बर्फ़ हो जाता है। पानी जमकर बर्फ़ का पर्वत बन जाता है। इस गर्मी की आफ़त वहाँ है ही नहीं। वह ऐसा देश है। इंद्रप्रस्थ में राज्य करते समय हम उन्हें कभी-कभी भेंट में अनाज-पानी गदहों पर लाद-लादकर भेजा करते थे। इस मैदानी प्रदेश की समस्त नदियों को पानी देने वाला वह प्रदेश कृषि योग्य नहीं। गर्मी के दिनों में पर्वत की ढलान को थोड़ा काटकर थोड़ा-बहुत पैदा किया जाता है। वैसे आखेट का मांस और कंदमूल ही उनका जीवनाधार है। फिर भी कितने सुन्दर लोग हैं वे? कितने स्वस्थ और कितने दृढ़काय? वहाँ मानव की शक्ति पसीने के रूप में बहकर नष्ट नहीं होती। वहाँ चार-चार चोटियाँ चढ़ने-उतरने पर भी पसीना नहीं आता अर्थात् शक्ति-संचय···।"

उसके सम्मुख बैठे तुष्ट का सारा शरीर हिलकर मानो 'हूँ' कह रहा था। अर्जुन को वह स्पष्ट दिखायी दे रहा था। बात करने के उत्साह में स्वर ज़रा ऊँचा होता गया। 'उन्हें हमारा परिचय था। इसके अतिरिक्त हमारे पिता पांडुराज ने नियोग से हमें पदा करवाया था। हमारी माता से नियोग करने वाले वही देवलोग थे। वात्सल्य भी था। मैं जब सर्दी में ठिठुरता, चमड़े का आच्छादन ओढ़े, सिर से पाँव तक कंबल लपेटकर गया तो उन लोगों के लिए वहाँ तपती गर्मी थी। वे

बाहरी लोगों को अपने यहाँ आने नहीं देते। बिना पूछताछ के उनके देश में घुसें तो पेड़ या पहाड़ों की ओट से बाण चलाते हैं।"

"तो आपने क्या किया ?"

"सभी ओर से वहाँ प्रवेश करना संभव नहीं। कुछ दर्रे होते हैं। वहीं से चढ़ना चाहिए। वहाँ पहरेदार होते हैं, यह मैं जानता था। वहाँ मैं ज़ोर से चिल्लाकर अपना परिचय देता हुआ चढ़ता चला गया। अन्त में पहरेदार ही मुझे ऊपर ले गये।"

"तो उन्होंने आपको धनुर्विद्या सिखाई ?"

"और नहीं तो क्या ? वे लोग गणों में बँटे हुए हैं। प्रत्येक गण के अस्त्र-शस्त्र के विधान में कुछ अपनी-अपनी विशेषता है। मुझे प्रत्येक गण के मुखियों ने सिखाया। वायु, अग्नि, वसु, वरुण, मरुत, साध्य, निऋति, स्वयं इसी प्रकार पता नहीं कितने लोगों ने मुझे सिखाया। हमारे मैदानी प्रदेशों की भाँति वहाँ बड़े धनुष नहीं होते। मेरे धनुष जैसा बड़ा धनुष किसी के पास न था। पर लक्ष्य लेने में और बेधने में उनकी जैसी दक्षता हममें नहीं। एक ही धनुष से एक ही समय में तीन, चार, पाँच बाण अलग-अलग निशानों पर मार सकते हैं। बाण सदा सीधा जाता है न ? पर वे चक्करदार, सर्प गति से जाने वाले बाण भी चला सकते हैं। पर्वतीय प्रदेश है न ? बड़े-बड़े पर्वतों की ओट में खड़े होकर बाण चलाएँ तो वह चक्कर काटकर सर्प गति से जाकर घात कर सकता है। उसके अनुकूल ही बाणों का आकार-प्रकार और भार का लेखा-जोखा करके बाण तैयार करते हैं। मैंने वह सब सीखा। और भी कई प्रकार के तंत्र सीखे। बिना किसी लुकाव-छिपाव के उन्होंने सब कुछ सिखाया। पूरे चार वर्ष उनके साथ रहा और एक बालक के समान शिष्य बनकर अभ्यास करके विद्या करगत की। उन्होंने ही स्वीकार किया कि यह विद्या मैंने उनसे भी अच्छी सीख ली थी। तुष्ट, अब यदि अकस्मात् युद्ध हो जाए तो सारे संसार को दिखा दूंगा कि इस 'विजय' का बाण-कौशल कैसा है !"

तुष्ट ने बड़ी आस्था से पूछा, "महाराज, बाण का ऐसा कोई चमत्कार दिखाइयेगा ?"

अर्जुन ने रथ से बाहर देखा। एक धनुष उठाकर डोरी चढ़ायी। एक विशेष बाण टटोलकर हाथ में लिया और बायीं ओर मारकर कहा, "रथ रोको। सामने जो आगे फैली हुई चट्टान है न। उसके पीछे एक घना पेड़ दिख रहा है ?"

ध्यान से देखकर तुष्ट बोला, "जी हाँ।"

"उस पेड़ के निचले तने में मेरा बाण घुसा है। जाकर ले आओ।"

हल्की चाँदनी, दौड़ता रथ। दूर पहाड़ के पीछे का पेड़। तुष्ट ने अगले रथ वालों को पुकारकर रोका। पिछले वाले अपने आप रुक गये। वह उतरकर अगले वाले रथ से एक और को साथ लेकर उस चट्टान के पीछे गया। पेड़ के तने की दायीं बगल में बाण धँसा हुआ था। उसके मन में आश्चर्य और भय-भक्ति उत्पन्न

हुए। उसे खींचकर वापस महाराज को देते समय वह भय-भक्ति से काँप रहा था। रथों की पंक्ति फिर से चल पड़ी। अर्जुन बोला, "यह लक्ष्यभेद का करतब केवल सीखा ही नहीं, मैंने अपने बड़े धनुष पर इसका अभ्यास भी खूब किया। उसी के योग्य भारवाले बाण भी मैंने ही अभ्यास के आधार पर जानकर बनाये। अर्थात् नये ढंग से लक्ष्यभेद करना और उसके योग्य चलाने की शक्ति भी दुगुनी की। अब मेरे सम्मुख कौन खड़ा हो सकता है? तब देवजनों के राजा स्वयं इन्द्र ने मुझे बुलाकर कहा, "बेटा, हमारे पश्चिमी भाग में एक दल के लोग हैं। हम लोग भेड़-बकरी के ऊन से विशेष प्रकार के कंबल तैयार करके निचले प्रदेश वालों को बेचते हैं। बदले में उनसे घी, ताम्र और धन-धान्यादि खरीदने गर्मी में वहाँ जाते हैं। तब उतराई के मार्ग पर हमें रोककर वे हमें लूट लेते हैं। डकैती ही उनका व्यवसाय है। दूसरे वे हमारी भाँति ही कंबल तैयार करके निचले प्रदेश में बेचते हैं, किन्तु हमारे कंबल उनके कंबलों से बढ़िया होते हैं। हमारी भेड़ें उनसे श्रेष्ठ जाति की हैं। निचले प्रदेश वाले हमारे कंबल देखकर टूट पड़ते हैं और मुँह माँगा मूल्य देते हैं। उस लूटने वाली जाति का नाम निवातकवच है। यदि तुम उनको समाप्त कर सको तो समझो कि तुमने अपनी गुरु-दक्षिणा चुका दी। इससे पहले कई बार उनको पूर्ण रूप से मिटाने का देवलोगों ने प्रयास किया पर सफलता नहीं मिली। अब उस काम को पूरा करने का हमने निश्चय किया है।"

"आपने कैसे किया, महाराज?" हाथ जोड़े-जोड़े ही उसकी ओर मुंह करके बैठे सारथी ने पूछा। "उस वर्ष सर्दी से पूर्व ही मैं कुछ देववीरों के साथ उस राह से उतरकर निवातकवच लोगों का प्रदेश देखकर आया। उनके गाँव, रास्ते सब पता लगा लिये। वह बहुत दुर्गम प्रदेश था। मैंने देवजनो को कहा कि अपने गदहों और भेड़ों पर कंबल लादकर उतारना शुरू करें। वे लोग लूटपाट के लिए उधर गये। हममें से कुछ ने पहले ही जाकर उनके गाँवों और गलियों को आग लगाकर भस्म कर दिया। बाद में जहाँ वे लूट-मार करते थे उस सँकरे दर्रे में नीचे जाकर छिपकर बैठ रहे। ऊपर से देवलोगों ने मारना आरम्भ किया और नीचे से हमने। चक्की के दो पाटों में फँसे उन लोगों में से एक को भी बचकर निकलने नहीं दिया। वास्तव में यह कोई वीरता का कार्य न था। पहले से ही उनके हाथ से मार खाकर देवलोगों में उनके प्रति एक प्रकारका डर जम गया था। हिम से ढँके प्रदेश में वे बहुत वीर होने पर भी गर्मी में उनकी साँस फूल जाती। निचले प्रदेश में आने पर उनकी शक्ति घट जाती। यदि उनसे छुटकारा न मिलता तो इन्द्र को भी अपना सिंहासन छोड़ना पड़ता। युद्ध में शत्रु को न हरा सकने वाले राजा को वे सिंहासन से उतार देते हैं। यह उनकी प्रथा है। मैंने उसके सिंहासन के अधिकार को बचाए रखने में सहायता दी। इस कारण स्वयं इन्द्र ने मुझे अपने सिंहासन पर साथ बिठाकर समस्त देवजनों के सामने 'विजय' नाम का विरुद प्रदान किया।"

तुष्ट थोड़ी देर तक उसी भक्ति-भाव से बैठा रहा। उसका मन था कि अर्जुन आगे कुछ बताए पर उसे स्वयं समझ में न आया कि क्या पूछा जाए ? वह घोड़ों की ओर मुँह करके बैठ गया। अर्जुन का मन देवलोक में ही घूम रहा था। चार वर्ष उनके साथ रहने पर भी धनुर्विद्या के अभ्यास से जब ऊब उठता तब उनके नृत्यों में भाग लेता। उसका ध्यान किसी और तरफ़ नहीं जाता था। अर्जुन का मन एकाग्र था। वे लोग भी ऐसे ही थे। स्त्री-पुरुष स्वतंत्र होकर जब चाहें जैसे चाहें घूमते थे। मुझे उन्होंने बाहर का नहीं माना। हमारे यहाँ धनुर्विद्या सीखने आया है इसलिए उपेक्षा भाव रहा होगा। मैंने उनके इंद्र और सेनापति से बढ़कर वीरता दिखाई थी। इंद्र के मुझे अपनी बराबरी पर बिठाकर देव-प्रमुखों की भाँति सम्मान देने के बाद से उन्होंने मुझे अपने में मिला लिया। 'विजय' तो इंद्र का अपना ही विरुद है और किसी को वह पाने का अधिकार नहीं। वह कैसा आनन्ददायक विजयोत्सव था ! कैसा उत्साहवर्धक मादक पेय ! 'विजय' विरुद से अलंकृत होने के उपरांत केवल देव-प्रमुखों को ही उपलब्ध देव-सुन्दरियाँ मुझे घेर-कर नाच उठीं। घृताची, मेनका, रम्भा, पूर्वचित्ती स्वयंप्रभा, उर्वशी, मिश्रकेशी, दण्डगौरी, वरुथिनी, गोपाली, सहजन्या, कुंभयोनि, प्रजांगदा, चित्रसेना, चित्र-लेखा, सहा, मधुरस्वरा—ये सब इंद्र के अधीन रहने वाली विलासिनियाँ थीं। यदि कोई गण पुरस्कार प्राप्त करने योग्य कार्य करता तो इंद्र उनमें से किसी को एक दिन को, एक मास को अथवा एक वर्ष को देकर अनुगृहीत करता। देवलोग वैसे ही बहुत गोरे होते हैं। स्त्रियाँ तो दूध जैसी सफ़ेद होती हैं। उनमें से अत्यंत सुंदरियों को चुन कर राजदरबार की सेवा के लिए सुरक्षित रखा जाता है। उनसे भेड़ चराने, ऊन कातने या कंबल बुनने का काम नहीं लिया जाता था। सर्दी में निचले प्रदेश में जाते समय भार नहीं उठवाया जाता। उन्हें स्वय अपनी सन्तान को पालने का भी दायित्व नहीं रहता था। सदा नृत्य, पान, कामकेलि की कलाओं में ही समय बितातीं। जिस सर्दी की रात मुझे यह विरुद प्रदान किया था उस दिन चंद्रमा बहुत शुभ्र होकर चमक रहा था। चमकते शिखरों पर चमकते चंद्रमा का सौम्य सौंदर्य विशेष आकर्षक नहीं रहता। फिर भी स्वप्नों को जगाने वाला और धन्यता का अनुभव कराने वाला चंद्रमा जब बाहर के हिम-शिखरों को सोमरस का लेपन कर और नशीला बना रहा था, तब चित्रसेन ने आकर कहा, 'विजय, तुम्हारे लिए एक और पुरस्कार प्रतीक्षा कर रहा है, आओ।' इंद्र के भवन के सम्मुख पत्थरों का एक भवन था। भीतर गया। 'आज दोपहर को तुम उर्वशी को कनखियों से देख रहे थे न ? इंद्र ने उसे तुम्हें पुरस्कार के रूप में दे दिया। तुम जितने दिन चाहो रखो।' यह कहकर चित्रसेन द्वार बंद करके चला गया। उर्वशी के मुख पर कैसा अभिमान था ! मंद-मंद जलते गोह की चर्बी के दीये के प्रकाश में उसके शरीर का रंग कितना प्यारा था ! गर्मी पैदा करने को

एक कोने में जलते हुए लकड़ी के ठूंठ। श्वेत कंबल, कोमल ऊन से तैयार किया गया गद्दा।

"विजय, तुम्हें हमारे लोक में आये साढ़े चार वर्ष हो गये न ? ऐसा लगता है कि तुम्हारे विचार में यहाँ धनुर्विधा सीखने के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं ! तुम जीवित क्यों हो ?"

अंतस्सत्व को झकझोर देने वाली थी उसकी भंगिमा। "समझ में नहीं आया कि कभी हमारे नृत्य में सम्मिलित नहीं हुए ? केवल पुरुषों से थोड़ा-बहुत सीखते रहे। तुमने सामूहिक गान में भी भाग नहीं लिया। हमारे साथ गीत भी नहीं गाये। वाद्य भी नहीं बजाए। केवल धनुष को ही टंकराते रहे तो जीवन को सार्थकता मिल चुकी।"

तब मुझे वास्तव में कैसा लगा था ? क्या घबराहट हुई ? क्या मैं ऐसा पुरुष था जिसे स्त्री का अनुभव नहीं था ? पिछले दस वर्ष से वनवास में मैं ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा था। अड़तालीस वर्ष का हो चुका था। दस वर्ष का उपवास। कामकेलि में निपुण मुझसे भी गोरी आकर्षक रूपवती तरुणी मेरे सम्मुख थी। वह कितने वर्ष की रही होगी ! लगभग तीस वर्ष की होगी। पास बैठकर छेड़खानी कर रही थी। मुझे मन-ही-मन अस्पष्ट-सी कसमसाहट हुई।

"विजय, तुम्हारे जैसे एकाग्रता में तल्लीन पुरुष को देखकर किस स्त्री के मन में इच्छा पैदा नहीं होती ? उस पर भी हम जैसी विलासिनियाँ तो पागल हो उठती हैं। तुम कितने सुंदर हो ! मैं मन-ही-मन तुम पर प्राण दे रही थी। पर मैं इंद्र के दरबार की हूँ। हम अपने-आप मन की इच्छा किसी पर प्रकट नहीं कर सकतीं। यह भाग्य की बात है कि इंद्र ने स्वयं तुम्हें प्रदान किया। आज की रात देखो, यदि मैं तुम्हें पसंद आयी तो तुम इंद्र से मुझे माँग लेना। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चली आऊँगी। सुना है कि भूलोक में तुम लोग बच्चों को बहुत चाहते हो। तुम्हें जितने चाहिएँ उतने बच्चे पैदा करूंगी।"

सुनने पर अविश्वसनीय लगने वाली बातें थीं वे। ऐसी उद्दीपक बातें करने वाली स्त्री के सान्निध्य में किसका पुरुषत्व डगमगा नहीं जाता ? वह मुझ पर वास्तव में मोहित हो गयी थी, अथवा मुझ पर मोहजाल फैलाने की एक कला थी। यह जानते हुए भी कि वह स्वयं एक कला है, मैं उस पर आसक्त हुआ। मादकता भर देने वाली बातें थीं उसकी।

"हे सुदर्शन, पहले यह पेय ग्रहण करो, बाद में इस देवलोक के वास्तविक सुख में प्रवेश करना।"

कैसी मोहक देह थी ! मानो स्वच्छ आकाश में चमकते चंद्रमा को गढ़कर स्त्री का रूप दे दिया हो। देवविलासिनियों में सर्वाधिक सुंदरी को 'उर्वशी' का पद दिया जाता था। ऐसी सुंदरी को ही इंद्र ने मुझे प्रदान किया था। किस जड़ी के रस से

उस पेय को तैयार किया होगा ? तो क्या हमारे इंद्रप्रस्थ में जो पेय तैयार किया जाता था वह शुद्ध सोमरस नहीं था ? वह एकदम खट्टा न था। एक उन्नत भाव उत्पन्न करने वाला था। देवलोक में भी इतने वर्ष में कभी पीने को नहीं मिला था। केवल इंद्र और उसके अंतरंग लोगों के लिए ही सुरक्षित था वह पेय। ऐसा अनुभव जाग्रत करता था मानो चंद्रमा ही पृथ्वी पर उतर आया हो। सुखकर पसीना आया। उसका ऐसा आलिंगन था जो शरीर में और भी गर्मी भर रहा था। परंतु दोनों ही जब समान उत्सुक नहीं तो सुख कैसे मिल सकता है ?

दोपहर की प्यारी धूप में इंद्र की सभा हुई। तेंतीस गणप्रमुख उपस्थित थे और भी पता नहीं कितने लोग थे। वही विलासिनियों का नृत्य, गायन और वादन था। वह कैसी दक्ष नर्तकी थी ? देह की एक-एक भंगिमा उसके सौंदर्य का एक-एक नया रूप प्रकट करती थी। सचमुच मैं सम्मोहित होकर उसे देख रहा था। अंत में इंद्र का भाषण हुआ, "गण-प्रमुखो और देवजनो, हमारे दुर्दांत शत्रु निवातकवचों को नष्ट करने वाला यह वीर केवल हमारा शिष्य ही नहीं, यह मुझ इन्द्र का पुत्र है। मुझसे पहले वाले इंद्र से इसका जन्म हुआ था। आप में से जिन्होंने उसे देखा था वे इसे पहचान सकते हैं। इसका रूप, शारीरिक गठन और लक्षण, आकार सब उसी के समान हैं। इस कारण-पुत्र वात्सल्य व्यक्त करने के लिए इसके मस्तक को सूंघ कर अपने ही बराबर आसन पर बिठाकर इसे मैं 'विजय' का विरुद प्रदान करता हूँ।" तब पर्वत-शिखरों से भी 'तथास्तु', 'तथास्तु' की ध्वनि प्रतिध्वनित हुई।

"विजय, वास्तव में तपस्या में बैठे बड़े महान लोगों में भी मैंने काम जाग्रत किया है। जर्जर वृद्ध लोगों में भी यौवन जाग्रत कर दिया। यदि तुम इस प्रकार उपेक्षा का बहाना करोगे तो काम न चलेगा।"

वहाँ जाकर साढ़े चार वर्ष पूर्व ही मैंने इंद्र को पिता कहा था। जिसे उसने स्वीकार किया था। उस दिन दोपहर को उसने मेरा मस्तक सूंघा था। भैया ने कहा भी था, "अर्जुन, तुम देवलोक पहुँचते ही तुरंत हमें जन्म देने वालों के स्वतः दर्शन करके आशीर्वाद प्राप्त करना। मुझे जन्म देने वाला देव-धर्माधिकारी है। उसे यम कहते हैं। भीम को जन्म देने वाला मारुत है। तुम्हारा जनक साक्षात् इंद्र है। नकुल, सहदेव के लिए वीर्य-दान करने वाले देव वैद्य अश्विनी कुमार हैं। वे सब तुम्हारे पिता समान हैं। उनके जब दर्शन करोगे तब उनके पुत्रों के नाम लेकर उनकी ओर से दीर्घ दण्डवत् करना, भूलना नहीं।"

नीचे उतर आया चंद्रमा बुद्धि को व्याप्त करके बुद्धि तंतुओं को जकड़कर मानो ऊपर-ही-ऊपर चला जा रहा था। सुखदायक पसीना ! मुखरित-सी निस्तब्धता ! "विजय, मेरे प्रति इतना तिरस्कार क्यों ? इंद्र की आज्ञा से केवल कर्तव्य-बुद्धि से मैं यहाँ नहीं आई। मेरे अंगांगों में आग लगी हुई है। यह तुम्हारे शरीर को अनुभव नहीं हो रहा ? इन हिमशिखरों को भी पिघला देने वाली

अग्नि में मैं जब फुंकी जा रही हूँ, तब तुम क्यों हिमखंड की भाँति शांत बैठे हुए हो ?"

"अर्जुन धत् ? तुम धनुर्धारी हो सकते हो पर नपुंसक हो। यदि तुम पहले ही बता देते कि तुममें पुंसत्व नहीं तो मैं तुम्हारी इच्छा ही नहीं करती। इस प्रकार की निराशा की यातना न सहनी पड़ती। ग़लती से तुम्हें पुरुष का बाह्य स्वरूप तो मिला है पर तुमने वास्तविकता छिपा ली। इसलिए—'लो' कहते हुए उसने तड़ाक् से एक चाँटा मारा। कितने ज़ोर की चोट थी ! बायाँ गाल सूजकर जलने लगा। चंद्रमा भी डूब गया। कैसा अपयश ! ऐसी पराजय जिसे अर्जुन ने आज तक न देखा था। जिस उर्वशी के पाद-स्पर्श के लिए समस्त देवजन लालायित रहते हैं, उसी उर्वशी द्वारा अपनी इच्छा से तुम्हारा आलिंगन करने पर भी तुम पत्थर से बैठे हो। "तुम मेरी उपेक्षा करके मेरा अपमान कर रहे हो। इंद्र से कहकर तुम्हें उचित दण्ड दिलाऊँगी।" कहकर वह खड़ी हो गयी। मैं उससे कहना चाहता था कि मैं तुम्हारे पाँव छूना चाहता हूँ। पर शब्द गले में ही अटक गये। वह कितनी तेज़ी से चली गयी। नपुंसक कहलाने और वह भी एक स्त्री से नपुंसक कहलाने से बड़ा तिरस्कार एक पुरुष के लिए और कुछ हो सकता है ? मेरे मन में संघर्ष जारी था। पर शरीर अपने आप क्यों जड़-सा बन गया था ? क्या अर्जुन का पौरुष समाप्त हो गया था ? उसके गाल पर तमाचा पड़ने पर भी क्रोध नहीं आया ? उसके चले जाने के बाद बुरी तरह रोना क्यों आ गया ? एकदम आँसू क्यों फूट पड़े ? शरीर पागल-सा हो उठता और मन उसे संयत करता तो क्या स्वाभाविक बात थी ? पर शरीर ने ही मन बनकर शांत रहकर अपमान की भट्टी में झोंक दिया न ?. उस अपमान का समाधान खोजने से पूर्व ही वह इंद्र को बुला लायी। इंद्र के दरबार की अप्सराओं को कितना अधिकार था !

"अर्जुन, 'विजय' का विरुद प्राप्त करने वाले वीर हो तुम। यदि अकस्मात् नपुंसकता हो भी, तो भी तुम संपूर्ण विश्वास से हमारी उर्वशी को अपने-आप को समर्पित कर दो। वह उसे ठीक करके ऐसा कर देगी कि पुंसत्व सदा उबलता रहे। यदि तुम समर्पित होना नहीं चाहोगे तो इसे वह अपना अपमान समझेगी। तुम्हारा स्थान कितना भी ऊँचा क्यों न हो, चाहने वाली स्त्री का अपमान करने का अधिकार इस देवलोक में किसी को नहीं। इस पर यह राजदरबार की अप्सरा है। इसका अपमान दरबार का अपमान है अर्थात् मेरा अपमान है। तुम्हीं तो इसे लालसा भरी आँखों से देख रहे थे। इस कारण मैंने इसे ही तुम्हारे पास भेजा है।"

अब इंद्र को क्या जवाब देता ? उसके हाथ-पैर सहलाकर उद्दीप्त करने वाले स्पर्श से भी मुझ पर कोई प्रभाव न हुआ, यह सोचने पर मैं और भी जड़ होता जा रहा था। यह एक विचित्र बात थी, अथवा मेरे जीवन की पुंसावधि समाप्त हो गई थी ? जब उस स्थिति का कारण मुझे ही समझ में न आ रहा था, तब मैं उसे क्या

बताता ? "पितृव्य यदि मैंने कोई अपराध किया हो तो आप कठोर-से-कठोर दण्ड दीजिए। किंतु नपुंसक जैसे हीन, क्रूर अपशब्द कभी मेरी आने वाली संतान में किसी भी पुरुष को प्राप्त न हों। ऐसा आशीर्वाद दीजिए। निश्चित काल का ब्रह्मचर्य भी मेरे लिए असाध्य था। इसलिए मैं स्त्रियों की खोज में देश-देशांतर भटकता फिरा। इसे स्वीकार न करने का कारण, हाँ, सूझ गया। धर्म-संकट है।"

"कैसा धर्म-संकट बताओ ?"

"तुम मेरे जन्म देने वाले पिता हो ? कल तुमने मेरे मस्तक को सूँघकर सभा में मुझे पुत्र कहा भी था। यह तुम्हारी भोग्या है। इसको भोगने वाले अन्य प्रमुखों में कुछ तो मेरे भाइयों के पिता भी हैं। अर्थात् मेरे लिए वे भी पितातुल्य हैं। तो यह मेरे लिए मातृस्वरूपा नहीं ?"

उर्वशी बहुत जोर से हँसी, "इंद्र, इससे तुम कम-से-कम दस वर्ष तो छोटे ही हो न। तुम कैसे इसे जन्म दे सके ?"

इंद्र हँसा नहीं। वह शांति से बोला : "तुम्हें जन्म देने वाला पहले वाला इंद्र था। उसे मरे कितने वर्ष बीत गये। उस इंद्र ने इसका मुँह भी नहीं देखा था।"

"तो तुमने क्यों मेरा मस्तक सूँघकर पुत्र कहा ?"

"स्थानबल से।"

"उसी स्थानबल के कारण यह मेरी मातृस्वरूपा है।"

पता नहीं इंद्र मेरे तर्क स्वीकार करता भी या नहीं। स्वीकार करता तो उसे कोई कष्ट न होता। नहीं करता तो कोई हानि नहीं थी। पर उर्वशी छोड़ देती ? नपुंसकता की बात मेरे जीवन की जड़ के लिए कैंची की भाँति थी। मुझे यूँ ही छोड़ देना उसने अपने उर्वशीपन के लिए कुठाराघात समझा। इंद्र हँसा नहीं वह शांति से बोला, "देव धर्माधिकारी को बुलाओ। अन्य गणप्रमुखों को बुलाओ। इसने जो धर्म की सूक्ष्मता का प्रश्न उठाया है उसका समाधान होना चाहिए। अभी बुलाओ।" कहते हुए आज्ञा देकर वह खड़ा हो गया।

वह बड़े भाई को जन्म देने वाला धर्माधिकारी न था। लगभग मेरी ही आयु का था, भीम को जन्म देने वाला मारुत दमे के रोग से छः मास से पीड़ित था। मैंने जब जाकर नमस्कार करके अपना परिचय दिया, तब उसने माँ और भीम के बारे में कितने प्रेम से पूछ-ताछ की। मुझे गले से लगाकर मस्तक सूँघा। उसके बड़े-बड़े हाथ मुझे सहलाकर प्रेम व्यक्त कर रहे थे। यदि मेरे और मेरे भाइयों के जनक वास्तव में जीवित होते तो पता नहीं वे मुझ पर कितना स्नेह बरसाते ? अथवा इस प्रकार प्रेम करना केवल भीम के जनक का विशेष गुण था ? अश्विनी देवता भी नये थे।

रात को दीपक के प्रकाश में सभा हुई। सब बातें सुनकर धर्माधिकारी ने जो बात कही वह कितनी विचित्र थी। "अर्जुन, तुम जिन पद्धतियों को बता रहे हो

वे हमारे यहाँ नहीं हैं। तुमने अभी बताया न कि जिनके संतान नहीं वह नियोग के द्वारा वंश चलाता है। वह पद्धति हमारे यहाँ नहीं है। तुम्हें मालूम ही है न कि गण से संबंधित सभी स्त्री-पुरुष पति-पत्नी हैं। यदि किसी को संतान नहीं होती तो इसका अर्थ यह है कि उसमें गर्भ शक्ति नहीं है। न होने पर कोई दुख नहीं। आयु के अंतर के आधार पर बच्चे सबको माता-पिता कहते हैं। ऋतुमती होने पर स्त्रीत्व प्राप्त होने के बाद एक गण की लड़की दूसरे गण की पत्नी बनकर चली जाती है। इस प्रकार सहोदर सहोदराओं का संबंध नहीं होता। सारांश यह कि यह लोक ही दूसरा है। तुम्हारे लोक की रीति-नीति हम पर लादकर तुम उर्वशी का अपमान कर रहे हो।"

"क्या मुझे अपने लोक-धर्म का पालन नहीं करना चाहिए?"

"उसका तुम अपने लोक में पालन करो। हमारे लोक में यदि उसका बीज बोने लगोगे तो अधर्म होगा। मूल धर्म का पालन करने वाले हम हैं। आप लोग नहीं।"

"अर्जुन, धर्माधिकारी की बात ही अंतिम है। अब चाहे जो भी बहाना बनाओ देव-सभा सुनेगी नहीं। अपने को नपुंसक स्वीकार कर लो। मुझे अपयश देने का प्रयास करोगे तो मैं चुप न रहूँगी। अथवा अब भी शयनागार चलो।" कहकर गुर्राती हुई वह चली गयी। उसका दूधिया गोरे रंग का मुख तमतमाकर लाल हो उठा था।

रथों की गति धीमी पड़ने लगी। सुभद्रा ने फिर करवट बदली और सो गयी। अर्जुन के पेट में कुछ हलचल-सी होने लगी। रथ के हिचकोलों से पेट में गुड़गुड़ाहट-सी लगी। उसने सोचा उर्वशी ने केवल गालियाँ दीं या शाप दिया। वहाँ से लौटने के बाद तो बनवास में ब्रह्मचर्य था ही। 'पाँच वर्ष दूर रहे,' कहकर पांचाली ने बड़ी आवभगत की। पर पहले वर्ष जैसा लगाव उसमें न था। यह मुझे मालूम है। परंतु विराट नगर में मैंने क्यों नपुंसक का वेश धारण करके लड़कियों को नृत्य और गान सिखाने की वृत्ति अपनायी! इन गंधर्व कलाओं को गंधर्वलोक में और देवलोक में सभी स्त्री-पुरुष सहज रूप से सीखते हैं। कोई किसी को भी सिखा सकता है, परंतु हमारे आर्यावर्त में लड़कियों को शिखण्डी के द्वारा ही क्यों सिखाया जाता है? मद्र, गांधार, वाह्लीक आदि देशों में ऐसा नहीं है। हमारी ओर कितने यत्न से कन्या के कौमार्य की रक्षा की जाती है। अज्ञातवास में क्या मैं कोई और वृत्ति अपना नहीं सकता था? हाव-भाव और चाल-ढाल से किसी को भी संदेह न हुआ। एकदम सहज शिखण्डी लगता था। यह बात पांचाली ने भी कही थी न? क्या यह केवल कला थी? नृत्य-गुरु के रूप में नियुक्त करने से पूर्व सुंदर स्त्रियों को मेरे पास भेजकर विराट ने परीक्षा नहीं की थी? उस परीक्षा में मैं सरलता से उत्तीर्ण हो गया। बाद में एक

वर्ष तक प्रात:-संध्या नवयुवती लड़कियों के साथ रहा। उनकी देह छू-छूकर उनकी भंगिमाओं को सुधारने का कार्य किया। उनके हाथ पकड़कर, उनकी बाँहें पकड़कर, उनकी कमर पकड़ना मन को सुखद तो लगा, पर शरीर चंचल नहीं हुआ। अज्ञातवास समाप्त होने के बाद सुभद्रा का केवल सान्निध्य मात्र ही रहा। उपप्लाव्य आने के बाद कितनी ही बार इसने कहा है—"क्या आपको बुढ़ापा आ गया या वनवास का प्रभाव है?" "तो क्या अर्जुन बूढ़ा हो गया? प्रात:-संध्या इतने बड़े धनुष से बिना आयास अभ्यास करने वाला अर्जुन बूढ़ा हो गया, पचास-इक्कावन वर्ष में ही? तब अंत में उर्वशी ने जब शयनागार में बुलाया तो मैं क्यों नहीं गया? हारने का डर था? इन्द्र ने ही कहा था कि यदि संपूर्ण विश्वास से अपने को अर्पित कर दो तो वह इलाज करके पुंस्त्व को उभार देगी जो सदा उबलता रहेगा। मैंने वैसा ही क्यों नही किया? पेट में ऐंठन-सी होने लगी। सारे शरीर में अजीब-सी अनुभूति हुई। आँखों में उर्वशी का ही रूप था। सामने बैठा तुष्ट ऊँघ रहा था। पाँवों के पास सोयी सुभद्रा फू-फू करके साँस छोड़ रही थी। दूर-दूर दीखने वाले पर्वत को देखने पर भी कलेजा मुँह को आ रहा था। केवल भीम के जनक मारुत ही अभी जीवित हैं। यदि दूसरे भी जीवित होते तो संभवत: उतना ही प्रेम दिखाते, संभवत हमारी पद्धति को मान जाते। धर्माधिकारी ने क्या कहा था? मेरा मन कसमसा उठा था। अब सब ठीक याद नहीं। पद्धति-वद्धति की कोई बात नहीं। नियोग का नाम भी नहीं। तो जिनके संतान न हो उनके संतान हो जायें, केवल इस पवित्र भाव से वीर्यदान के लिए मेरी दोनों दादियों से श्रीकृष्ण द्वैपायन ने नियोग किया। इन देवता लोगों ने हमें किस भावना से जन्म दिया? पेट की खलबली एकदम ज्यादा हो गयी। वह कुछ देर को आसन बदलकर रथ से टेक लगाकर पाँव पसारकर बैठा रहा। जरा शांति मिली। कोई पंखा झलता तो अच्छा रहता। सुभद्रा सो रही थी। यदि जागती भी होती तो बिना कहे कर देने की सूक्ष्म बुद्धि इसमें नहीं। पांचाली ही ठीक है। मन भले ही बदल गया है। पत्नी बने रहने की अवधि में स्नेह सेवा के अवसर पर कोई स्त्री भी उसकी बराबरी नहीं कर सकती। तभी उसका ध्यान इंद्रप्रस्थ की ओर गया। याद आया कि सुभद्रा के आने के बाद से इसकी बारी ही नहीं आयी। अब भैया की बारी है। इसके बाद एक वर्ष भीम की बारी है। उसके बाद मेरी आएगी। उसका सारा क्रोध मिटाकर उसे पहले जैसी सखी न बना लूँ तो मेरा नाम नहीं। यह सोचते-सोचते उसे फिर याद आया, 'ये केवल कुंती के पुत्र हैं। कौरव वंश के नहीं हैं। इसीलिए ये कुरूराज्य के भागीदार बनने के अयोग्य हैं।' वह सब राजाओं में यह प्रचार कर रहा है। रथ ज़ोर से हिचकोले खाने लगा। पितामह की याद हो आयी। 'इतना सुंदर लड़का है' कहकर तब उन्होंने मुझे कितने प्यार से गोद में लिया था, जब हम पिता की मृत्यु के बाद

हस्तिनापुर पहुंचे थे। राह पथरीली होने लगी थी। पहिये ऊंचे-नीचे होने लगे थे। टेक लगाकर बैठना संभव न हो सका। एकदम मतली-सी महसूस हुई। वह उठकर बैठ गया। रथ से मुंह बाहर निकालने से पहले ही उल्टी हो गयी। दुबारा उबकाई आयी। ऊंघता तुष्ट एकदम जाग गया। सुभद्रा को लांघकर भीतर आकर महाराज की भुजा थामकर पीठ मलता रहा। "यह सुरा अच्छी नहीं। आप जैसे लोग इसे पचा नहीं सकते। यह मैंने पहले ही कहा था न।" उसकी एक भी बात अर्जुन की समझ में नहीं आ रही थी। पितामह की याद आ रही थी। कृष्ण से पूछना चाहिए। पर प्रश्न का स्वरूप अस्पष्ट ही था।

संध्या होते ही समुद्र की हवा बहने लगती। शरीर का चिपचिपापन भले ही कम न हो पर हवा लगते ही पसीने का नरक कम हो जाता। लहरों का रव भी बढ़ता जाता। इस प्रकार द्वारका निवासियों के मन को हवा और लहरें दोनों एक साथ महसूस होते। समुद्र तट पर रेत पर ही बैठकर या खड़े होकर लहरों का आनंद लिया जा सकता। वैसे घर में लेटकर आँखें मूंद लेने पर भी लहरों की ठाठें सुनायी देतीं। लहर, हवा, गर्मी, पसीना ये चारों एक-दूसरे में मिलने वाले अथवा एक-दूसरे से निकलने वाले अंश हैं। नगर से यदि घोड़े की पीठ पर एक दिन का प्रयाण किया जाए तो रैवतक पर्वत पर पहुँचा जा सकता है। ऊपर चढ़ने पर धुंध, ठंडी हवा, लगती है और पसीना नहीं आता। पर युयुधान जैसों को लहरें छोड़-कर जाने का मन नहीं होता। लहरों के थपेड़े खाती रेत ही उन्हें पसंद है। गर्मी की ऋतु में भी धूप चढ़ने से पहले ही वह वहाँ जा बैठता। वहाँ की पानी भरी हवा, गर्मी, जलती धूप के कारण उसका गोरा मुख, पीठ, बाँह, छाती सब, ताम्र वर्ण के हो गये थे। "मैं भी पचास का हो चुका हूँ। मेरा पोता भी चौदह पूरे कर चुका है। रंग ताँबे का-सा ही नहीं काला भी पड़ जाए तो क्या अन्तर पड़ता है?" यदि कोई उससे पूछता तो वह यही उत्तर देता। इतनी घनिष्ठता से पूछने वाला और कौन था? उसका मित्र कृष्ण। वह आयु में समान होने पर भी संबंध में चाचा लगता है। युयुधान के दादा और कृष्ण के दादा के पिता एक ही थे। आयु भी एक ही हो और परस्पर स्नेह और घनिष्ठता भी, तो संबंध की ओर कौन ध्यान देता है। वह कृष्ण से कहता, "कृष्ण, पोते का जन्म होते ही अर्थात् छत्तीस वर्ष की आयु में मैं अपने को दादा मानने लगा। पर तुम तो पोते का विवाह हो जाने पर भी अपने को बूढ़ा नहीं मानते। चर्म का रंग काला पड़ गया यह सोचकर मैं क्या तुम्हारी भाँति मलाई और चंदन का लेप लगाता हूँ?"

दोपहर के समय तक दूर-दूर से बादल तैरते आते और घने हो उठते। वर्षा की संभावना होती पर संध्या की हवा से उड़ जाते। आज पहली वर्षा होगी। वह गणना करके बहता पसीना वर्षा से धोने की आशा से आकाश की ओर निहारता।

परंतु संध्या की उठती हवा रही-सही आशा को उड़ा देती। युयुधान ने हवा को कभी नहीं कोसा। रेत के ढेर पर हवा की ओर मुँह करके बैठता तो ताप समाप्त हो जाता और मन शांत होकर एक सामान्य स्थिति पर आ जाता। नीली हरित तरंगों के पार विस्तृत जलराशि पर मन जा ठहरता। उस संध्या भी वह ऐसे ही रेत के ढेर पर बैठा था। आँखों में लाल सूर्य की किरणें चुभ रही थीं। मछली पकड़ने वाले नावों के पार सूर्य डूब रहा था। इस बार वर्षा क्यों शुरू नहीं हुई ? यह चिंता उसे सता रही थी। वह चिंता गर्मी न सह पाने के कारण थी अथवा मनुष्य और जानवरों के लिए पीने के पानी के अभाव की वजह से अथवा जुताई-बुआई न होने से दुर्भिक्ष की आशंका के कारण थी। इस वर्ष आर्यावर्त में बड़ा युद्ध होने वाला है। यह बात उसका मन कह रहा था। यही बात मित्र कृष्ण ने भी कही थी। वनवास और अज्ञातवास पूरा करके आये पांडवों को दुर्योधन राज्य दे या न दे। पांडव उससे युद्ध करके अपना प्राप्तव्य प्राप्त करें या न करें। यह सब केवल कुरुप्रदेश तक सीमित रहने वाली घटनाएँ न थी। पांडव अपने समधी पांचालों से सहायता प्राप्त करेंगे ही, यह स्वाभाविक है। इसीलिए पांचाल बारह वर्ष से युद्ध की तैयारी करते रहे होंगे ? पर दुर्योधन समस्त आर्यकुल के राजाओं से विनती करके अपना बल बढ़ा रहा है। पांडव भी सहायता की याचना करते हुए जगह-जगह भटक रहे हैं। इसीलिए तो कृष्ण ने उपप्लाव्य में जाकर डेरा जमा लिया। युयुधान का भी स्नेह पांडवों पर है, यह सबको विदित है। वह कृष्ण का घनिष्ठ मित्र है। अर्जुन के साथ भी घनिष्ठता और आत्मीयता है। राजसूय में मैंने कितनी दौड़-धूप की थी। इसके अतिरिक्त जुआ न जानने वालों को निमंत्रित करके उसका नशा चढ़ाकर खिलाना, उससे कमाई करना ग़लत है। कृष्ण का यह कथन सत्य है। न केवल जुए से यह जीता है बल्कि करार के अनुसार लौटा भी नहीं रहा है। अब युद्ध में सहायता माँगने आ गया है न ? तभी एक बड़ी-सी लहर उठी और टकराई उससे पाँव-जांघ तक गीली रेत चिपक गयी। फिर वह श्वेत फेन छोड़ती हुई चली गयी। इस गर्मी की संध्या के समय समुद्र का पानी कितना गर्म है। उसने आते ही बलराम के भवन में डेरा जमा लिया। सुना है उसने बलराम से कहा, "गुरुजी, किरीटधारी समझकर औपचारिक रूप से सम्मान देकर मुझे अतिथि भवन में ठहराने की आवश्यकता नहीं।" इससे यह अपने को सम्मानित नहीं समझता ? सिर्फ़ इतने से प्रसन्न होकर अपनी बहन के संबंध को अनदेखा करके, कृष्ण का विरोधी बनकर, मेरी इच्छाओं की ओर भी ध्यान न देकर जो कुछ वह चाहता है, वह सब देकर भेजेगा ? कृष्ण आज-कल उपप्लाव्य में है। इसी अवसर का लाभ उठाकर यादवों में फूट डलवाने को वह यहाँ आया है। उजड्ड बलराम को यह कुतंत्र समझ में आएगा ? लगता है एक और बड़ी लहर आ रही है। यह केवल घुटनों तक ही नहीं रहेगी, कमर तक जा सकती

है। यह सोचकर भी युयुधान बैठा ही रहा। उसके मन में यह विश्वास था कि पहने कपड़े भीगने पर तुरंत एक मिनट में सूख जाएँगे, पर शरीर तो नमक से चिपचिपा जाएगा। यह विचार आने तक लहर आकर टकरा ही गयी। कमर से भी ऊपर यहाँ तक कि जिस रेत पर बैठा था; उसे भी बहा ले गयी। वह तो पलटी खाते-खाते बचा। "अरे इसकी···।" कहकर हँसते हुए चित पड़ गया तो उसकी नाक, मुँह और आँखों में रेतीला पानी घुस गया। गले में फंदा-सा लग गया। एक और बड़ी-सी लहर आती दिखायी पड़ी। ज्वार आना शुरू हो गया है, सोचकर वह ऊँचाई पर चढ़ गया।

रात्रि के भोजन के उपरांत युयुधान अपने घर के सामने काले समतल आँगन में नरम घास की चटाई पर लेटा हुआ था। उस अनर्त देश में, जिसमें द्वारका बसी थी, विशेष ढंग की बड़ी अच्छी घास उगती थी। उससे देखने में सुंदर और लेटने को नरम चटाइयाँ बुनना, वहाँ आने के बाद यादवों ने सीख लिया था। गर्मी के दिनों में उसके अतिरिक्त किसी और वस्तु पर सोना संभव न था। आँगन में पंक्ति में बिछी चटाइयों पर युयुधान के पिता सत्यक, बेटे और पोते शरीर पसारे पड़े रहते। नवविवाहित अथवा तरुण दंपति, गर्मी की ऋतु होने पर भी भीतर कमरों में या घर के पिछवाड़े ओट में साथ-साथ सोया करते थे। समुद्र के तट पर बसे उस नगर में छत की अपेक्षा नीचे धरती पर सोना अधिक सुखदायक था। समुद्री हवा इतने ज़ोर से बहती कि सोये हुए लोगों को कलाबाज़ी खिला देती। तब भी नव-विवाहित अलग ही छतों पर सोते थे। उन्हें देखकर गाँव की बूढ़ियाँ, 'देखना तुम्हारी पत्नी कहीं ज़ोर की हवा में उड़ न जाय, नींद में भी उसकी कमर को लपेटकर सोना।' कहकर मज़ाक उड़ातीं। बूढ़ापा आने पर भी द्वारका की वृद्धाओं में जवानी की बातें बंद नहीं होती थीं।

बेटे, पोते जब बातों में लगे थे तब युयुधान और उसके पिता सत्यक कोने में एक तरफ़ चटाइयों पर लेटे बातें कर रहे थे। पिता-पुत्र में पहले से ही घनिष्ठता थी। माँ के मरने के बाद के गत दस वर्षों से पुत्र अपना सारा अवकाश पिता के पास ही बिताता। अपना पिता और मित्र कृष्ण, दो ही उसके बड़े आत्मीय थे। कृष्ण तो मित्र है इसलिए उसके साथ लगातार गप्पें मारी जा सकती हैं। देश-विदेश, युद्ध-संधि, राजकाल की बातें और व्यापार आदि विषयो पर ढेरों बातें की जा सकती हैं। अपने समय के प्रसिद्ध वीर पिता का स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता। वह घर से कहीं बाहर नहीं जाता। घर पर ही रहता, इसलिए उसकी सारी बातें पूर्वानुभव की होतीं। बूढ़े सत्यक् को समुद्र अच्छा नहीं लगता। यह द्वारका उसे पसंद नहीं। अनर्त देश ही उसे पसंद नहीं। "मानव को सदा नदी के तट पर बसना चाहिए। मीठा पानी, कृषि योग्य भूमि, समृद्ध पशुधन, यह सब समुद्र तट पर कहाँ? नमकीन पानी, रेत, सारे वर्ष शरीर की चिपचिपाहट, बस-बस,

हमारी मथुरा नगरी के सामने यह सब तुच्छ हैं।" यह बात अब तक उसने हज़ारों बार कही होगी। जरासंध के भय से यादव यहाँ आकर बस गये। तेंतीस वर्ष हो गये न? तब सत्यक् छियालीस का था। छियालीस वर्ष तक जन्म से लेकर जिस भूमि पर पले और बूढ़े, बेटे और पोते देखे, उस भूमि की याद भुलाना क्या संभव है? "युयुधान, तब तुम सोलह के थे। अभी समझ नहीं आयी थी। इसलिए मथुरा और द्वारका का अंतर तुम्हें समझ में नहीं आएगा। वहाँ यहाँ की भाँति सदा पसीना नहीं आता था। गर्मी में ज्यादा धूप होने पर भी सूखी हवा चलती थी और पसीना कम आता था। सर्दी में चाहे जितना काम कर लो थकान नहीं होती थी। उस जलवायु में गाएँ जितना दूध देती हैं उतना इस दरिद्र हवा में कैसे देंगी? जरासंध की आफ़त टल गयी। उसे मारने वाला पुण्यात्मा कौन है? हमारे वंश की लड़की का ही बेटा है न? क्या नाम है उसका? पंद्रह वर्ष हो गये न? हम सबको तभी मथुरा लौट जाना चाहिए था। अब भी वहीं जाकर मेरी साँस छूटे और यमुना के तट पर जला दो तो मुझे स्वर्ग मिल जाएगा।" यह बात सदा वह बेटे से कहता ही रहता।

भीम के हाथों कृष्ण के जरासंध को मरवा डालने के बाद से पिता की मथुरा लौटने की आशा बलवती होती जा रही थी। युयुधान यह जानता था कि माँ जब तक रही, वह भी लौटने की बात ही कहती रही। तब तक मथुरा छोड़े अट्ठारह वर्ष बीत चुके थे। पर मुझे यह समुद्र ही मन को भाता है। सोलह तक तो बचपना रहता है, बाद में स्वतंत्र जीवन रहता है। वह स्वतंत्र जीवन आरंभ होने के बाद से मैंने यहीं समय बिताया, इस समुद्र तट के देश में। यहाँ आने के बाद से ही तो यादव लोग समुद्री व्यापार से ऐश्वर्यशाली बने। आर्यावर्त के राजा मथुरा के यादवों को किस हिसाब में गिनते थे? पीढ़ियों से उन्नति के शिखर पर रहने वाले हस्तिनापुर के कुरुओं के समीप रहने वाले यादवों की साधारण स्थिति उभरकर और भी स्पष्ट दीखती थी। उन सब के मन में यह भाव था कि मथुरा के यादव नीचे स्तर के क्षत्रिय हैं। अब हस्तिनापुर का राजा ही स्वयं आया है। केवल सेना माँगने नहीं, युद्ध के खर्च के लिए धन भी माँगने। इस ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले समुद्र-तट को छोड़कर पुराने पशुपालन, और कृषि वाले मूल स्थान पर लौटने से लाभ? यह विचार उसके मन में अपने आप उठ रहा था।

बेटे और पोते सब ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। पास लेटे बेटे से सत्यक ने पूछा, "सुना है हस्तिनापुर से उनका राजा ही आया है?"

युयुधान ने 'हूँ' कहा। बूढ़ा चुप हो गया। दाँत गिर जाने के कारण आवाज़ ठीक से नहीं निकल पाती थी। 'आँ?' का आभास होता था। पिता से ढेरों बातें करने के अभ्यस्त युयुधान को भी उनके 'हाँ' और 'हूँ' का अंतर स्पष्ट समझ में न आता था। अपने उत्तर को एक बार फिर से दुहराने के बाद बेटे ने हस्तिनापुर के

राजा दुर्योधन के आने का कारण बताया। समुद्र की लहरों की आवाज़ होने पर भी बूढ़े को सब कुछ स्पष्ट सुनायी दिया। आकाश को धुँधली आँखों से निहारता लेटा बूढ़ा उठ बैठा और पूछा, "पांडवों और उनके शत्रुओं में युद्ध होगा। जरासंध को मारने वाले पांडव ही हैं न ? इसलिए हमारा उनके पक्ष में जाना ही धर्म है। तुम्हारा क्या कहना है ?"

"ठीक ही तो है। पर बलराम की बुद्धि वक्र है।"

"क्या कहा ?" पूछते हुए बूढ़े ने अपना बायाँ हाथ बायें कान के पास लगा लिया क्योंकि हवा तेज़ हो जाने के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ रहा था।

"तुम्हारा कहना ठीक है। कृष्ण भी यही कहता है। पर बलराम की बुद्धि वक्र है।" युयुधान जब पिता की ओर मुड़कर ज़रा ज़ोर से कह रहा था, तभी पीछे से छाया दिखाई पड़ी। आँगन में ज़ोर-ज़ोर से बातें करने वालों की बातें भी रुक गयी थीं, उसे यह भी ध्यान में आया। उसने मुड़कर देखा तो साक्षात् बलराम खड़ा था। युयुधान फक् रह गया। उसे तो बलराम से डरने की आवश्यकता न थी। सामने खड़े होकर क्रोध से गाली देना सरल है। पीठ पीछे किसी के बारे में टीका करते समय यदि वही उसे प्रत्यक्ष सुन ले तो एक अजीब तरह की कसमसाहट होती है।

"हाँ, बलराम को बुद्धि वक्र है। सात्यकी, बलराम ही वक्र है।" कहते समय उसकी ध्वनि में क्रोध था। यदि वह चुपचाप खड़ा रहता और कोई प्रतिक्रिया न दिखाता तो युयुधान को कसमसाहट होती। तुरंत उसके बोल पड़ने से इसके मन को ज़रा सांत्वना मिली।

"मैं सच्ची बात कह रहा था। अब यदि तुम्हारा स्वभाव बदल गया है तो मैं क्षमा चाहता हूँ। आओ, बैठो।" कहते हुए युयुधान ने खड़े होकर उसे बैठने को चटाई दिखायी। राजा के अनुकूल चाँदनी में भी कमर से पाँव तक चमकता रेशम का अधोवस्त्र चमक रहा था। गर्मी के मारे ऊपर कुछ पहने न था। रोम भरी छाती साफ़ दीख रही थी। उसके सिर पर सदा रहने वाला किरीट तो था ही। तत्क्षण उसने बायें हाथ की उँगलियों से बायीं दाढ़ को छूकर देखा।

युयुधान ने पूछा, "दाँत में दर्द है क्या ?"

"हिल रहे हैं; बायीं ओर ऊपर के दो। यहाँ।" जीभ लगाकर दिखाते हुए बलराम बोला। 'उखाड़ फेंकना चाहता हूँ पर जड़ें अभी ढीली नहीं पड़ीं। दायीं ओर भी दर्द हो रहा है।"

"मुझे अनुभव है इस कष्ट का।" पिता भी बातों में शामिल हो गया।

युयुधान ने पूछा, "तुम्हारी आयु क्या है ?"

"उसकी आयु मैं बताता हूँ। मैं सम्बन्ध से बड़ा भाई हूँ न, ठहरो।" कहते हुए सत्यक मन-ही-मन गणना करता हुआ बोला, "समझो मैं उन्नासी या अस्सी का हूँ। तुम अपनी माता रोहिणी के पहलौटी के पुत्र हो। विवाह के वर्ष में ही पैदा

हुए थे। तुम्हारी माँ और उसकी चार बहनों के साथ तुम्हारे पिता ने एक ही दिन विवाह किया। तब मैं सत्रह या अट्ठारह का था। विवाह की सारी दौड़-धूप मेरे ही सिर पर थी। तुम्हारा पिता मुझसे ज्यादा क्या, मेरी ही आयु का था। तुम्हारी माँ और उसकी चारों बहनें 'पौरुष' वंश की थीं। बाक़ी सात पत्नियाँ उग्रसेन के भाई देवलन की पुत्रियाँ थीं। शेष दो दासियाँ थीं। कुल चौदह पत्नियाँ थीं। चाहो तो उन सबके नाम अभी बता सकता हूँ। तुम्हें अपनी माताओं के नाम क्रम से मालूम हैं?"

बलराम ने मन-ही-मन याद किया। पर फटाफट याद नहीं आये। उसकी माता रोहिणी के बाद में इंदिरा, तीसरी वैशाखी, भद्रा उसके बाद···उसके बाद क्या नाम? सुनान्मी, शेष-शेष ठीक से याद न आये पर वह मन-ही-मन गिनने का प्रयास कर रहा था। तब सत्यक ने फटाफट बताये—रोहिणी, इंदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनान्मी, सहदेवी, शांतिदेवी, श्रीदेवी, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और देवकी। सुतनु तथा वडवा दोनों दासियाँ थीं। बलराम, देखो अपनी माँओं के ही नाम याद नहीं तुम्हें। यह कोई सम्मान की बात तो नहीं।"

बलराम को अपमान-सा लगा। क्रोध भी आया। "भैया सत्यक, इतनी पत्नियाँ ही क्यों रखनी चाहिएँ? जब सात बहनें थीं तो सातों को एक अकेले ही को बाँध लेने की क्या जरूरत थी? उन सबका नाम याद रखना पुत्रों के लिए भी एक कठिन बात है। यह उनके लिए भी तो कठिन काम था। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए थी।"

बलराम ने यह बात व्यंग्य से कही या मज़ाक से, सत्यक की समझ में न आया। वह फटाफट चौदह नाम बता देने की प्रसन्नता में डूबा था। इस अनर्त देश में किस-किसकी कितनी पत्नियाँ हैं और किस-किसके कितने बच्चे हैं, यह सब उसकी जीभ पर था। इसके लिए उसे बड़ा गर्व था। युयुधान बात की धारा बदलने के विचार से बोल पड़ा:

"पिताजी, आपने यह नहीं बताया कि बलराम कितने वर्ष का हो गया?"

"अभी बताता हूँ, ठहरो। जब मैं सत्रह का था तब इसकी माँ की शादी हुई। विवाह के वर्ष में ही यह पैदा हुआ था। यही पहला बेटा है। मुझसे अट्ठारह वर्ष छोटा है। हिसाब लगा लो, बासठ साल का है।"

"तो दाँत गिरने की आयु हो गयी न?"

"भैया, दुर्योधन हस्तिनापुर से आया है। सुना है भीष्म एक सौ बीस के हो गये हैं। एक भी दाँत नहीं गिरा, चाहे जैसी कड़ी रोटी क्यों न हो, खटाखट चबा जाते हैं। धर्म पालन करने वालों के दाँत नहीं गिरते···।" बलराम जब यह कहे जा रहा था तभी सत्यक बीच में पूछ बैठा, "तो इसका अर्थ यह है कि मेरे सब दाँत गिर गये हैं, इसलिए मैं अधर्मी हूँ।"

"मैंने यह नहीं कहा। शुद्ध ब्रह्मचारी के दाँत नहीं गिरते। यह कहना चाहता

था, कुछ और ही कह गया। शरीर भी मज़बूत रहता है। चौदह स्त्रियों से विवाह करने वाले मेरे पिता को ही देखो, शव की भाँति बिस्तर पकड़े पड़ा है।"

सत्यक को इस बात में कोई रस नहीं आया। युयुधान को भी बात पसन्द नहीं आयी। उसे लगा कि बलराम दुर्योधन के बारे में उससे बात करने आया है। विधिवत राज्याभिषेक न होने पर भी बलराम अपने को अनर्त देश का राजा मानता था। जब चाहे उसे बुला भेजता था। आज स्वयं आया, उसका कारण और भूमिका भी युयुधान की समझ में आ गयी। दुर्योधन का पक्ष लेना चाहता होगा। कृष्ण नगर में नहीं है। उसके मित्र के नाते मुझसे पूछने का बहाना करने अथवा मुझे भी कृष्ण के विरुद्ध अपने पक्ष में करने के उद्देश्य से आया होगा। मैं बातों में कभी बलराम से हारने वाला नहीं। वह स्वयं जानता है कि चालाकी की बातें उसे नहीं आतीं। इसीलिए सीधे विषय पर आकर बात निबटाना ही ठीक है। यह सोच कर वह बोला :

"क्या बात है ? आज इस समय कैसे आये ?"

अपने पिता के प्रति कटु वचन बोलकर बलराम स्वयं भी अजीब-सा अनुभव कर रहा था। युयुधान के प्रश्न से अपने आपको कुछ आश्वस्त-सा अनुभव किया और बोला, "समुद्र की ओर जा रहा था। कभी-कभी चाँदनी में व्यापारिक नावें आ जाती हैं। बीच-बीच में आते-जाते न रहो तो वाहक चोरी किये बिना नहीं रहेंगे। आओ, देख आयें।"

दोनों साथ चल पड़े। नावों के लंगर डालने वाले कोने की ओर न जाकर बाईं ओर मुड़कर रेत पर उगे कीकर के पेड़ों के झुंड की ओर मुड़कर बलराम बोला, "आओ यहाँ बैठें।" सामने लहरें उठ रही थीं। सफ़ेद फेन। क्रम से उठती लहरों के टकराकर बिखर जाने की आवाज़।

"तुमने कहा था नावें आएँगी।"

"आने पर दिखायी देंगी। ज़रा बात करनी है। यहाँ बैठ जाओ।" कहते हुए बलराम ने युयुधान के कंधे पर हाथ रखकर बिठाया। स्वयं भी बैठकर दुखती दाढ़ के ऊपरले हिस्से पर उँगली फिराने लगा। दस-बारह लहरें टकराकर विलीन हो जाने के बाद तक उसका ध्यान दुखती दाढ़ की ओर ही था अथवा बात आरंभ करने का ढंग समझ में न आने के कारण पीड़ा का सहारा लिये था।

"दुर्योधन सहायता माँगने आया है क्या ?" युयुधान ने बात आरंभ करने का रास्ता सुझाया।

"सात्यकि, मैं चाहता हूँ कि इस बारे में यादवों को एकमत होकर निर्णय लेना चाहिए। यादवों ने कभी न्याय का रास्ता नहीं छोड़ा। बंधु-बांधव का ममत्व छोड़कर हमें न्याय का पक्ष लेना चाहिए। मैं, तुम और कृतवर्मा तीनों मिलकर निश्चय करने के बाद दुर्योधन को वचन देकर भेजेंगे।"

"तो कृष्ण ?"

"वह तो नगर में रहता ही नहीं। सदा इधर-उधर घूमता रहता है। उसका क्या भरोसा ? अब तो उसकी अपनी अक़्ल भी काम नहीं करती। पत्नी की बात पर कान देने वाला आदमी न्याय से राजकार्य की समस्याओं का निर्णय ले पाएगा ?"

बलराम के मन की बात तब तक युयुधान की समझ में आ गयी थी। वह उस महत्त्वपूर्ण बात का निश्चय कृष्ण को छोड़कर करना चाहता था। करता क्या ? वह तो कर भी चुका था। दुर्योधन को वचन भी दे चुका होगा। कृतवर्मा तो सदा बलराम की ओर ही रहता है। कृष्ण के निकटतम व्यक्ति के नाते मुझे अपनी ओर करने के लिए ही अब यह आया है। 'पत्नी की बात सुनने वाला' कहकर कृष्ण पर आरोप लगा रहा है। यह सुनते ही उसकी पृष्ठभूमि उसे याद हो आयी। उसमें कृष्ण की क्या ग़लती थी? वास्तव में रुक्मिणी के साथ जो बात हुई थी वह वैमनस्य बलराम के मन में है। इसीलिए कृष्ण ने तो पत्नी का भी पक्ष नहीं लिया और भाई का भी नहीं लिया। वह भी क्या करता ? पत्नी के बड़े भाई रुक्मि और कृष्ण में पहले से ही मित्रता न थी। स्नेह बढ़ता भी कैसे ? विवाह करते समय यह जाकर रुक्मिणी को उठा लाया। तब रुक्मि ने 'कृष्ण को मारे बिना पुर-प्रवेश नहीं करूँगा' कहकर प्रतिज्ञा की थी। किन्तु हार जाने के कारण वह दूसरा नगर बसाकर मरने तक वहीं रहा। पिता के नगर में कभी नहीं गया। उन दिनों अपहरण करके विवाह करना क्षत्रियों की एक पद्धति थी। कृष्ण ने ऐसा ही विवाह कर लिया। बाद में उस मूर्ख रुक्मि ने सम्बन्ध को स्वीकार ही नहीं किया और पराजय को अपमान मानकर वह मूर्ख दूर ही रहा। बहन के घर कभी न आया, जीजा से कभी बात तक न की। वह जरासंध से जा मिला था और अपनी बहन को शिशुपाल से ब्याहना चाहता था। कृष्ण ने जरासंध का संहार करवा दिया और स्वयं शिशुपाल का काम तमाम कर दिया। लेकिन रुक्मि की द्वेषाग्नि बुझी नहीं बल्कि और बढ़ गयी। एक बार भी बहन को न्यौता नहीं। उसका मुंह भी नहीं देखा। 'उसका मुखदर्शन किया तो मेरा-तुम्हारा पिता-पुत्र का सम्बन्ध नहीं रहेगा' कहकर पिता को पुत्र ने धमकी दी। रुक्मिणी को एकदम मायके से काट देने वाला हठी। चाहे जितने वर्ष क्यों न बीत जाएँ, कोई स्त्री अपने मायके को क्या कभी भूल सकती है ? 'वह भले ही न आये, पर मैं ही जाकर मायके का सम्बन्ध फिर स्थापित करूँगी' कहकर यदि रुक्मिणी ने हठ किया तो कृष्ण कैसे रोकता ? वह दस पुत्रों और एक पुत्री की माँ बनी। बड़े तीन पुत्रों के विवाह हो चुके थे। 'अभिमान और हठ नहीं करना चाहिए। मैं ही मिल आती हूँ। भेज दो।' कहकर आँसू बहाए तो वह कैसे मना करता ? कृष्ण अपने भाई के समान अविवेकी और हठी स्वभाव का न था। 'अच्छी बात है। मिल आओ।' कहकर उसने भेज दिया। चौथे नवयुवक पुत्र

प्रद्युम्न तथा अंगरक्षकों को साथ लेकर वह स्वयं गयी। रुक्मि अपने हठ पर अड़ा रहा। विवाह के छब्बीस-सत्ताईस वर्ष बाद घर आयी बहन से उसने बात भी नहीं की, परन्तु पत्नी के डाँटने-फटकारने पर आकर बहन के सामने खड़ा हो गया। पाँव पर हाथ की उँगलियों के साथ आँसू भी गिरे। भाई के आँसू बहन के सिर पर गिरे। रुक्मिणी का स्वभाव ही ऐसा था। वह केवल रूपवती ही नहीं, सहिष्णुता, शांति और दया की मूर्ति है। भाई के प्रति स्नेह के कारण ही अपहरण को रोकने आये रुक्मि को मारने के लिए जब कृष्ण तैयार हुआ तो उसी ने विनती करके भाई को बचा लिया था। तब वह सोलह वर्ष की होने पर भी कृष्ण का रथ चला रही थी। उसने सब कुछ अपनी आँखों से देखा था। हठ ही जब आँसुओं के रूप में बहने लगे तो फिर शेष क्या रह जाता है? वह भी रुक्मिणी की दया के सम्मुख। उसने तीन महीने तक बहन को विदा नहीं किया। पहली बार वही बहन को छोड़ने के लिए द्वारका आया था। 'भैया, अपनी बेटी शुभांगी का विवाह मेरे प्रद्युम्न से कर दो, तभी समझूंगी कि तुम्हारा गुस्सा समाप्त हो गया। पर तुम्हारी बेटी जितनी सुन्दर मेरा बेटा नही! यह प्रसिद्ध है कि विदर्भ के लोग बड़े गोरे होते हैं। प्रद्युम्न ज़रा काला है। अपने पिता की तरह।' कहती हुई वह कृष्ण को देखकर हँस दी थी।

कृष्ण बीच में ही बोल पड़ा, "रुक्मिणी, तुम्हारा कहना ठीक है, पर लगता है प्रद्युम्न और शुभांगी ने बीच ही में कुछ दुष्चक्र चलाया है?"

"माँ के साथ जा रहे हो, चुपचाप नही रहना। मामा की बेटी को उठाकर ले आना" कहकर "कहीं तुम्हीं ने तो यह शिक्षा देकर उसे नही भेजा था?" रुक्मिणी ने पति को चिढ़ाया। युयुधान जब ये बातें याद कर रहा था। तब बलराम ने वही बात कही। किसी आदमी को पत्नी अधिक प्यारी होनी चाहिए या भाई। जो आर्य-धर्म को भूल जाता है, वह राज्य व्यवहार में स्त्री के झगड़े को ले आता है न?" यह कहकर "आ--ह—ह ज़रा-सी जीभ छूते ही कितनी पीड़ा होती है। ओफ़ कैसी भयंकर पीड़ा है। हथेली से बायी ओर के गाल को सहलाने लगा।

युयुधान ने उत्तर न दिया। जो दृश्य उसने तब देखा था आज आँखों के सामने स्पष्ट नाच रहा था। रुक्मि ने अपने नगर न लौटने की प्रतिज्ञा की थी और स्वयं अपने लिए बनाये गये भोजकंटक के राजभवन में धूमधाम से विवाह कराया। विवाह हुआ। वहीं सभाभवन में जुआ खेलना आरंभ हुआ। रुक्मि और बलराम आमने-सामने बैठे पाँसे फेंक रहे थे। चारों ओर आमंत्रित राजा खेल देखने को एकत्रित थे: अश्मक देश का वेणु, अक्षत, श्रुतवर्मा, चाणूर, अंशुमान, कलिंग देश का जयत्सेन। इस बलराम को ठीक से खेलना नहीं आता। जुए में दक्ष होना हो तो बुद्धि भी तीव्र होनी चाहिए, एकाग्रता चाहिए। खेल का अभ्यास होना चाहिए। समुद्री व्यापार से ऐश्वर्यशाली होने का अहंकार हो तो खेल खेलकर पैसा बहाया

जा सकता था। जीतना संभव था क्या ? विवाह में चढ़ावे के लिए लाये हाथी, घोड़े, रथ, सोना और यहाँ तक कि शरीर पर पहने आभूषण-वस्त्र सब एक-एक करके, एक की चार और चार की जगह आठ खोकर झगड़ा आरंभ कर देना चाहिए था ? "खेलने को बैठ गये हो तो पूरा खेलो, हारने के बाद झगड़ा क्यों कर रहे हो। चाहे तो मुझसे उधार लो या यहाँ बैठे किसी दूसरे राजाओं से ले लो।" रुक्मि को यह बात नहीं कहनी चाहिए थी, वह भी बलराम जैसे नये समधी से। आस-पास बैठे सभी राजाओं ने ज़ोर से खिलखिलाकर ताली बजाई। सबने विवाह के लिए विशेष रूप से उतारी ताड़ी और राजभवन की भट्टी पर बनाई गयी विशेष सुरा दोनों मिलाकर चढ़ायी थी। विवाह के उत्सव में लोग दूर-दूर से पीने के लिए और जुआ खेलने को एकत्रित होते हैं। 'ओ, रुक्मि ! जानते हो तुम किससे बात कर रहे हो। मैं समुद्र का राजा हूँ।' बलराम क्रोध और नशे में अपने आप को वश में नहीं रख पाता। रुक्मि ने उतना मद्यपान नहीं किया था। कम-से-कम वही चुप रह सकता था। कृष्ण का कहना ही सच है। द्यूत के स्थान पर बैठने से पीने से भी बढ़कर विवेक घट जाता है। यह स्थान की महिमा होती है। 'खेलना तो आता नहीं, मूर्ख कहीं का ! क्षत्रिय होकर भी ठीक से पाँसे फेंकना नहीं सीखा। द्वारका के यादव आर्य नहीं।' रुक्मि का इतना कहना ही था कि क्रोध से इसकी आँखें कैसे जल उठीं ? अपने आसन से कूदकर एक ही छलाँग में रुक्मि पर टूट पड़ा और शेर की भाँति उसकी गरदन पकड़ ली। क्या हुआ? दूसरों को यह बात समझ में आने से पहले ही उसकी गरदन मरोड़कर अट्टहास करता खड़ा हो गया। उसे देखनेवाले वेणु, अक्ष, श्रुतवर्मा, चाणूर, अंशुमान, जयत्सेन आदि थर्रा गये। विवाह के घर में शव। 'वधू के पिता को ही ससुर के भाई ने मार डाला।' कहकर सारे सेवक सिर पीटने लगे। डर के मारे क्षण-भर में मालूम नहीं कितने लोग भागे आये। रुक्मि के बेटे, पोते और पत्नी तथा बंधु भागे आये और शव से लिपट गये। भीतर रुक्मिणी के मायके की स्त्रियों और बच्चों से कृष्ण पुराने संबंध याद करके कुशल-क्षेम पूछ रहा था। यह समाचार मिलते ही वह भी भागा आया। रुक्मिणी भी भागी आयी और उसने भाई के शव के सिर को दोनों हाथों में थाम लिया। 'यह बलराम की ग़लती है।' यह बात कहने का साहस किसमें था। रुक्मिणी के गले में इतनी ज़ोर से बोलने की शक्ति थी, यह उस समय तक किसे पता था। एकदम अपना रोना रोक उठकर सीधी बलराम के पास आकर कितने ज़ोर से "अरे, तुम मेरे पति के बड़े भाई हो और आयु में बड़े हो, यह मानकर मैं अब तक नमस्कार करती रही। यदि यह पता होता कि तुम ऐसे चांडाल हो तो कभी ऐसा न करती। इतने वर्ष मेरा भाई मुझसे दूर रहकर भी अपने में सुखी था। मैंने ही अपने आप मायके मे आकर उसकी बेटी माँगकर संबंध बनाये। किन्तु दूसरे ही दिन तुमने यह पशुवत् काम कर डाला !" कहकर शव के पास खड़े कृष्ण की ओर मुड़कर

बोली, "इसे क्या दण्ड मिलना चाहिए यह तुम्हीं निश्चय करो।"

कृष्ण क्या कहता ? बड़े भाई के काम से स्वयं लज्जित होकर सिर नीचा किए खड़ा रहा। सब उसी की ओर निहार रहे थे। उसी के बेटे को उन्होंने लड़की दी थी और उसके भाई ने ही ऐसा काम कर डाला।

तुरंत बलराम ने अपना समर्थन कैसे किया : "कृष्ण, तुम्हारे पास खड़ी इस स्त्री से तुम्हारा विवाह कैसे हुआ, ज़रा याद करो। जरासंध चाहता था कि विदर्भ के भीष्मक की बेटी का अपने पालित पुत्र शिशुपाल से विवाह करा दिया जाए ताकि उसका प्रभाव दक्षिण तक फैल जाए। अपने प्रभाव का इस प्रकार प्रसार करते-करते अंत में पूरे अनर्त देश और द्वारका को घेर लेने की योजना थी। किसी भी प्रकार इस लड़की को उड़ा लाये तो जरासंध का मान भंग हो गया। कल इस लड़की का पिता हमारे साथ मित्रता बढ़ाएगा। हमारी योजना यही थी न ? तुम जब इसका अपहरण करके ला रहे थे तो क्या भीष्मक ने तुम्हारा पीछा नहीं किया था ? रुक्मि भी आया था, तुम्हें जान से मार डालने को। वह जरासंध का पटु शिष्य था न ? विवाह के बाद इतने वर्ष बीत जाने पर भी वैर बढ़ाता ही रहा। अब अपनी तरफ़ कोई अच्छा लड़का न मिलने से हमारे लड़के से अपनी बेटी ब्याहने को तैयार हो गया था। वह जाने दो। उसने मुझे और यादवों को क्या कहा मालूम है ? हम अनार्य हैं ? जरासंध को पांडवों के भीम ने मार डाला। शिशुपाल को तुमने मारा। इस रुक्मि को मारने का भाग्य मुझे मिला। तुम अपनी पत्नी को समझा दो कि वह राजकाज में हस्तक्षेप न करे। तुम कहोगे या मैं ही सिखाऊँ ?"

रुक्मिणी ने तुरंत कहा, "ऐ मूढ़, ज़रा जबान संभाल कर बोलो।"

बलराम गरज पड़ा, "कुतिया, भौंक मत, अपनी ज़बान बंद रख।" ऐसी स्थिति में कृष्ण क्या करे ? भाई के व्यवहार को ठीक है कहकर पत्नी को डाँट सकता था, अथवा ग़ुस्से के समय अपने को वश में न रख पाने वाले भाई बलराम को समधियाने में लड़ाई के लिए ललकारता ? उसने झुका हुआ सिर उठाया नहीं, होंठ हिलाये नहीं,और पत्थर की भाँति खड़ा रहा। स्थिति सँभालने की बात किसे सूझती? वह ऐसे खड़ा रहा मानो रुक्मि की हत्या का सारा दोष उसी के सिर पर हो। एक वर्ष बीत गया न यह घटना घटे। कुछ ज्यादा ही हुआ होगा। पिछली गर्मी भी शुरू नहीं हुई थी। दिन सुहावने थे। रात को ज्यादा ठंड नहीं होती थी। तब से गोरी, रक्ताभ रुक्मिणी ऐसी पीली पड़ गयी मानो सारा खून ही सूख गया हो। कृष्ण अधिकतर उसी के साथ समय बिताता है और सांत्वना दिया करता है।

"यह दाँत या तो गिर जाय या दर्द चला जाना चाहिए। पता है कितना दर्द है !"—कहते हुए बलराम ने यह ध्यान रखा कि जीभ दुखते दाँत से न लगे। इस कारण तुतला गया। जहाँ-तहाँ जो बादल दिखाई दे रहे थे वे भी उड़ गए। एकदम

नीला हो उठा। चाँदनी फैली हुई थी। तारे टिमटिमा रहे थे। हल्की चमकती लहरें उठ रही थीं।

"बलभद्र, घुमा-फिराकर बात करना तुम्हारे बस का नहीं। मुझे भी नहीं आता। अब तुम जिस बात के लिए आये हो, उसकी बात न उठाकर मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। तुम खेल नहीं जानते थे। रुक्मि से जुए में हार गये। उसने तो तुम्हें जुआ खेलने को बुलाया नहीं था। हार के ग़ुस्से में तुमने उसे मार डाला। वहाँ तो दुर्योधन ने जान-बूझकर जुए के लिए बुलाया था। तुम जैसे ही अनाड़ी धर्मराज से उसने सब कुछ छीनकर कपड़े तक उतरवा लिये। पांडवों को भी दुर्योधन को वहीं मार डालना चाहिए था न? उसे बिना मारे छोड़ देना उनकी ग़लती थी न?"

बलराम हक्का-बक्का रह गया। दर्द को दबा देने वाला संघर्ष उसके मन में होने लगा। "तुम्हारे कहने का अर्थ क्या है?" उसने आराम से जीभ घुमाते हुए पूछा।

"जुए की शर्त के अनुसार वे लोग इससे राज्य माँग रहे हैं। पर यह राज्य लौटाने के बदले यहाँ सहायता माँगने आया है। तुम्हें उसके मुँह पर थूककर क्या उसे लताड़ना नहीं चाहिए था?" बलराम को ऐसा लगा मानों ठोकर खा गया हो। तुरत दाँत के दर्द का ध्यान आया। युयुधान ने ही बात आगे बढ़ाई: "दुर्योधन तुम्हारा मित्र है। उसने तुमसे गदा की शिक्षा ली है। तुम में इस कारण उसके प्रति ममता हो सकती है। इसके अतिरिक्त जो कुछ कृष्ण करता है उसके विरुद्ध काम करने का स्त्री-हठ भी तुममें है। तुम अपने भीतर ज़रा झाँककर देखो, यदि तुम यह सोचते हो कि तुम्हारा रुक्मि को मार डालना न्याय-संगत था तो पांडवों की सहायता के लिए तैयार हो जाओ। नहीं तो रुक्मिणी के भवन में जाकर क्षमा माँगो।"

बलराम को लगा कि युयुधान ने बड़ी ही बुद्धिमत्तापूर्वक कैंची के दोनों फालों को चतुराई से जोड़ दिया है। उसके मन की शांति के लिए रुक्मिणी का विषय एक काँटा था। "तुमने कहा न दुर्योधन पर मेरी ममता है। उसी प्रकार तुम्हारी कृष्ण पर ममता नहीं है क्या? तुमने कभी अपने जन्म में कृष्ण के किसी काम को ग़लत कहा है? कभी सोचा है। मालिक के पीछे-पीछे चलने वाले श्वान की तरह तुम रहे हो? मेरे न्याय की बात तुम्हें कैसे समझ में आएगी? तुमने अपने मन में झाँककर देखा"—दर्द का भी ध्यान न रखकर बात करने के उपरांत उसने दोनों हाथों से गाल पकड़ लिये। युयुधान का मुँह बंद हो गया। उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने का समय बलराम के पास नहीं था। दर्द बहुत तीव्र हो उठा था। मुँह सिकोड़ कर दर्द को सहन कर ही रहा था कि कोई बात सूझने पर उठ खड़ा हुआ। "देखो, कल इसी समय दर्द से छुटकारा पाकर आऊँगा, तब बात करेंगे। अब तक

किसी ने यह नहीं कहा था कि बलराम तुमने अन्याय किया है।'' यह कहकर वह युयुधान से चलने के लिए पूछे बिना रेत पर तेज़ी से बढ़ता हुआ अपने भवन की ओर चला गया। रेत पर उगे कीकर के झुंडों में खंजन पक्षी बोलने लगे। युयुधान ने सोचा कि इस समय बलराम के यहाँ से उसके पास से जाने पर ये बोल रहे हैं। चाँदनी भी खिली हुई थी।

वह वैसे ही बैठा रहा। लहरों का शोर कम हो गया था। चाँदनी में बाहर की वस्तुएँ धुँधली दीख रही थीं। बलराम की बात पर युयुधान को क्रोध आया। "कृष्ण मेरा स्वामी है ? मैं स्वामी के पीछे-पीछे जाने वाला कुत्ता हूँ ?'' उसने मेरे और कृष्ण के संबंधों को ग़लत समझा है। बल्कि कहना चाहिए कि उसने जान-बूझकर ऐसा कहा है। मन को एक समाधान-सा मिला। फिर भी मन के एक कोने में एक क्षीण रेखा अपने और कृष्ण के संबंधों को नष्ट करने का प्रयास कर रही थी। अब तक उस संबंध के बारे में युयुधान ने कभी सोचा भी न था और तोलकर भी नहीं देखा था। कृष्ण मुझसे पाँच वर्ष बड़ा है। यादवों को आज की स्थिति तक लाकर खड़ा कर देने का आधार वही है। उसके बल-बूते पर ही यह सब हुआ है। समस्त यादवों में वह सबसे अधिक विवेकी है। उसकी तुलना और विवेचना केवल यादवों तक ही सीमित नहीं बल्कि उसके समक्ष सारा आर्यावर्त रहता है। जब तक बात उसके अपने तक सीमित रहती है तब तक उसके हृदय में दया भरी रहती है। मेरे और उसके बीच कभी 'स्वामी और सेवक' का संबंध नहीं रहा। तभी उसे ध्यान आया कि वह अधिक विवेकी है। उसकी बात मानकर ही मैं सदा से उसी के साथ चलता आया हूँ। 'उसमें क्या दोष है ?' इस बात का समर्थन भी मन ने किया। फिर भी, अपने मन को तोलते हुए उसे ऐसा लगा कि बलराम के प्रति क्रोध के कारण ही यह सब कुछ है। सोने के विचार से वहाँ से घर की ओर चल पड़ा। तब लहरों की आवाज़ की ओर ध्यान गया। उसने मुड़कर देखा। लहरों पर चमकती चाँदनी रजत चादर-सी बल खा रही थी। एक क्षण खड़े होकर देखने का मन हुआ। वैसे ही खड़ा हो गया। बाद में लहरों से टकराकर बिखर जाने वाले स्थान पर जाकर खड़ा हो गया। शरीर को लगने वाली हवा में नमी थी। उसकी ओर अपनी छाती और भुजाएँ करके लहरों को निहारता रेत के ढेर पर बैठ गया। उसका मन एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे विषय की ओर भी बहने लगा।

कृष्ण को जब मैंने पहली बार देखा। तब वह कितने वर्ष का रहा होगा ? मैं कितने वर्ष का रहा हूँगा ? बारह या तेरह का। तब मथुरा में कंस का राज्य था। कंस अत्यंत क्रूर राजा था। अपने जन्म देने वाले माता-पिता को उसने कारागृह में डाल दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया था। ऐसे कितने यादव होंगे जिन्हें उसने कारागृह में न डाला हो ? गली में खेलते समय ग़लती से कहीं हमारे

मुंह से 'राजमहल, महाराज' आदि शब्द निकल जाते तो पिताजी इशारे से भीतर बुलाकर धमकाकर मुंह पर उंगली रखकर कहते कि ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। रास्ते में घूमते हुए यह कैसे समझ में आता कि किस पर विश्वास करें और किस पर न करें। चारों ओर गुप्तचर फैले रहते। रास्ते पर खेलते बच्चे आदि राजा, महल आदि शब्दों का प्रयोग करते तो उन्हें पकड़कर ले जाया जाता और पूछा जाता—'तुमने यह बात कैसे कही ? यह शब्द कैसे निकले बताओ ? तुम्हारे घर में महल के बारे में क्या बातें होती हैं ? राज्य के शासन के बारे में क्या बातें होती हैं ?' कहकर बच्चों की बेंतों से पिटाई होती, उनके हाथ-पाँव मरोड़े जाते और कान उमेठे जाते, उन्हें जेल में डाल दिया जाता। सारा मथुरा एक कारागृह बन चुका था। राजा के नाम से लोग थर-थर काँपते थे। कंस के जन्मदिन के अवसर पर लोगों को सफ़ेद वस्त्र धारण करके, सिर पर दूध के मटके लेकर मन में प्रसन्नता न होने पर भी मुस्कराते हुए राजा की जय-जयकार करनी पड़ती। अनगिनत गुप्तचर इस बात को परखते रहते थे कि किसके मुँह पर हँसी नहीं। दूध, मक्खन, सब उन्हीं के पल्ले पड़ता। कोई भी दूर से यह पहचान सकता था कि वे ही लोग गुप्तचर हैं जिन्हें पेट की चिंता नहीं। घर में गाय न होने पर भी खूब दूध, घी, खाते हैं। खेत में पसीना न बहाने पर भी घर अनाज से भरा रहता है। इतने पुरुष होने पर भी कंस को किसी ने नहीं मारा ? आत्म-भय था ? नहीं, देह-भय रहा होगा ? आत्मीय लगने वाले लोगों के साथ बात-चीत करने पर भी संदेह पैदा होता था। किसे आत्मीय मानें ? कंस ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी कि एक-दूसरे पर विश्वास करना ही कठिन था। यादवों का कोई प्रमुख न था। यादवों के अधिकारियों में विश्वास न होने से दूरस्थ जरासंध के राज्य से प्रशासक, युद्ध सलाहकार, गुप्तचर सलाहकार बुलाकर राज्य में नियुक्त किये गये थे। सारे गुप्तचर बाहरी थे। प्रशासकों को देखते ही लोग ऐसे डरते मानों भूत से भेंट हो गयी हो। ऐसा था कंस का राज्य। वह जरासंध का दामाद था। जरासंध ने समस्त पूर्व देश को भय-ग्रस्त कर रखा था। उसने अपनी दोनों कन्याएँ देकर कंस को अपना दामाद बना लिया था। जब चाहे वहाँ से सेना आ सकती थी। बालिश्त-भर के मथुरा जनपद की उस जरासंध के असीम राज्य के सम्मुख क्या बिसात थी ? जब भी चाहे मसल सकता था, रौंद सकता था। कितनी बड़ी सेना थी उसकी, कोई ओर-छोर न था, अन-गिनत थी। ऐसी बड़ी थी जैसे अदृश्य भूत आकाश तक छू लेता है।

ज्योतिषियों की भविष्यवाणियाँ उस वातावरण में और भी अधिक भय की सृष्टि कर रही थीं। 'कंस महाराज, आपके वध करने के प्रयत्न हो रहे हैं। यदि बूढ़े नहीं हैं तो किशोरावस्था के बच्चे इस षड्यंत्र में लगे हैं। सचेत रहना चाहिए।" कह-कहकर वे दक्षिणा बटोर रहे थे। सुरक्षा अधिकारी हाथ लगे सभी

लड़कों की छानबीन करते कि वह राजा का वध करेगा, ऐसा कोई चिह्न किस लड़के के किस अंग पर दीख सकता है ? फिर भी पूछ-ताछ तो जारी रहती थी। तीन-चार दिन अँधेरे कमरे से बंद करके बेंतों की मार पड़ती। मैं जब ग्यारह वर्ष का था तब मुझे भी तीन दिन बंद रखा था और यह चेतावनी दी गयी थी—'ऐ! राजा अथवा अधिकारियों के वध करने के बारे में अगर तुमने सोचा भी तो खबरदार।' उस समय मेरे मन में उसे मारने का विचार चाहे न भी रहा हो, पर बाद में यह विचार ज़रूर उत्पन्न हो गया।

युयुधान का मन स्मृतियों की पर्त हटाकर सामान्य स्थिति में आया। दूर से आती एक बड़ी-सी लहर दिखायी दी। वह समुद्र की समस्त चाँदनी को अपनी शुभ्र हरीतिमा के गात्र से धकेलती चली आ रही थी। इस रात यहाँ बैठना सार्थक हुआ, यह सोचकर युयुधान वह देखने में मग्न हो गया। वह सौंदर्य चारों ओर व्याप्त हो गया। इस प्रकार का अपरिमित सौंदर्य मेरे मन में कभी जाग्रत नहीं होता था। एकदम याद आयी बचपन में एक बार ऐसा हुआ था, मेरे अकेले के सम्मुख नहीं, समस्त मथुरा के जनपद के लिए, राजमहल के प्रांगण में एकत्रित समस्त जनता के लिए, उसकी कल्पना भी असंभव थी, असाध्य थी। कृष्ण के उछलकर कंस के पास पहुँचकर उसे मार डाला। मेरा सारा शरीर कंटकित हो उठा। ऐसा सुखद अनुभव हुआ कि मैं जड़ीभूत-सा रह गया। अठारह वर्ष का कृष्ण आयुधोत्सव देखने इसी बलराम के साथ वृज से मथुरा पहली बार आया था। कंस वर्ष में एक बार इंद्र के नाम से अपनी सेना के आयुधों का प्रदर्शन कराता था। मैं भी इंद्र के समान हूँ। इंद्र का अंश ही हूँ। यह बात लोगों के मन में बिठाने के लिए यह उत्सव करता था। राजा कंस जिस धनुष को प्रयोग में लाता, उसका प्रदर्शन किया जाता था। तीनों लोकों में उसे कोई उठाने वाला है ? तुममें से कोई उठा सकता है ? मथुरा में यह कहने का साहस किसमें था कि 'मैं महाराज के आयुध को उठा सकता हूँ !' यदि कोई कह बैठता तो उसे कारागृह या वध-स्थान पर पहुँचा दिया जाना निश्चित था। यह बात कौन नहीं जानता था ? सब यही कहते कि उस महान धनुष को उठा पाने योग्य देवांश किसमें है ? राजा की कृपा पाने के लिए लोग ऐसी बातें करते और कुछ वास्तव में इस बात में विश्वास करते थे। यदि किसी के मुख से कुछ निकल भी जाता तो दीवार के पीछे या दीवार के सामने स्थित गुप्तचरों को पता चल ही जाता। तानाशाह की शक्ति मिथ्या हो सकती है, पर गुप्तचरों की शक्ति की अवहेलना कैसे संभव थी ? वैसे कंस का तो साक्षात् इंद्र का ही धनुष था। तीस वर्ष का बलराम और अठारह का कृष्ण दोनों वृज में नंदगोप के घर में ही पले थे। खूब मक्खन-दूध मिलता था। ढेरों रोटियाँ खाकर गौवें लेकर जंगल-जंगल धूप-वर्षा में घूमते। खेती-बाड़ी के दौरान हल चला-चलाकर शरीर पत्थर के समान कठोर बना लिया था। वह धनुष तो वेद के कथनानुसार इंद्र का ही था। देवांश पुरुष कंस

महाराज के अतिरिक्त उसे छूने वाला पुरुष तीनों लोकों में न था। यह बात सदा प्रहरी और राजकर्मचारी कहा करते ताकि देखने आने वाले सभी लोग साँस रोककर सिर झुकाकर ही निकलें। 'यदि साधारण लोगों में से कोई उसे छुएगा तो भस्म हो जाएगा।' प्रहरियों ने लोगों में भक्ति-भाव पैदा करने के लिए यह बात फैला दी थी। एक दिन कृष्ण ने कह दिया, 'मैं उठाकर देख सकता हूँ?' तब प्रहरी ने तिरस्कार से कहा, 'यदि विवाहित हो और अपनी पत्नी को विधवा बनना चाहते हो तो ऐसा करो।' कृष्ण ने आगे बढ़कर न केवल धनुष उठाया अपितु उसको झुकाकर डोरी चढ़ाने का प्रयास भी किया। सूखा बाँस चट्-चट् करके टूट गया। लोग विस्मय से काँप उठे। एक ने कहा, 'यही देवांश वाला है।' सोचकर सबने सिर झुकाए। प्रहरी ने उसे सच मानकर दौड़कर अपने स्वामी कंस को समाचार दिया। मिथ्या की सृष्टि करनेवाला स्वयं उसके प्रभाव में आकर भयभीत हो उठा कि एक गाँव के किसान का लड़का देवांश वाला हो सकता है। स्वयं उसे पकड़ने में डर की अनुभूति से उसने खड़े महावत को हाथी से कुचल डालने की आज्ञा दी। कैसी भी परिस्थिति क्यों न आ जाए कृष्ण धैर्य न खोता। साँप के काटने पर भी तुरंत उसे पकड़कर यह देखता है कि वह विषैला साँप है या विषहीन। इतना धैर्य है उसमें। यदि ऐसा न होता तो उस महाकाय हाथी को घबराहट में डालकर उसे दीवार से टक्कर मारने को मजबूर कैसे कर सकता था। अंत में सही निशाना लगाकर उसे मार डाला। उसके लिए कितना साहस और शक्ति चाहिए थी? बज्रदेही तरुण ने राजगज को मार डाला, यह समाचार सब जगह फैल गया। तब कंस यह सोचकर कि वह देवांश वाला लड़का हो सकता है, उसे मारने को राजमहल के मल्ल चाणूर और मुष्टिक से कुश्ती के लिए ललकारा।

परकोटे में जनता खचाखच भरी थी। राजमहल के बरामदे में एक चमकते सिंहासन पर कंस विराजमान था। सामने नीचे खूब गोड़ाई करके पानी छिड़ककर लाल मिट्टी का नरम अखाड़ा तैयार किया था। चाणूर और मुष्टिक संसार-प्रसिद्ध मल्ल थे। वे कभी भी कुश्ती के नियमों की ओर ध्यान नहीं देते थे। कुश्ती में हराना चाहिए, जान से नहीं मारना चाहिए। उन क्रूर व्यक्तियों को इस नियम का ध्यान ही नहीं था। 'यूँ ही ये बेचारा लड़का मारा जायेगा' पास बैठे पिताजी के मुख से जब फुसफुसाहट निकली तो मुझे क्यों दुख हुआ था? जान-पहचान तक न थी। आगे मित्र बनने का स्वप्न भी नहीं था। मैं कंचे खेलने वाला बारह वर्ष का लड़का था। वह हाथी को मारने वाला अठारह वर्ष का तरुण। फिर भी मेरा सारा मन उसी की ओर लगा था। लोगों का मन भी उसी की ओर था। कुश्ती में चाणूर के गिरते ही जनता कैसे एक स्वर में हँस पड़ी। लोग उस समय यह भूल ही गये थे कि पास ही गुप्तचर हो सकते हैं। कृष्ण के थकने पर सब ऐसे साँस छोड़ रहे थे मानो स्वयं थक गए हों। एक ओर चालीस वर्षीय राजमल्ल चाणूर और अठारह का

तरुण कृष्ण। दूसरी ओर तीस वर्ष का बलराम और उससे बड़ा मुष्टिक। अखाड़े में गुँथे हुए थे। जनता का सारा ध्यान चाणूर और कृष्ण की जोड़ी पर था। कृष्ण ने भी वही काम किया। चाणूर को घुमा-घुमाकर थका डाला। चालीस का ऐसा कौन-सा मल्ल होगा जो थकेगा नहीं। बाद में एकदम उठाकर पटक दिया। केवल पटका ही नहीं धौंकनी की तरह हाँफते हुए उस मल्ल की गर्दन दबा दी। लोग खुशी से तालियाँ बजाने लगे। लोगों के तालियाँ बजाने से ही क्या कंस मर गया था? उसने क्षण-भर भी रुके बिना अखाड़े से बरामदे में से कूदकर चमकते सिंहासन पर त्योरियाँ चढ़ाये बैठे कंस की गर्दन पर हाथ रख दिये। निर्विरोध, बिना हाथ उठाए, और बिना चीखे-चिल्लाये समस्त जनपद को अपने नाम से थर्राने वाले कंस को कृष्ण ने निश्चेष्ट कर दिया। 'मेरे मारने से पहले ही कंस मर गया मैंने तो केवल गर्दन-भर मरोड़ी।' कृष्ण का यह कहना शायद सत्य ही होगा। स्वामी के मरने के पूर्व उसके अंगरक्षक एकदम पत्थर की मूर्तियों से रह गये थे। तब तक बलराम ने मुष्टिक को मार डाला था, उस ओर किसका ध्यान था?

तब बारह वर्ष के बालक के मन में कृष्ण के प्रति उत्पन्न प्रशंसा, अभिमान, भय, गौरव और भी पता नहीं कौन-कौन-सी भावनाएँ मिलकर एक के बाद एक दृढ़ होती चली गयीं। इतने दिन तानाशाह के त्रास में वृद्धजनों में साहस नाम को नहीं रह गया था। कृष्ण ने नवयुवकों को साथ लेकर साहसी बनाया। कंस के शासन में यदि हम पलते तो क्या साहसी बनते? कँटीले कीकर के पेड़ों के झुंड में खंजन पक्षी कूकने लगा मानो किसी ने बाँसुरी बजायी हो। कृष्ण ने उसका नाम वेणु रखा है। क्या मैं साहसी नहीं हूँ? मन ने फिर दोहराया। 'मुझे मालिक के पीछे चलने वाला स्वान कहना अनुचित है।' तभी किसी ने पीछे से आवाज़ दी, 'कौन है?' आवाज़ से ही पता चल गया, वह नगररक्षक नंदक था। पीछे मुड़कर, 'मैं हूँ' कहते ही नंदक युयुधान को पहचान गया। उसने पास आकर पूछा, 'आधी रात में यहाँ क्यों बैठे हो?' वह भी मेरी ही तरह कृष्ण का मित्र था। वैसे देखें तो वह उसे मुझसे भी ज्यादा प्यार करता था। यादव जब मथुरा से द्वारका आये तब क्षत्रिय होने के नाते मुझे मथुरा छोड़नी पड़ी। कृषक नंदक को यह डर न था। वह मथुरा का भी न था। नंदक कृष्ण के ब्रज का था। चाहे कोई भी राज्य करे, साल में एक बार कर देकर कृषक का काम समाप्त हो जाता है। फिर भी वह साथ खेला और बढ़ा था। इसलिए कृष्ण पर प्रेम के कारण अपना गाँव, भूमि, बाप और भाई, बहनों को छोड़कर आ गया था। माँ नहीं थी। अब वह एक नगररक्षण ही नहीं अपितु समुद्री डाकुओं तथा चोरों से व्यापारिक नावों का भी बचाव करता है। उसके अधीन काफ़ी सैनिक होने पर भी वह स्वयं रात को अकेला गश्त लगाता है।

उसने पास आकर पूछा, "क्यों युयुधान, तुम दिशा मैदान को आये थे क्या ?"

"नहीं, ज़रा बात-चीत करने को बलराम बुला लाया था। वह बीच ही में दाँत के दर्द के कारण चला गया। मैं चुपचाप बैठा लहरें देख रहा था।"

"क्या वह तुम्हें यह पूछने बुला लाया था कि हम सब दुर्योधन के पक्ष से लड़ें ?"

"क्या उसने तुमसे भी पूछा था ?"

"कृष्ण के सारे मित्रों और संबंधियों को···" कहते-कहते नंदक बीच में रुक कर समुद्र के तट पर किसी चीज़ को ध्यान से देखने लगा।

"बाद में मिलूंगा" कहकर जल्दी-जल्दी रेत पर पाँव रखता चला गया।

बाईं ओर पीठ पर लटकता धनुष और निषंग हिलते से दीख रहे थे। दूर कोई नाव नज़र आयी होगी। युयुधान के मन में आया कि वह भी वहाँ जाकर देखे। पर दौड़ने की इच्छा न हुई। खड़ा होकर देखने लगा। नंदक कुछ क्षणों में ही ओझल हो गया। वह फिर वापस नहीं आया। युयुधान को जम्हाइयाँ आने लगीं। घर जाकर सोने की इच्छा हुई। मन में विचार उठा कि बलराम दाँत के लिए कौन-सी औषधि कर रहा होगा। उसे याद आया। जब पिताजी को ऐसा दर्द हुआ था, तब वे लवंग चबाकर दर्द वाले दाँत के पास रखकर सो जाते थे। वह रेत पर घसीट-घसीटकर पाँव रखता घर को चल पड़ा। नगर के द्वार पर आवाज़ से ही अपनी पहचान बताकर भीतर गया।

घर के आँगन में बिछी चटाई पर लेटकर जब इसने अँगड़ाई ली तब पास की चटाई पर लेटे पिता ने पूछा, "कितनी देर लगा दी ? बलराम ने कौन-सी रहस्य की बात कही ?"

उसी समय पुत्र ने पूछा, "हमारे यादवों में पहले कोई कंस जितना क्रूर भी था ?"

"जहाँ तक मेरी जानकारी है, कोई ऐसा क्रूर न था।"

"तो अकेला कंस ही ऐसा क्यों निकला ?"

बूढ़े ने तुरंत उसकी ओर करवट लेकर कहा : "लोगों ने यह नियम क्यों बनाया कि स्त्री को कुछ सीमाओं में रहना चाहिए ? ऐसा करने से क्या होता है वैसा करने से क्या हो जाएगा, कहकर बकवास करें तो सारे कुल का ही नाश हो जाता है।"

"आपका आशय क्या है ? स्पष्ट बताइए।"

"जब पहले-पहले मेरे यह कहने पर कि ऐसे नहीं ऐसे करो, तुम्हारी पत्नी कैसी चिढ़ जाती थी। अब उसकी और उम्र हो चुकी है। बहू आने के बाद से ज़रा झुक कर चलने लगी है, है ना ?"

"पिताजी, आपकी बहू में और कंस के क्रूर होने में क्या संबंध है ?"

"मैंने यूँ ही कहा। कंस की माँ थी न, उग्रसेन की पत्नी, बड़ी साहसी स्त्री थी। साहस भी कैसा दुस्साहस ! घोड़े पर चढ़कर धनुष-बाण लेकर शिकार पर चली जाती। तुम्हें स्मरण होगा हमारी मथुरा के पास ही इंद्र गिरि नामक पर्वत है ! पास के माने अगर घोड़े पर जाओ तो पाँच-छः घटे लगते हैं। उसके निकटवर्ती जंगल में शिकार के लिए अकेली चली गयी थी। साथ में उसकी आत्मीय सखी भी थी। वह संभवतः अब भी जीवित होगी। उसका नाम चित्रा था। तुमने ताम्रस्थली देखा है न, वहीं वह रहती है। इसी ने खुद मेरे पिताजी को बताया था। मैंने अपने कानों से सुना था। इसलिए सत्य मुझे पता है। इसी कारण तुम्हारी पत्नी को तब मैं बार-बार डाँटा करता था। अब मैं तुम्हारी पुत्र-वधू से कहता हूँ।"

"इंद्र-गिरि वन में क्या हुआ, यह तो बताओ।"

"ऋतुस्राव के दिन समीप आने पर स्त्री को बाहर नहीं जाना चाहिए। स्राव के दिनों में जहाँ-तहाँ पानी के पास नहीं घूमना चाहिए। यह हमारी पद्धति है। यह करने से क्या होगा, वह करने से क्या होगा— कहने वाली जाति की थी वह। अकेली शिकार को गयी। वहीं उसे ऋतुस्राव हो गया। ऐसी स्थिति में घुड़सवारी नहीं करनी चाहिए। सोचकर वहीं डेरे लगवाकर ठहर गयी। पास ही एक सरोवर था। उसमें स्नान किया करती थी। सखी और दासियों ने मना भी किया। दुष्ट शक्ति और बुरे ग्रह, मानव के गर्भ से जन्म लेने की राह देखते हैं। शापग्रस्त जीव वहाँ प्रतीक्षा करते रहते हैं। ऐसे एक ग्रह या जीव ने ऋतुस्राव के समय उसके गर्भ में प्रवेश कर लिया। उसकी आँखों को भी दिखायी दिया। एक काली चमकती चीज बहती हुई और विद्युत वेग से आयी और शरीर में प्रविष्ट हो गयी। उसी मास उसने गर्भ भी धारण किया। होना भी चाहिए था। इस प्रकार जन्म लेने वाला बच्चा ही कंस था। हमारे यादवों में वह लंबाई और चौड़ाई, वह शरीर का डील-डौल और उठान किसी में न था। राक्षस जैसा। उसके जन्म के बाद में सुना कि वह यह सोच-सोचकर बहुत दुखी रही कि उसके दुस्साहस से ही उसे हानि हुई। पर उससे क्या लाभ ? पहले ही ध्यान रखना चाहिए था।"

मासिक धर्म के समय स्त्री को बाहर नही जाना चाहिए। जल-स्थानो के पास भी नहीं फटकना चाहिए। यह पिता की कड़ी आज्ञा थी। युयुधान को भी यह बात ध्यान में आयी। केवल इतना ही नहीं, सारे बुज़ुर्ग इस बारे में बहुत सख्ती बरतते थे। उसे याद आया कि इतनी आयु हो जाने पर मुझे इस बारे में विशेष विश्वास नहीं। विवाह के प्रारम्भिक दिनों में मेरी पत्नी भी ऐसी ही थी। बड़े-बूढ़ों के

नियंत्रण को स्वीकार नहीं करती थी। अब स्वयं बड़ी हो गई और बहू पर नियंत्रण रख रही है। जब यह सोच ही रहा था तभी उसके मन में आया कि क्या दुष्ट शक्तियों का तथा शापग्रस्त जीवों का वास समुद्र के पानी के पास भी होता है या नदी-नाले और सरोवर आदि पर ही। समुद्र की बात ध्यान में आते ही उसका ध्यान लहरों की आवाज़ की ओर गया। पिताजी से पूछने की इच्छा हुई। पर मन में उठ रही लहरों की प्रतिध्वनि में उसने उससे पूछा नहीं। आकाश में शुभ्र चाँदनी फैली थी। पास ही गर्जता समुद्र था। आँखों से ओझल होने पर भी चाँदनी की ओर उछलती-पलटती लहरों की गरजन सुनाई दे रही थी। एक बार फिर लगा कि द्वारका का सौंदर्य अद्वितीय है। थोड़ी देर बाद पुन: पिता की ओर देखा तो वह सो चुके थे। आजकल वह ऐसा ही करते हैं। जागते-जागते एक मिनट में खर्राटे लेने लगते हैं। आधे घंटे बाद ही आँखें खोल भी देते हैं। उसे भी जम्हाई आयी और नींद आने लगी। कानों में आवाज़ भरती चली जा रही थी। ज़रा देर को नींद आ भी गई लेकिन थोड़ी ही देर बाद सपना आने से जाग उठा। काले रंग का-सा चमकता राक्षस जीव बिजली के वेग से उड़ता आया और घर के अंदर घुस गया। सपने में उसे उसने बार-बार देखा तब उसे कोई दर्द या भय नहीं हुआ? सपने में ही उसे देखकर जब वह घबराकर उठ बैठा तो देखा पिता अभी सो ही रहे थे। युयुधान उठ बैठा। समुद्र की गर्जन कुछ कम हो गयी थी। चंद्रमा भी काफ़ी झुक गया था। घर के आँगन में भरपूर चाँदनी फैली थी। ऐसा लगा कि नींद नहीं आएगी। फिर भी चित पड़ा रहा आँखें खोले। लहरें दूर होती लग रही थीं। मन उसी में मग्न था। एकदम ऐसा लगा कि पिता ने जो बताया था वह झूठ होगा। मुझे तो अब तक इन बातों में कोई विश्वास नहीं। तभी उसके मन में ख्याल आया कि ताम्रस्थली जाकर चित्रा से क्यों न मिले? पता नहीं वह जीवित भी हो या नहीं? हो सकती है, मैंने उसे देखा है, याद भी है। कभी-कभी द्वारका भी आया करती थी। आजकल बहुत दिन से दीखी नहीं। नब्बे से तो ऊपर हो गयी है। वह ताम्रस्थली में है। यहाँ से ऐसी कितनी दूर है! घोड़े पर समुद्र के किनारे-किनारे जाएँ तो पाँच-छ: घंटे लगते हैं। प्रभास की दिशा में सीधा रास्ता है। कल सुबह ही उठकर क्यों न चला जाऊँ? गाँव तो मैंने अच्छी तरह देखा नहीं। बड़ा-सा क़िला है। और फाटक भी। कोई दस-पंद्रह घर होंगे। जब वह यह सोच ही रहा था कि उसे लगा मानो गर्मी के दिन होने से प्रात:कालीन लहरें चढ़ी चली आ रही हैं। 'यह आवाज़ भी मन को अच्छी लगती है।' कहकर उसने लेटे-लेटे अँगड़ाई ली।

उस अपरिचित घुड़सवार को देखकर ताम्रस्थली के कुत्ते भौंकने लगे थे। दो बार पुचकारने पर वे पूँछ हिलाकर चुपचाप खड़े हो गये। जहाँ तक मुझे याद है, तब वहाँ पंद्रह-बीस घर थे। अब तो तीस-चालीस हो गये होंगे। आठ-दस दुमंज़िले घर थे। शेष सब एक ही मंज़िल के थे।

सभी घर एक ही जैसे बने थे। घरों की दीवारें और किले की दीवारें सभी ताम्रवर्णी पत्थरों की थीं। नाम ठीक ही दिया गया है। पता नहीं किसने दिया होगा। जब वह यह सोच ही रहा था, तब इस आगंतुक ने पास आये बच्चों से पूछा, 'चित्रा का घर कौन-सा है ?' तभी एक लड़की ने पूछा, 'क्या चित्रा दादी के बारे में पूछ रहे हैं ?'

पिता जी का कहना ठीक ही है। चित्रा नब्बे-पिच्यानबे की हो चुकी है। सारे दांत गिर जाने पर भी मुख पर बहुत झुरिया नहीं थीं। यौवन में सुन्दर रही होगी। ठीक से सुनाई नहीं देता। "मेरी आयु के बारे में पूछ रहे हो ? किसे ठीक से पता है ? मैंने इन आँखों से बहुत कुछ देखा है। मालकिन के चले जाने के बाद से राजमहल से कोई संबंध ही नहीं रहा। सुना है, कंस को मारने वाले कृष्ण और तुम मित्र हो। मैं यूं ही द्वारका क्यों आऊँ ?अब समय भी बदल गया। कृष्ण जब भी आता है हमेशा मुझसे मिलकर ही जाता है।"

युयुधान ने उसे बताया कि कृष्ण ने ही उसे यहाँ भेजा है। अपनी बाईं उँगली से सोने की अँगूठी निकाल कर देते हुए बोला : "लो यह रख लो। मैं यह जानने आया हूँ कि जल-स्थानों में शापग्रस्त जीवों के रहने की बात सच है या झूठ ? लोग कहते हैं कि तुम्हारी मालकिन की कोख से कंस ने इसी तरह जन्म लिया था। देखो सच-सच बताओ, मैं किसी से भी मुँह खोलकर नहीं कहूँगा। तुम्हारी शपथ लेता हूँ।" कहकर उसने उसकी हथेली पर अँगूठी रखकर मुट्ठी बंद कर दी और दोनों हाथों में ज़ोर से थामे रहा।

"अब ये सब पुरानी बातें क्यों पूछ रहे हो भइया ?"

"चित्रा, अब तक मुझे थोड़ा-बहुत पता लगा है। इसके अलावा मालकिन मर चुकी है। कंस भी मर चुका है। हम सब को देश छोड़े भी पता नहीं कितने वर्ष बीत गये।"

अँगूठी उसी के हाथ में थी। "मैंने राजा को वचन दिया था कि किसी से यह सब बताऊँगी नहीं।" कहकर उसने मेरे मन की तंत्री को छेड़ दिया।

"वह भी मर चुकी है और कंस भी। मैं किसी दूसरे को नहीं बताऊँगा। वचन देता हूँ ?" कहकर उसने फिर से उसका हाथ दबाया।

चित्रा ने अँगूठी निकालकर अंटी में खोंस ली। ओसारे में बच्चे इकट्ठे हो गये थे, उन्हें डाँटकर भगाया। युयुधान ने समझ लिया कि आज भी उसके गले में दम है। "इधर आओ।" कहकर वह उसे घर के भीतर ले गयी। एक लोटा गरम दूध लाकर सामने रखा और बोली, "लो इसे पी लो।" रसोई के दरवाज़े पर पोते की बहू खड़ी थी, उसे भीतर जाने को कहकर दीवार से टेक लगाकर बैठ गयी और बोली : "कृष्ण तुम्हारा मित्र है, उसने बताया नहीं ?"

"उसने कहा, एक दिन चित्रा के मुँह से ही जाकर सुन लो। वह विस्तार से

बताएगी। क्या कृष्ण को भी सब मालूम है ?"

"मथुरा से जब यहाँ बसने आ रहे थे तब रास्ते में ही मुझे ज़रा दूर ले जाकर पूछकर जान लिया था। तब खूब याद था। अब मेरी कितनी उमर हो गयी है !"

"जितना याद हो उतना ही बता दो"—कहते हुए उसे कृष्ण पर क्रोध आया। मालूम नहीं चित्रा अब कौन-सा रहस्य बताने जा रही है। उसे मालूम होने पर भी कृष्ण ने एक दिन भी मुझसे ज़बान नहीं खोली। शायद ऐसा प्रसंग ही नहीं आया। फिर भी वह अपने क्रोध को दबा रहा था। चित्रा ने शुरू किया—

"वह बात जलस्थान के पास ही हुई थी। पर शाप-ग्रस्त जीव आदि की बात मैं नहीं जानती। मेरी मालकिन बड़ी जीवट वाली स्त्री थी। इधर सुना है कि आप लोग रैवतक पर्वत पर विहार को जाया करते हैं। यह सच है कि यह रिवाज़ पहले से यादव क्षत्रियों में चला आता है। मथुरा के पास इंद्रगिरि है। तुम्हें याद है ? जब तुम लोगों ने अपना देश छोड़ा तब तुम कितने वर्ष के थे ? पूर्व की ओर पहाड़ हैं छोटे-छोटे पहाड़। बड़े सुंदर-सुंदर फूल खिलते हैं, हरी-भरी लताओं और पेड़ों की छाया रहती है। बड़ी प्यारी जगह है। राज-परिवार की सभी स्त्रियाँ वहाँ गयी थीं। साथ में रसोइये भी थे। मैंने बताया न कि मेरी मालकिन बड़ी जीवट वाली स्त्री थी। बड़ी साहसी। उसके बच्चे नही थे। एक दिन वह स्वयं धनुष-बाण हाथ में लेकर हरिण का पीछा करते-करते घने जंगल में चली गयी थी। उसके साथ और कोई न था। वहाँ द्रुमिल नाम का एक राक्षस राजा था। वह पूरा राक्षस भी न था। राक्षस माँ और आर्य पिता अथवा राक्षस पिता और आर्य माँ से जन्मा था। उसने उस पहाड़ के उत्तरी भाग के पहाड़ी प्रदेश में जंगल काटकर एक राज्य की स्थापना कर रखी थी। अच्छा लम्बे-चौड़े गठे शरीर वाला था। हमारे यादव राजाओं जैसी वेश-भूषा में ही था। छोटे लोग ऊँचे लोगों की वेश-भूषा, बातचीत और आचार-विचार का अनुकरण करते है। उसका नया राज्य हमारे राज्य के समीप ही था। वह पीतांबर धारण कर सिर पर किरीट पहने, गले में सफ़ेद फूलों की माला डाले था। उसके कानों में चमकते सोने के कुंडल थे। यह हरिण के पीछे बिना आहट किये दौड़ी जा रही थी कि वह एकदम सामने आ खड़ा हुआ। यह डरने वाली स्त्री न थी। एक क्षण को सोचा कि कहीं वह उसका पति उग्रसेन तो नहीं। कहाँ वह छोटे आकार वाला और कहाँ वह राक्षस रक्त का लम्बा-चौड़ा व्यक्ति। मालूम है इसने उससे क्या पूछा ? 'क्यों पुरुष ! तुम मेरे पति के वेश में क्यों आये ?' क्या तब वह चुप रहता ? वह बोला, 'हे तरुणी, मैं वेश बदलकर नहीं आया। वास्तविक पुरुष हूँ।" इसके बाद जो कुछ हुआ उसे और स्पष्ट शब्दों में बताने की आवश्यकता नहीं। जो पति का वेश धारण करके आते हैं, उनके पीछे एक चालाकी छिपी रहती है। अकस्मात् कल किसी को पता चल भी जाए तो यह तर्क दिया जा सकता है कि 'वह तो मेरा पति ही था, मैं तो

पति समझकर ही रह गयी थी। इसमें मेरा कोई दोष नहीं,' कहकर बचने की स्त्री के पास गुंजायश रहती है। असली जार की बुद्धि यह नहीं सोचेगी ? यह तो परम्परा है।" कहकर पोपले मुँह से वह हँस पड़ी।

युयुधान ने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"विस्तार से बताना पड़ेगा क्या ? वन विहार को आया रनिवास पंद्रह दिन तक मथुरा नहीं लौटा। रात होते ही रानी बड़ी उदारता से सभी स्त्रियों को मद्य पीने को देती। परंतु स्वयं दिन में सोया करती। मुझे तो सचाई पता थी। सखी के बिना ऐसे काम हो सकते हैं ? इस प्रकार पंद्रह दिन बीत जाने पर भी पत्नी वन-विहार से लौटी नहीं। इधर पति बीमार था। तभी ज़रा ठीक हुआ। एक दिन अकस्मात् घोड़े पर चढ़कर केवल दो अंगरक्षकों को लेकर उस ओर चल पड़ा। चाँदनी खूब खिली थी। चारों ओर लताएँ थीं और फूल खिले थे। वह सीधा हमारे उपवन में आ पहुँचा। रानी का शिविर पूछता हुआ सीधा दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। मैं द्वार पर पहरा दे रही थी। मुझे डर लगा। मेरे साथ एक और थी। वह दासी थी। सखी नहीं। उसका नाम इला था। वह भी घबरा गयी। वह भला हमारे मुँह की ओर क्यों देखता। सीधा दरवाज़ा धकेलकर भीतर गया तो क्या देखा दीये के मंद प्रकाश में उसकी ही जैसी वेश-भूषा वाला व्यक्ति वहाँ विद्यमान था। वह अवाक्-सा खड़ा रह गया। मालकिन को घबराहट नहीं हुई क्या ? वह बड़ी धैर्यशाली स्त्री थी। बाहुपाश में आबद्ध उस राक्षसराज को बैठाकर इस पर बरस पड़ी : 'हे पुरुष ! मेरे पति का वेश धारण करके मुझ पतिव्रता के पास कैसे आये ? खबरदार शाप दे दूंगी।' उस वेशधारी ने तुरंत उठकर हमारे राजा के सिर पर प्रहार किया। वह चक्कर खाकर गिर गया। वह वहाँ से चलता बना। इसे होश आने के बाद मालकिन ने अपनी ही बात का समर्थन किया : 'मैं उसे तुम्हें ही मान बैठी थी। मुझे क्या पता ? जोर से मत बोलना तुम्हारी मान मर्यादा भंग न हो'।"

युयुधान ने बीच में ही पूछा, "उसे उसी समय मार नहीं डाला ?"

तुम्हारे क्षत्रियों में कुछ और ही प्रकार की स्त्रियाँ हैं जो अपने हरजाईपन का रहस्य खुल जाने पर पति को कुछ ऐसा कर देती कि वह उसे मार डालने की हिम्मत नहीं कर पाता। यह साफ़ दीखने पर भी कि उसका कहना ग़लत है, पुरुष का मन इस भ्रम में पड़ जाता है कि वह सच्ची है। वह एक ऐसी ही स्त्री थी और उग्रसेन ऐसी ही जाति का पुरुष था। रातों-रात सबको साथ लेकर चल पड़ा। मुझे तो काल-कोठरी में डलवा दिया। हाथ-पाँव बाँधकर खूब मार लगायी और मुझसे सच उगलवा लिया। लेकिन पत्नी यही कहती रही : 'उसी रात, उसी समय वह धोखेबाज़ आया था। मैं धोखे में पड़ गयी, और यह मानकर वह तुम्हीं हो, उसे पास बिठाकर बात कर रही थी। तभी तुम आ गये।' पत्नी की ही बात

को सच मानने की इच्छा जब पति में हो तो उसकी बात सच लगती ही है। एक और परिणाम भी निकला था। मालूम है? विवाह के चार वर्ष बीत जाने पर गर्भ धारण न करने वाली वह गर्भवती हो गयी। महाराज ने मुझे और दासी को उस बात का कहीं भी उल्लेख न करने की कड़ी आज्ञा दी।"

युयुधान ने प्रश्न किया, "बाद में उसे बच्चे नहीं हुए?"

"होते क्यों नहीं? वेशधारी पति ने उसके गर्भद्वार का मुँह खोल नहीं दिया था। पर बाद में जितने भी बच्चे हुए सब उग्रसेन के थे। आठ लड़के, पाँच लड़कियाँ। मुझे सबके नाम आज भी याद हैं। न्यग्रोध, सुनाम, कंक, सुभूमिप, शंकु, सुतनु, अनाधृष्टि और पुष्टिमान, पाँच लड़कियाँ—कंसा, कंसवती, सुतनू, कंका और राष्ट्रपाली।"

"वे सब कहाँ हैं?"

"बताती हूँ, सुनो। बड़ी दुःखद कहानी है। पहला बच्चा कंस था। क्या शरीर? शिशु अवस्था में ही उसके घुटने माँ की गोद से बाहर लटकते थे। इतना लंबा था। उग्रसेन ने उसे गोद में नहीं लिया। जातकर्म के दिन सभा में उसका सिर सूंघा था। अभी वह छह ही महीने का था कि माँ ने पुनः गर्भ धारण किया। वह तो उसी का था न? सौरी के घर में किसका आना संभव था? एक के बाद एक गर्भ ठहरता गया। गोद में दूध पीता बच्चा और उसे दूर धकेलने वाला पेट का अंकुर। ऐसे बच्चे पैदा करने वाली पत्नी पर उग्रसेन का यह प्रेम था अथवा पर-पुरुष के पास जाने वाली उस रानी के बच्चे पैदा कर-करके प्रतिशोध लेने की भावना अथवा इस तरह पत्नी का मन जीतने की इच्छा? जो भी हो तेरह बच्चे पेट और गोद में एक के बाद एक बढ़े। इस बीच क्या हुआ? राजा को अपने बच्चों से प्यार था। बड़े वाले कंस का तिरस्कार करता था। उसने एक दिन भी उसे गोद में नहीं उठाया, खिलाया नहीं। गोद में बैठाया नहीं। बड़ा होने पर भी उससे बात नहीं की। उसके साथ वह खा-पीकर घर में पड़े रहने वाले दासी पुत्र का-सा व्यवहार करता था। पर पैदा करने वाली तो इस बात को चुपचाप नहीं सह सकती थी। उस बच्चे पर उसका विशेष प्रेम था। बीच-बीच में बहुत ही गुस्सा करती। उग्रसेन ने उसे छुआ तक नहीं, कभी दण्ड भी नहीं दिया। माँ धपाधप पीटती थी। गोद में लेकर आँसू बहाकर प्यार भी करती। पिता उसके भाई-बहनों को उसी के सामने प्यार करता पर उसे देखकर अनदेखा करता तो बच्चा क्या बनता? वह बहुत ही हृष्टपुष्ट बढ़ रहा था। ठीक तरह से अच्छे गुरु से न धनुर्विद्या दिलायी न वेदपाठ सिखाया। प्यार होता तभी तो उसे सिखाया-पढ़ाया जाता। माँ गर्भ और सौरी के चक्करों में फँसी रहती थी। कंस ने तो मात्र लाठी, पत्थर, हँसिया और परशु चलाने की विद्याएँ ही सीखीं। उग्रसेन का अपना बड़ा पुत्र न्यग्रोध जब अठारह का हुआ तो उसे उसने युवराज बनाने की बात सोची। जन्म देने वाली माँ चुप रहती?

'भेद-भाव क्यों किया जा रहा है ?' उसने पूछ ही लिया। तब तो उसे अपनी पत्नी से सच कह डालना चाहिए था। पर कहा नहीं। यह जानते हुए भी कि उसने उसी पत्नी से तेरह बच्चे पैदा किये हैं। उसने कहा :

'न्याय से यह पद बड़े बेटे को मिलना चाहिए। अकारण ही उसे आप क्यों वंचित कर रहे हैं ?' तब तक कंस अपने जन्म के बारे में जान चुका था। इला दासी का ज़िक्र आया था न ? उसके पेट में कोई बात पचती न थी। वह केवल दासी बनने लायक़ थी, सखी बनने लायक़ नहीं। उसी ने यह बात कंस के कान में डाल दी। बेटे ने जाकर माँ से पूछा। माँ सुस्त, मौन अपने बिस्तर पर पड़ी थी। उसने बेटे के मुख और छाती सहलाते हुए कहा, 'बेटा, तुम मेरे बेटे हो। मैं तुम्हारी माँ हूँ।' कंस लाल आँखें किए सभा में मंत्री, पुरोहित और प्रजाजनों के साथ बैठे उग्रसेन के सामने जाकर सीधा खड़ा हो गया और गरजते हुए धमकी दी, 'आज ही मुझे युवराज घोषित करो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।' राजा को तभी कम-से-कम साहस करना चाहिए था। वह डर गया। वह काँप उठा और मान गया। दूसरे ही दिन वह युवराज के पद पर आसीन कर दिया गया। सिर पर किरीट रखा गया। उग्रसेन ने स्वत: अपने हाथ से किरीट रखा। रक्तहीन स्थिति में माँ ने तकिये के सहारे बैठकर वह दृश्य देखकर दो आँसू गिराये। बाद में भीतर जाकर अपने सारे बच्चों को एकत्रित करके उन्हें गले लगाकर वह फूट-फूटकर रोयी। रही-सही शक्ति आँसुओं में बह गयी। उग्रसेन ने कल्पना न की होगी कि आगे क्या होने वाला है।

संभवत: उसकी समझ में आ गया हो। बुद्धि के द्वारा समझने की अपेक्षा अंतर्मन समझ गया होगा। उस दिन इतना रोने से सन्निपात हो गया। एक सप्ताह में ही वह चल बसी। पति की गोद में सिर रखकर 'मैंने धोखा दिया, मैंने धोखा दिया, मैंने धोखा दिया' कहकर प्रज्ञाहीन स्थिति में ही तीन बार चीखी। पत्नी की मृत देह को बाँहों में लपेटकर उसने भी 'धोखा खा गया, धोखा खा गया' कहा। यह बात मैंने अपने कानों से सुनी। उसके मरने के बाद उसने धोखे के मूल को समझने का प्रयास किया होगा। वह एकदम अंतर्मुखी हो उठा। राज-काज से एक-दम विरक्त हो गया। अपने सबसे छोटे बच्चे को माँ की भाँति गोद में लेकर स्वयं मुँह में दूध डालता। छोटे बच्चे की सेवा करने के बारे में मैं उसे बताती और वह वैसा ही करता। इधर क्या हुआ पता है ? कंस ने अपना ही एक दल बनाकर जल्दी ही शासन अपनी मुट्ठी में ले लिया। नगर के रक्षक बदल दिये गये। महावत बदल दिये, पदाति भी बदल दिये। सब जगह अपने लोगों की नियुक्ति की। बाद में एक दिन समाचार मिला, नदी तैरने गये न्यग्रोध, सुनाम, कंक, सभूमिप चारों एक साथ डूब गये। देश में उनके मरने पर दुख की अपेक्षा भय छा गया। जहाँ-तहाँ फुसफुसाहट होने लगी। एक मास बाद सुनने में आया कि महल के पीछे खेलते हुए

दो लड़कों को शेर उठा ले गया। शेर किस दिशा से आया होगा। महल के पीछे तो नदी बहती है। नदी लाँघकर भीड़-भाड़ में कहीं शेर घुस सकता है? वह भी संध्या के समय? उग्रसेन चीखा-चिल्लाया। दूसरे दिन ही युवराज कंस ने उग्रसेन के संबंध में यह आज्ञा निकाली कि 'वैद्यों का कहना है कि कोई भी उससे बात करके उसे न थकाए।' यह कहकर उसे कोठरी में बंद कर दिया। शेष छोटे बच्चों का क्या हुआ यह कोई नही जानता। लोगों को केवल इतना सुनने को मिला कि एक सप्ताह में वे सब महामारी से चल बसे। राजमहल में काम करने वाले केवल हम सब लोगों को पता था कि वे एकदम अदृश्य हो गये। पर हम अपनी ज़बान नहीं खोल सकते थे।"

यह कहते हुए चित्रा भीतर वाले दरवाज़े की ओर मुड़ी। पोते की बहू दहलीज़ पर खड़ी संकेत कर रही थी। यह उठकर भीतर गयी। युयुधान चुपचाप बैठा रहा। उसने बचपन में और बाद में कंस और मथुरा के बारे में जो देखा और सुना था वह सब उसके मन में एक नया रूप लेने लगा था। अब चित्रा के उठकर भीतर जाने से वे चित्र स्पष्ट होने लगे। द्रुमिल आधा राक्षस होगा। वे भी कभी हमारे जैसे मनुष्य थे? कंस तो नरभक्षक नहीं बना। उसके मन के एक कोने में एक जिज्ञासा भी हुई कि क्या राक्षस के सिवा किसी अन्य के बीज से यदि वह जन्म लेता तो क्या ऐसा नहीं हो सकता था? तभी इस प्रश्न का एक और रूप उसके सामने आया: जरासंध भी तो राक्षस है। आर्य पिता और राक्षस पत्नी से उत्पन्न। इसी प्रकार कंस भी अर्ध-राक्षस पुरुष आर्य स्त्री के पेट से जन्मा था। इसी मोह के कारण उसने अपनी दोनों पुत्रियों का इससे विवाह करा दिया, तो कंस के जन्म का रहस्य जरासंध को किसने बताया? कैसे पता चल गया? अथवा भाई-बहनों को मारकर उग्रसेन को कारागृह में डाल दिया इसलिए यादव उससे दूर रहने लगे हैं। प्रजा भी उससे दूर रहने लगी है। शासन चलाने के लिए उसे बाहर के आदमी चाहिएँ। पूर्वी प्रदेशों में जरासंध का अत्यधिक प्रभाव था। युद्ध के माध्यम से ही नहीं, उसने दूसरों को सहायता देकर भी अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। स्वाभाविक रूप से इसे भी उसकी सहायता चाहिए थी। इसके साथ ही यह जान कर कि उसमें राक्षस रक्त है, इसके प्रति जरासंध का स्नेह भी बढ़ा और उसने अपनी दोनों बेटियाँ इसे देकर संबंध दृढ़ किया। अब कौन-सी स्वतंत्रता पूरी हुई है? मथुरा में जरासंध के प्रतिनिधियों ने शासन प्रारंभ किया। गुप्तचर, शंका, कारागृह-जीवन, वध जारी था। प्रजाजन अगर आत्मरक्षा के लिए शस्त्र रखें या उनका प्रयोग करें अथवा शस्त्र प्रयोग सीखना भी चाहें तो उन पर प्रतिबंध है। जोर से बात करने में भी लोग डरते हैं। ऐसा लगा ये एक-दूसरे से जन्म लेने वाली अपरिहार्य बातें हैं। कंस जरासंध की सहायता पर अधिकाधिक निर्भर हो गया है। उसी अनुपात में वह अपने लोगों से दूर भी हो गया है। इसके फलस्वरूप उसका

प्रम पत्नियों पर अधिक बढ़ा होगा। ऐसे क्रूर का भी अपनी पत्नियों से प्रेम होना स्वाभाविक था। उनके बिना न वह खा सकता था, न सो सकता था और न किसी से मन की बात कह सकता था। उनमें एक की गोद में वह सिर रखता तो दूसरी पंखे से हवा करती। किसी दासी की ओर वह आँख उठाकर नहीं देखता था। बड़ी का नाम अस्ति था और छोटी का प्राप्ति। दोनों में किसी को संतान न थी। सतान न होने पर दूसरे विवाह की इच्छा न थी अथवा इन पत्नियों का और जरासंध का भय था। उसने अपनी सगी बहनों का वध करा दिया था, परन्तु चाचा देवक की बेटी देवकी पर उसे विचित्र स्नेह था।

देवकी का मुख ही ऐसा है। अस्सी वर्ष की हो जाने पर भी, आज भी उसमें प्रेम भरे स्त्रीत्व के लक्षण साफ़ दीखते हैं। वसुदेव की सात पत्नियों में—जो सभी देवक की पुत्रियाँ थीं—देवकी पर ही उनका विशेष स्नेह रहा होगा। कंस को उसके बच्चों में से किसी को दत्तक लेकर सिंहासन पर बिठाने की इच्छा रही होगी। पति का यह प्रेम संतानहीन पत्नियों को अच्छा नहीं लगा होगा। मगध के शासकों में भी यह शंका उत्पन्न हुई होगी कि शासन में किसी और का प्राबल्य हो तो उनका प्रभाव घट जाएगा।

कंस के दरबार के ज्योतिषी मगध के ही थे। उनके यह भविष्यवाणी करते ही कि देवकी के गर्भ से जन्म लेने वाले बालक के द्वारा ही तुम्हारी मृत्यु निश्चित है, कंस के मन में उसके प्रति द्वेष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। पर उसका वध क्यों नहीं करा सका ? वह कौन-सा कठिन कार्य था ? उस पर इतना स्नेह जो था। उसका हत्या करवाने का मन न हुआ होगा। पर आत्मप्रेम ज्यादा होता है। इस कारण उसे कारागृह में डाल दिया। उससे तो इसकी मृत्यु नहीं थी न ? वह तो उसके बच्चों से होने वाली थी। इस कारण उसने आज्ञा दी होगी कि उसके गर्भ से जन्म लेने वाले हर बालक का इसके सामने लाकर वध कर दिया जाय। इससे उसे क्या यह कल्पना नहीं होनी चाहिए थी कि जिस बहन को वह इतना प्यार करता है उसे कितना दुख होगा ? क्या आत्मप्रेम की क्रूरता इस सीमा तक पहुँच जानी चाहिए कि पैदा होते ही बच्चे का तलवार से स्वयं अपने हाथों से ही वध कर दिया जाय ?

इस बिन्दु पर पहुँचकर युयुधान की बुद्धि थक गयी। उसे अपने प्रश्न का कोई उत्तर न सूझा। चुपचाप बैठ गया। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। गाँव के पास के समुद्र की आवाज़ आये जा रही थी। बुद्धि की तह में फिर से विचारों की हलचल शुरू हो गयी। मगध के ज्योतिषी की बात पर कंस ही नहीं देवकी और वसुदेव भी विश्वास करते थे। यादव दबे हुए थे। यादवों के मुखियागण यदि कंस का वर्चस्व न स्वीकार करते तो संभवत: वहाँ जीना दूभर हो जाता। कारागृह में जन्मे अपने सात बच्चे खोने के बाद देवकी ने एक योजना बनायी। यह बात फैला दी कि बच्चे

के होने में अभी एक महीना बाक़ी है। वह अब तक पैदा हुए बच्चों को समय पर अर्पित कर दिया करती थी। इसलिए कंस को कैसे संदेह होता ? समय पर जन्मे इस बालक को वसुदेव के मित्र नंद के घर भेज दिया और उसके स्थान पर दूसरा बच्चा लाकर यह बात फैलाई कि बच्चा अभी हुआ है। पाँच-छह दिन के अंतर को कंस कैसे जान पाता ? पर देवकी को यह विश्वास था कि वह कंस का मारक जन्मा है।

यह सोचते-सोचते युयुधान का मन फिर कृष्ण की ओर चला गया। उसके ध्यान में कृष्ण के पालने वाले माता-पिता का चित्र उभर आया। नहीं तो अखाड़े से एक छलांग में कंस पर टूट पड़ने का साहस उसमें कहाँ से आता ? वैसे कृष्ण स्वभावत: धैर्यशाली है। साँप के काटने पर, उसकी गर्दन पकड़कर यह जाँचने का साहस उसमें है कि वह विषैला है कि नहीं। यह सोचते-सोचते उसे ऊँघ-सी आ गयी। उस उनींदी अवस्था में भी उसे चित्रा की सुनायी कंस की कहानी याद आती रही। उसमें एक और चित्र उभरा। अतिक्रमण करके जो बीज आकर पड़ता है क्या वह मूल सत्य की समस्त जड़ को ही खत्म कर देता है ? क्या आगंतुक बीज कंटक या पाप की जड़ होता है ? अब समझ में आया। वह उग्रसेन के मन का भ्रम—प्रेम नहीं था। पत्नी-प्रेम भी नहीं था। वह अतिक्रमण प्रवेश था, वही पाप का बीज था। यह नवीन सत्य समझ में आते ही उल्लास से उसकी आँख खुल गयी। वह सिर झटककर यह अनुभव कर रहा था कि वह कहाँ है ? तभी वृद्धा चित्रा ने भीतर से आकर कहा, "महाराज ! उठिए, भोजन तैयार है।"

युयुधान ने जब अपने घर जाकर भोजन करने की बात कही तो वृद्धा चित्रा मानी नहीं। भीतर से उसके पोते की पत्नी दायें हाथ में ताँबे के लोटे में पानी और बायें हाथ में एक कठौता लिये आयी। उसने कठौते में हाथ-मुँह धोया। बाद में वह एक लकड़ी की थाली में भोजन ले आयी।

भोजन में सूजी की रोटी, दूध, घी, शहद, गेहूँ का दलिया था। रोटी तोड़-तोड़कर कौर दूध में भिगोते हुए युयुधान ने सामने बैठी चित्रा से पूछा, "तुम्हारी मालकिन ने पर-पुरुष को इतनी सरलता से स्वीकार कर लिया ?"

"अरे ! सरल शब्द का प्रयोग मत करो, उग्रसेन को तो तुमने देखा ही है न ? कायर है। लोभी भी है। अब वह सौ पार कर चुका है। फिर भी सिंहासन को क्यों पकड़े बैठा है ? मैं बूढ़ा हो गया अब यह सब मुझे नहीं चाहिए, यह कहने का मन नहीं। दुर्बल बुद्धि वाला। मालकिन कैसी थी मालूम है ? उसमें अकेले जाकर शेर का शिकार करने का साहस और शक्ति थी। उसका कद-काठी बड़ी नहीं थी। लेकिन घोड़े पर बैठकर जब धनुष लेकर चलती तो ऐसा कोई घोड़ा नहीं था जो उसके वश में न आता हो। इंद्रगिरि के पास वाले जंगल में अकेली शिकार को चली गई थी। द्रुमिल महाराज चला आ रहा था। उसे तुममें से किसी ने नहीं देखा।

शेर जैसे कंधे, सुती हुई चौड़ी छाती। देखते ही बनता था। कोई स्त्री उसको देखते ही अपना मन हार जाती। मालकिन जैसी जीवट वाली स्त्री का उसके अतिरिक्त किससे हारना संभव था। वहाँ से लौटते ही मुझसे बोली : 'चित्रा, ऐसा हो गया। आज रात को वह मेरे शिविर में आयेगा। तुम मेरी अंतरंग सखी हो न?' उसकी झुकी आँखें, ढले कपोल और उतरा मुंह देखने की ही बात थी। उस बात को इस चित्रा के अतिरिक्त और कौन पहचान सकता था?"

"पन्द्रह दिन तक लगातार वह तुम्हारी मालकिन के शिविर में आता रहा न? उसे उसके साथ चले जाना चाहिए था! ऐसे पति के पास वह क्यों लौट आई? क्या उसे ले जाने को द्रुमिल तैयार न था?"

"क्या कहा?" चित्रा को ठीक से सुनायी न दिया। कभी-कभी समुद्र-गर्जन घर के भीतर भी सुनायी पड़ता था। वह भारी-भारी कनफूल पहनती रही होगी इसलिए कान के छेद चिरकर लटक गये थे। "मालूम है उसे ले जाने को वह कितना छटपटाता रहा। अपने महल की एक दासी को भेजकर मुझे बुलवाया था। मालकिन से कहकर ही मैं गयी थी। राक्षस-कुल का होने पर भी वहाँ सब आचार-विचार हमारे जैसा ही था। 'चित्रा, अपनी मालकिन को एक बार फिर से वन-विहार पर आने को कहो। वहाँ से उसे मैं अपने राज्य में ले जाऊँगा अथवा उससे कहो कि वह स्वयं घोड़े पर बैठकर आ जाय या मैं अपनी सेना लेकर उसके पति को हराकर उसे जीतकर ले आऊँ। केवल उसकी सम्मति चाहिए।' कहकर वह गिड़गिड़ाया था पर मालकिन नहीं मानी।"

"क्यों? क्या द्रुमिल के प्रति उसका अनुराग समाप्त हो गया था?"

"क्या कहा? तुमने द्रुमिल को देखा नहीं। अगर देखा भी होता तो पुरुष होने के कारण तुम समझ नहीं पाओगे। मालकिन ने ही एक दिन मुझसे कहा था। पहली ही रात उसकी शक्ति का परिचय पाने के बाद तीन-तीन जन्म तक उसकी दासी बनकर रहने की इच्छा किसी भी स्त्री को हो सकती है। ऐसी पन्द्रह रातें उसके साथ बितायीं। उसका बच्चा भी गर्भ में आ गया। वह आर्य स्त्री थी। पति को छोड़कर दूसरे के साथ न जाने का धर्म नियम बना हुआ था। मेरा भाग्य ही ऐसा है। कहकर रोती-रोती यहीं रह गयी। राक्षस जाति में हो तो पति का वध करने वाले के साथ भी स्त्री संतोष से जा सकती है। उसकी पसन्द ही मुख्य है।"

"फिर तुमने तो बताया था कि उग्रसेन से उसके तेरह बच्चे हुए।" कहते हुए उसने भीगी रोटी के कौर को मुंह में रखा।

"यह बात नहीं कि वह पति को पहले आने न देती रही हो। पर उसमें गर्भ-द्वार को छेद पाने की शक्ति न थी। यह उसी ने मुझे बताया था। बाद की बात जाने दो। वह तो आसान है। तुम्हारा विवाह नहीं हुआ? कितनी पत्नियाँ हैं? बेटे-पोते कितने हैं?"

युयुधान ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूध में भीगी रोटी का कौर शहद में डुबा-कर खाता हुआ सुन रहा था। चित्रा भी चुप थी। उसके मन में उठी पाप के बीज की कल्पना याद हो आयी।

चित्रा से ही पूछकर उसे पक्का कर लेने का मन हो आया : "द्रुमिल तो पूरा राक्षस न था। उसके माता-पिता में सिर्फ़ एक राक्षस था। तुम्हीं ने बताया कि उसका आचार-व्यवहार भी हमारे जैसा ही था। उसके बीज से जन्म लेने से ही कंस को क्रूर नहीं बनना चाहिए था। फिर उसके ऐसा बनने का पाप किसका है?"

'अपने मन के समाधान के लिए ही पूछ रहा हूँ। फिर भी पाप का कोई मूल या उत्तरदायी तो होना चाहिए न' मन में कहते हुए युयुधान को गर्मी लगी। घर के बाहर बैठते तो हवा लगती। गर्मी महसूस न होगी, यह सोचकर वह अपने शिरोवस्त्र से मुख और छाती पोंछ रहा था। समुद्र का गर्जन तब भी सुनायी दे रहा था। जिम्मेदारी की बात आते ही कृष्ण की याद आयी। किसी भी बात के उठते ही वह जिम्मेदारी का प्रश्न उठाता है। बार-बार वही सुनने से मेरे मन में भी यह प्रश्न आया होगा। वह इस प्रकार विश्लेषण कर ही रहा था कि तभी सिर हिलाती कई वर्षों पुरानी बातें याद करती चित्रा बोली, "सत्य के पता चलते ही उसे पत्नी को छोड़ देना चाहिए था। क्यों नहीं छोड़ा? यह प्रश्न उठता है न?"

युयुधान ने वह बात मान ली। उग्रसेन ने ऐसा भ्रम क्यों पाला? अथवा पत्नी की बात को झूठ जानते हुए भी उस पर प्रज्ञापूर्वक विश्वास करके उसने कैसी चिंता मोल ले ली? कुछ देर बाद चित्रा ही बोली, "मुझे कुछ और ही सूझता है बता दूं? गुस्सा तो नहीं करोगे न?"

"गुस्सा क्यों? बताओ, बताओ?"

"आप लोग क्षत्रिय हैं न? बड़ी क्रोधी जाति है।"

"नहीं-नहीं, बताओ।" कहकर युयुधान ने स्वयं को और अधिक संयत करते हुए आग्रह किया।

"अब उसका ज़िक्र क्यों भइया? इस बात को हुए पता नहीं कितने वर्ष बीत गये, अब जाने दो।"

"जब द्रुमिल के गर्भद्वार छेदने से बीज पड़ा तो इसमें क्या प्रमाद हो गया? उसके फल को अपना मानकर स्वीकार क्यों नहीं किया?"

"दूसरे के बीज को अपना कहकर कौन स्वीकार करेगा?"

"महाराज, तुमने अपना नाम क्या बताया? युयुधान बताया था न? तुम लोगों में अपने-पराये का भेद बहुत है। इन दिनों तो यह बहुत बढ़ गया है। तुम लोग जब मथुरा में थे तब भी यही हाल था। अनर्त आने पर भी वही हाल है। कितनी दासियों के गर्भ में आप लोगों ने बीज नहीं डाला? कितनी दासियां गर्भ-

वती होकर बच्चे पैदा नहीं करतीं ? क्या उनके पति बिना किसी भेद-भाव के पत्नियों के बच्चों को अपना नही मानते ? पत्नी की योनि-शुद्धि के परीक्षण के लिए ही आप लोग नवजात बच्चे का माथा सूंघते हैं ? बाद में स्वयं अपने वीर्य से उत्पन्न प्रत्येक बच्चे के नामकरण के समय पत्नी के सामने ही उग्रसेन बच्चे का माथा सूँघता रहा। यह बात मालकिन ने ही स्वयं बतायी थी। पर उग्रसेन के वीर्य से मेरे गर्भ से भी बच्चे पैदा हुए होंगे। वे उसके थे या मेरे पति के, यह मुझे निश्चित रूप से पता नहीं। रानी की दासी बनने के बाद वह राजा की भी दासी हो जाती है। यह बात विवाहित सभी दासियों के पति जानते हैं। परन्तु सिर सूँघने की पद्धति हमारे लोगों में नहीं। मैंने जितने बच्चे पैदा किये उन सबको मेरे पति ने प्रेम से स्वीकार किया। तो उग्रसेन ने शिशु कंस के प्रति भेद-भाव क्यों किया ?"

युयुधान की दृष्टि उस पर पड़ गयी। आँखें वहाँ से हटाने की बात तो दूर, पलक तक झपकाना कठिन हो गया। मुख और गर्दन का पसीना बहकर टपकने लगा। वस्त्र से पोंछने को बढ़ा हाथ वैसा का वैसा ही रह गया। समुद्र का गर्जन भी बन्द हो गया था। घर में भिनभिनाती मक्खियों से ही मौन भंग हो रहा था। उसने जल्दी-जल्दी खाना निबटाया। फिर से और परोसने आयी बहू को मना करके थाली में हाथ धो डाले। कुछ देर यूँ ही बैठा रहा। चित्रा ने उसकी ओर देखकर पूछा, "बहुत गर्मी है न ? अन्दर ऐसा ही होता है। आओ, ओसारे में चलें। वहाँ समुद्र की ओर से हवा बहती रहती है।" कहकर वह उठ खड़ी हुई।

ओसारे में खूंटे मे बँधे घोड़े के चारों ओर तीस-चालीस बच्चे बतिया रहे थे। युयुधान को लगा कि पन्द्रह-बीस स्त्रियाँ आसपास के घरों से उसी के बाहर आने की बाट देख रही हैं।

उसके साथ ही बाहर आयी चित्रा सबकी ओर देखकर बोली : "ये वासुदेव कृष्ण नहीं, युयुधान सात्यकि है। उसका मित्र है। यूँ ही आया है, किसी और काम से। वासुदेव कृष्ण को कुरु प्रदेश की ओर गये तीन मास हो गये। किसी को पता नहीं वह कब द्वारका लौटेगा।"

युयुधान को लगा वहाँ खड़ी स्त्रियों का उत्साह घट गया और उनके मुँह उतर गये। वे सब बीस-पच्चीस से लेकर चालीस-पचास की आयु की थीं। कुछ लोगों की गोद में छोटे बच्चे थे। पाँव के पास मिट्टी में खेलने वाले दो-तीन वर्ष की आयु के भी थे। सबके मुँह पर पसीने के कारण धूल जम गयी थी। वे लोग खेत अथवा गोठ में काम करते-करते बिना हाथ-मुंह धोए चली आयी थीं।

"कुछ कहना हो तो इससे कहो। वासुदेव कृष्ण के आते ही यह सब उसे बता देगा।" यह बात चित्रा के ज़ोर से कहने पर वहाँ खड़ी लगभग पचास वर्ष वाली स्त्री हँस पड़ी। पर दूसरी नहीं हँसी। वह प्रसंग पल्ले में न पड़ने से युयुधान यूँ ही

अपने घोड़े की ओर मुड़ा जहाँ बच्चे खेल रहे थे। बच्चे भी कुछ निराश हुए।

चित्रा ने पूछा, "पता है, यह कौन है ?"

एक स्त्री ज़रा ज़ोर से बोली, "यह युयुधान सात्यकि है। यह बात हमें पता है।" यह कहने वाली कौन है, यह जानने के लिए युयुधान ने मुड़कर देखा पर उसे पहचान न सका।

चित्रा बोली, "नरकासुर से छुड़ाकर लाने के बाद कृष्ण ने इन सबसे विवाह कर लिया। उनमें चौबीस को यहीं लाकर इसी गाँव में बसाया है। उसी ने जंगल साफ़ करके भूमि ठीक करा दी। अब ये लोग यहीं पर खेती करते हैं और जीविका चलाते हैं। ये सब बच्चे इन्हीं के हैं। कृष्ण जब भी इस गाँव में आता है गाड़ी भर गुड़ लाकर देता है। तुम्हारे घोड़े को देखकर इन्होंने यह सोचा कि कृष्ण ही होगा। इसीलिए यह बच्चे ऐसे घेरे खड़े हैं जैसे गुड़ को मक्खियाँ घेर लेती हैं। अब देखो कैसे वापस चले जा रहे हैं यह जानकर कि कुछ नही मिलेगा।"

युयुधान का मुंह उतर गया। बच्चे सब धीरे-धीरे वापस जा रहे थे। वहाँ जो स्त्रियाँ खड़ी थीं वे सब भी एक-एक करके खिसकने लगी। हरी मक्खियों के डंक मारने से घोड़ा सुम पटक रहा था।

"इस गाँव में एक भी पुरुष नज़र नहीं आता ?"

"सुबह-सुबह कौन-सा पुरुष घर में रहता है ? खेतीबाड़ी, गाय-बैल, शिकार, मछली पकड़ना ये सब काम रहते हैं। स्त्रियाँ भी चली जाती हैं। घर में तो मेरे जैसी बूढ़ियाँ रह जाती हैं या कुछ स्त्रियाँ रसोई पकाने को घर में रह जातीं हैं अथवा फिर छोटे बच्चे घर में रहते हैं। इस गाँव में सिर्फ़ दस घर में पुरुष हैं। बाक़ी चौबीस घरों का पिता तुम्हारा मित्र कृष्ण ही है। कुछ घरों में जवान लड़के हैं।"

सूर्य कंधे तक आ पहुँचा था। घरों के द्वार पश्चिम की ओर होने से समुद्र दिखायी नहीं दे रहा था। केवल गर्जन सुनायी पड़ रहा था।

घोड़े पर चढ़कर लौटते समय बादल छँट जाने के कारण तेज़ धूप चुभ रही थी। पसीने की दुर्गंध से नाक फटी जा रही थी। तभी मन में यह प्रश्न उठा कि माथा सूंघने से यह कैसे पता चल जाता है कि बच्चा अपना ही है। मैंने ही अपने बच्चों का माथा सूंघने का शास्त्र पढ़ा है। गर्मियों के दिनों में पसीने की गंध तो अवश्य आयी पर सिर धोकर चंदन की धूनी देने से केवल उसकी ही सुगंध आयी। पर इस बात की ओर ध्यान नहीं गया कि यह मेरे वीर्य से ही है या नहीं। चित्रा के तर्क का ध्यान आते ही ऐसा लगा कि मुझे कभी अपनी पत्नी पर संदेह ही नहीं हुआ। वह

सदा सास-ससुर के साथ रहती आयी है। उसका स्वभाव ही कुछ और तरह का है। इससे उसे कुछ सांत्वना मिली। कंस के बारे में कृष्ण जानता था। उसे बीस-बाईस की आयु में ही पता चल गया था। फिर उसने उसके बारे में मुझसे एक बार मुँह खोलकर नहीं कहा। वह जान-बूझकर चुप रहा होगा या कभी मौका ही नहीं आया। उसने निश्चय किया कि इस बार आने पर उससे पूछेगा। इस समूचे प्रसंग में पाप का दायित्व किस पर है? इस प्रश्न का उत्तर चित्रा ने कैसा दिया? कृष्ण से पूछना चाहिए। वह भी चित्रा की बात का समर्थन कर सकता है। इस प्रकार के दांपत्य जीवन में बच्चे के जन्म में शील कैसे सुरक्षित रह सकता है? यह प्रश्न उसे सालने लगा। बायीं ओर समुद्र के ऊपर से हवा इतने ज़ोर से बहने लगी कि लगा मानों घोड़ा दायीं ओर उड़ जाएगा।

अब कृष्ण वहाँ जा बैठा है। पांडवों के पास आते ही बस उसे लौटने का ध्यान ही नहीं रहता। पत्नी और बच्चों का भी ध्यान नहीं रहता। केवल दामाद ही नहीं बल्कि साम्राज्य के एक स्तम्भ के गिरने की बात सुनकर जरासंध का क्रोध से आग-बबूला हो उठना स्वाभाविक ही था। वह और कैसा व्यवहार करता? इस विचार से पहले वह उसे केवल शत्रु, चांडाल और क्रूर ही समझे हुए था। अब उसे माँ की सखी के मुख से, जिसने शायद उसका जापा कराया होगा, यह पता चला कि वह भी मनुष्य ही था। इस विचार ने उसकी आँखें खोल दीं। बड़े शक्तिशाली व्यक्तियों को अपनी बेटियों से अधिक प्यार होता है। आस्ति और प्राप्ति के सिवा उसकी और कोई बेटी नहीं थी। दामाद ने उन्हें बड़े प्यार से रखा हुआ था। बहुत बड़ा षड्यंत्र चला, मगध के ज्योतिषियों की वाणी सत्य हुई। मगध के ज्योतिषी, शासक गुप्तचरी में लगे थे। उन दोनों विधवाओं को आगे करके अगर लोग रोये तो पिता को क्रोध कैसे नहीं आता? हथियाये राज्यों में शासक और गुप्तचरों का जो रौब-दाब रहता है वह क्या अपने राज्य में कभी रह सकता है?

कृष्ण के साहस की सीमा न थी। वैसी ही उसकी विवेक शक्ति भी थी। उसने पहले ही कह दिया था कि जोड़े में से एक शेर को मारने के बाद दूसरा घात लगाता है। उसी प्रकार जरासंध अवश्य आयेगा। तब कृष्ण केवल अठारह वर्ष का किशोर ही तो था। बड़े-बड़ों की जांघें काँप रही थीं। कंस के शासन काल में बड़े-बड़ों का पौरुष निःसत्त्व हो चुका था। तरुणों और उत्साहियों को एकत्रित करके शस्त्रों का प्रशिक्षण देना था। लेकिन प्रशिक्षण देने वाला कौन था? देश की सुरक्षा का कार्य परदेशियों के हाथ में था। उनके जाते ही नगर में अव्यवस्था फैल गयी। चोरी, डकैती, और हिंसा फैल गयी। 'इससे तो कंस का राज्य ही अच्छा था। यह आवारा लड़का कहाँ से आ गया?' यह कहने वालों की क्या कमी थी? मेरे पिता जैसे कुछ लोग यदि कृष्ण के सहायक बनकर, सलाह देकर व्यवस्था न करते तो पता नहीं क्या हो जाता? शनि, अनाधृष्टि, अक्रूर, विपृथ, ये सबके-सब वर्षों से कारागार में

सड़ रहे थे। वे भी सहायता को आ पहुँचे। वृद्ध उग्रसेन भी उत्साह से खड़ा हो गया। चित्रक, श्याम, सत्राजित, प्रसेन, आदि ने विस्मृत शस्त्र-विद्या का फिर से अभ्यास करके सहायता न दी होती तो मालूम नहीं तभी हार का मुँह देखना पड़ता। तभी मेरे पिता के कहने के अनुसार कृष्ण और बलराम ने संदीपन गुरु के पास जाकर शस्त्र-विद्या का अभ्यास किया। केवल छियालीस दिन का अभ्यास। वेद, धनुर्वेद सब एक साथ। तब यह समाचार मिलते ही कि जरासंध की सेना आ रही है भागे हुए वापस आये। तब तक, द्रोण धनुर्विद्या के गुरु के रूप में हस्तिनापुर में प्रसिद्धि पा चुके थे। पर क्या वे हमारी आतुरता के अनुरूप शिक्षा दे सकते थे, इसके अतिरिक्त जरासंध से सीधी शत्रुता मोल लेने को क्या भीष्म तैयार होते? इसीलिए 'भले ही दूर हो पर संदीपन के पास ही जाकर सीखो' कहकर पिता जी ने वही भेजा था।

युद्ध, कितना भयानक युद्ध हुआ। मैं केवल बारह वर्ष का था। पर मेरे उत्साह और धैर्य का पारावार न था। यहाँ से समाचार पहुंचाना, शत्रुओं के समाचार एकत्रित करना। मैं देखने से कंचे खेलने वाला लड़का था। मुझे साहस की मूर्ति बनाने वाला कृष्ण ही था। भय क्या है मुझे पता ही न था। मुझे इतना निडर बनाने वाला कृष्ण ही था। उसे गुरु के सिवा क्या कहूँ? बलराम कहता है न मैं मालिक के पीछे पीछे जाने वाला कुत्ता हूँ। जरासंध ने जब मथुरा घेरी तब तीस वर्ष के बलराम ने बड़े साहस से युद्ध किया। उसमें धैर्य है पर युद्धतंत्र नही जानता था, आज भी नही जानता। जरासंध के पास कितनी शक्ति थी? वह अकेला न था। कलिंग का श्रुतायु, करोष का दंतवक्र, विदर्भ का सोमक, भोज का रुक्मि, जरासंध का पालित पुत्र शिशुपाल, सभी उसके साथ थे। गुप्तचरों से सब समाचार लेकर कृष्ण ने पहले से कह दिया था 'इनमें से किसी के पास बड़ी सेना नहीं। इतनी दूर का रास्ता तय करके नदी-नाले पार करके आना कठिन कार्य है। हमारी मथुरा के पास पांचाल उन्हें किसी प्रकार की सामग्री नहीं देंगे। केवल कुछ राजा लोग ही आएँगे। मेरी बात सब लोग मानो तो उन्हें मार-मारकर भगा सकते हैं।' कृष्ण की ही योजना सफल हुई थी। मथुरा के चारों ओर के जंगल में चरवाहों के वेश में हमारे आधे वीर तैयार थे। शेष नगर में थे। दुर्ग का द्वार बंद करके यह दिखाया गया कि हम लोग डर गये। दूसरी रात ही जब आगे-पीछे दोनों ओर से हमने आक्रमण किया तो हमारी शक्ति को बहुत अधिक समझकर भय से उनके पाँव उखड़ गये। अँधेरे में ही उनका पीछा करके उनको खूब मार लगाने की खुशी को याद करके वह घोड़े पर बैठा-बैठा हँस पड़ा। घोड़े ने यह समझा कि उसे पुचकारा गया है और वह तेज़ी से चलने लगा। दायीं ओर की कीकर के झुंड पार करते समय उसके मन में आया कि आजकल बलराम यादव-सेना से जो बात बार-बार करता है और कहता है कि समस्त यादवों में सबसे अधिक धैर्यशाली मैं ही हूँ। कृष्ण वास्तव

में डरपोक है। केवल युक्ति बनाता है। गीदड़ की भाँति। यह ठीक है कि इसमें कभी-कभी उसे सफलता मिल जाती है। पर क्या सभी शत्रु मूर्ख होते हैं ? शक्ति और धैर्य से क्षत्रिय का गौरव बढ़ता है। डरकर पलायन से नहीं। बलराम की इस बात पर सेना के बहुत-से लोगों को बड़ा विश्वास है। कुछ लोग हमारी सेना में भी कृष्ण को तिरस्कार भाव से देखते हैं। आजकल के कुछ तरुण सैनिक कहते हैं कि मथुरा छोड़कर द्वारका पलायन करने वाले हम लोग डरपोक हैं। हम जब यहाँ बसने आये थे तब उनकी नाक बहा करती थी। रेंहट सुड़कने वाले बच्चे थे। उनमें से कुछ पैदा भी नहीं हुए थे। उनकी दृष्टि में बलराम महावीर है। यह कोई नहीं कह सकता कि बलराम धैर्यशाली नहीं, पर कृष्ण कोई डरपोक है ?

मुझे अच्छी तरह याद है। जरासंध जब दूसरी बार सेना लेकर मथुरा पर चढ़ आया तो कृष्ण समझ गया कि वह उससे प्रतिशोध लेना चाहता है। जानबूझकर यह खबर फैला दी कि वह और बलराम कुछ सैनिकों सहित दक्षिण की ओर चले गये हैं। जरासंध मथुरा की ओर आना छोड़कर क्या उन्हें खोजने नहीं निकल पड़ा था ? कितनी बड़ी सेना थी। ये लोग अपने को केवल इतनी दूरी रखकर भागते रहे कि उसे भ्रम रहा कि अभी पकड़ में आ जाएँगे। हमेशा दिशा बदलते; एक देश से दूसरे देश को भागते रहे। रथ, हाथी, घोड़े, भारी लाव-लश्कर और विशाल सेना लेकर वह कितनी दूर भाग सकता था। यह तो ऐसा ही था जैसे महाकाय शरीर लेकर हाथी चुस्त बिल्ली को मसलने जाय। किन-किन देशों में घूमते रहे ! थक गये, हाथी पीछे रह गये, रथ टूट गये, घोड़े थककर चूर-चूर हो गये, भूखे-प्यासे पदाति मारे गुस्से के आपे से बाहर हो गये। ऐसे अवसर पर इन्होंने बिजली की तेज़ी से उस पर आक्रमण करके अधमरा कर दिया। तब जरासंध और उसके साथी अपने प्राण बचाकर भाग निकले। मेरे बड़े हो जाने के बाद कृष्ण ने मुझे यह सब बताया था। अगर ज़रा और ज्यादा सेना हमारे साथ होती तो उसी युद्ध में उसका काम तमाम किया जा सकता था।

लौटकर जरासंध ने अंतिम बार तैयारी की। उसने कहा, भले ही कृष्ण जान से न मारा जाय। हाथ में न आने वाले को केवल पकड़ना ही मुख्य नहीं, उसके नगर मथुरा को तहस-नहस न कर डालूँ तो मेरे नाम की सार्थकता ही क्या ? उस बार कितनी भारी सेना थी। पहले एकत्र सभी राजा अपनी-अपनी सेना लेकर पूर्व दिशा से आये। विदर्भ से रुक्मि, नैऋत्य से कालयवन आदि राजा थे। संसार में तब तक इतनी बड़ी सेना और इतने राजाओं ने एक साथ एक ही लक्ष्य की ओर कभी प्रयाण नहीं किया था। वे सब मथुरा के कृष्ण का वध करने निकले थे। उस समय वह बीस या इक्कीस का रहा होगा, मैं पन्द्रह का हूँगा। मैं तभी सैनिक बन चुका था। संदीपन गुरु से छह महीने शिक्षा लेकर आया था। ऐसे अवसर पर आराम से शिक्षा समाप्त कर पाना कैसे संभव था ? तब तक यादवों की नयी सेना संगठित हो

चुकी थी। मुझ जैसे तरुण ही उसमें अधिक थे। उनका नायक कृष्ण, साहस और स्फूर्ति का अवतार था। गुप्तचर चारों ओर से सूचनाएँ लाते रहे। लगा कि कृष्ण भले ही बच सकता था पर मथुरा ध्वस्त हो जायेगी और यादव प्रमुखों को जरासंघ अवश्य ही कारागार में डाल देगा। अर्थात् बचना हो तो कृष्ण के साथ सभी प्रमुखों को बचना चाहिए था, पर क्या जरासंध उनकी पत्नियों और बच्चों को छोड़ देता? अथवा दुर्ग के भीतर ही रहकर लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होना था। सैनिक कहने लगे—"युद्ध करेंगे। जहाँ तक हो सकेगा शत्रुओं का नाश करेंगे। हम भी रक्त बहा देंगे। वीर गाथा का विषय बन जाएँगे।" तब क्या मैं गला फाड़कर चिल्लाया नहीं था? युद्ध, युद्ध, युद्ध। होना चाहिए! मैं केवल पन्द्रह वर्ष का योद्धा था। तब घबराई स्त्रियों, बड़े-बूढ़ों और प्रमुखों की सभा में कृष्ण की बात सुनकर मुझे भी बड़ा क्रोध आया था। मैंने मन में कितनी बार तिरस्कार से यह नहीं कहा, 'यह धीरोदात्त नायक डरपोक हो गया।'

"पूज्य गुरुजनो तथा भाइयो, गुप्तचरों से सूचना मिली है कि इस बार शत्रु एक बहुत बड़ी सेना लेकर आ रहा है। उसकी अपनी सेना बहुत बड़ी है। उसका राज्य भी बड़ा है। उससे प्रभावित राजाओं की संख्या भी काफ़ी बड़ी है। वे सब अपने रथ, घोड़े और हाथियों सहित इधर आ रहे हैं। लगभग समस्त आर्य जाति का बल मथुरा को ध्वस्त करने के लिए चारों ओर से हमें घेरने वाला है। केवल हमारे पड़ोस के पांचाल और उत्तर के कुरु उनके साथ नहीं। किन्तु युद्ध में कोई भी बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। मान लो वे यह धमकी दें कि, 'यदि तुम हमारा साथ नहीं देते तो तुम्हें ही शत्रु मानकर तुम पर ही आक्रमण करेंगे' तो मन न होने पर भी वे विवश होकर उनका साथ दे सकते हैं। जरासंध का क्रोध सीमा लाँघ गया है। कंस के वध का प्रतिशोध न ले तो क्या उसका अहम् शांत होगा? इसके अतिरिक्त वह दो बार मार खा चुका है। तब भी उसका काम तमाम करने की शक्ति हममें न थी।" जब वह यह कह रहा था तब शंख ने चिल्लाकर कहा, "कंस को मारना ही तुम्हारी ग़लती थी।"

"तो क्या सभी को दासता पसंद थी? क्या आप लोगों को यह विश्वास न था कि मेरा जन्म उसका वध करने के लिए हुआ है? मगध के ज्योतिषियों की बात मानने वाले क्या आप सभी लोग न थे?" तब लोग आपस में फुसफुसाने लगे और सारा दोष कृष्ण पर डाल दिया। इस पर मुझे कितना गुस्सा आया था।

"अब हमारे सामने दो ही रास्ते हैं। मैं और मेरे भाई बलभद्र सिर छिपाकर कहीं चले जाएँगे; फिर कभी मथुरा नहीं लौटेंगे। तुम सब लोग जरासंध के शरणागत होकर अपनी जान बचा लो अथवा हम सब मथुरा त्यागकर कहीं दूर जा बसेंगे। ऐसी जगह जाएँगे जहाँ जरासंध के लिए पहुँचना कठिन हो। इतनी बड़ी सेना हम

पर आक्रमण न कर सके। ऐसी जगह बसेंगे जहाँ यह धरती समाप्त होकर समुद्र आरंभ हो जाए।"

"क्षत्रिय को लड़ना चाहिए या मरना चाहिए। आरंभ में शूरता दिखाकर अब दुम दबाकर भागे तो आर्यवर्त में यादवों के गौरव का क्या बनेगा ?" यह पूछने वाला भी तो शंख ही था न ? तब सभी के मुख से निकला, "हाँ, शर्म की बात है, शर्म की बात है।" बलराम का स्वर कितना ऊँचा था। राजसिंहासन पर बैठा उग्रसेन तो हक्का-बक्का होकर चारों ओर देख रहा था। कृष्ण के पिता वसुदेव के मुख पर दुविधा छायी थी। मेरे मन में बलराम के प्रति कितना गौरव उत्पन्न हुआ था। असली वीर वही है। क्षत्रिय वही है ऐसा पूज्य भाव जन्मा था।

"युद्ध में परिस्थिति के अनुसार क्या वीर पीछे नहीं हटते ? और अवसर देखकर आगे बढ़कर शत्रुओं का वध नहीं करते ? उसे क्षत्रियोचित कार्य क्यों कहते हैं ?" कृष्ण ने यह प्रश्न पूछा।

तभी बलराम गरज कर बोला, "युद्धभूमि की बात और है। यह तो बरतन-भांड़े, कपड़े-लत्ते और पानी खींचने की रस्सी भी सिर पर लादकर भागने वाली बात है। ऐसा किया तो यादवों के गौरव का क्या होगा ?"

"दोनों एक ही बातें हैं। हम केवल प्राण बचाने नहीं जा रहे। नई धरती खोजकर इस समय सिर छिपा लेंगे और बाद में जरासंध का वध करेंगे।"

"इतनी दूर जाने के बाद कैसे वध कर पाओगे ?"

"कैसे होगा इस समय कैसे बताऊँ ? यहीं उपस्थित नाना उग्रसेन, पिता वसुदेव, घर में बैठी दुखी देवकी और तुम्हारी माता और अपनी बड़ी मौसी, सबकी सौगंध लेकर कहता हूँ, मैं केवल प्राण बचाने के लिए नहीं जा रहा। अगर जीवित रहे तो एक-न-एक दिन अवश्य शत्रु को जीत सकते हैं। इस समय चढ़ी आ रही उसकी असंख्य सेना से टक्कर लेकर रक्त बहाने से क्षत्रिय का अहम् पूरा हो सकता है, पर उससे लाभ क्या होगा ? इस समय देश छोड़कर जाने का सारा अपयश मेरे सिर पर सही। चाहें तो आप सब लोग इसे पलायन कहिए। शाम तक सब सोचकर बता दीजिए। कल प्रातः ही यहाँ से चल देना होगा। रात को ही तैयारी हो जानी चाहिए।"

संध्या से पहले ही एक-एक करके सभी ने कृष्ण की बात मान ली। उग्रसेन पहले ही मान गया, वसुदेव मान गया, अक्रूर मान गया, मेरे पिता मान गये, चित्रक मान गया, सत्राजित, प्रसेन, सब मान गये। संध्या की सभा में "कृष्ण तुम्हारी ज़िम्मेदारी पर और तुमने ही अपयश अपने सिर लेने की बात कही है इसलिए हमने तुम्हारी बात मान ली है।" मौन रूप से विरोध प्रकट करने वाला अकेला व्यक्ति बलराम था। उसका मूक प्रश्न था कि कृष्ण किसलिए यह सब अपमान अपने सिर ओढ़ने को तैयार हो गया ? आर्यावर्त के क्षत्रियों में वीरता

है। मरने और मारने की वीरता ही उनका पुरुषार्थ है। ऐसा व्यक्ति स्वर्ग में अपनी जगह बना सकता है। उसका स्वेच्छा से त्याग कर इतने लोगों की जीवन-रक्षा का मार्ग खोजकर, आर्य जिस कायरता को अत्यन्त गर्हित मानते हैं, उसी को अपने सिर पर ओढ़कर हँसते-हँसते चल पड़ा है? कैसी जगह? सप्ताह पर सप्ताह चलने पर भी समाप्त न होने वाले पहाड़ और जंगल पार करते चल दिये थे। जरासंध इतनी दूर कैसे आ सकता था? मगध से यहाँ पहुँचने में चार मास लगते हैं। अनजाना देश। अगर इतने लम्बे समय को अपना देश छोड़कर निकले तो किसी दूसरे के हड़पने का भय नहीं क्या? यह सब सोच-विचारकर केवल बीस वर्ष के कृष्ण ने इस प्रदेश को चुना।

पीढ़ियों से चले आये घरों को त्यागकर चलते समय कौन-सा सामान छोड़ें और कौन-सा ले जाएँ, यही समस्या थी। 'तुम्हारी गाड़ी बीच ही में टूट सकती है। तुम्हारे खींचने वाले बैल थक सकते हैं। मर सकते हैं। तुम्हारा सामान ही तुम्हारा बोझ बन सकता है। राह में सब कुछ फेंक-फाँककर आगे बढ़ना पड़ेगा। अत्यन्त आवश्यक सामान ही ले चलो। वहाँ इतनी सर्दी नहीं। इतने कंबलों की आवश्यकता नहीं। दाल, आटा और पकाने के बरतन, बस इतना ही लेकर चलो। धनुष-बाण और सारे आयुध साथ रहें।' यह बात कृष्ण के हज़ार बार कहने पर भी स्त्रियों ने कितना सामान बाँध लिया और पुरुषों को कितना ढोना पड़ा! व्यर्थ की चीज़ों से भी मनुष्य को कितना मोह होता है!

जो हाथी थे उन्हें वहीं छोड़ दिया। जो थोड़े-बहुत घोड़े और बैल थे उन्हें गाड़ियों से बाँधकर साथ ले जाने वाले लोग ही ज्यादा थे। चलने वाले राह में थक गये। बुखार आने लगा, पाँव फटकर रक्त चूने लगा। सब में एक अनाथ भाव छा गया। कृष्ण की बात मानने वाले भी राह में उसे गाली और शाप देते और कहते, 'कंस का राज्य ही अच्छा था।' किसी की बुरी-भली बात की ओर ध्यान न देकर आगे, पीछे, बीच में सबकी देख-भाल करता कृष्ण चल रहा था। सबसे यही कहा, 'दाल-आटा एक जगह कर दो, सब एक साथ पकाओ और खाओ, यात्रा सरल हो जाएगी।' पर क्या एक कुटुंब के होने पर भी क्या सारे यादव उसकी बात मानने को भी तैयार थे? 'अपना अनाज बढ़िया है। दूसरों का घटिया है। अपना पकाना अमृत है।' कहकर हर आदमी अपना चूल्हा अलग फूंकता रहा। कृष्ण गुस्से में आता तो कोई वृद्धा कहती, "हमें क्यों ले जा रहा है? इस मुसीबत में हमें क्यों डाला? चलने की गर्मी से गायों का दूध सूख गया। माताओं का दूध भी सूख गया। बच्चे मरने लगे तो उनके मरने का पाप किस-किस पर मढ़ा जाएगा।' कंस, जरासंध, कृष्ण के जन्म की घड़ी को सबने कोसा और कहा, 'पैदा होते ही माँ से अलग होने वाले और दूसरों के घर पलने वाले कृष्ण को किसी भी धरती से मोह नहीं।' प्रतिदिन के प्रयाण में नये नये-नये प्रदेशों को पार

करते हुए और नये-नये वातावरणों में सो सकने की आदत न होने के कारण रास्ते-भर कितने ही लोग सो नहीं सके।

यही सब सोचते-सोचते युयुधान को जम्हाई आयी। उसे ध्यान आया कि रात को अच्छी तरह सो नहीं सका था। साथ ही पिछली यादें भी साथ नहीं छोड़ रही थीं। मेरे पास एक घोडा था। सारी यात्रा में उस पर बैठकर देखभाल का काम करता था। पंद्रह वर्ष के लड़के पर कितना बड़ा दायित्व था ! तब मैं भी अपने को बड़ा समझने लगा था। यह इच्छा भी थी कि कृष्ण मेरे काम को पसंद करे। 'युयुधान, तुम चाहे कितना भी अच्छी तरह काम करो, लोग गालियाँ ही देंगे। फिर भी तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए···।' यह कृष्ण का उपदेश था।

इसी तरह सोचते-सोचते वह द्वारका की सीमा पर पहुँच गया। दोपहर हो चुकी थी। समुद्र में लहरें उफन-उफन कर सूर्य की किरणों को ललकार रही थीं।

सामने से आता हुआ बलराम मिला। उसका बायाँ गाल सूजा हुआ था पर मुख पर पीड़ा के चिह्न न थे। पास पहुँचते ही 'दर्द कैसा है ?' पूछता हुआ युयुधान घोड़े से उतर पड़ा।

'इधर देखो' कहकर बलराम ने 'आ' करके मुंह खोला और बायीं ओर के ऊपरले जबड़े में उँगली लगाकर दिखाया। दो दाढ़ें नहीं थीं। "रात को यहाँ से जाने के बाद एक मटकी आग जैसा तेज़ मद्य पिया। समुद्री व्यापार में उस देश के लोगों ने दिया था। कितना तेज़ है पता है ! आकाश में गरुड़ की उड़ान जैसा ज़ोर है उसमें। पीते ही हिलने वाले दोनों दाँतों को उखाड़कर फेंक दिया। थोड़ी देर तक दर्द रहा। रक्त बहा। बाद में आराम की नींद आ गयी।

"दोपहर होने पर भी मद्य का प्रभाव गया नहीं। रात को क्या कह रहा था ? इसमें कौन-सी मर्यादा का प्रश्न है। कृष्ण मान-अपमान का अंतर नहीं समझता। हमारी बेटी चुराकर या बलपूर्वक ले जाने वाले और हमें अपमानित करने वाले की तरफ़ मिलना प्रतिष्ठित लोगों का काम है ?"

"तुम कौन-सा प्रसंग उठा रहे हो ?"

"वही मेरी बहन सुभद्रा और अर्जुन का।"

"उस बात को अब सत्रह वर्ष बीत चुके हैं। उसके एक लड़का हो गया है और उस लड़के का हाल ही में विवाह भी हो गया। सगे भांजे के विवाह में भी तुम नहीं गये। मुंह मोड़कर बैठ रहे।"

"वर्ष बीत जाने से अपमान विस्मृत हो जाता है क्या ? मेरा रुक्मि का वध

करना तुम्हें भी अच्छा नहीं लगा था। लेकिन बलराम में क्षत्रिय का रक्त है। क्या किया जाय ? एक कुल का अपमान करने के लिए ही तो उस कुल की कन्या का अपहरण किया और हम रुक्मिणी को उठा लाये थे। इसके पीछे एक और कारण भी था। किन्तु हमें अपमानित करने का अर्जुन के पास कौन-सा कारण था ?"

"बलभद्र, तुम तो ग़लत बातें कह रहे हो। दाँतों की जड़ें ढीली पड़ जाती हैं तो क्या स्मृति की जड़ें भी ढीली हो जानी चाहिएँ ? क्रोध न करना, समय बीतते-बीतते वास्तविकता से मन समझौता कर लेता है। प्रेम और द्वेष नहीं रहते। बात साफ़ करके वास्तव में क्या हुआ सो तुम्हें बताता हूँ। मेरी ग़लती हो तो मुझे बताना।"

बलराम बोला नहीं। जहाँ खड़ा था, वहीं एक कीकर के पेड़ की छाया में जा बैठा। उसका मुख लहरों की ओर था। वह समुद्र की ओर निरर्थक नहीं देख रहा था। समुद्र और उसका संबंध नावों के कारण था। समुद्र पार की जनता से उसका व्यापार चलता था। पर अब यूँ चुपचाप बैठ गया मानो लहरें गिन रहा हो। घोड़े को घर जाने को खोलकर युयुधान बलराम के सामने बैठ गया और बोला : "सुभद्रा हमारी बेटी है। अर्जुन उस पर अनुरक्त हो गया यानी हमसे हाक गया। उसके मन में इसे पाने की इच्छा बलवती हो उठी। उठाकर ले जाते समय क्या लड़की ने विरोध किया ? उसके रूप पर वह भी मुग्ध हो गयी थी। रथ में बैठाकर ले गया। इसमें अपमान की क्या बात थी ? विदर्भ की नाक काटने के उद्देश्य से हम रुक्मिणी को नहीं लाये थे। जब हम सब मथुरा में थे और मथुरा छोड़ने का विचार करने से पहले ही विदर्भ में रुक्मिणी के स्वयंवर का प्रबंध हो चुका था। उसमें जरासंध और उसकी तरफ़ के सभी राजा गये थे। तुम्हें मथुरा की रक्षा के लिए छोड़कर कृष्ण ने भी वहाँ जाने का निश्चय किया था। उसका उद्देश्य क्या था ? कृष्ण तरुण था। अविवाहित था। साधारणतः ऐसे ही व्यक्तियों को कन्याएँ चुनती हैं न ? उस समय यह भी विचार था न कि यदि वह कृष्ण को मिल जाय तो संकट काल में मथुरा को विदर्भ की सहायता मिल सकती है। बताओ यह बात थी कि नहीं ?"

बलराम ने युयुधान की बात सुधारते हुए अपनी टिप्पणी जोड़ी : "कृष्ण ने किसी ब्राह्मण के मुख से रुक्मिणी के रूप की प्रशंसा सुनी थी। उसके मुँह में पानी भर आया।"

"यह भी हो सकता है। लेकिन आप सब लोगों के भेजने का उद्देश्य यही था न ? विवाह में लड़के-लड़की को तो रूप का आकर्षण रहता है, पर संबंधियों को क्या नये संबंध का आकर्षण नही रहता ? तुम्हीं बताओ।"

"ठीक है, आगे कहो।" बलराम की आँखें लहरों की ओर मुड़ीं।

युयुधान अपने को रोक नहीं सका। "रुक्मिणी असाधारण रूपवती थी। अब बेटे और पोते हो चुके हैं। वह दादी बन गयी है, फिर भी उसका-सा रूप किसी के

मुख पर नहीं। कृष्ण के लिए वह आकर्षण मुख्य नहीं था। केवल जरासंध की नाक काटने के मन से स्वयंवर में गया था।" पहले से ही मन में ये विचार रहने से वह ज़रा संकोच में पड़ गया। उसका मन यह मानने को तैयार न हुआ कि उसके मित्र का केवल यही उद्देश्य था। "स्वयंवर में गया था कृष्ण ! तब तक जरासंध मथुरा के आक्रमण में हार कर लौट गया था। तुम दोनों का पीछा करते-करते थककर चूर हो चुका था, और वापस लौट गया था। सारा आर्यजगत यह जानता था। समस्त आर्यजगत के राजा वहाँ एकत्रित भी थे। कंस के मारने वाला और जरासंध को धूल चटाने वाला उन्नीस वर्ष का वह लड़का राज और समाज में आकर्षण का बिंदु था। लड़की इसके बारे में सुन चुकी थी। इसलिए उसने इसके गले में जयमाला डालने का निश्चय कर लिया था। यह बात उसने अपने भाई रुक्मि को बता भी दी थी। विवाह के बाद यह बात स्वयं रुक्मिणी ने मुझे बतायी थी। कृष्ण जरासंध के दल की आँख का काँटा है, यह बात उस पंद्रह वर्ष की लड़की को क्या पता था ? जरासंध यह समझ गया। उसके दिमाग में तुरंत यह बात आयी कि यदि भीष्मक की पुत्री कृष्ण के हाथ लग गयी तो उसे दबाना कठिन होगा। रुक्मि के द्वारा हज़ार बार कहलाने पर वह छोटी-सी लड़की हठ करके बैठ गयी। तब क्या किया जाता ? जरासंध ने अपने लोगों की ओर से धमकाया। स्वयंवर को स्थगित न करोगे तो हम तुम्हारे कुंडिनीपुर को ध्वस्त कर डालेंगे। लड़की का पिता डर गया। जरासंध ने कृष्ण का वहीं वध करा देने का प्रयास किया। परंतु बचपन से बिल खोदकर साँप को खिलाने का अभ्यस्त था कृष्ण। वह बड़ी चतुरता से मथुरा जा पहुँचा। स्वयंवर रुक गया। बताओ यह पहली बात सच है या झूठ है ?"

"मुझे याद है। मैं मथुरा की रक्षा के लिए खड़ा था। कृष्ण स्वयंवर में होकर आया। ठीक है आगे कहो।" कहते हुए बलराम को इतने ज़ोर की जम्हाई आयी मानो दाढ़ें बाहर निकल आएँगी। उसकी उखाड़ी दोनों दाढ़ों के खाली छेद युयुधान को स्पष्ट दिखायी पड़े।

तेज़ धूप सारे आकाश को जला रही थी। उस समय इस तरह जम्हाई आना स्वाभाविक था। उसने कहा, "हम सब मथुरा खाली करके द्वारका आ गये न ! तब जरासंध ने अपनी असंख्य सेना लेकर मथुरा घेर ली थी। नगर में कोई भी न था। युद्ध करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। उसे यह पता तक न था कि यादव कहाँ चले गये, क्यों चले गये ? उसने सोचा कि वे सब कहीं जंगलों में छिपे होंगे। सेना के चले जाने के बाद वापस लौट आएँगे। उसने सैनिकों को आज्ञा दी कि सारी मथुरा को कुदालियों से खोदकर ध्वस्त कर दो। कितने देशों की कितनी सेना वहाँ जमी थी। वह पहले ही पुराना नगर था। दीवारें घूंसों ने खोखली कर रखी थीं। उसे भूमिसात करना कोई कठिन कार्य न था। उसे ऐसा ध्वस्त किया कि उस पुरानी ज़मीन पर फिर से मकान बनाने की अपेक्षा नयी जगह,

नया घर बनाना आसान था। युद्ध होता तो एक प्रकार की जीतने की तृप्ति रहती। आखिर दो बार धूल चाट चुके थे। उन्हें मारने की, हराने की तृप्ति तो मिलती। खाली यूं वापस जाने से मन में बड़ी तिलमिलाहट लग रही थी। जरासंध ने बड़े प्यार से जिसे पाला था, उस शिशुपाल को बुलाकर मथुरा को भूमिसात करने का काम सौंपा। तीन दिन में उसने बड़ी सरलता से वह काम कर दिया। जरासंध को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उसकी पीठ थपथपाकर गले लगाया। वह अपने प्रिय-जनों को जो चाहे प्रदान करने वाला उदार व्यक्ति तो था ही।"

"ओह, हो! अब तुमने जरासंध की प्रशंसा करनी शुरू कर दी जिसने हमारी मथुरा भूमिसात कर दी थी?" बलराम ने बीच ही में बात काटी।

"शत्रु हुआ तो क्या? अच्छे गुणों की प्रशंसा क्यों नहीं करनी चाहिए? उसने गले लगाकर कहा: 'बेटा, शिशुपाल, तुम्हें पुरस्कार दिलाऊँगा। सुना है इस आर्यजगत में उस जैसी सुंदरी नहीं, क्या तुम्हें पता नहीं? भीष्मक की बेटी रुक्मिणी की बात कह रहा हूँ। उसका विवाह तुमसे करा दूंगा।' यह सुनकर शिशुपाल ने झुककर उसे नमस्कार किया। वहीं एकत्रित सभी राजाओं को विदर्भ चलकर विवाह संपन्न कराने का न्योता जरासंध ने दे डाला। उसका निमंत्रण तो आज्ञा था। विवाह के लिए इतनी बड़ी सेना क्यों? इसके अतिरिक्त इतनी बड़ी सेना के लिए रास्ते में और भीष्मक के कुंडिनीपुर में खाने की व्यवस्था कैसे होती? सेना को अपने-अपने देश भेजकर राजा लोग केवल अपने अंगरक्षक, रथ, घोड़े, रसद आदि लेकर साथ चल पड़े। जब हम द्वारका पहुँचे ही थे तभी हमें यह समाचार मिला। कृष्ण ने सोचा कि जरासंध सीधा जाकर भीष्मक को अपनी बेटी का विवाह तुरंत करा देने की आज्ञा देगा। समस्त विदर्भ उसके प्रभाव में आ जाएगा। उस समय कृष्ण ने यह सुझाव दिया कि किसी-न-किसी प्रकार से जाकर कम-से-कम उस लड़की को उड़ा लाना चाहिए ताकि मथुरा ध्वस्त करने का आधा अपमान तो मिटाया जा सके। वह बात मेरे पिता भी मान गये। सारण मान गया, प्रसेन और चित्रक भी मान गये। तुम भी तो मान गये थे न? बताओ, माने थे या नहीं?"

"युयुधान, तब मैंने मान लिया था। कृष्ण ने जो कारण बताया था वह मुझे भी ठीक लगा था। पर वास्तविकता क्या थी, मालूम है? रुक्मिणी ऐसी सुंदरी थी कि कृष्ण उससे किसी-न-किसी प्रकार विवाह करना ही चाहता था। इसलिए उसने अपहरण करके उसे लाने का निश्चय किया। हम लोगों से बहाना बनाया। हम इतनी दूर बसने के लिए आकर थक चुके थे। गाँव और घर बसाकर भूमि चुनकर जुताई-बुआई छोड़कर विदर्भ जाकर सहायता देने को तैयार हो सकते थे? इस प्रकार ये लोग मान जाएँगे, सोचकर ही उसने हम सबसे यह बात कही थी।"

युयुधान को झटका-सा लगा और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि बलराम की बात सत्य भी हो सकती है। बलराम बोला, "युयुधान, इसमें संदेह करने की ज़रूरत

नहीं। स्त्रियों के प्रति कृष्ण में बड़ी दुर्बलता है। तुम्हारी या मेरी तरह एक-एक पत्नी से ही तृप्त हो जाने वाला आदमी वह नहीं है। ऐसी रुक्मिणी के बाद भी सात विवाह किये, नरकासुर से छुड़ाकर लायी सभी स्त्रियों से विवाह कर लिया। स्त्री भर मिल जाए तो वह जो चाहो करने को तैयार हो जाता है। हमें चक्कर देकर विदर्भ ले गया था। यह बात सच है न ?"

युयुधान हक्का-बक्का रह गया। उसे कोई उत्तर नहीं सूझा। जब वह उलझन में पड़ा ही था कि बलराम ने कहा, "तब तुम पंद्रह-सोलह वर्ष के लड़के रहे होगे। रुक्मिणी को उड़ा लाने वाले रथ को तुमने बहुत तेज़ी से चलाया और यादवों में सबसे बड़े वीर कहलाए। उस समय की तुम्हारी स्मृति की अपेक्षा मेरी स्मृति अधिक स्पष्ट है क्योंकि तब मैं बत्तीस वर्ष का था। तब जो हुआ बताता हूँ सुनो। जरासंध का मुँह काला करने के हठ से हम सब घोड़ों पर साथ में पाँच-सात रथ लेकर दक्षिण की ओर भागे। कितने वेग से गये। कितना श्रम किया। हमारे पहुँचने तक विवाह निश्चित हो चुका था। अगले दिन विवाह था। भीष्मक के लिए और कोई चारा न था। यदि वह अपनी बेटी शिशुपाल को देना अस्वीकार करता तो जरासंध कुंडिनीपुर को भूसात कर डालता। अपनी बेटी उसे दे देता तो उसके क्षत्रिय गौरव की रक्षा कैसे होती ? पुत्र पिता के कहने में न था। जब मैंने उसे मार डाला था तब तुम्हें भी बुरा लगा था। वह रुक्मि जरासंध की ओर था। ऐसे अवसर पर हम पहुँचे। भीष्मक को समाचार मिल गया। हमारे पहुँचने की बात यदि पता चल गयी तो जरासंध लड़ाई के लिए उतारू हो जाएगा यह सोचकर उसने हमें नगर के बाहर ही ठहराया।

हम लोगों को भीष्मक ने एकदम अनाथों की तरह नगर के बाहर ही ठहरा दिया, कहकर तुम्ही तो बिगड़ गये थे। तुम में तब भी सहनशक्ति कम थी।"

"मुझमें सहनशक्ति कम है, कृष्ण में गौरव कम है, पर नगर के बाहर ठहराना अच्छा ही हुआ। दूसरे दिन विवाह था। उस दिन इंद्राणी की पूजा के लिए लड़की उसी ओर आ सकती थी। 'किस स्थान विशेष पर कोई ब्राह्मण के वेश में जाकर यह पता लगाए। साधारणतः वह पूजा पेड़ों के झुरमुट में की जाती है। वह स्त्रियों की पूजा है। उसमें पुरुष नहीं रहते। तब मैं लड़की को उड़ाकर तेज़ी से भाग निकलूंगा। तुम लोग यहीं ठहरना। मेरा पीछा करने वालों को रोकना। तब तक मैं एक-दो नदी पार कर लूंगा। यदि रथ टूट गया तो उसके हाथ-पाँव बाँधकर घोड़े पर डालकर निकल जाऊँगा' यह कृष्ण ने कहा था। उसे तो लड़की चाहिए थी। सब कुछ उसी के कहे अनुसार हुआ। पर संध्या के समय जरासंध और उसके साथी राजा हम पर टूट पड़े। लड़ते-लड़ते हम लोग घायल हुए। उसी युद्ध में तुम्हारे पिता का पहला दाँत टूटा था। इधर देखो। मेरी पीठ पर एक लंबा-सा घाव का चिह्न है।"

"उससे जरासंध के मुख पर कालिख लगी कि नहीं ? क्या यह झूठ है ?"

"कष्ट उठाने वाला मैं था। कृष्ण नहीं।"

"उसने कभी इसका दावा भी नहीं किया।"

बलराम बोला नहीं।

युयुधान का मन स्मृतियों से भर गया। कृष्ण और रुक्मिणी को लेकर मैंने कितने वेग से रथ दौड़ाया था ! घोड़े कितने बढ़िया थे ! रक्षा के लिए पीछे दो रथ थे और घुड़सवार। वे लोग मेरे वेग को पा ही नहीं सके। कितने पीछे रह गये थे ! कृष्ण ने रुक्मिणी के पाँव बाँधते हुए कहा 'शाबाश।' आगे बढ़ते हुए दोराहे पर जब मैंने यह पूछा कि दायीं ओर जाना है या बायीं ओर तब रुक्मिणी के समझ में आया कि वह कृष्ण है। वह बोली, 'यादव, मैं कूदकर भागूंगी नहीं। हाथ-पाँव कसने से दुख रहे हैं, खोल दो।' उसने पहले उसे बदमाश समझकर छूटने का प्रयास किया था। बाद में ठीक से बैठकर उसी ने कहा था न : 'सारथी, रथ और तेज़ी से चलाओ। अंधेरा भर हो जाय। जरासंध के लोग इस ओर का मार्ग नहीं जानते। बाद में धीरे से चलेंगे, घोड़ों को तकलीफ़ नहीं होगी।' तभी मुड़कर मैंने उसकी ओर देखा था। वह मेरे ही आयु की थी। 'वे लोग तो रास्ते नहीं जानते, पर क्या तुम्हारे पिता को भी पता नहीं ?' कृष्ण के इस प्रश्न पर वह कितने प्यारे ढंग से मुस्करायी। 'एक ढंग से पिता की मान-रक्षा हो गयी। वे यह सोचकर तीन दिन से अन्न-जल छोड़कर बैठे थे कि क्षत्रिय होने पर भी डर के मारे मुझे अपनी बेटी का विवाह करना पड़ रहा है। मैं और मेरी माँ कितना रोती रहीं। हमारी सेना पीछा कर रही होगी, पर वह इतने वेग से आकर हमें नहीं पकड़ेगी।' यह कहने के बाद वह कितने ज़ोर से रो पड़ी। कृष्ण ने कंधे पर हाथ रखकर तसल्ली दी। 'तुम वास्तव में कौन हो ? मेरे माता-पिता···' आगे उसके मुंह से आवाज़ न निकली, घुटनों में मुँह छिपाकर रोने लगी···।

तब बलराम ने कहा, "वह अपने मुंह से अपना परिचय नहीं देता, पर उसका ढंग ही कुछ निराला है वही यादवों का मुखिया है। उसका बड़ा भाई बलराम नहीं। क्या ऐसा अहंकार उसमें नहीं ? वह चाहता है कि बूढ़ा नाना नाम मात्र को सिंहासन पर बैठा रहे और मैं उसकी बात मानता चलूं। उसने विवाह कर लिया और चाहता है कि उसकी सभी पत्नियों को सुखी रहना चाहिए और उसे समस्त आर्यावर्त में एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ के रूप में प्रख्यात होना चाहिए।"

युयुधान बोला नहीं। यादों ने उसके मन को फिर से घेर लिया। पर कान में पड़ने वाले शब्दों ने स्मृतियों में बाधा डाली। वह पूर्ण रूप से अंतर्मुखी नहीं हो पाया। बात फिर से बलराम ने ही शुरू की : "उसे प्राप्त कराने के लिए मैंने अपने प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध किया। हम लोग थे ही कितने ? उधर जरासंध के लोगों की संख्या बेहिसाब थी। इसी का भाई पूर्णा नदी तक कृष्ण को भगाता